मराठों का उत्थान और पतन

[श्री गोपाल दामोदर तामसकर M. A. L.T.
द्वारा लिखित]

प्रकाशक

सस्ता-साहित्य-मण्डल,

अजमेर।

प्रथम बार २१००
सन् १९३०
मूल्य २॥)

२८ फार्म तक कुं० हमीरमल लूणिया के प्रबंध से डायमण्ड जुबिली प्रेस अजमेर तथा २८ से ४१ तक के फार्म, नक्शे तथा टाइटिल पेज श्री जीतमल लूणिया द्वारा सस्ता-साहित्य-प्रेस अजमेर में मुद्रित ।

दो शब्द

मराठा शक्ति भारत के इतिहास की एक अमर विभूति है। मराठी भाषा में उसके विस्तृत, विश्वस्त और सुन्दर इतिहास निकल चुके हैं। हिन्दी में इस विषय में जो साहित्य है, वह ऐसा नहीं है कि जिसपर संतोष किया जा सके। प्रस्तुत पुस्तक इस अभाव की कुछ पूर्ति अवश्य करेगी।

मराठों की छोटी-सी शक्ति ने एक शक्तिमान् महाराष्ट्र का रूप धारण कर लिया, इसमें सिर्फ़ उनकी वीरता ही नहीं बल्कि दरअसल उनकी चतुराई ही खास चीज़ रही है। जहाँ उनमें इस शक्ति की ढिलाई हुई, वहीं उनका ह्रास भी शुरू हो गया, यद्यपि शक्ति के लिहाज़ से वे उस समय पहले से बढ़ चुके थे। नियंत्रण और कौशल की वृद्धि और कमी के अनुसार मराठा-शक्ति ने उत्थान-पतन के कई पलटे खाये। प्रस्तुत पुस्तक में मराठों के इसी उत्थान और पतन का विवेचन किया गया है।

पुस्तक के लेखक अध्यापक श्री गोपाल दामोदर तामसकर (एम० ए०, एल० टी०) हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ लेखक ही नहीं, स्वयं महाराष्ट्र हैं। इससे वर्णन का सरल-सुबोध होना स्वाभाविक

है। जिस ढंग से वह लिखा गया है, स्कूल-कालेज के छात्रों के लिए वह बड़ा अनुकूल है।

अशुद्धियाँ कुछ अधिक हो गई हैं, इसका मुख्य कारण यह है कि तामसकरजी ने पुस्तक बहुत जल्दी में और पेंसिल से लिखकर भेजी थी। इसीलिए, विशिष्ट अशुद्धियों का शुद्धि-पत्र अन्त में दे दिया गया है। आशा है, पाठक उन्हें शुद्ध कर लेंगे।

प्रकाशक

आत्म-निवेदन

महाराष्ट्र के इतिहास से मेरा परिचय हुए क़रीब पच्चीस साल हो गये। सन् १९०५ में हृदय में अनेक प्रेरणायें उठीं, उन्हींमें से एक ने महाराष्ट्र के इतिहास के पठन और मनन की रुचि पैदा की। उस समय बिलासपुर में इस इतिहास की जो पुस्तकें मिल सकीं, उन्हें मैंने उसी समय पढ़ डाला था। तदनन्तर इसी प्रकार की दूसरी उमंग सन् १९१४ में पैदा हुई—और, उसीके कारण, 'शिवाजी की योग्यता' में सङ्कलित लेख "मर्यादा" में मैंने प्रकाशित किये। फिर सन् १९१८ में इन्दौर के एक सज्जन ने महाराष्ट्र का एक छोटा-सा इतिहास लिखने के लिए कहा। तदनुसार मैंने कुछ सामग्री जुटाना आरम्भ किया, पर कई कारणों से उस समय की तैयारी ज्यों की त्यों रुक गई। सन् १९२९ की जुलाई में आर्थिक कठिनाइयों के कारण अनेक प्रकाशक महाशयों को मैंने सहायता के लिए पत्र लिखे, उनमें मैंने अपने मित्र श्री हरिभाऊ उपाध्याय को भी लिखा था। आपने ही इस पुस्तक को लिखने की सूचना की। अन्त में नवम्बर तक सब शर्तें तय हो गईं और फिर मैं इस पुस्तक को लिखने की तैयारी में लगा। अब मैं सहर्ष इसे उपस्थित करता हूँ।

इस पुस्तक में मेरा निजी वर्णन या विवेचन बहुत कम है। इस इतिहास की सामग्री मराठी भाषा में इतनी अधिक है कि उस सबको केवल पढ़ने में किसी भी दीर्घायुषी पुरुष का जीवन समाप्त हो सकता है। श्री राजवाड़े, साने, खरे, पारसनीस, रानडे आदि महाशयों के श्रम से महाराष्ट्र के इतिहास की ढेरों सामग्री इकट्ठा हो गई है। इन सबको बटोर कर और मन्थन कर केवल ५-६ सौ पृष्ठों के लिए आवश्यक सामग्री

तैयार करना बड़ा ही कठिन और खर्चीला काम है। इसलिए मुझे अधिकतर श्री सरदेसाई, रानडे, किंकेड, पारसनीस, द० वि० आपटे, मोड़क, साने, केलकर, सुरेन्द्रनाथ सेन, दिवेकर आदि लेखकों की मौलिक रचनाओं पर ही अवलंबित रहना पड़ा है। यह काम भी कोई छोटा न था। ऐसी मौलिक पुस्तकें भी सैकड़ों तैयार हो गई हैं। उन सबका भी उपयोग करना मेरे लिए शक्य न हो सका। इसलिए मुझे उनमें से भी कुछ चुनी हुई पुस्तकों पर ही अधिकतर ज़ोर देना पड़ा। जिन-जिन पुस्तकों का मैंने उपयोग किया है, उनमें से मुख्य ये हैं:—

(१) सर देसाई : मराठी रियासत (पूर्वार्ध)।
(२) ,, : मराठी रियासत—मध्य-विभाग १-४ ।
(३) ,, : ननासाहेब पेशवे ।
(४) न० चिं० केलकर : मराठे आणि इंग्रज ।
(५) किंकेड़ और पारसनीस : History of the Marathas, Vols I–III.
(६) वि० का० राजवाड़े : ऐतिहासिक प्रस्तावना ।
(७) द० वि० आपटे : महाराष्ट्र-इतिहास-मंजरी ।
(८) चिटणीस : श्री शिवछत्रपती महाराज ।
(९) कृ० वि० सोहनी : पेशव्यांची बखर (सम्पादक—रा० ब० का० ना० साने) ।
(१०) वा० वा० खरे : मराठी राज्याचा उत्तरार्ध ।
(११) भाऊसाहेबची बखर (सम्पादक—रा० ब० का० ना० साने)
(१२) शिवचरित्र साहित्य (सम्पादक—कृ० वा० पुरन्दरे)
(१३) शिवचरित्र प्रदीप (सम्पादक—द० वि० आपटे, स० म० दिवेकर)
(१४) परमानन्द कवि : शिवभारत (सम्पादक—स० म० दिवेकर)
(१५) यदुनाथ सरकार : Shivaji and his times,

(१६) रानडे ; Rise of the Maratha power,
(१७) सर देसाई : मुसलमानी रियासत।
(१८) तामसकर : शिवाजी की योग्यता।
(१९) भारत-इतिहास-मण्डल त्रैमासिक।
(२०) ल० वि० भावे : महाराष्ट्र-सारस्वत
(२१) प० त्या० गोडबोले : नवनीत।

इन पुस्तकों में सबसे अधिक उपयोग श्री सरदेसाई, किंकेड, पारस-नीस, मोड़क और साने की पुस्तकों का हुआ है। श्री मोड़क की "मुलांचा महाराष्ट्र, नामक पुस्तक का तो १७ से २९ अध्याय तक लिखने में बहुत अधिक उपयोग हुआ है। इसके बिना मैं इतने थोड़े समय में यह पुस्तक लिख न सकता। इतिहास का प्रत्येक वाक्य, शब्द और सन् बहुत ही छान-बीन के बाद लिखना पड़ता है। जिस-जिसने इतिहास की खोज करने का प्रयत्न किया है, उसे इस बात का पूर्ण अनुभव है। यद्यपि मेरी पुस्तक में कोई विशेष मौलिक वर्णन या विवेचन नहीं है, तथापि जहाँ कहीं भिन्न मत या तथ्य दीख पड़े, वहाँ मुझे अपना निर्णय करना ही पड़ा। ऐसे स्थानों में मुझे भी खूब सिरपच्ची करनी पड़ी है। इस पुस्तक के लिखने में मुझे जो परिश्रम करना पड़ा है, उसका पारिश्रमिक मिलने की तो मैं आशा कर ही नहीं सकता। मुझे तो इसीमें हर्ष है कि मैं यह काम कर सका। अब पुस्तक लोगों के सामने है। विद्वज्जन ही बतला सकते हैं कि मैं कहाँ तक अपने कार्य में सफल हो सका हूँ।

श्री दिनकर विनायक काले, एम० ए०, का मैं बहुत अधिक आभारी हूँ। "मराठों की सामाजिक व्यवस्था" पर दो अध्याय मैं आपकी ही सहायता से लिख सका हूँ। आपने बम्बई-विश्वविद्यालय की एम० ए० की परीक्षा के लिए मराठों की सामाजिक व्यवस्था पर ५०० से भी अधिक पृष्ठों का निबन्ध लिखा है। उसी अप्रकाशित निबन्ध के आधार पर मेरी पुस्तक के २३ और २४ वें अध्याय लिखे गये हैं। आपने अपने

अप्रकाशित निबन्ध की टाइप की हुई प्रति भेजकर मुझे बहुत अनुगृहीत किया है। इस पुस्तक में जो चित्र दिये हैं, उन्हें श्री काले महाशय ने श्री एस० डी० बोकिल से प्राप्त कर दिये हैं। अतः उक्त दोनों महाशय धन्यवाद के पात्र हैं।

इस पुस्तक की आधारात्मक पुस्तकों में से बहुत-सी पुस्तकों के नाम स्पेन्स ट्रेनिंग कॉलेज के अध्यापक श्री गङ्गाधर गोविन्द कानेटकर जी ने सुझाये। अतः मैं उनको भी इस सहायता के लिए धन्यवाद देता हूँ।

अन्त में मैं इस पुस्तक के प्रकाशक अजमेर के सस्ता-साहित्य-मण्डल के अधिकारियों को अनेक धन्यवाद देता हूँ। इन्हींकी प्रेरणा और सहायता से मैं यह पुस्तक हिन्दी-संसार को समर्पित कर सका हूँ।

स्पेन्स ट्रेनिङ्ग कॉलेज, जबलपुर।	विनीत गोपाल दामोदर तामसकर

विषय-सूची

परिशिष्ट

मराठों का
उत्थान और पतन

१

महाराष्ट्र के इतिहास का महत्व

इतिहास और प्राकृतिक शास्त्रों की तुलना

इतिहास से अनेक लाभ हैं। उनमें सबसे भारी लाभ जो दीख पड़ता है, वह प्राकृतिक शास्त्रों के लाभों से मिलता-जुलता ही है। प्राकृतिक शास्त्रों में हम देखते हैं कि किसी विशिष्ट परिस्थिति में, विशिष्ट कारणों के, विशिष्ट ही परिणाम होते हैं। हमें मालूम है कि लोहा गरम होने पर सदैव फैला करता है। इससे हम यह जान सकते हैं कि किसी विशेष अवस्था में लोहा यदि गरम हुआ तो वह अवश्य फैलेगा और इस विकार से होने वाले परिणाम अवश्य होंगे। इतिहास के द्वारा हम भविष्य की बात का जो अनुमान कर सकते हैं, वह उपरिलिखित नियम के अनुसार ही होता है। यह सब जानते ही हैं कि इस रीति का उपयोग सब मनुष्य सदैव किया करते हैं। कोई मनुष्य विशिष्ट परिस्थिति में कैसा बर्ताव करेगा, यह हम उसके विषय के अपने ज्ञान से यानी उसके जीवन के इतिहास से जाना करते हैं। इस प्रकार के कार्य-कारण-सम्बन्ध

का विचार करके, इतिहास के आधार पर, हम कितने ही भविष्य रचा करते हैं। इतिहास में हम केवल घटनाओं का ही वर्णन नहीं किन्तु उनकी परिस्थिति और परिणाम भी पढ़ा करते हैं। और उपरिलिखित नियम के अनुसार हम देखते हैं कि जब कभी वैसी ही परिस्थिति उत्पन्न हुई, और उस समय घटना के कारण वे ही रहे, तो परिणाम भी वे ही हुए हैं। इसीके आधार पर हम यह भविष्य कह सकते हैं कि जब कभी वही परिस्थिति उत्पन्न होगी और वे ही कारण उस समय होंगे, तब परिणाम भी वही होगा।

परिणामों को पहले से ही जान लेना कुछ कम लाभदायक नहीं है। जिस प्रकार प्राकृतिक शास्त्रों के अनुसार भावी परिणाम पहले से ही ज्ञात होने से हमें उचित कार्य करने का अवसर मिलता है, हम अपने कार्यों को ऐसा रच सकते हैं कि उनके विशिष्ट परिणाम हों, उसी प्रकार इतिहास के ज्ञान से भी लाभ होता है।

इतिहास के ज्ञान का भविष्य कार्यों के लिए उपयोग

नित्य जीवन के अनुभव के आधार पर यदि हम अपने कार्यों की प्रणाली रच सकते हैं, तो सैकड़ों वर्षों के सामाजिक और वैयक्तिक अनुभव के आधार पर हम अपने कार्यों को क्यों नहीं रच सकेंगे? ठोकर खाकर ज्ञान सीखने की अपेक्षा दूसरों के ज्ञान यानी अनुभवों का उपयोग करना उपयुक्त भी है। उससे समय, श्रम और हानि तीनों की बचत होती है। इतिहास अनुभवों का भण्डार है। उसमें मनुष्य-जीवन के नाना प्रकार के सैकड़ों अनुभव भरे पड़े हैं। जीवन के अनुभव की पाठशाला एक तो स्वयं जीवन है, दूसरा है इतिहास। जीवन की पाठशाला में अनुभव प्राप्त करने बैठने से श्रम और समय व्यर्थ खोने पड़ते हैं और बहुत

हानि उठानी पड़ती है। हमारा जीवन इतना बड़ा नहीं है कि पहले हम अनुभव प्राप्त करलें और फिर अपनी कार्य-प्रणाली निश्चित करें। पहले ही सोच-समझ कर काम करना होता है। इसलिए दूसरी पाठशाला में अनुभव का ज्ञान प्राप्त करना सब तरह से लाभकारी है। सारांश, इतिहास के ज्ञान से हमारा श्रम और समय बच सकता है और हानि होने का डर कम हो जाता है। अतएव जिस प्रकार किसी व्यक्ति के हेतु किये जानेवाले कार्यों के लिए उस व्यक्ति का इतिहास जानना आवश्यक है, उसी प्रकार किसी समाज के लिए किये जानेवाले कार्यों के लिए उस समाज का इतिहास जानना आवश्यक है। अन्यथा सैकड़ों भूलें हो सकती हैं। हमारे कार्यों के अनपेक्षित परिणाम होते हैं और सब-को अनेक प्रकार की हानि उठानी पड़ती है।

इतिहास आलोचनात्मक शास्त्र है

हमारा यह कहना नहीं है कि इतिहास और प्राकृतिक शास्त्रों के कार्य-कारणों की तुलना पूरी-पूरी हो सकती है। इतिहास में और प्राकृतिक शास्त्रों में एक बड़ा भारी अन्तर तो स्पष्ट ही है। प्राकृतिक शास्त्रों में पदार्थ-विज्ञान, रसायनशास्त्र इत्यादि बहुत-कुछ और वनस्पति-शास्त्र, जीवन-शास्त्र इत्यादि थोड़े-बहुत अंशों में प्रयोगात्मक शास्त्र हैं। उनका प्रयोग कर सकते हैं और परिणाम भी बहुत-कुछ प्रत्यक्ष देख सकते हैं। पर इतिहास में यह बात नहीं है। इतिहास में प्रयोग के अनुभव नहीं देख सकते। मनुष्य-जीवन में स्वाभाविक तौर पर जो अनुभव मिलते हैं, उनका इतिहास में संग्रह रहता है और हमें उन्हींका उपयोग करना होता है। इतिहास में मनुष्य-जीवन के प्रयोग नहीं किये जा सकते, जहाँ कहीं ऐसे कृत्रिम

अनुभव करने का प्रयत्न हुआ वहीं लोग सफल नहीं हुए। सारांश, प्राकृतिक शास्त्रों के सिद्धान्तों की सत्यता कई बार प्रयोग करके जान सकते हैं, पर इतिहास में उसमें संग्रहीत अनुभवों पर ही निर्भर रहना होता है। हम उन अनुभवों की आलोचना करके सिद्धान्त निकाला करते हैं। प्राकृतिक शास्त्र प्रयोगात्मक है, इतिहास आलोचनात्मक है। इससे निकलनेवाला एक भेद इन दोनों में और है। जिन शास्त्रों में प्रयोग की सम्भावना अधिक है उनमें प्रयोगों की परिस्थिति का नियन्त्रण हम कर सकते हैं; यानी जितनी चाहिए उतनी गरमी दे सकते हैं, उचित परिमाण में वस्तुयें ले सकते हैं और उन्ही यंत्रों का उपयोग हम बार-बार कर सकते हैं। इस प्रकार परिस्थिति को हम प्रयोग के उपयुक्त बना सकते हैं। पर आलोचनात्मक शास्त्रों में परिस्थिति बदला करती है। निर्जीव पदार्थों पर जहाँ प्रयोग होता है वहाँ परिस्थिति क़रीब-क़रीब एकसी रहती है, उसका हम इच्छानुसार उचित नियंत्रण कर सकते हैं। वनस्पतिशास्त्र में परिस्थिति का नियंत्रण भरपूर नहीं हो सकता और इसलिए उसमें प्रयोग के लिए स्थान भी कुछ कम रहता है। जीवशास्त्र में परिस्थिति के नियंत्रण और प्रयोग की संभावना और भी कम हो जाती है और मनुष्य के वैयक्तिक जीवन में उससे भी कम। सामाजिक जीवन में तो इसके लिए स्थान प्रायः नहीं के बराबर है। जो कुछ अनुभव दीख पड़ें उनमें बहुत समान कौन से हैं, कब-कब क़रीब-क़रीब समान परिस्थिति रही, क़रीब-क़रीब समान कारण कौन रहे, और क़रीब-क़रीब समान परिणाम कौन हुए, यह देखकर हमें अपने सिद्धान्त स्थिर करने पड़ते हैं।

बिलकुल एक-सी परिस्थिति इतिहास में दो बार मिलना प्रायः असम्भव है। ऐतिहासिक परिस्थितियों में थोड़ी-बहुत समानता हो सकती है, पर पूरी एकता कभी नहीं। इस कारण हमारे ऐतिहासिक सिद्धान्त प्रयोगात्मक शास्त्रों की भाँति अटल नहीं हो सकते, उनमें थोड़ा-बहुत परिवर्त्तन हो सकता है। कभी-कभी परिस्थिति, कारण और परिणाम का ज्ञान भी इतिहास में पूर्णतया ठीक नहीं रहता। इस कारण सिद्धान्तों की सत्यता थोड़ी और कम हो जाती है। पर इतने दोष रहने पर भी इतिहास का लाभ बड़ा भारी है। इसके सिवाय जब कोई दूसरी अनुभव-शाला है नहीं, तब इसका उत्तम उपयोग कर लेना अत्यन्त आवश्यक है।

इतिहास से समाज की मनःप्रवृत्ति का ज्ञान होता है

ऊपर बताये लाभ से मिलता-जुलता एक लाभ और है। कार्यों से जिस प्रकार किसी की मनःप्रवृत्ति मालूम हो जाती है और इसके लिए जिस प्रकार उसके कार्यों की आलोचना करनी पड़ती है, उसी प्रकार समाज की मनःप्रवृत्ति जानने के लिए समाज के कार्यों की आलोचना करनी पड़ती है। कोई कार्य होने के पहले मन में उसकी भावनायें उठती हैं, फिर तदनुसार कार्य होता है। हमारे कार्य हमारी भावनाओं के बहिःपरिणाम हैं। इस प्रकार कार्यों से भावनाओं का ज्ञान होता है। इसी प्रकार किसी के मन को हम जानते हैं। यही बात राष्ट्र के मन के विषय में चरितार्थ होती है। एक दृष्टि से देखा जाय तो इतिहास मनःप्रवृत्तियों का बहिःस्वरूप ही

है। उसमें समाज और व्यक्ति का मन बहुत-कुछ पढ़ा जा सकता है। और यह ज्ञान हमें अपने कार्यों को निश्चित करने के लिए सहायक होता है।

इतिहास से यह भी बात मालूम होती है कि किसी बात को बनने के लिए बहुत काल चाहिए। सुधार धीरे-धीरे ही होता है। कोई भी बात एक दिन में नहीं बन जाती। अंग्रेजी में कहावत है कि "रोम एक दिन में नहीं बना।" इस कहावत में शनैःशनैः सुधार का तत्त्व भरा हुआ है। इस कारण सच्चा इतिहासज्ञ कार्य और विचार में उतावला नहीं होता। वह किसी भी सुधार का ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करता है और इसके लिए वह उचित समय भी देता है। उतावलेपन से काम बनने की अपेक्षा बिगड़ने की सम्भावना अधिक रहती है। विशेष कर समाज पर कोई भी सुधार एकदम लाद देना अनुपयुक्त होता है। मनुष्य की परिस्थिति और कार्यों में भूत, वर्तमान और भविष्य नितान्त जकड़े रहते हैं। आज की बात वर्तमान में है, कल के लिए वह भविष्य में थी, और आज का दिन बीत जाने पर भूत-काल में चली जायगी। मनुष्य-समाज में ऐसी अवस्था बहुधा कम आती है कि जब भूत से वर्तमान का या वर्तमान से भविष्य का सम्बन्ध पूर्णतया टूट जाता है। परिवर्तन धीरे ही धीरे होता है। सुधार के लिए जबतक समाज तैयार न होगा, तबतक जबरदस्ती या उतावलेपन से कोई लाभ नहीं।

इतिहास से ज्ञान होता है कि समाज-सुधार धीरे-धीरे हो सकता है

इतिहास के जो उपर्युक्त तीन उपयोग हमने बताये हैं वे परस्पर बहुत सम्बद्ध हैं और इतिहास के पठन-पाठन के महत्व को स्थापित करने के लिए पर्याप्त हैं। सारांश यह है कि जिस किसी समाज से जिस किसी का किसी भी दृष्टि से सम्बन्ध पड़ता है उस समाज का पूर्ण चरित्र यानी इतिहास उस व्यक्ति को अपने कार्यों के लिए जान लेना अत्यन्त आवश्यक है।

इतिहास के ज्ञान की आवश्यकता

परन्तु इतिहास के लाभ इतने में ही परिमित नहीं होते। उससे ये व्यावहारिक लाभ तो हैं ही, पर कुछ नैतिक और मानसिक लाभ भी हैं। इतिहास से एक बड़ा भारी नैतिक लाभ यह है कि उससे स्वदेशाभिमान की जागृति होती है। अपने पूर्वजों के सम्बन्ध के ज्ञान से उनके विषय में अपना पूज्य भाव बढ़ता है और उनके वंशज होने का, उन्हींके देश में पैदा होने का, हमें अभिमान होता है। हिन्दुस्थानियों को तो यह बात और भी अधिक लागू होती है। गत कुछ काल से हिन्दुस्थान के इतिहास के अन्वेषण, लेखन और मनन की मात्रा बहुत कुछ बढ़ गई है, वह बहुतांश में इसी प्रवृत्ति का परिणाम है। स्वदेशाभिमान का परिणाम कार्य के रूप में होता है। मनुष्य अनुकरणशील प्राणी है और दूसरों की अपेक्षा अपने ही लोगों का अनुकरण अधिक करता है। इस तरह पूर्वजों के उदाहरणों से हममें कार्य-शक्ति का सञ्चार हुआ करता है और उनसे भी बढ़ कर कार्य कर दिखाने की इच्छा हममें पैदा होती है। साथ ही सच्चे इतिहास के ज्ञान से अन्ध-अभिमान दूर हो जाता है। उचित

इतिहास से स्वदेशाभिमान की जागृति

ज्ञान होने से, पूर्वजों के दोष और गुण जानने से, और अनेक समान उदाहरण देखने से हम यह जान सकते हैं कि हमारे अभिमान का आधार युक्तियुक्त है या नहीं। इस प्रकार वृथा अभिमान दूर हो जाता है। परन्तु जो कुछ अभिमान रहता है वह पक्का रहता है और उसीसे ऊपर निर्दिष्ट की हुई कार्य-शक्ति उत्पन्न होती है।

इतिहास से एक नैतिक लाभ और है। इतिहास के अन्वेषण, पठन और मनन से सत्य बातें जानने की इच्छा उत्पन्न होती है। यह इच्छा इतनी बढ़ जा सकती है कि फिर सत्य से प्रेम हो जाता है और असत्य से घृणा मालूम होती है। हाँ, केवल पठन और मनन से यह लाभ होने की सम्भावना कम रहती है। उसके साथ अन्वेषण की भी प्रवृत्ति होनी चाहिए। सत्य बातों की खोज करते-करते सत्य से प्रेम हो जाता है, फिर सत्य ढूँढ निकालने में चाहे जैसे कष्ट उठाये जा सकते हैं।

इतिहास से सत्य-प्रेम बढ़ता है

इतिहास पढ़ते-पढ़ते मन की प्रवृत्ति ही इतिहासात्मक बन जाती है। सब बातों को हम ऐतिहासिक दृष्टि से देखने लगते हैं। किसी भी बात पर विचार करने के पहले उसके इतिहास को जानना चाहते हैं और उस दृष्टि से उसके सम्बन्ध के निर्णय हम स्थिर करते हैं। आगे चल कर यह लाभ होता है कि मन उदार हो जाता है। अनेक अनुभवों के ज्ञान से मन संकुचित नहीं रह जाता। हमें मालूम रहता है कि ऐसी बातें इतिहास में हुई हैं, मनुष्य के अमुक विचार स्वाभाविक हैं, अमुक-

इतिहास के ज्ञान से ऐतिहासिक दृष्टि की उत्पत्ति

अमुक कार्य मनुष्य-स्वभाव के विरुद्ध नहीं हैं। हम पहले ही बता चुके हैं कि इतिहास से मनुष्य-स्वभाव का ज्ञान होता है। यह ज्ञान होने पर यह सम्भव नहीं कि हमारा मन पहले-जैसा ही संकुचित बना रहे। वह अवश्य उदार होगा।

इतिहास से एक छोटा-सा लाभ यह भी होता है कि उससे हमारे कुतूहल की पूर्ति होती है। मनुष्य-स्वभाव कुतूहल-पूर्ण है।

इतिहास से मनोरंजन

मनुष्य के विषय की बातें जानने की इच्छा हमें होना स्वाभाविक है। इतिहास के पढ़ने से यह कुतूहल पूर्ण होकर हमें आनन्द प्राप्त होता है। कैसा भी रूखा मनुष्य क्यों न हो, उसे भी इतिहास की दो-चार बातें जानने की इच्छा होती ही है। बालकों में कहानी सुनने की जो स्वाभाविक इच्छा होती है, वह इसी अन्तःप्रवृत्ति का मूल स्वरूप है। ऐसा मानसिक आनन्द जिस विषय से प्राप्त होता है, उसका इस दृष्टि से भी कुछ महत्व है। शिक्षा के अनेक उद्देश्यों में से एक यह भी है कि हम अपना खाली समय उचित रीति से श्रेष्ठ आनन्द का लाभ प्राप्त करते हुए बिता सकें। इतिहास से इस उद्देश्य की भी पूर्ति होती है।

अब प्रश्न यह है कि क्या महाराष्ट्र के इतिहास से उपर्युक्त सब लाभ प्राप्त हो सकते हैं ? हमारा मत है कि महाराष्ट्र के इति-

महाराष्ट्र के इतिहास से लाभ

हास से ऊपर बताये सब प्रकार के लाभ हमें हो सकते हैं। आज यदि महाराष्ट्र में और उत्तर-हिन्दुस्थान में तुलनात्मक दृष्टि से यह देखा जाय कि जागृति की मात्रा कहाँ अधिक है, वह कब से है, कहाँ हिन्दुस्थानियों के आचार-विचार पुरानी रीति

के अधिक अनुकूल हैं, तो उसके उत्तर में महाराष्ट्र ही का नाम लेना होगा; और यदि इस जागृति का कारण ढूँढा जाय, तो महाराष्ट्र के इतिहास की ओर ही अंगुली दिखलानी होगी। इतने पर भी यदि किसी को इस बात का अधिक प्रमाण चाहिए, तो वह महाराष्ट्र का इतिहास ही पढ़कर देखा जा सकता है। हिन्दुस्थान का साधारण इतिहास भी जाननेवाले इस बात से परिचित हैं कि औरंगज़ेब की सेना ने महाराष्ट्र पर बार-बार आक्रमण किये, पर मराठों ने हमेशा उसे वापस भगा दिया। अन्त में औरंगज़ेव ने जब देखा कि मेरे सेनापतियों के हाथ मराठे नहीं आते, तब वह स्वयं अपनी तमाम शाही फ़ौज लेकर दक्षिण में आ पहुँचा और एक-एक करके सब क़िले लेने लगा। धीरे-धीरे महाराष्ट्र का बहुत-सा भाग उसने जीत लिया। पर मराठे तब भी क़ाबू में न आये। सम्भाजी पकड़ा गया और औरंगज़ेव ने बड़ी क्रूरता से उसका वध किया। शाहू उसके पास क़ैद था, सारे महाराष्ट्रीय देश भ्रष्ट हो गये थे, द्रव्य मिलना असम्भव हो गया था, और मराठी सेना अव्यवस्थित हो इधर-उधर भटकने लगी थी। ऐसे समय में भी मराठे बिलकुल न दबे। उलटे, जब कभी यह मालूम होता कि अब सर्वनाश हो गया तभी वे फ़ौलाद की 'स्प्रिंग' की तरह दूने वेग से उठते और शाही सेना को मार भगाते थे। अन्त में राजाराम अपने मंत्रियों सहित जिंजी के क़िले में जा रहा और वहाँ से महाराष्ट्र का राज्य करने लगा। मराठों का राजा देश छोड़ कर अन्यत्र रहने लग गया, पर उसने परतंत्रता स्वीकार न की। उस समय जिन-जिन वीरों ने आश्चर्य-जनक काम किये, उनमें से कई शिवाजी के

साथी थे। शिवाजी का असर ही कुछ ऐसा था कि उससे जो कोई मिलता वह शिवाजी ही हो जाता था। उसकी मृत्यु के बाद उसका स्मरण-मात्र पर्याप्त था। केवल स्मरण से ही प्रत्येक महाराष्ट्रीय के शरीर में ऐसी विलक्षण शक्ति का संचार हो जाता था कि जीते जी उससे जीतना किसी की शक्ति में नहीं था। इस घटना के समाप्त होने तक शिवाजी के साथ के कई वीर मर चुके थे, पर शिवाजी का उत्पन्न किया हुआ जोश जबतक महाराष्ट्र में मौजूद था तबतक शिवाजी अथवा उनके साथी रहे अथवा मरे तो भी कोई अन्तर नहीं होता था। स्वदेशाभिमान क्या कर सकता है, इसका यह ज्वलन्त उदाहरण है। इसी प्रकार के परिणाम थोड़े-बहुत अंश में इसके बाद भी दीख पड़ते हैं। वीरवर बाजीराव ने जिस जोर से महाराष्ट्र का राज्य उत्तर की ओर बढ़ाया, उसमें यही अभिमान प्रेरणा के रूप में दीख पड़ता है। पानीपत के मैदान में लाखों मराठे मारे जाने पर भी थोड़े ही वर्षों के बाद वे अपना वर्चस्व दक्षिण और उत्तर में प्रस्थापित कर सके। जान तो ऐसा पड़ता था कि पानीपत की हार से मराठों की सत्ता बिलकुल नष्ट हो जायगी। पर थोड़े ही वर्षों के भीतर उत्तर में महादजी शिंदे ने और दक्षिण में माधोराव पेशवा ने पराक्रम के जो कार्य किये, वे आश्चर्यजनक जान पड़ते हैं। इसी प्रकार नारायणराव पेशवा का खून होने पर महाराष्ट्र की बागडोर रघुनाथराव ने स्वार्थ-सिद्धि के लिए अंग्रेजों के हाथ में देनी चाही, परन्तु महाराष्ट्रीयों ने जिस शूरता से उनके दाँत खट्टे किये, वह इतिहास-प्रसिद्ध बात है। परन्तु इतनी दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। स्वयं शिवाजी जब औरंगज़ेब के कपटा-

चरण के कारण दिल्ली में क़ैद हो गया और बारह महीने तक महाराष्ट्र में न आ सका तब भी वहाँ का शासन ऐसा चलता रहा, मानों शिवाजी स्वयं वहाँ उपस्थित हों। क्या इन सब घटनाओं में स्वदेशाभिमान की स्फूर्त्ति और शक्ति नहीं दीख पड़ती ?

महाराष्ट्र का इतिहास पुरुषों का जीवन-चरित्र नहीं है

इसका यह मतलब नहीं है कि महाराष्ट्र का इतिहास कुछ पुरुषों का जीवन-चरित्र ही है। महाराष्ट्र के इतिहास में केवल शिवाजी या राजाराम, बालाजी विश्वनाथ या बाजीराव, बालाजी बाजीराव अथवा माधोराव, नाना फड़नवीस अथवा महादजी शिन्दे ही कार्य-कर्ता पुरुष नहीं हैं। वास्तव में यह इतिहास एक राष्ट्र के अभ्युदय का इतिहास है। और उसका मूल बहुत गहरा दीख पड़ता है। इस अभ्युदय के मूल में केवल राजकीय जागृति ही नहीं है, उसका कारण सर्वाङ्गीन राष्ट्रीय जागृति है। जैसा आगे चलकर देखेंगे, केवल कुछ लोकनायक ही नहीं, केवल साधारण लोग ही नहीं, किन्तु साधु-सन्त भी इस काम में योग देने लगे थे। वास्तविक बात तो यह है कि इस राष्ट्रीय जागृति के मूल में धार्मिक जागृति थी। इस धार्मिक जागृति के बिना राष्ट्रीय जागृति न हो सकती। धार्मिक जागृति ने लोगों के सुप्त विचारों को जगा दिया। इसका यह अर्थ अवश्य है कि लोगों के मन में राष्ट्रीय जागृति के कुछ विचार बीज-रूप से पहले से ही बने थे। यह बात इसीसे स्पष्ट है कि महाराष्ट्रीय लोग पूर्ण रूप से जित-राष्ट्र नहीं बन गये थे। इनका देश ही कुछ ऐसा है कि उस काल में मुसलमानों को उन्हें पूरी तौर से जीत लेना सम्भव न था।

महाराष्ट्र के इतिहास को विदेशी इतिहास-लेखक इस ढंग से लिखते हैं, मानों वह कुछ पुरुषों का जीवन-चरित्र ही हो। इसी कारण वह नीरस, शिक्षाहीन और थोड़ा-बहुत निराशाजनक जान पड़ता है। उसमें उन्हें राष्ट्र के उत्थान और पतन की सामान्य धारा नहीं दीख पड़ती। जिस राष्ट्र ने औरंगज़ेब सरीखे मुग़ल बादशाह का सामना किया और तमाम शाही फ़ौज के नाकों दम कर दिया, जिस राष्ट्र ने अन्त को स्वराज्य की सनद प्राप्त कर ही ली और अपना राज्य केवल महाराष्ट्र में नहीं किन्तु उत्तर भारत में भी बढ़ाया, जिस राष्ट्र ने सुव्यवस्थित अंग्रेज़ी सेना को बड़गाँव में शस्त्र रख देने को बाध्य किया, वह किसी सामान्य उद्देश्य से अवश्य प्रेरित होनी चाहिए। इतिहास कुछ लोगों का जीवन-चरित्र नहीं है, परन्तु प्रकृति और मनुष्य की क्रिया और प्रतिक्रिया का बहिःस्वरूप है। इसी दृष्टि से सारे महाराष्ट्र का विचार होना आवश्यक है और तभी वह सब दृष्टि से लाभकारी हो सकता है, अन्यथा नहीं।

महाराष्ट्र के इतिहास की ओर परिवर्तित प्रवृत्ति

गत कुछ वर्षों से हिन्दुस्थानियों, ख़ासकर महाराष्ट्र की दृष्टि इस इतिहास की ओर विशेष जाने लगी है; और इसका परिणाम बहुत ही संतोषप्रद हुआ है। साधारणतः आज तक दो प्रकार के इतिहास-लेखक होते थे। एक तो विदेशियों का ऐसा वर्ग था कि जिन्हें हिन्दुस्थान के इतिहास में कुछ भी भली बात न दीख पड़ती थी और इसलिए जो भारतवर्ष के इतिहास के हिन्दू-काल, मुसलमान-काल और ब्रिटिश-काल नामक तीन विभाग करके हमारे देश के इतिहास का वर्णन किया करते

थे। दूसरा वर्ग हिन्दुस्थानियों का ऐसा था कि जो प्रत्येक मन-गढ़न्त बात को भी ऐतिहासिक समझता था। अब धीरे-धीरे विदेशी लोग भी हमारी दृष्टि से हमारे देश के इतिहास को देखने लगे हैं और सत्य की कसौटी पर कसे हुए सब प्रमाणों को मानने लगे हैं। साथ ही, सत्य के अन्वेषण के कारण, सत्य की कसौटी पर न ठहरनेवाली बातों को ऐतिहासिक कहना छोड़ दिया गया है; और ऐतिहासिक बातों के लिए ऐतिहासिक प्रमाण देना आवश्यक समझा जाने लगा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि इतिहास के लेखन और शिक्षण की प्रणाली सत्य की ओर अग्रसर हो रही है और इस प्रकार ऐतिहासिक प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। महाराष्ट्र के इतिहास के कर्ता छत्रपति शिवाजी की मूर्त्ति की स्थापना की नींव भारत के भावी सम्राट् (प्रिंस ऑफ़ वेल्स) के हाथों डाली जाना ऊपर लिखी बात का प्रमाण है और इतिहास-लेखकों के लिए यह बड़ी भारी ऐतिहासिक घटना है।

महाराष्ट्र का इतिहास बहुत मनोरञ्जक है

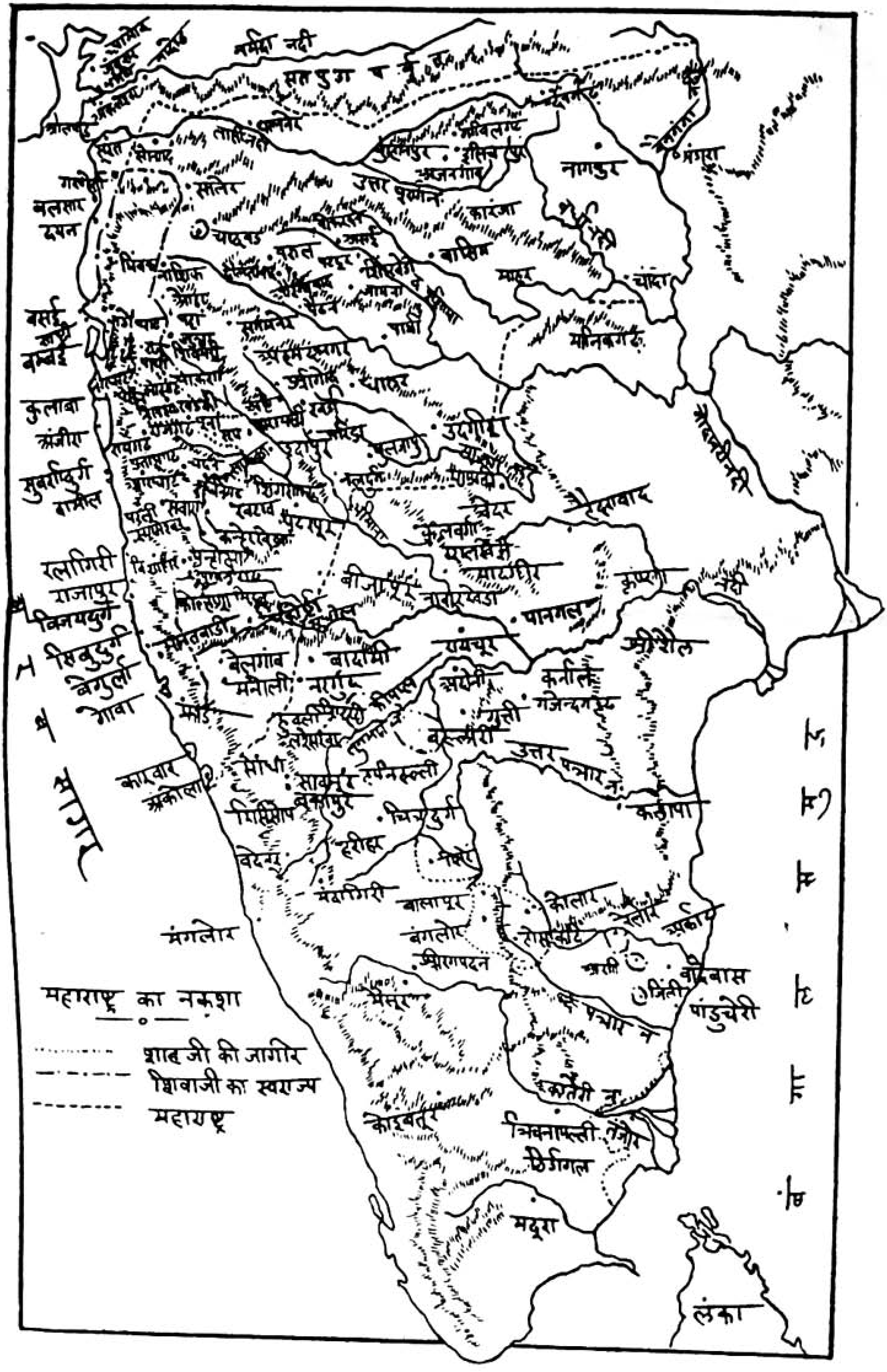
अन्त में हम यह कहना चाहते हैं कि भारतवर्ष के इतिहास में महाराष्ट्र के इतिहास से अधिक मनोरञ्जक भाग हमें अन्य कोई नहीं दीख पड़ता। किस प्रकार एक सामूली जागीरदार के लड़के ने अपनी किशोरावस्था में अदिलशाही की राजधानी में कुछ ही दूर पर धीरे-धीरे राज्य-स्थापना शुरू की, किस प्रकार धीरे-धीरे महाराष्ट्र के अजेय दुर्ग अपने हाथ में कर लिये, किस प्रकार उसने अफ़ज़लखाँ-सरीखे शूरवीर को केवल अपने बल से इस लोक से दूर कर दिया, किस प्रकार औरङ्गज़ेब के शाइस्ता-

खाँ-सरीखे सेनापति को पूने से बिना लड़ाई लड़े खदेड़ बाहर किया, किस प्रकार औरङ्गजेब-सरीखे कुटिल नीति के परिपूर्ण आचार्य की भी आँखों में धूल झोंक कर वह स्वदेश को सुरक्षित लौट आया, किस प्रकार फिर सारा महाराष्ट्र औरङ्गजेब के हाथ जाने पर भी महाराष्ट्रीय लोग इस क़दर शत्रु की भारी सेना से लड़ते ही रहे और किस प्रकार फिर स्वराज्य प्राप्त कर ही लिया, किस प्रकार आगे बाजीराव ने शाखाओं को छोड़कर मूल पर ही कुठार लगाने का प्रयत्न किया और अन्त में किस प्रकार बारह भाई की खेती नाना फड़नवीस के नेतृत्व में सफल हुई—ये सब बातें यदि विस्तार में पढ़ी जायँ तो इतनी मनोरञ्जक हैं कि अच्छे से अच्छे उपन्यास भी इनके सामने फीके जान पड़ेंगे।

महाराष्ट्र के इतिहास का स्वतंत्र स्थान

इस सब विवेचन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि हिन्दुस्थान के इतिहास में महाराष्ट्र के इतिहास को एक अलग स्वतन्त्र स्थान मिलना चाहिए। हिन्दुस्थान के इतिहास के एक दर्जे के जो तीन भेद किये जाते हैं वे दोषपूर्ण और अन्यायपूर्ण हैं। जो कोई सरसरी तौर से भी देखेगा वह यह जान जायगा कि १७०७ के बाद भारतवर्ष के इतिहास को मुसलमान-काल का इतिहास कहना सब की आँखों में धूल झोंकने के समान है। हम पूछना चाहते हैं कि अंग्रेजों ने हिन्दुस्थान को वास्तव में किससे जीता? माना कि बंगाल और बिहार शुजाउद्दौला और मीरक़ासिम से मिले, पर यदि मराठे अंग्रेजों के साथ की अपनी दूसरी लड़ाई में सफल हुए होते तो क्या अंग्रेजों का साम्राज्य हिन्दुस्थान में स्थापित हो सकता? स्वयं अंग्रेज लेखकों ने लिखा है कि इस लड़ाई के

पहले हिन्दुस्थान में अंग्रेज़ों का भी एक राज्य था, परन्तु इस लड़ाई के परिणामों के बाद हिन्दुस्थान में अंग्रेज़ों का साम्राज्य स्थापित हो गया। ऐसी स्थिति में महाराष्ट्र के इतिहास को हिन्दुस्थान के इतिहास में स्वतन्त्र स्थान न देना क्या उचित है ?


नर्मदा नदी
नागपुर
कारंजा
वाशिम
चांदा
माणिकगड़
बसई
बम्बई
कुलाबा
सुवर्णदुर्ग
रत्नागिरी
राजापुर
विजयदुर्ग
वेंगुर्ला
गोवा
धारूर
उदगीर
हैदराबाद
बीजापुर
बेलगांव
बादामी
मनोली
रायचूर
श्रीशैल
कर्नूल
गजेन्द्रगढ़
गुती
बल्लारी
कडाप्पा
कारवार
अंकोला
चित्रदुर्ग
बालापुर
कोलार
बंगलोर
श्रीरंगपट्टन
मंगलोर
मैसूर
पांडुचेरी
तंजौर
मदुरा
लंका
महाराष्ट्र का नक़शा
शाहजी की जागीर
शिवाजी का स्वराज्य
महाराष्ट्र

२

महाराष्ट्र-परिचय

महाराष्ट्र शब्द से आजकल सिन्ध और गुजरात को छोड़ शेष बम्बई-प्रान्त का बोध होता है। स्वयं महाराष्ट्र में भी इस शब्द का उपयोग इसी अर्थ में किया जाता है। परन्तु जब विशेष ठीक अर्थ करना होता है, तब इस शब्द के अर्थ में केवल उपरिलिखित भाग ही नहीं, प्रत्युत् सम्पूर्ण बरार और नागपुर कमिश्नरी का बहुत-सा हिस्सा शामिल कर लिया जाता है। अर्थात्, जहाँ-जहाँ अधिकांश लोगों की बोली मराठी भाषा है, वे सब भाग महाराष्ट्र में आते हैं। मोटे तौर से महाराष्ट्र की सीमा उत्तर में नर्मदा नदी से, पश्चिम में अरब-समुद्र से, ईशान में नागपुर से और नैऋत्य में कारवार शहर से मानी जाती है। इसका यह मतलब नहीं कि महाराष्ट्र शब्द का यही अर्थ इतिहास में सदैव होता रहा। वास्तविक बात यह है कि इस शब्द का अर्थ समय-समय बदलता रहा है। महाराष्ट्र शब्द का प्रथम उपयोग ईस्वी सन् के प्रारम्भ में दीख पड़ता है। इसके पहले

महाराष्ट्र की व्याप्ति और व्युत्पत्ति

आजकल के महाराष्ट्र को दक्षिणापथ, दण्डकारण्य आदि भिन्न-भिन्न नाम दिये जाते थे। उस काल के इतिहास की प्रवृत्ति से यही जान पड़ता है कि लोक-समूह के नाम से उसके बसे हुए भाग को भी नाम दिया जाता था। तथापि इतिहास-संशोधक श्री राजवाड़े ने इस शब्द की व्युत्पत्ति यह दी है – "किसी राजा का राज जिस भाग पर चलता है, वह राष्ट्र कहलाता है। ऐसे देश में पीढ़ी-दर-पीढ़ी भक्ति-पूर्वक रहनेवाले लोग राष्ट्रीय कहलाते हैं। राष्ट्र पर जो अधिकार चलाता है, वह राष्ट्रिक कहलाता है। अशोक के शिलालेख में जो रास्तिक अथवा रास्टिक शब्द आया है, वह राष्ट्रिक शब्द का अपभ्रंश ही है। आर्य जब दण्ड-कारण्य में बस गये, तब उस देश में अधिकार चलानेवाले राष्ट्रिक कहलाये; और जिन्होंने बहुत भारी अधिकार चलाया वे महाराष्ट्रिक कहलये। इसी प्रकार सामन्त से महासामन्त और भोज से महाभोज शब्द बने हैं। महाराष्ट्रिकों का देश महाराष्ट्र कहलाया। अशोक के शिलालेख में यह लिखा है कि धर्म-प्रसार के लिए उसके दूत राष्ट्रिक, पैटिनिक, अपरान्तक आदि लोगों की ओर गये थे। राष्ट्रिक यानी रट्ठे अथवा महाराष्ट्र के लोग, पैठनिक यानी पैठण के लोग, और अपरान्तक यानी उत्तर कोंकण के लोग। रट्ठे ही मराठों के पूर्वज हैं। उन्हींकी एक शाखा आगे चलकर राष्ट्रकूट नाम से प्रसिद्ध हुई। अशोक के तेरहवें अनुशासन में राष्ट्रिकों के साथ भोजों का भी उल्लेख है। इन भोजों का शासन बहुत दिन तक विदर्भ में चलता रहा। कई शिलालेखों में भोजों ने अपनेको महाभोज कहा है। इसी प्रकार राष्ट्रिक या रट्ठे नाम के बदले महाराष्ट्रिक या महारट्ठे नाम का उल्लेख

हुआ है। डाक्टर ग्रियरसन का मत है कि महाराष्ट्र शब्द का देश के अर्थ में उपयोग पहले-पहल वराहमिहिर के ग्रन्थों में दीख पड़ता है, परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि एक प्राकृत भाषा को महाराष्ट्री नाम ईस्वी सन् के प्रारम्भ से ही दिया जाने लगा था। इसलिए कदाचित् देश के नाम के अर्थ में इस शब्द का उपयोग उस समय प्रचलित हो गया था। भाजे और कारले नामक स्थानों के लेख ईस्वी सन् की दूसरी शताब्दी के हैं। उनमें कई दानों का वर्णन है। उन लेखों में, उनके दाताओं को पुरुष होने पर महारट्ठी और स्त्री होने पर महारठिनी कहा है। रट्ठी और महारट्ठी शब्द अन्य कई शिलालेखों में आये हैं, तथापि यह मानना ही होगा कि वराहमिहिर ने ही पहलेपहल देश के अर्थ में महाराष्ट्र शब्द का उपयोग किया।"

महाराष्ट्र की आजकल की सीमा हम ऊपर बता ही चुके हैं। परन्तु यह भी बता चुके हैं कि इस शब्द से ध्वनित होने

'महाराष्ट्र' शब्द के अन्तर्गत भौगोलिक भाग की परिवर्त्तनशीलता

वाला देश-भाग समय-समय पर भिन्न-भिन्न रहा है। शिवाजी के कार्य के प्रारम्भकाल में "महाराष्ट्र" में आजकल का समस्त महाराष्ट्र शामिल नहीं होता था। और इसके पहले का अर्थ तो स्पष्ट भिन्न था, यह बात इसीसे सिद्ध है कि "महाराष्ट्र" के साथ अपरान्तक आदि अन्य देशार्थक शब्द उपयोग में आये हैं। सम्भवत: शिवाजी के समय का महाराष्ट्र उसके राज्य-विस्तार के क़रीब-क़रीब बराबर ही था।

उस महाराष्ट्र में भी तीन स्वाभाविक भाग स्पष्ट दीख पड़ते

हैं—एक कोंकण, दूसरा घाटमाथा और तीसरा देश। अरब-सागर और सह्याद्रि-पर्वत का तटवर्ती भाग कोंकण कहलाता था और आज भी कहलाता है। सह्याद्रि पर्वत का पहाड़ी भाग घाटमाथा कहलाता था; और इसके पूर्व की ओर जो ऊबड़-खाबड़ भूमि-भाग दीख पड़ता है, उसका जो हिस्सा महाराष्ट्र में शामिल था, वह देश कहलाता था। हिन्दुस्थान का थोड़ा भी भूगोल जाननेवाला यह जानता है कि महाराष्ट्र का बहुतेरा भाग पहाड़ी और ऊबड़-खाबड़ है। इस बात का परिणाम वहाँ के लोगों के जीवन पर बड़ा भारी हुआ है। इतिहास-वेत्ता लोग यह जानते हैं कि पहाड़ी देश के लोग बहुधा स्वातंत्र्य-प्रिय होते हैं। यही बात महाराष्ट्र लोगों के इतिहास और जीवन में दीख पड़ती है। मुसलमानों ने सैनिक शक्ति से और धार्मिक बल के ज़ोर पर महाराष्ट्र के छोटे-छोटे राजाओं को जीत तो लिया, पर महाराष्ट्र के लोगों को वे पूरी तौर पर न जीत सके। इसका कारण उन लोगों का स्वातंत्र्य-प्रेम ही था। जो लोग कभी भी पूरी तरह जीते नहीं गये थे, उन लोगों को अपना स्वातंत्र्य वापस पा लेना कोई कठिन बात न थी। उस देश के जल-वायु का भी वहाँ के लोगों पर यथेष्ट परिणाम हुआ था। महाराष्ट्र का बहुतेरा भाग न तो अधिक ठण्डा ही है, और न अधिक गर्म। ऐसी दशा में मनुष्य यथेष्ट परिश्रमी हो सकते हैं। वर्षा की दृष्टि से महाराष्ट्र के दो भाग होते हैं। कोंकण में और सह्याद्रि के पश्चिमी ढाल पर काफ़ी वर्षा होती है, पर इस पर्वत के पूर्वी ढाल पर तथा "देश" में वर्षा का प्रमाण सामान्य ही है।

महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति और उसका वहाँ के लोगों के जीवन पर परिणाम

इस कारण दूसरे की अपेक्षा पहला भाग बहुत अधिक उपजाऊ है। परन्तु इस बात का वहाँ के लोगों के स्वभाव पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ सका। इसका कारण यह है कि "देश" के समान कोंकण भी ऊँचा-नीचा है और इस कारण भूमि उपजाऊ होने पर भी लोगों को वहाँ खेती में बहुत परिश्रम करना पड़ता है। इसलिए यह परिश्रमशीलता सारे महाराष्ट्र में एक सामान्य बात है। "देश" में यदि कम वर्षा के कारण परिश्रम करना पड़ता है, तो कोंकण में थोड़ी-बहुत सम-भूमि का अधिकतम उपयोग करने में श्रम की दरकार है। इस प्रकार जल-वायु का परिणाम सारे महाराष्ट्र में एकसा दीख पड़ता है। उसका स्वास्थ्यप्रद होना और साथ ही परिश्रम करने के लिए उत्तेजक होना इतिहास में महत्वपूर्ण बात रही है। उसके स्वास्थ्यप्रद होने के कारण लोग परिश्रम से कभी पीछे नहीं हटते थे, और परिश्रम की आवश्यकता शरीर-रक्षण के लिए होने के कारण वे परिश्रमशील भी थे। इन दो बातों का परिणाम महाराष्ट्र के अगले इतिहास में समय-समय दीख पड़ता है। जहाँ थोड़े परिश्रम से शरीर-रक्षण हो सकता है, वहाँ लोग बहुधा आलसी हुआ करते हैं अथवा जहाँ के लोग सदैव रोगों से पीड़ित रहते हैं; वे भाग्य के भरोसे जीवन विताते हैं।

उपर्युक्त भौगोलिक कारणों के सिवाय वहाँ के लोगों के "जातीय" स्वभाव का परिणाम भी दीख पड़ता है। वैसे तो समस्त हिन्दू अपने को आर्य कहते हैं, परन्तु प्रत्येक इतिहासज्ञ यह जानता है कि आर्यों के आने के पहले इस देश में कई द्रविड़ जातियाँ रहती थीं। ज्यों-ज्यों आर्यों ने धीरे-धीरे हिन्दुस्थान

आर्यों और अनार्यों के सम्मि-श्रण का परिणाम

के भिन्न-भिन्न भागों में अपनी बस्तियाँ स्थापित कीं, त्यों-त्यों द्रविड़ लोग थोड़े-बहुत उत्तर से दक्षिण की ओर हटने लगे। वैसे तो सारे भारतवर्ष में ही प्रारम्भिक इतिहास-काल में आर्यों ने यहाँ के अनार्यों से अनेक प्रकार की सेवायें लीं और उनसे थोड़े-बहुत विवाह-सम्बन्ध भी किये, पर ये बातें दक्षिण में अधिक हुईं; इस कारण उत्तर और दक्षिण के लोगों के स्वभाव में थोड़ा-बहुत अन्तर हो गया। इस सम्मिश्रण का प्रभाव केवल आचार और विचार में ही नहीं, किन्तु भाषा और सामाजिक रीति-भाँतियों में भी दीख पड़ता है। उनमें से अन्तिम परिणाम महत्वपूर्ण है। उत्तर के समान दक्षिण में भी हिन्दुओं में अनेक जातियाँ उत्पन्न हुईं, पर उत्तर के धार्मिक पंथों में और जाति-भेदों में जो कट्टरता दीख पड़ती है वह दक्षिण में आर्य और अनार्यों की आर्य-सभ्यता को स्वीकृत करने के कारण कभी न दीख पड़ी, और न आज ही दीख पड़ती है। हम पहले बतला ही चुके हैं कि इन सब लोगों की एक भाषा थी और उस भाषा में धीरे-धीरे अनेक साहित्य-ग्रन्थ लिखे जाने लगे। इस साहित्य का लोगों के मन पर राष्ट्रीय भावों के रूप में जो परिणाम हुआ, उसका विवेचन यथास्थान आगे आयगा ही।* यहाँ पर इतना कहना काफ़ी होगा कि एक राष्ट्र बनाने में उस सामान्य साहित्य ने बड़ा भारी काम किया है। इसलिए हम अब अपना कार्य इस देश के प्राचीन इतिहास से प्रारम्भ करेंगे।

---

* आठवाँ अध्याय देखिए।

३

पूर्व-इतिहास और हिन्दू-काल

"महाराष्ट्र" शब्द का प्रयोग ईस्वी सन् के आरम्भ-काल से होने लगा था, यह हम बता ही चुके हैं। उससे पहले

महाराष्ट्र में आन्ध्र-वंश

"महाराष्ट्र" में कौन राजा राज्य करते थे, इसका पता हमें नहीं लगता। अशोक का शासन ख़ास महाराष्ट्र में था या नहीं, यह भी हम नहीं कह सकते। अपरान्तक यानी उत्तर-कोंकण में सोपारा उर्फ़ शूपरिक नामक स्थान में अशोक के शिला-लेख मिले हैं; परन्तु इतिहास-लेखकों का मत है कि जहाँ-जहाँ उसके शिला-लेख मिले हैं वहाँ-वहाँ उसका शासन था ही, ऐसा निश्चित तौर पर नहीं कह सकते। अशोक के बाद क़रीब ४०० वर्ष तक आन्ध्रवंशी राजाओं का राज्य महाराष्ट्र में था। आन्ध्र लोग वर्तमान काल के तेलगू लोगों के पूर्वज हैं। वे कृष्णा और गोदावरी नदियों के डेल्टों के बीच रहते थे। अब भी वह भाग आन्ध्र कहलाता है। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय वे बड़े शूरवीर समझे जाते थे। उनकी राजधानी कृष्णा नदी के किनारे श्रीकाकुल नामक स्थान में थी। यहाँ के राजा ने अशोक का सार्वभौमत्व

स्वीकार किया था, परन्तु अशोक के बाद यहाँ का राजा सिन्धुक स्वतन्त्र बन बैठा। सिन्धुक के बाद के राजा कृष्ण ने अपना राज्य नाशिक तक फैलाया। आन्ध्र राजाओं का वर्णन पुराणों में दीख पड़ता है, परन्तु उनका शृंखलापूर्ण वृत्तान्त अवतक नहीं मिला है।

शातवाहन नाम की आन्ध्रों की एक शाखा महाराष्ट्र में प्रतिष्ठान उर्फ़ पैठन स्थान में स्थापित हुई थी। ये अपनेको पहले आन्ध्र-भृत्य यानी आन्ध्रों के सेवक कहते थे। इन्हींका एक नाम शातकर्णी भी दीख पड़ता है। शातवाहन शब्द का अपभ्रंश शालिवाहन हुआ। महाराष्ट्र के कई स्थानों में मिले हुए लेखों से ऐसा जान पड़ता है कि शालिवाहन-वंश के राजा आरम्भ में महाराष्ट्र में राज्य करते थे। उनमें से कई बड़े पराक्रमी हुए। महाराष्ट्र में इन राजाओं का शासन क़रीब ३०० वर्ष तक यानी ईसा-पूर्व ७३ वर्ष से ईस्वी सन् २१८ वर्ष तक चलता रहा। इस बीच कोई पच्चीस-तीस बड़े-बड़े राजा हुए। उन्होंने अच्छे-अच्छे धर्म-कार्य किये हैं। उनमें से पुलमायी, यज्ञश्री, चतुष्पर्ण, माधुरोपुत्र आदि नाम शिलालेखों में प्रसिद्ध हैं।

शालिवाहन-वंश

इन तीनसौ वर्षों के दर्म्यान क़रीब ५० वर्ष तक शालिवाहन राजाओं का शासन नष्ट हो गया था। इस अवधि में शक नाम के यवन राजा यहाँ राज्य करते थे। इन्हीं शक राजाओं ने वर्ष-गणना के लिए जो संवत्सर स्थापित किया, वह वैसा ही आगे चलता रहा। शकों के क्षत्रप नहपाण को गौतमी-पुत्र पुलमायी ने हरा दिया और इस प्रकार शालिवाहनों का राज्य फिर से स्थापित किया। ऐसा जान

शक और शालिवाहन

पड़ता है कि नहपाण सन् ४६ ईस्वी में था और इसीके छः-सात साल बाद शकों की हार हुई। इससे यह मालूम पड़ता है कि ईस्वी सन् के प्रारम्भिक काल में क़रीब ५० वर्ष तक शकों का शासन महाराष्ट्र में था। सर्व-साधारण का ख़याल है कि शालिवाहन राजा ने शक संवत् शुरू किया। परन्तु यह बात ठीक नहीं है। आरम्भ में शक संवत् को शक-नृप-काल अथवा शक-काल ही कहते थे। शक लोगों का पराभव होने पर वे यहाँ से चले गये, परन्तु उनकी वर्ष-गणना यहाँ क़ायम रही। कदाचित् उस समय इस बात की आवश्यकता जान पड़ी कि इस वर्ष-गणना के साथ किसी राजा का नाम होना चाहिए, इस कारण शालिवाहन नाम शक संवत् के साथ जोड़ा जाने लगा और वह "शालिवाहन शक" कहलाने लगा।

शालिवाहनों के समय में महाराष्ट्र की स्थिति

शालिवाहन राजाओं के समय में अनेक बातों की उन्नति हुई। ऐसी कथा है कि पुलमायी नामक शालिवाहन राजा के प्रधान गुणाढ्य ने बृहत् कथा-सागर नामक ग्रंथ पैशाची नामक प्राकृत भाषा में लिखा था। इन्हीं शालिवाहनों में से एक के दरबार में सर्ववर्मा नामक एक गृहस्थ रहता था, जिसने "कातन्त्र" नामक व्याकरण लिखा। हाल नामक शालिवाहन राजा का महाराष्ट्रीय भाषा में लिखा हुआ "सप्तशती" नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध ही है। इन बातों से यह जान पड़ता है कि शालिवाहन राजाओं के समय में भाषा और साहित्य की यथेष्ट उन्नति हुई। इन राजाओं के समय में महाराष्ट्र में बौद्ध-धर्म प्रचलित था, शकों ने कदाचित् ब्राह्मण-धर्म स्वीकार कर लिया था। इन राजाओं के समय व्यापार में भी अच्छी उन्नति हुई थी।

भरुकच्छ यानी भड़ोंच व्यापार का बड़ा भारी बन्दरगाह था। वहीं पश्चिमी देशों से अनेक प्रकार का माल आता और वहीं से वह पैठण आदि शहरों में भेजा जाता था। इस देश का माल भी भड़ोंच से अन्य देशों को भेजा जाता था। पैठण व्यापार तथा विद्या का बड़ा भारी केन्द्र था। शिलाहार नामक राजा तगर नगरी में राज्य करते थे। यह बड़ा भारी शहर था और शायद आज-कल निजाम हैदराबाद के धारुर शहर के पास बसा हुआ था। जिस सुपारा का नाम हम पहले बता चुके हैं, वह भी व्यापार का एक भारी केन्द्र था। इनके सिवा पश्चिमी किनारे पर व्यापार के कई अन्य बन्दरगाह थे, और लोगों को उनसे बहुत लाभ होता था। भिन्न-भिन्न धन्धों के लोगों की पंचायत हुआ करती थी और वे सब मिलकर अपने गाँव की व्यवस्था किया करते थे। आजकल की म्युनिसिपैलिटियों के समान शहरों की व्यवस्था के लिए उस समय "निगम सभा" नाम की एक सभा होती थी। अशोक के समय से शालिवाहन राजा के अन्त तक महाराष्ट्री ही लोगों की मुख्य बोली थी, परन्तु पाली और अन्य प्राकृत भाषाओं का भी उपयोग होता था। शिलालेख ज़रूर संस्कृत भाषा में लिखे जाते थे और संस्कृत भाषा का प्रचार शालिवाहन राजाओं के बाद बढ़ता ही गया।

राष्ट्रकूट-वंश

शालिवाहन राजाओं के बाद क़रीब ३०० वर्ष तक महाराष्ट्र के इतिहास का कुछ पता नहीं है। इतना ही कह सकते हैं कि उनके कुछ वंशज कन्हाड़ नामक भाग में राज्य करते थे। इस प्रकार अभरि-वंश के राजाओं का राज्य महाराष्ट्र में बहुत दिनों तक था। पुराणों में दस अभरि

राजाओं के नाम आये हैं। इनके सिवाय भोज, रट्ठे, राष्ट्रिक आदि नामों के क्षत्रियवंश शालिवाहनों के बाद स्थान-स्थान पर प्रबल हो गये थे। उत्तर महाराष्ट्र में रट्ठे लोगों ने अपनेको महारट्ठे कहलाना शुरू किया। परन्तु दक्षिण की ओर उनका नाम रट्ठी अथवा रट्ठे ही प्रचलित रहा। रट्ठों के कई कुटुम्बों ने एक "कूट" यानी संघ बनाया और वे अपने को रट्ठकूट अथवा रट्ठकूड़ कहलाने लगे। इसीका संस्कृत-रूप "राष्ट्रकूट" हुआ। ऐसा जान पड़ता है कि इसी शब्द का अपभ्रंश आगे चलकर राठौड़ हुआ। अभीर और राष्ट्रकूट दोनों का उदय लगभग एक ही समय यानी ईस्वी सन् की तीसरी शताब्दी के अन्त में हुआ, और क़रीब ढाई सौ वर्ष तक यानी छठवीं सदी के प्रारम्भ तक उनका कम-अधिक राज्य महाराष्ट्र में चलता रहा। इसी समय दक्षिण की ओर आजकल के उत्तर कनारा जिले में कदम्ब लोगों का एक प्रबल राज्य था। इनके देश को वनवासी कहते थे। इसीका दूसरा नाम वैजयंती था। आजकल के हानगल शहर के नैऋत्य की ओर १६ मील पर यह शहर था। छठवीं शताब्दी में उत्तर से चालुक्य लोग दक्षिण में आये और उन्होंने महाराष्ट्र को अपने अधीन कर लिया।

बादामी का चालुक्य-वंश

चालुक्य लोगों से महाराष्ट्र का शृंखलाबद्ध इतिहास मिलता है। ये लोग आरम्भ में अयोध्या में राज्य करते थे। हारित और मानन्य नामक योद्धाओं से चालुक्य-वंश की उत्पत्ति हुई। उनका कुलदेव कार्तिकेय था, और उनके झण्डे पर वराह का चिन्ह था। वे अपनेको सूर्यवंशी कहलाते थे। इन्हीं चालुक्यों की एक शाखा

दक्षिण में आई। इस शाखा का मुखिया जयसिंह नामक पुरुष था। उसने राष्ट्रकूट राजा कृष्ण के पुत्र इन्द्र को हराकर दक्षिण में अपना राज्य स्थापित किया, और फिर आसपास के राजाओं को जीतकर उसे बढ़ाया। इस वंश ने क़रीब दो सौ वर्ष तक राज्य किया। इनकी राजधानी वातापिपुर अथवा आजकल के बादामी में थी। इस वंश में अनेक पराक्रमी राजा हो गये हैं। उनमें से द्वितीय पुलकेशी विशेष प्रसिद्ध है। उसने सत्याश्रय—श्री पृथ्वी-वल्लभ महाराज नामक पदवी धारण की थी। कदम्बों को हराकर वनवासी शहर अपने अधीन कर लिया। इसी प्रकार कोंकण, लाटमालव और गुर्जर देशों के राजाओं को हराकर अपने मांडलिक बना लिया। इस समय उतर-हिन्दुस्थान में हर्षवर्धन शिलादित्य नामक पराक्रमी राजा कन्नौज में राज्य करता था। उसने दक्षिण पर चढ़ाई की। परन्तु पुलकेशी ने उसे हरा दिया। कलिंग और कौशल देश के राजा भी उसकी शरण में आये; और चोल, पांड्य तथा केरल के राजाओं ने उससे मित्रता करली।

पुलकेशी की कीर्ति हिन्दुस्थान के बाहर भी फैली थी। उसने अपने दूत ईरान के राजा द्वितीय खुसरू के यहाँ ईस्वी सन ६२५-६२६ में भेजे थे, इसलिए खुसरू ने भी अपने दूत पुलकेशी के दरबार में भेजे। सम्पूर्ण महाराष्ट्र पुलकेशी के अधिकार में था, और कई वर्ष तक बड़ी शांति के साथ उसने यहाँ राज्य किया। प्रसिद्ध चीनी प्रवासी ह्युनत्सांग जब हिन्दुस्थान में आया तब वह पुलकेशी से भी मिला था। उस समय पुलकेशी नाशिक में रहता था। ह्युनत्सांग ने लिखा है कि पुलकेशी उदार और प्रजा-पालन में दक्ष राजा है और प्रजा

राजा पुलकेशी

उसपर बहुत प्रेम करती है। आगे वह लिखता है—"पुलकेशी के राज्य की परिधि १२०० मील है। महाराष्ट्र की भूमि उपजाऊ है और उसमें अनाज खूब पैदा होता है। वायु उष्ण है। लोगों की रहन-सहन सादी है। यहाँ के लोग ऊँचे मानी और हठी हैं। उनपर यदि किसीने उपकार किया तो वे उसका अच्छी तरह स्मरण रखते हैं; परन्तु यदि उनके विरुद्ध कुछ किया तो उनसे बचना मुश्किल है। किसीको कठिनाई में देखकर वे स्वयं अपने जीवन की पर्वाह न करके उसकी सहायता करते हैं। शत्रु को पहले सूचना देकर फिर वे उससे लड़ते हैं। लड़ाई में वे शत्रु का पीछा करते हैं, परन्तु शरणागतों को मारते नहीं। उनके सरदार लड़ाई में हार जायँ तो स्त्रियों के कपड़े पहना कर उनका अपमान किया जाता है। युद्ध में जाने से पहले वे शराब पीते हैं। फिर उनके सामने खड़े होने की किसीकी छाती नहीं होती। उनके दल के दल शत्रु पर टूट पड़ते हैं। ऐसे लोग पास रहने के कारण उनके राजा को किसीकी चिन्ता नहीं मालूम होती।"

इस बात का पता नहीं लगता कि पुलकेशी की मृत्यु कब हुई। सन् ६०९ ईस्वी से काँची के पल्लव राजा के साथ थोड़ा बहुत-युद्ध चला था। सन् ६४२ में इस युद्ध में पुलकेशी विफल हुआ। पल्लव राजा नरसिंह वर्मा ने वातापी शहर जीतकर लूट डाला, और कदाचित् पुलकेशी को भी पकड़ कर मार डाला। इसके बाद तेरह वर्ष तक चालुक्यों का अधिकार बहुत कम चल सका, और उनके राज्य का दक्षिणी भाग पल्लवों ने अपने अधीन कर लिया।

पुलकेशी के बाद उसका दूसरा लड़का प्रियतनम-विक्रमा-

दित्य सन् ६५५ में बादामी का राजा हुआ। यह बड़ा पराक्रमी था। इसने कांची के पल्लव राजा को हरा दिया और सन् ६८० तक राज्य किया।

चालुक्य-वंश का अंतिमकाल

सन् ७५३ में राष्ट्रकूटों ने चालुक्यों को हरा दिया और अपना राज्य स्थापित किया, परन्तु इसके बाद भी चालुक्य-वंश के कुछ राजा महाराष्ट्र में भिन्न-भिन्न स्थानों में राज्य करते थे। इन्हींमें से एक शाखा करीब २०० वर्ष के बाद फिर से प्रबल हुई।

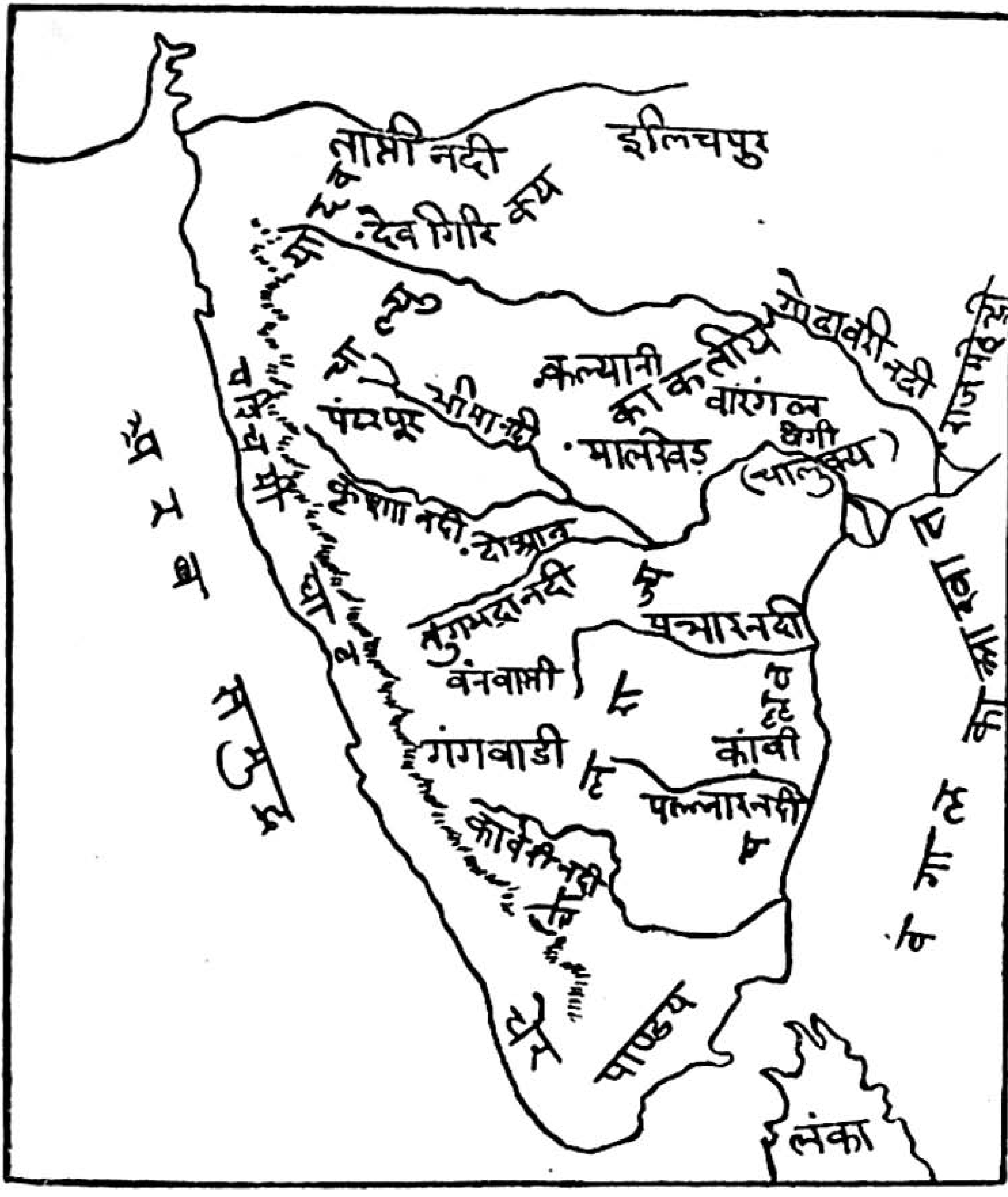
चालुक्य लोगों के समय जैन-धर्म का महाराष्ट्र में विशेष प्रभाव था। तथापि जगह-जगह पौराणिक और वैदिक धर्म का भी प्रचार था। इन्हींके समय में पहाड़ों को खोद कर बौद्धों के विहारों के समान मंदिर बनाने की प्रथा तथा हिन्दू देवताओं की मूर्त्ति-प्रथा पहले-पहल शुरू हुई। बादामी में उस समय का एक बहुत ही अच्छा मंदिर बना हुआ है। बौद्ध-धर्म को प्रत्यक्ष राजाश्रय तो नहीं था, परन्तु उसका प्रचार अच्छा था। तथापि इस समय वह गिरती दशा पर ही था। चालुक्य राजा सब धर्मों पर एकसा प्रेम रखते थे। इन्हीं राजाओं के समय पारसी लोग ईरान के खुरासान भाग से पहले-पहल हिन्दुस्थान में आये।

चालुक्यों के समय में धार्मिक प्रगति

राष्ट्रकूट नाम की उत्पत्ति हम पहले बतला चुके हैं। इस वंश का सम्पूर्ण वृतान्त अबतक नहीं मिला है। इस वंश में गोविन्द नामका पहला पराक्रमी राजा हुआ। उसके पुत्र कर्क की प्रवृत्ति वैदिक धर्म की ओर विशेष थी। उसके समय में ब्राह्मणों ने यज्ञादि बहुत

मान्यखेट का राष्ट्रकूट-वंश

प्राचीन महाराष्ट्र।



तापी नदी
इलिचपुर
देवगिरि
गोदावरी नदी
कल्याणी
वारंगल
मालखेड
वेंगी
(चालुक्य)
भीमा नदी
कृष्णा नदी
तुंगभद्रा नदी
वनवासी
गंगवाडी
कांची
कावेरी नदी
पाण्ड्य
लंका

किये। कर्क के पुत्र इंद्रराज ने चालुक्य-वंश की एक लड़की से विवाह कर लिया। इस प्रकार सूर्य-वंश और चालुक्य-वंश का मेल हो गया। इनका पुत्र दन्तिदुर्ग बड़ा योद्धा था। उसने कर्नाटक के राजा को हरा दिया और अन्तिम चालुक्य राजा कीर्त्तिवर्मा को जीत लिया। राष्ट्रकूट राजाओं में दन्तिदुर्ग ने ही पहले-पहल सम्पूर्ण महाराष्ट्र पर राज्य किया।

दंतिदुर्ग के बाद उसका चाचा कृष्णराज गद्दी पर बैठा। उसने "शुभतुंग" पदवी धारण की और चालुक्यों का अधिकार पूर्णतया नष्ट कर डाला। एलोरा के प्रसिद्ध कैलास-मन्दिर पत्थरों में खोदकर इसीने बनवाये। इस प्रकार का और इतना सुन्दर प्रचण्ड काम पृथ्वी पर अन्यत्र कहीं नहीं दीख पड़ता। कृष्ण का लड़का ध्रुव विशेष पराक्रमी राजा हुआ। उसने दक्षिण और उत्तर के कई राजाओं को पराजित किया। उसका लड़का गोविन्द राष्ट्रकूट-वंश में तीसरा सबसे पराक्रमी राजा हुआ। उसने उत्तर और दक्षिण के भागों पर अनेक चढ़ाइयाँ कीं और शत्रुओं को हराया। मालवा से लगाकर कांचीपुर तक सारा भाग उसके अधिकार में था। गोविन्द के पुत्र "शर्व" उर्फ़ अमोघवर्ष ने, नासिक को छोड़कर, अपनी राजधानी मान्यखेट में स्थापित की। आजकल निजाम हैदराबाद में वाड़ी जंकशन के पास मालखेड़ नाम का जो स्थान है, सम्भवतः वही मान्यखेट था। अमोघवर्ष ने ६२ वर्ष तक राज्य किया। बाद के राजाओं के समय महाराष्ट्र में अनेक युद्ध हुए। जैन और हिन्दू लोग झगड़ने लगे। कभी-कभी उनके झगड़े बड़े भयंकर हो जाते थे। मगर हिन्दू-धर्म की प्रगति बरा-

बर जारी रही। अन्तिम राष्ट्रकूट राजा कक्कुल के समय तैलव चालुक्य ने उनका राज्य नष्ट कर डाला।

राष्ट्रकूट राजा बड़े प्रबल तथा भाग्यशाली थे। एलोरा में पत्थर में खोदे हुए मन्दिरों से उनके ऐश्वर्य का पता चलता है। इनके समय में बौद्ध भिक्षुओं के लिए विहार बनना बन्द होगया और हिन्दू देवताओं के अनेक मन्दिर बने।

मान्यखेट के राष्ट्रकूट-वंश के समय धार्मिक प्रगति

शंकर और विष्णु का महत्व इन्हींके समय शुरू हुआ और वह धीरे-धीरे इतना बढ़ा कि उनके कई पंथ बन गये। नवीं सदी के आरम्भ में शंकराचार्य ने नवीन नींव पर सनातन धर्म की स्थापना की। इस कारण तथा जैन पण्डितों के उद्योग के कारण बौद्ध-धर्म बहुत ही गिर गया। तथापि कहीं-कहीं उसके उपासक बने ही थे। चालुक्यों के समय जैन-धर्म का जो महत्व शुरू हुआ, वह राष्ट्रकूटों के समय बढ़ता ही गया। कई माण्डलिक राजा तथा वैश्य गृहस्थ जैन-धर्म के दिगम्बर पंथ के कट्टर भक्त थे। राष्ट्रकूट राजाओं के आश्रय में अनेक संस्कृत ग्रंथ लिखे गये तथा संस्कृत विद्या की बहुत उन्नति हुई।

पूर्व चालुक्य-वंश के अन्तिम राजा कीर्तिवर्मा का राज्य नष्ट तो हुआ, परन्तु इस वंश के लोग थोड़ा-बहुत अधिकार यहाँ-वहाँ चलाते ही रहे। जिस तैलव-चालुक्य ने राष्ट्रकूटों का राज्य नष्ट किया, वह सम्भवतः इन्हीं शाखाओं में से कोई

कल्याण का चालुक्य-वंश

रहा होगा। उत्तर चालुक्य-वंश में भी अनेक पराक्रमी राजा हुए। इनमें सोमेश्वर विशेष प्रसिद्ध है। इसने आहवमल्ल और त्रैलोक्य-

मल्ल नामक पदवियाँ धारण कीं, कन्नौज और कांची के राजाओं को हराया, और वर्तमान काल के गोवा तक कोंकण का भाग जीत लिया था। इसने कल्याण नामक शहर बसा कर वहीं अपनी राजधानी स्थापित की। यह शहर आजकल के निजाम हैदराबाद में बेदर से ४० मील पश्चिम की ओर था। सोमेश्वर के समान विक्रमादित्य नामक एक बड़ा पराक्रमी पुरुष सन् १०७६ में राजा बन बैठा। उसने पचास वर्ष तक बड़ी चतुरता और शांति के साथ राज्य किया। काश्मीर का विद्वान पंडित बिल्हण कवि राजाश्रय की खोज में घूमते-घूमते विक्रमादित्य के पास आया। इसने सम्मान-पूर्वक उसे अपने यहाँ रख लिया। इस कवि ने विक्रमाङ्कदेव-चरित्र नामक जो काव्य लिखा है, वह इसी राजा के विषय में है। धर्मशास्त्र पर मिताक्षरा नामक प्रसिद्ध टीका लिखनेवाला विज्ञानेश्वर भी इसी राजा के दरबार में था।

इसके बाद के राजा दुर्बल हुए। कलचूरी-वंश का विज्जल नामक पुरुष द्वितीय तैलब राजा के समय दण्डनायक था। उसने अपने स्वामी की सत्ता अपने हस्तगत कर ली। तब राजा तैलब कल्याण शहर छोड़ कर धारवाड़ के पास अण्णिगेरी नामक स्थान में राज्य करने लगा। विज्जल ने इस शहर को भी जीत लिया। तब तैलब बनवासी हो भाग गया। परन्तु विज्जल राज्य की व्यवस्था अच्छी तरह न कर सका। इसके समय लिंगायत-पंथ शुरू होगया था और उसने बहुत अशांति पैदा की। स्वयं विज्जल शीघ्र ही मारा गया। तब द्वितीय तैलब के पुत्र सोमेश्वर ने अपने वंश का बहुत-सा राज्य फिर से प्राप्त किया। परन्तु इसका ऐश्वर्य बहुत दिन तक न टिक सका। दक्षिण और उत्तर के दो यादव

घरानों ने उसका नाश कर डाला। सन् ११८९ के बाद चालुक्य राजाओं का पता नहीं लगता।

इस प्रकार उत्तर चालुक्यों का राज्य बारहवीं सदी में हुआ। उनके समय में पुरानी रीतियों और व्यवस्थाओं के बदले नवीन रीतियाँ और व्यवस्थायें शुरू हुईं। जो कुछ बौद्ध-धर्म अबतक बचा था, वह भी अब नाम-शेष हो गया। जैन-धर्म की भी अवनति होने लगी और इसके बदले लिंगायत-पंथ शुरू हुआ। इसका प्रचार वैश्य लोगों में ही विशेष है। क्योंकि ये ही लोग पहले जैन-धर्म के उपासक थे। इसी समय पुराणों की भी रचना हो रही थी और नवीन प्रकार का हिन्दू-धर्म प्रचलित हुआ। इस समय बहुत-से ब्राह्मण पण्डित उत्पन्न हुए और हिन्दू-धर्म-शास्त्र पर अनेक नये ग्रंथ बने। सारांश यह है कि हिन्दू-धर्म और समाज का अर्वाचीन स्वरूप इसी समय शुरू हुआ। इसलिए यह कह सकते हैं कि हिन्दुस्थान के इतिहास का अर्वाचीन काल उत्तर चालुक्यों से ही शुरू होता है।

उत्तर चालुक्यों में सामाजिक प्रगति

जिन यादवों ने उत्तर चालुक्य-वंश के राज्य को नष्ट किया, वे वास्तव में मथुरा के रहनेवाले थे। वे किसी प्राचीन काल में गुजरात और महाराष्ट्र में आये थे। यादव-वंश का इतिहास महाराष्ट्र में बहुत ही महत्वपूर्ण है। यादवों के दो वंश प्रसिद्ध हैं। उनमें से एक नासिक के पास चंद्रादित्यपुर उर्फ़ चांदवड़ में राज्य करता था, और दूसरा देवगिरी उर्फ़ दौलताबाद में। इस वंश में प्रथम प्रसिद्ध पुरुष सेउणचन्द्र हुआ। इसीने सेउणपुर शहर बसाया और देश

चन्द्रादित्यपुर का यादव-वंश

को भी सेउणदेश नाम दिया। यही मुसलमानों के समय में खान-देश नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस वंश में २२ राजा हुए। उन्होंने सन् ७९५ से सन् ११९१ तक राज्य किया।

यादवों की एक शाखा द्वार-समुद्र में राज्य करती थी। यह प्राचीन शहर आजकल के मैसूर राज्य के हलेवीड़ नामक स्थान में था। वहाँ पर एक बहुत ही अच्छा मन्दिर बना हुआ है। यादवों की इस शाखा को होयसल यादव कहते हैं। इनका पहला राजा वित्तिदेव उर्फ़ वित्तिग हुआ। इसीने द्वार-समुद्र शहर बसाया और वहाँ पर उसने ११११ से ११४१ तक राज्य किया। आरम्भ में राजा ने जैन-धर्म को आश्रय दिया था और उसके प्रधान गंगराज ने बहुत-से जैन-मन्दिर बनाये; परन्तु रामानुज ने जब भक्ति-मार्ग शुरू किया तब, उससे प्रभावित होकर, वह वैष्णव-धर्म का उपासक बन गया। इसके बाद उसने विष्णु के अच्छे-अच्छे मन्दिर द्वार-समुद्र तथा अन्य स्थानों में बनवाये और अपना नाम विष्णुवर्धन रख लिया। विष्णुवर्धन और उसके अनुयाइयों ने होयसल यादवों का अधिकार बहुत बढ़ाया। उसका नाती वीर बल्लाल बड़ा पराक्रमी था। उसने अपना राज्य उत्तर की ओर देवगिरी तक बढ़ाया, चालुक्यवंशी चतुर्थ सोमेश्वर के सेनापति ब्रह्मा को उसने क़ैद कर लिया और सोमेश्वर का बहुत-सा राज्य अपने राज्य में मिला लिया। परन्तु आगे चल कर सेउणदेश के यादव-वंश के भिल्लम ने वीर बल्लाल यादव और सोमेश्वर चालुक्य दोनों को हरा दिया और अपने वंश का नवीन राज्य देवगिरी नामक नया शहर बसा कर शुरू किया। इसी भिल्लम का यादव-वंश महाराष्ट्र में बहुत प्रताप-

होयसल यादव-वंश

शाली हुआ। होयसल यादवों का शासन कृष्णा नदी के दक्षिण में बहुत दिनों तक रहा। सन् १३१० में मलिक कफूर और अन्य मुसलमान सेनापतियों की चढ़ाइयाँ हुईं और अन्त में १३२६ या १३२७ में यह राज्य नष्ट हुआ। भिल्लम का पुत्र जैत्रपाल पिता के समान ही पराक्रमी था। वह बड़ा भारी विद्वान् भी था। उसके दरबार में प्रसिद्ध ज्योतिषी भाष्कराचार्य का पुत्र लक्ष्मीधर तथा आदि-मराठी कवि मुकुन्दराज जैसे पुरुष थे। जैत्रपाल के पुत्र सिंहराज उर्फ़ सिंघन के समय यादवों की सत्ता बहुत ही बढ़ी। उसने कुन्तल देश को अपने अधिकार में कर लिया और मालवा, गुजरात, छत्तीसगढ़ आदि भागों के राजाओं को हरा दिया। पद्म-नाल उर्फ़ पन्हाला के शिलाहारवंशी भोज राजा को हरा कर उसका राज्य अपने राज्य में जोड़ लिया। इसके बाद कृष्णदेव, महादेव और रामदेव नामक तीन राजा हुए। महाराष्ट्र का अन्तिम वैभव-शाली राजा रामदेव ही था, इसीके समय में पहले-पहल अलाउ-द्दीन के सेनापतित्व में दक्षिण में चढ़ाई हुई। रामदेव के समय में देवगिरी का राज्य बहुत ही सम्पत्तिशाली हो गया था, और उस-की इस बात की कीर्त्ति ने कड़ा के सूबेदार अलाउद्दीन को देवगिरी पर चढ़ाई करने के लिए आकर्षित किया। ग्यारहवीं सदी के आरम्भ से मुसलमानों की हिन्दुस्थान पर चढ़ाइयाँ शुरू हो गई थीं और बारहवीं सदी के अन्त तक मुसलमानों का राज्य उत्तर-हिन्दुस्थान में स्थापित हो चुका था। १२०६ से १२९० तक दिल्ली में गुलाम सुलतानों ने राज्य किया, उसके बाद दिल्ली की सल्तनत जलालुद्दीन खिलजी के हाथ में आई। अलाउद्दीन इसी जलालुद्दीन का भतीजा तथा दामाद था। वह पक्का छली था और उसने

जलालुद्दीन को किसी प्रकार खुश कर लिया था। कड़ा का सूबेदार होने पर भी उसकी दृष्टि दिल्ली की राजगद्दी पर गई। इसके लिए उसे धन की आवश्यकता जान पड़ी और देवगिरी के धन की कीर्त्ति सुनकर उसीपर चढ़ाई करने का उसने निश्चय किया। रामदेव को उसने किस प्रकार हराया, इसकी कहानी काफ़ी लंबी-चौड़ी है और उसके छल-कपट की बातों से भरपूर भरी हुई है। यह स्पष्ट है कि देवगिरी में अपार धन होने पर भी आवश्यक सैन्य-प्रबन्ध नहीं था, इसी कारण अलाउद्दीन अनेक छल-कपट करके उसे ले सका। रामदेव ने उसे बहुत अधिक धन तथा अपने राज्य का उत्तरी भाग देकर किसी प्रकार अपना बचाव किया।

हेमाद्रि और सामाजिक व्यवस्था

रामदेव के समय में भाषा और साहित्य में महाराष्ट्र में बहुत उन्नति हुई। इसका बहुत-सा श्रेय उसके मुख्य प्रधान हेमाद्रि उर्फ़ हेमाड़पत को दिया जाता है। यह पुरुष शूर, राजनीति-निपुण और धार्मिक था। इसने चतुर्वर्ग-चिन्तामणि नामक बड़ा भारी ग्रन्थ लिखा। इसके सिवाय इसने कई अन्य ग्रन्थ लिखे। बोपदेव नाम का एक विद्वान् पुरुष इसका साथी था। उसने प्राकृत भाषा का मुग्धबोध नामक व्याकरण संस्कृत में लिखा है। इसके सिवाय उसने कई प्रसिद्ध वैदिक ग्रन्थ भी लिखे हैं। हेमाद्रि का भाषा तथा साहित्य के विषय का कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण है। उत्तर चालुक्यों के समय में धार्मिक तथा सामाजिक व्यवस्था का जो कार्य शुरू हुआ, उसे हेमाद्रि ने बहुत-कुछ पूरा किया। सारांश में कह सकते हैं कि समाज और व्यक्ति के जीवन के बहुत-से नियम उसने बनाये। महाराष्ट्र की प्रसिद्ध मोड़ी लिपि उसीने शुरू की। परन्तु खेद की

बात है कि इतना विद्वान् पुरुष देवगिरि की सैनिक व्यवस्था अच्छी तरह न कर सका और पक्के सैनिक आधार के अभाव के कारण ऐश्वर्य-शिखर पर चढ़े हुए देवगिरि के राज्य को केवल ८००० सैनिकों के बल से अलाउद्दीन ने हिला कर गिरा दिया !

अलाउद्दीन जब देवगिरी के धन के बल से दिल्ली का सुलतान बन बैठा, तब उसने अपने प्रिय सेनापति मलिक कफूर को देवगिरी पर फिर से चढ़ाई करने को भेजा । इस बार भी रामदेव को मुसलमानों की शरण जाना पड़ा । उसे अलाउद्दीन का माण्डलिक राजा बनकर दिल्ली में उसके सामने उपस्थित होना पड़ा । इस प्रकार देवगिरी का स्वातंत्र्य सन् १३०८ में नष्ट हो गया । उसकी मृत्यु के बाद उसके दामाद हरपाल ने सन् १३१८ में मुसलमानों का अधिकार दूर करने का प्रयत्न किया, परन्तु उस समय के सुलतान मुबारिक खिलजी के सेनापति मलिक खुसरू ने उसपर चढ़ाई की और उसे क़ैद कर लिया । फिर जीते जी उसकी चमड़ी खिंचवा कर बड़ी क्रूरता के साथ उसे मार डाला गया । इस प्रकार सन् १३१८ में देवगिरी का राज्य सदैव के लिए मुसलमानों के हाथ चला गया, और दक्षिण में उनकी सत्ता स्थापित हो गई ।

४

मुसलमान-काल

खिलजी-घराने के बाद दिल्ली की सल्तनत ग़यासुद्दीन तुग़लक के हाथ में गई। उसने अपने लड़के उलूघखाँ को वारंगल के राजा पर चढ़ाई करने के लिए भेजा, क्योंकि इस राजा ने कर देना बन्द कर दिया था। उलूघखाँ की पहली चढ़ाई विफल हुई, परन्तु सन् १३२३ में उसने वारंगल पर फिर से चढ़ाई की और इस बार वहाँ के राजा प्रतापरुद्रदेव को क़ैद कर लिया। इस प्रकार वारंगल का तैलंगन राज्य दिल्ली के राज्य में शामिल हो गया।

ग़यासुद्दीन तुग़लक

ग़यासुद्दीन तुग़लक के बाद उसका लड़का मुहम्मद तुग़लक दिल्ली का सुलतान बना। दक्षिण में हमेशा बलवे हुआ करते हैं, यह देखकर उसने सोचा कि यदि राजधानी ही दक्षिण में रहे तो ये बलवे न होंगे। अतएव उसने देवगिरी को ही अपनी राजधानी बनाना चाहा। इसका उसने दौलताबाद नाम रक्खा और वहाँ पहाड़ी पर बड़ा मजबूत क़िला बनवाया। इसके बाद उसने दिल्ली के लोगों

मुहम्मद तुग़लक

को देवगिरी जाने का हुक्म दिया। लोगों से इस हुक्म का अमल कैसे कराया गया, इसकी कहानी मशहूर ही है। पर कुछ ही सालों के बाद उसे अपनी राजधानी देवगिरी से वापस दिल्ली ले जानी पड़ी। उसके विचित्र और क्रूर कार्यों के कारण राज्य के अन्य भागों के समान दक्षिण में भी अनेक बलवे हुए, परन्तु वह उन्हें दबाने में सफल न हो सका। एक जगह का बलवा दबाता तो दूसरी जगह बलवा उठ खड़ा होता था। इसी कार्य में उसकी ज्यादातर ज़िन्दगी बीती, और इसीमें सिन्ध में उसकी मृत्यु भी हुई।

ऐसी गड़बड़ के समय दक्षिण में दो नये राज्य स्थापित हुए। हसन कांगू बहमनी नामक सेनापति ने देवगिरी में वह राज्य स्थापित किया, जो बहमनी राज्य के नाम से प्रसिद्ध है। शीघ्र ही इसने अपनी राजधानी देवगिरी के बदले गुलबर्गा में स्थापित की। यह स्थान भीमा नदी से २० मील उत्तर की ओर था। दूसरा जो राज्य दक्षिण में स्थापित हुआ, वह विजयनगर के नाम से प्रसिद्ध है। यह बहमनी राज्य के बारह वर्ष पहले यानी सन् १३३५ में स्थापित हुआ। इसके स्थापन-कर्त्ता हरिहर अथवा हुक्का और बुक्का नामक दो भाई थे। ये दोनों तुंगभद्रा के उत्तरी किनारे के अनेगुंडी नामक स्थान के राजा के नौकर थे। मुहम्मद तुग़लक ने इस राजा पर चढ़ाई की और उसे मार डाला; परन्तु जब मुसलमान लोग वहाँ का राज्य न चला सके तो मुहम्मद तुग़लक ने हरिहर को ही वहाँ का शासन-कार्य सौंप दिया। हरिहर ने धीरे-धीरे तुंगभद्रा के दक्षिणी किनारे पर एक नया शहर बसाया। क़िले आदि बना कर उसने इसकी बड़ी सुव्यवस्था की और इसे

दक्षिण में दो नये राज्य

सुरक्षित कर दिया। धीरे-धीरे यह बड़ा सुन्दर और समृद्ध नगर हो गया और दक्षिण के व्यापार का बड़ा भारी केन्द्र भी बन गया। इसका नाम विजयनगर रक्खा गया और हरिहर यहाँ राज्य करने लगा।

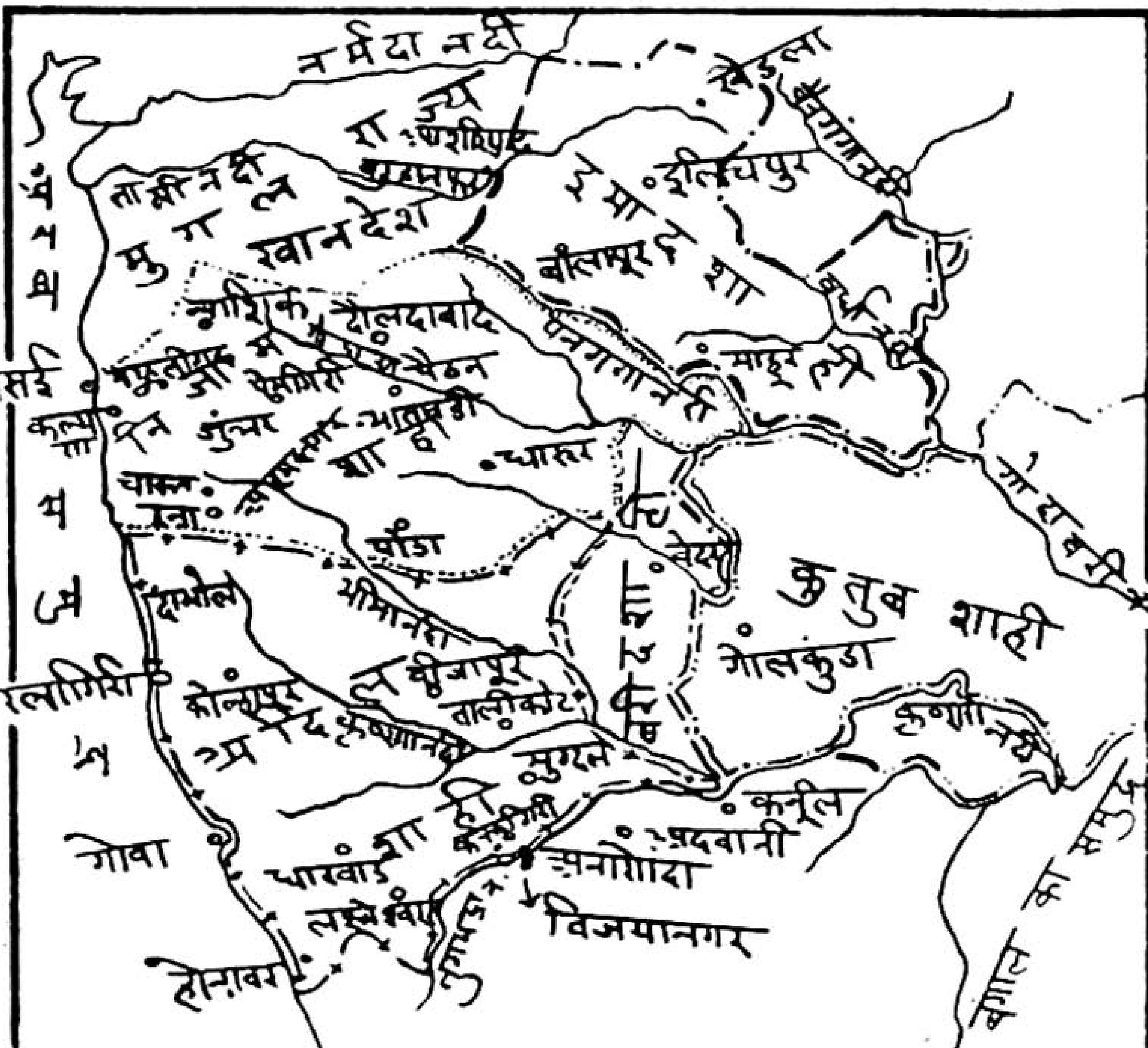
इस प्रकार दक्षिण में जो दो बड़े राज्य स्थापित हुए, उनमें से पहला डेढ़सौ वर्ष तक और दूसरा क़रीब २३० वर्ष तक चलता रहा। परन्तु इन दोनों में कृष्णा और तुंगभद्रा के बीच के रायचूर दोआब के लिए सदा झगड़े चलते रहे।

बहमनी राज्य का प्रारंभिक इतिहास और विजयनगर से उसके झगड़े

इस दोआब में रायचूर और मुद्कल नाम के दो क़िले थे। इन क़िलों के आस-पास उपर्युक्त दोनों राज्यों की सेनाओं की न-जाने कितनी लड़ाइयाँ हुईं। हसनकांगू ने भीमा से लगाकर तुंगभद्रा तक और पश्चिम में चौल से लगाकर पूर्व में बेदर तक सारा प्रदेश क़ब्ज़े में कर लिया। परन्तु वह बहुत दिनों तक राज्य न कर सका, क्योंकि १३५८ में ही उसकी मृत्यु होगई। उसके लड़के मुहम्मद के समय वारंगल और विजयनगर के राजाओं में लड़ाई शुरू हुई। वारंगल का राजा हार गया और उसने गोलकुण्डा मुहम्मद को दे दिया। विजयनगर से जो लड़ाई हुई, उसमें पहले-पहल वहाँ के राजा बुक्काराय ने कुछ विजय पाई; परन्तु अन्त में उसे भी मुहम्मद से हारना पड़ा और संधि करनी पड़ी। फ़िरिश्ता नामक इतिहास-लेखक ने लिखा है कि १७ साल के भीतर कम-से-कम ५ लाख हिन्दू मार डाले गये। मुहम्मद के लड़के मुजाहिदशाह के समय में ऊपर बताये रायचूर दोआब के कुछ स्थानों के सम्बन्ध में कुछ झगड़े उठ खड़े हुए, और फिर

से दोनों राज्यों के बीच लड़ाई छिड़ गई। इसमें मुजाहिद की विजय तो हुई, परन्तु उससे कोई लाभ न हुआ; उसको उसके चाचा दाऊदशाह ने शीघ्र ही मार डाला। इसके बाद उसका भाई महमूदशाह गद्दी पर बैठा। यह विद्वान् पुरुष था और विद्वानों को चाहता था। इसके समय में शान्ति बनी रही। इसके बाद इसका लड़का ग़यासुद्दीन सुलतान हुआ। यह बहुत दुराचारी राजा था। लालचीन नामक एक ग़ुलाम ने इसी कारण इसे अन्धा कर डाला। इसके बाद दाऊदशाह का लड़का फ़ीरोज़शाह सुलतान हुआ। यह बड़ा भारी विद्वान् था और अनेक प्रकार की विद्यायें जानता था। कहते हैं कि इसने हिन्दुओं पर चौबीस चढ़ाइयाँ कीं। उनमें से दो महत्वपूर्ण हैं। इसके समय भी विजयनगर के राजा से लड़ाई हुई। विजयनगर का राजपुत्र धोखे से मारे जाने के कारण वहाँ की सेना में गड़बड़ उत्पन्न हो गई, इससे अन्त में वहाँ के राजा को बहुतसा धन देकर फ़ीरोज़शाह से सन्धि करनी पड़ी। परन्तु यह सन्धि बहुत दिन तक न टिकी। निहाल नामक सुनार जाति की एक सुन्दर कन्या के कारण दोनों में फिर से झगड़ा उठ खड़ा हुआ, और इसमें भी विजयनगर की हार हुई। अन्त में देवराजा ने फ़ीरोज़शाह को अपनी कन्या और बंकापुर का क़िला देकर सन्धि कर ली। इसके बाद उसका भाई अहमदशाह बहमनी राज्य का सुलतान हुआ। इसके समय में भी वारंगल तथा विजयनगर के राजा में लड़ाइयाँ हुईं। परन्तु इस बार भी वहाँ के राजा देवराय ने हार जाने के कारण द्रव्य देकर सन्धि कर ली। इसके बाद अलाउद्दीनशाह ने वारंगल को जीत लिया और तैलंगन को अपने राज्य में शामिल कर लिया। अन्य सुलतानों के समान इसके समय भी विजयनगर

बाहमनी राज्य के पाँच भाग



से लड़ाई हुई और परिणाम भी वही हुआ। इसके बाद हुमायूंशाह ज़ालिम गद्दी पर बैठा। अपने जुल्मों के कारण वह शीघ्र ही मार डाला गया। इसके बाद निज़ामशाह नामक उसका लड़का सुलतान हुआ, परन्तु वह शीघ्र ही मर गया।

निज़ामशाह के बाद उसका छोटा भाई मुहम्मदशाह गद्दी पर बैठा। इसने २० वर्ष राज्य किया। बहमनी राज्य ने इसीके समय से अधिक उन्नति की, और इसीके समय से उसके टुकड़े होना शुरू हुआ।

बहमनी राज्य के टुकड़े

उसकी उन्नति का कारण वहाँ का प्रधान मंत्री ख्वाजा महमूदगवाँ था। वह ईरानी था और अलाउद्दीन सुलतान ने उसके गुणों पर मुग्ध होकर उसे अपने दरबार का सरदार बना दिया था। हुमायूँ-शाह के समय वह प्रधान मंत्री हो गया। तबसे वह मारे जाने तक प्रधान मंत्री बना रहा। उसने अपनी योग्यता से बहमनी राज्य को बहुत ही उन्नत दशा पर पहुँचाया। परन्तु उसकी उन्नति देख अन्य सरदार उससे द्वेष रखते थे। इन लोगों ने उसके विरुद्ध एक षड्यंत्र रचा, जिसका परिणाम यह हुआ कि वह सुलतान के हुक्म से मार डाला गया। उसकी मृत्यु होते ही राज्य की अवनति बहुत शीघ्रता से शुरू हो गई। राज्य के जो तर्फ यानी सूबे थे, उनके अधिकारी धीरे-धीरे स्वतंत्र होने लगे। बीजापुर में यूसुफ़ आदिलशाह सन् १४८९ में स्वतन्त्र बन बैठा, और उससे बीजापुर की आदिलशाही का राज्य शुरू हो गया। बेदर में इसी प्रकार क़ासिमबरीद सन् १४९२ में स्वतन्त्र हो गया और उससे बेदर की बरीदशाही शुरू होगई। बरार में १४८४ में फ़तेउल्लाह ईमादशाह पहले ही स्वतन्त्र बन बैठा था, इसीसे ईमादशाही

घराने की नींव पड़ी। जिस समय यूसुफ़ आदिलशाह स्वतन्त्र हुआ उसी समय अहमदनगर में अहमद निज़ामशाह स्वतन्त्र हो गया, इससे निज़ामशाही घराना शुरू हुआ। इसी पुरुष ने अहमदनगर को बसाया था। और अन्त में गोलकुण्डा के अधिकारी क़ुत्बउल्-मुल्ख ने वहाँ स्वतन्त्र होकर क़ुत्बशाही घराना शुरू किया। इस प्रकार बहमनी राज्य के थोड़े ही वर्षों के भीतर पाँच स्वतन्त्र राज्य हो गये। परन्तु इनमें से दो तो १०० वर्ष के भीतर ही नष्ट हो गये। बेदर का बहुतेरा राज्य बीजापुर के राजाओं ने जीत लिया। अन्त में केवल बेदर और उसके आस-पास का थोड़ासा देश स्वतन्त्र बच रहा था। इसे सन् १६५६ में औरंगज़ेब ने नष्ट कर डाला। बरार की ईमादशाही अहमदनगर की निज़ामशाही के कारण सन् १५७२ में नष्ट हुई। इस प्रकार १६वीं सदी के अन्त में बहमनी राज के पाँच टुकड़ों में से केवल बीजापुर, अहमदनगर और गोलकुण्डा के तीन राज्य रह गये थे। परन्तु ये भी बहुधा आपस में झगड़ा करते थे। बीजापुर और अहमदनगर के बीच के झगड़े तो बिलकुल प्रारम्भ से होते चले आ रहे थे। बीजापुर के आदिलशाहों ने अहमदनगर के साथ लड़ने में कई बार विजयनगर के राजा की सहायता ली थी।

विजयनगर राज्य का विनाश

इधर विजयनगर के राजवंश में भी बहमनी राज्य के टुकड़े होने के समय परिवर्तन हो चुका था। सन् १४८० में नरसिंहराय नामक एक पुरुष ने प्रथम वंश के अंतिम राजा विरुपातराय के दुर्बल और दुराचारी होने के कारण राज्य-सिंहासन अपने हाथ में कर लिया। इस वंश में कृष्णदेवराय विशेष प्रसिद्ध है।

इसने बीजापुर के राजा को हराकर रायचूर और मुदकल के क़िले अपने हाथ में ले लिये, और विजय के गर्व में अदिलशाह का वहुत अपमान किया। इस अपमान का आगे चलकर वुरा परिणाम हुआ। कृष्णदेवराय का उत्तराधिकारी अच्युतराय डरपोक निकम्मा और दुष्ट पुरुष था। उसे अपने प्रधान मंत्री रंगराय पर बहुत अधिक अवलम्बित रहना पड़ा। इस कारण प्रधान मंत्री ही सर्वाधिकारी हो गया। प्रधान मंत्री के रामराय, तिरुमल और व्यंकटाद्रि नामक तीन लड़के थे। पिता के वाद इन तीनों ने राज्य के सूत्र अपने हाथ में कर लिये। रामराय वड़ा धूर्त पुरुष था, और नाम को छोड़कर बाक़ी सब वातों में वही राजा वन वैठा था। यह धूर्त ही नहीं, वड़ा घमण्डी भी था और मुसलमानों के राज्यों पर चाहे जब हमले कर दिया करता था। इस कारण अन्त में मुसलमान राजा उससे बहुत चिढ़ गये और अदिलशाह, कुतुबशाह, बरीदशाह और निजामशाह चारों विजयनगर से लड़ने की तैयारी करने लगे। सन् १५६४ में इन लोगों ने अपनी बड़ी भारी फ़ौज बीजापुर में एकत्र की। फिर अदिलशाह ने रामराय से मुदकल, रायचूर, बागलकोट आदि क़िले वापस माँगे। परन्तु रामराय तो गर्व में फूला हुआ था। उसने इनकी माँग की बिलकुल परवाह न की और मुसलमानी दूत का अपमान करके उसे वापस भेज दिया। मुसलमान राजा यही तो चाहते थे। वस, उन्होंने विजयनगर से युद्ध छेड़ दिया। रामराय ने भी युद्ध की भारी तैयारी की। मुसलमानों के पास तोपें थीं, तब भी प्रारम्भ में विजयनगर की सेना ने कुछ विजय प्राप्त की। परन्तु अहमदनगर का निजामशाह रामराय से बहुत चिढ़ा हुआ था, क्योंकि

अदिलशाह की ओर से एकबार लड़ने पर रामराय ने उसका बहुत अपमान किया था, इसलिए निजामशाह प्राणों की कुछ पर्वाह न करके विजयनगर की सेना के बीचोंबीच घुस पड़ा और जहाँ रामराय अपने लोगों को उत्तेजना दे रहा था वहाँ आकर खड़ा हो गया। इसी समय दुर्भाग्य से निजामशाह का एक मस्त हाथी रामराय पर दौड़ पड़ा। वह घोड़े पर बैठ कर वहाँ से भागना चाहता था, ठीक उसी समय में मुसलमानों ने उसे क़ैद कर लिया और उसे निजामशाह के पास ले गये। निजामशाह ने तुरन्त उसका सिर धड़ से अलग कर दिया और भाले की नोक पर रख कर उसे सारी सेना को ऊपर उठा कर दिखाया। राम-राय के मरने की खबर पाते ही विजयनगर की सेना में गड़बड़ मच गई। तुरन्त विजयनगर की सेना भाग खड़ी हुई। फिर मुसलमानों ने उनका जो पीछा किया और जैसे उन्हें क़त्ल किया, उसकी कुछ न पूछिए। कहते हैं कि क़रीब एकलाख हिन्दू इस लड़ाई में मारे गये। इस युद्ध को मुसलमान इतिहास-लेखक तालीकोट की लड़ाई कहते हैं, परन्तु युद्ध का स्थान तालीकोट से नैऋत्य की ओर ३० मील पर था। पास ही रकसगी और तग-ड़गी नामक दो गाँव थे। इसलिए मराठी इतिहास-लेखक उसे राक्षस तागड़ी की लड़ाई कहते हैं; और यही नाम अन्वर्थक जान पड़ता है।

तीन दिन के भीतर ही मुसलमान सेना विजयनगर में पहुँची, और उसने पाँच महीने तक सारे नगर को लूटा। घरों में आग लगा दी और सैकड़ों इमारतें गिरा दीं। विजयनगर क़रीब २०० सालों से बसा हुआ था और बहुत ही समृद्धशाली नगर था।

इसलिए कह नहीं सकते कि कितनी सम्पत्ति मुसलमान लोग यहाँ से लूट ले गये। इस प्रकार शहर थोड़े ही दिनों के भीतर नष्ट होकर खंडहरों का ढेर बन गया। बीजापुर और गोलकुण्डा के भागों को इन राज्यों ने अपने राज्य में शामिल कर लिया। मैसूर के राजा ने भी अपना राज्य काफ़ी बढ़ाया और तंजोर, बेलोर आदि स्थानों के अधिकारी स्वतंत्र बन बैठे। इस प्रकार विजयनगर का राज्य सदैव के लिए नष्ट हो गया।

राक्षसतागड़ी की लड़ाई के बाद शीघ्र ही अहमदनगर और बीजापुर के झगड़े शुरू हुए, और वे अहमदनगर के राज्य के नष्ट होने तक जारी रहे। उधर उत्तर-हिन्दुस्थान में अकबर ने अपना राज्य

निजामशाही का अन्त

पक्का जमा लिया था और वह उसे चारों ओर बढ़ा रहा था। खानदेश की राजधानी बुरहानपुर को उसने १५६२ में ही ले लिया था; परन्तु अहमदनगर राज्य की ओर बढ़ने में कुछ समय लगा। १५८९ के क़रीब अहमदनगर के राजा मीरुलहुसेन और उसके प्रधान मंत्री मिर्ज़ाखाँ में झगड़े उठ खड़े हुए। अन्त में प्रधान मंत्री ने राजा को क़ैद में डाल दिया और इस्माइल नाम के १२ वर्ष के लड़के को राजा बनाना चाहा। उसके इस कार्य से लोग बिगड़ उठे। इस प्रकार उस राज्य में गड़बड़ पैदा हो गई। इस गड़बड़ के समय मिर्ज़ाखाँ ने मीरुलहुसेन को मार डाला। उसके पिता मुर्त्तिजा निजामशाह के समय कुछ झगड़े हुए थे और सुलतान का भाई बुरहान निजामशाह अकबर के पास भाग गया था। अहमदनगर की गड़बड़ को देखकर अपने लड़के इस्माइल को गद्दी से उतार स्वयं राजा बन बैठने के लिए अकबर ने बुरहानशाह

को सहायता देकर वहाँ भेजा। उसने केवल चार वर्ष ही राज्य किया। उसके बाद उसका लड़का इब्राहीम निज़ामशाह गद्दी पर बैठा। यह बहुत दुर्व्यसनी था। इस कारण राज्य में झगड़े पैदा हुए और बीजापुर से युद्ध शुरू हो गया। इस युद्ध में इब्राहीम मारा गया। उसके बाद अहमदशाह नामक एक लड़के को प्रधानमंत्री मियाँमंजू ने गद्दी पर बैठाया। परन्तु यह झगड़ा उठ खड़ा हुआ कि यह लड़का निजामशाह के वंश का सच्चा वारिस है या नहीं। मियाँ मंजू ने अकबर के लड़के और गुजरात के सूबेदार मुराद से सहायता माँगी। मुराद सेना लेकर आया और उसने अहमद-नगर को घेर लिया। इस प्रकार इस राज्य का अन्तकाल आ पहुँचा। परन्तु इस कठिन प्रसंग पर चाँदबीबी नामक एक शूर स्त्री ने इस राज्य की रक्षा करने में बड़ी वीरता और चतुरता दिखलाई। यह हुसेन निजामशाह की लड़की थी और बीजापुर के सुलतान अली आदिलशाह से ब्याही थी। पति के लड़ाई में मारे जाने पर बीजापुर के राज्य को सम्हालने में उसने पहले ही बहुत वीरता और चतुरता दिखलाई थी। चाँदबीबी ने अहमद को सुलतान मानने से इन्कार किया और बहादुर नामक एक लड़के को गद्दी पर बिठला कर मुग़लों को राज्य में घुसने से रोकना चाहा। इसी समय बीजापुर और गोलकुण्डा से मदद के लिए फ़ौज आ पहुँची। शाहज़ादा मुराद ने सुरंग लगाकर क़िले की दीवाल गिराने का प्रयत्न किया और एक जगह छेद हो भी गया। परन्तु चाँदबीबी ने बड़ी तत्परता से मुग़लों को पीछे हटा कर उस दीवाल की मरम्मत कर डाली। फिर बीजापुर से और मदद पहुँची। इस फ़ौज ने मुराद को इतना तंग किया कि बरार लेकर

उसे चाँदबीबी से सन्धि कर लेनी पड़ी। इस संधि के बाद चाँदबीबी ने बहादुरशाह को तख्तनशीन किया। मुहम्मदशाह को प्रधान मंत्री बनाया और स्वयं सब कारबार देखने लगी। परन्तु इस प्रधान मंत्री ने सारा अधिकार अपने हाथ में कर लिया। इस कारण फिर झगड़े उठ खड़े हुए। चाँदबीबी ने इब्राहीम आदिलशाह की मदद माँगी। आदिलशाह की फ़ौज ने अहमदनगर को घेर लिया। इसलिए मुहम्मदखाँ ने मुग़लों की मदद माँगी। सब सरदारों ने मिलकर मुहम्मदखाँ को क़ैद किया और चाँदबीबी को स्वाधीन कर दिया। परन्तु मुग़ल लोग बरार पाने पर भी शान्त नहीं हुए थे। वे धीरे-धीरे निजामशाही के हिस्से अपने अधिकार में करते चले आ रहे थे। मुग़लों का आना सुनकर चाँदबीबी ने गोलकुण्डा और बीजापुर से सहायता माँगी। दोनों पक्षों में दो दिन तक गोदावरी के किनारे सूपासोनपत नामक स्थान में घनघोर युद्ध हुआ और अन्त में मुग़लों की विजय हुई। मुग़लों का सेनापति खानखाना था और बीजापुर का सरदार सोहलखाँ था। अहमदनगर में चाँदबीबी और अन्य लोगों में झगड़े खड़े होने लगे। उधर शाहज़ादे मुराद की मृत्यु हो गई और इसलिए अकबर ने अपने दूसरे लड़के दानियाल को दक्षिण का सूबेदार बनाकर भेजा। अहमदनगर के झगड़ों के कारण हमीरखाँ खोजा नामक एक पुरुष ने चाँदबीबी को मार डाला। इसके थोड़े ही दिनों बाद मुग़लों ने अहमदनगर का क़िला ले लिया और इस प्रकार निजामशाही का अन्त हो गया।

परन्तु इतना होने पर भी निजामशाही के कुछ सरदार

निराश नहीं हुए थे। उन्होंने अलीशाह के पुत्र मुर्तिजाशाह को परिण्डा नामक स्थान में निजामशाही का राजा घोषित किया और इन लोगों ने निजामशाही का बहुत-सा भाग फिर से जीत लिया। इन सरदारों में मियाँ राजू और मलिक अम्बर नामक सरदार मुख्य थे। शीघ्र ही उन दोनों में झगड़े होने लगे। यह मौक़ा देखकर मुग़ल सरदार खानखाना ने उनपर हमला कर दिया। मलिक अम्बर ने मुग़ल सेना को पहले तो हरा दिया, परन्तु पीछे स्वयं हार गया। इसके बाद मियाँ राजू से उसके झगड़े फिर शुरू हुए। इधर शाहज़ादा दानियाल मर गया। ऐसा मौक़ा देखकर मलिक अम्बर ने मियाँ राजू को क़ैद में डाल दिया और स्वयं निजामशाही के बचे हुए राज्य का कारबार चलाने लगा। इसने दौलताबाद से छः मील पर खड़की नामक स्थान में राजधानी स्थापित की। इसी शहर को आगे चलकर औरंगाबाद नाम दिया। सन् १६०५ में अकबर के मरने पर मुग़लशाही के दक्षिणी राज्य में जो गड़बड़ पैदा हुई, उससे मलिक अम्बर ने काफ़ी लाभ उठाया। उसने फ़ौज जमा की, निज़ामशाही के खोये हुए भाग वापस लिये, फिर खानखाना को हरा कर अहमदनगर भी वापस ले लिया और इस मुग़ल सरदार को उसने बुरहानपुर तक पीछे हटा दिया। इसके बाद वह राज्य की स्थिति सुधारने में लगा और उसमें काफ़ी सफल हुआ। पर मलिक अम्बर मुश्किल से यह काम कर पाया था कि फिर से उसे मुग़लों का सामना करना पड़ा। जहाँगीर ने अपना राज्य स्थिर करने पर, निज़ामशाही का राज्य लेने के लिए, सन् १६१६ में, फ़ौज भेजी। इसका

मलिक अम्बर और निजामशाही का पुनरुद्धार

सेनापति जहाँगीर का लड़का खुर्रम उर्फ़ शाहजहाँ था। उसने मलिक अम्बर को कई बार हराया और सन् १६२१ में अहमदनगर का क़िला ले लिया। परन्तु इसके बाद शीघ्र ही नूरजहाँ और शाहजहाँ के बीच झगड़े शुरू हुए, और अन्त में शाहजहाँ को अपने शत्रु मलिक अम्बर से सहायता माँगनी पड़ी। इसलिए अब जहाँगीर ने स्वयं शाही सेना लेकर दक्षिण पर चढ़ाई की। इसके सामने मलिक अम्बर और शाहजहाँ की कुछ भी न चली, और पुत्र को पिता से क्षमा माँगनी पड़ी। परन्तु फिर शीघ्र ही जहाँगीर स्वयं आपत्ति में पड़ गया, क्योंकि मुग़ल सेनापति महावतखाँ और नूरजहाँ के बीच झगड़े उठ खड़े हुए थे और कुछ दिन तक मुग़ल बादशाह को अपने सेनापति की क़ैद में जीवन बिताना पड़ा था। वह नूरजहाँ की होशियारी से इस क़ैद से मुक्त हुआ। इस कारण महावतखाँ को शाहजहाँ के पास भागना पड़ा। इधर शाहजहाँ ने पिता को खुश करने के लिए मलिक अम्बर से पहले ही झगड़े कर लिये थे। सन् १६२६ में मलिक अम्बर मर गया और इन सबके भाग्य से जहाँगीर सन् १६२७ में मर गया। जहाँगीर के मरने पर शाहजहाँ बादशाह बन बैठा।

निजामशाही का अंतिम विनाश

मलिक अम्बर के मरने पर उसका लड़का फ़त्तेखाँ निजामशाही का कारबार देखने लगा। वह बाप के समान होशियार नहीं था, परन्तु निजामशाही को बचाने के लिए भरसक प्रयत्न करता था। कुछ लोगों के कहने पर निजामशाह ने उसे क़ैद में डाल दिया। इससे अन्य राजभक्त सरदारों में भय उत्पन्न

हो गया। लखूजी जाधवराव नाम का एक भारी मराठा सरदार वहाँ पर था। निजामशाह को शक हुआ कि वह मुग़लों से मिला हुआ है, इसलिए शाह ने उसे पहले तो क़ैद में डाला और कुछ दिनों के बाद उसे तथा उसके लड़के को मार डाला। इस कारण निजामशाह के दरबार के सब लोग नाराज़ हो गये। लखूजी जाधवराव का दामाद और प्रसिद्ध शिवाजी का पिता शाहजी भोंसले निजामशाह और आदिलशाह के राज्यों के बीच के भाग पर अपना क़ब्ज़ा जमा कर वहाँ का कारबार स्वतंत्र रूप से देखने लगा। इस प्रकार निजामशाही का वास्तव में अन्त होने का समय समीप पहुँचा। मुग़ल लोगों ने राजधानी तो लेली थी, परंतु आसपास के भाग पर उनका क़ब्ज़ा अच्छी तरह नहीं हुआ था। इसलिए निजामशाही के भिन्न-भिन्न अधिकारी अपने-अपने स्थानों में स्वतंत्र बन बैठे। जाधवराव की मृत्यु के बाद निजामशाही के मराठे कारबारी एकचित्त होकर काम करने लगे। उनमें शाहजी भोंसले प्रमुख था। शाहजी ने बीजापुर के राज्य का कुछ हिस्सा अपने क़ब्ज़े में कर लिया था, इसलिए आदिलशाह ने मुरारराव नामक अपने एक सरदार को उसके विरुद्ध भेजा। उधर उत्तर-हिन्दुस्थान में ख़ाँजहाँ लोधी नामक एक सरदार ने शाहजहाँ के विरुद्ध बलवा किया। अंत में भागकर वह दक्षिण में आया। उसे शाहजी भोंसले और अन्य मराठे सरदारों ने सहायता दी। परन्तु शाहजहाँ फ़ौज लेकर जब उसपर चढ़ आया तो शाहजी ने उसका पक्ष छोड़कर शाहजहाँ की शरण ली। तब लोधी मुर्तिजा-शाह के पास गया। इसलिए मुग़लों ने निजामशाह से युद्ध करके उसको हरा दिया। इसी समय यानी सन् १६२९ में अनावृष्टि के

कारण दक्षिण में भयंकर काल पड़ा। इसलिए कई लोग देश छोड़कर चले गये और सैकड़ों मर गये। दाना-चारा न मिलने से ढोरों का भी वही हाल हुआ। इसलिए सारा देश क़रीब-क़रीब उजाड़ हो गया। इसके बाद महामारी ने आकर लोगों का काम तमाम कर दिया। इसी समय उत्तर से और भी मुग़ल फ़ौज दक्षिण में पहुँची। अब कहीं मुर्तिजाशाह को अक़्ल आई और उसने फ़त्तेखाँ को क़ैद से मुक्त किया। परन्तु इसने मुक्त होते ही शाह को तथा उसके पक्ष के अनेक सरदारों को क़ैद करके मार डाला और स्वयं सब निजामशाही पर अधिकार जमा कर मुग़लों की शरण गया। उसने मुर्तिजाशाह के हुसैन नामक एक लड़के को गद्दी पर बिठलाया था। इन सब बातों से शाहजी भोंसले को बड़ा बुरा लगा। उसने बीजापुर के राजा से मित्रता करके मुग़लों का दौलताबाद नामक क़िला फ़त्तेखाँ से लेने के लिए बीजापुर की फ़ौज मँगवाई। तब फ़त्तेखाँ ने मुग़लों से सहायता माँगी। इस युद्ध में बीजापुरवालों की हार हुई। तथापि वहाँ के राजा ने फ़त्तेखाँ को अपनी ओर मिलाकर मुग़लों से लड़ाई जारी रक्खी। इससे मुग़ल सेनापति महाबतखाँ बहुत ही चिढ़ गया। उसने दौलताबाद पर ज़ोरों का हमला किया और २८ दिन के घनघोर युद्ध के बाद उसे ले लिया तथा फ़त्तेखाँ और बाल राजा हुसेन को क़ैद कर दिल्ली भेज दिया। इसके बाद उसने निजामशाही का सब राज्य अपने क़ब्ज़े में कर लिया। इस प्रकार अहमदनगर का निजामशाही राज्य सन १६३३ में सदैव के लिए नष्ट हो गया।

इसके बाद शाहजी भोंसले ने निजामशाही को फिर से स्था-

पित करने का जो व्यर्थ परिश्रम किया, उसका इतिहास निजाम-शाही के इतिहास की अपेक्षा भौंसले-घराने के अभ्युदय के इतिहास से अधिक सम्बन्ध रखता है। अतएव उसका वर्णन, आगामी अध्याय में, भौंसले-घराने के इतिहास के साथ किया जायगा।

५

भोंसलों का अभ्युदय

निजामशाही, आदिलशाही और कुतुबशाही की अवनत अवस्था में जिन मराठे* घरानों ने नाम कमाया और तत्कालीन राजनीति में भाग लिया, उनमें भोंसले-वंश भी एक है। इस वंश का ठीक-ठीक इतिहास अबतक नहीं मिला है। बहुत लोग यह मानते हैं कि इस वंश का सम्बन्ध उदयपुर के राजपूत घराने से है। ऐसा कहते हैं कि राणा लक्ष्मणसिंह का पोता सुजनसिंह चित्तौड़ छोड़कर सोंधवाड़ा में रहने लगा। वहाँ पर उसके वंशज चार पीढ़ी तक बने रहे। इनमें से देवराज नाम का एक पुरुष सन् १४१५ के क़रीब दक्षिण में आया। भोसाजी नाम के एक पुरुष से ये लोग भोंसले कहलाने लगे थे। इस वंश

मालोजी भोंसले

---

* मराठा शब्द के दो अर्थ हैं। एक तो इससे महाराष्ट्र में रहने वाले समस्त हिन्दुओं का बोध होता है; दूसरे, 'मराठा' नामक खास जाति का बोध होता है। कहाँ कौनसा अर्थ ठीक होगा, यह प्रसंग से जाना जा सकता है। तथापि बहुधा पहले ही अर्थ का उपयोग इस पुस्तक में विशेष हुआ है।

का अधिक विश्वसनीय इतिहास शिवाजी के बाबा के बाबा सम्भाजी से शुरू होता है। सम्भाजी के लड़के बापजी भोंसले का जन्म सन् १५३३ में हुआ। बापजी के मालोजी और विठोजी नामक दो लड़के थे। उनका जन्म सन् १५५० और १५५३ में हुआ। आरम्भ में दोनों भाई लखूजी जाधवराव नामक एक सरदार के पास बारगीर ‡ बनकर रहने लगे। मालोजी शरीर से बहुत ऊँचा-पूरा आदमी था। इस कारण उसके पास घोड़े टिकते न थे। अन्त में जाधवराव ने उसे अपने घर पर द्वारपाल की नौकरी दी। परन्तु वह महत्वाकांक्षी और कर्तृत्ववान पुरुष था। द्वारपाल की नौकरी छोड़कर वह फलटण के सरदार निम्बालकर के पास गया। वहाँ उसने बहुत नाम कमाया, जिससे जगपालराव निम्बालकर ने अपनी बहन दीपाबाई का विवाह उससे कर दिया। मालोजी की होशियारी देखकर सन् १५७७ में जाधवराव ने निजामशाह से उसकी भेंट करवादी और सिफ़ारिश करके सरकारी सेना में सिलेदारी ❀ दिलवा दी। इसके बाद वह अपनी निजी पागा ‡ रख कर सरकारी नौकरी करने लगा। उसके भाई विठोजी के आठ लड़के हुए, मगर वह सन्तानहीन ही था। उसकी स्त्री दीपाबाई ने अनेक मिन्नतें कीं। उसीमें नगर नामक शहर के पीरशाह शरीफ़ मुसलमान साधु की यह मिन्नत भी की कि मेरे लड़का होगा तो मैं इसको आपही का नाम दूँगी। इसके बाद सन् १५९४ में उसके पहला लड़का हुआ और

‡ यह एक प्रकार का फ़ौजी सिपाही था।

❀ यह एक प्रकार का फ़ौजी नायक होता था।

‡ एक सैनिक टुकड़ी।

उसका नाम उस पीर के नाम से शाहजी रक्खा गया। फिर सन १५९७ में दूसरा लड़का हुआ, उसका नाम शरीफजी रक्खा गया।

शाहजी का विवाह जाधवराव की लड़की जीजाबाई से हुआ। इस बीच में मालोजी ने अपनी अच्छी उन्नति करली थी। वह पाँचहज़ारी मनसबदार हो गया था। राजा का ख़िताब पा चुका था और शिवनेर और चाकण के क़िले तथा पूना और सूपा के दो परगने जागीर में उसने प्राप्त कर लिये थे। निजामशाही में जब गड़बड़ शुरू हुई तब उसने और भी कई स्थान अपने क़ब्ज़े में कर लिये। वह इतने महत्व का हो गया कि मलिक अम्बर को उसकी सहायता की आवश्यकता जान पड़ी। उसकी बहुत-सी जागीर मुग़लों के तथा आदिलशाही के राज्य में थी, परन्तु अपनी योग्यता से उसने अपनी सब जागीर का बचाव किया और अपने घराने को समृद्ध बनाया। सन १६१९ में उसकी मृत्यु हुई।

मालोजी के बाद उसके पुत्र शाहजी ने भोंसले-वंश का नाम और भी बढ़ाया। बाप के मरने पर शीघ्र ही वह मनसबदार हो गया। मलिक अम्बर ने जब मुग़लों को हराया था, उसमें शाहजी का भी काफ़ी भाग था। इस लड़ाई के समय जिस युद्ध में शाहजी ने विशेष नाम कमाया और पराक्रम दिखलाया, उसे भातवड़ी का युद्ध कहते हैं। यह सन १६२४ में हुआ था। इस युद्ध के बाद, भाई-बन्धुओं तथा मालिक से न बनने के कारण, शाहजी बीजापुर-दरबार में चला आया, जहाँ उस समय इब्राहीम आदिलशाह राज्य करता था। वहाँ उसने अनेक पराक्रम करके खूब

शाहजी भोंसले का प्रारम्भिक जीवन

नाम कमाया। इस समय बीजापुर और निजामशाही के बीच युद्ध चल रहा था। सम्भवतः शाहजी ने इस समय कर्नाटक तथा केरल पर चढ़ाई की थी। इब्राहीम के बाद उसका लड़का सुलतान महमूद तख़्त पर बैठा। इस समय वहाँ बड़ी गड़बड़ मची और अनेक सरदारों का अपमान हुआ। इसी समय शाहजहाँ ने निजामशाही को जीतने के लिए फ़ौज भेजी। सन् १६२६ में मलिक अम्बर की मृत्यु हो चुकी थी। उसके बाद उसका लड़का फ़त्तेख़ाँ वज़ीर हुआ। परन्तु वज़ीर और शाह में न पटी। शाह ने फ़त्तेख़ाँ को क़ैद में डाल दिया। लखूजी जाधवराव पहले मुग़लों से जा मिला था। फ़त्तेख़ाँ के क़ैद होने पर वह निजामशाही में वापस आया। परन्तु शीघ्र ही मारा गया। यह बात सुनकर शाहजी पूना की ओर चला गया और वहाँ आदिलशाही के राज्य में गड़बड़ मचाने लगा। बीजापुर-दरबार ने मुरार जगदेव नामक सरदार को उससे लड़ने के लिए भेजा। तब वह एक स्थान से दूसरे स्थान को भागने लगा। इसी बीच शिवनेरी में उसने अपने लड़के सम्भाजी का विवाह किया और अपने समधी की सम्मति से अपनी गर्भवती स्त्री जीजा-बाई को शिवनेरी के क़िले में रख दिया। उसने देखा कि इधर आदिलशाही सेना मेरे पीछे पड़ी है और निजामशाही में रहना किसी प्रकार सुरक्षित नहीं है, इसलिए उसने मुग़ल सेना-पति आज़मख़ाँ के पास संदेश भेजा कि यदि मुझे मुग़ल बादशाह का आश्रय मिले तो मैं आपके पास आना चाहता हूँ। शाहजहाँ ने तुरन्त ही उसे पाँच हज़ार का मनसबदार बना दिया। दर्याख़ाँ और ख़ाँजहाँ नामक दो मुग़ल सरदार इस समय बाग़ी

बनकर निजामशाही में चले आये थे। दर्याखाँ का पीछा करने का काम शाहजी को करना पड़ा। इसी बीच जीजाबाई शिवनेरी में प्रसूत हुई और उसके लड़का हुआ, जिसका नाम शिवाजी रक्खा गया। दर्याखाँ के मारे जाने पर शाहजी शिवनेरी को वापस आया। इस समय तक शिवाजी का अन्नप्राशन-संस्कार भी हो चुका था।

इधर मुग़लों का हमला दिनोंदिन बढ़ता देखकर निजामशाह ने फ़त्तेखाँ को क़ैद से मुक्त किया और फिर से वज़ीर बनाया।

निजामशाही का अन्त

परन्तु अब वज़ीर ने शाह को क़ैद में डालकर शीघ्र ही मरवा डाला। उसके बाद एक लड़के को गद्दी पर बिठलाया और स्वयं मुग़लों से दोस्ती करने की खटपट करने लगा। मुग़लों का हमला देख कर आदिलशाह को अब अपनी सूझी, क्योंकि निजामशाही के नष्ट होने पर बीजापुर के राज्य पर उनका हमला होने का डर स्पष्ट दीख पड़ा। उधर शाहजी का मुग़लों से मन-मुटाव हो गया और वह उन्हें छोड़ इधर चला आया। इस समय निजामशाही को बचाने का बहुतेरा प्रयत्न हुआ। उसने बीजापुर से मित्रता की संधि की, और मुग़लों से लड़ने के लिए फ़ौज एकत्र की। इसपर मुग़लों की बड़ी भारी फ़ौज दिल्ली से आई। शाहजी ने मुग़ल सेनापति महाबतखाँ को बुरहानपुर तक खदेड़ दिया, परन्तु दक्षिण के मुसलमान सरदार एक हिन्दू सरदार का नेतृत्व मानने को तैयार न थे। इसी समय बीजापुर-दरबार में बड़ी गड़-बड़ पैदा हुई, जिसके फलस्वरूप बीजापुर वाले मुग़लों से मिल गये और अन्त में सन १६३३ में निजामशाही का अन्त हो गया।

यह बतला ही चुके हैं कि मुग़ल लोग हुसेन निजामशाह तथा फ़त्तेखाँ को क़ैद करके दिल्ली ले गये।

निजामशाही का अन्त होने पर भी शाहजी ने उसके पुनरुद्धार का प्रयत्न नहीं छोड़ा। निजामशाह-वंश के मुर्तिज़ा नामक एक लड़के को पेमगिरी में गद्दी पर बिठलाकर शाहजी स्वयं कारबार देखने लगा। उसने कोंकण का बहुत-सा भाग जीत लिया। यह देखकर शाहजहाँ स्वयं

निजामशाही के पुनरुद्धार का शाहजी का प्रयत्न

दक्षिण में आया। इस समय शाहजी ने बीजापुर की सहायता प्राप्त कर ली थी। इसलिए शाहजहाँ ने आदिलशाह को संदेशा भेजा कि शाहजी का पक्ष छोड़ दो, नहीं तो हम तुम्हें भी नष्ट कर डालेंगे। परन्तु आदिलशाह ने यह बात नहीं मानी। इसलिए अब मुग़लों ने अपनी सेना के कई भाग किये और शाहजी का पीछा करना शुरू किया तथा बीजापुर के राज्य में घुस गये। आख़िर, अदिलशाह ने मुग़लों से संधि करली।* शाहजी को यहाँसे वहाँ भागना और अन्त में, उपाय न देख, शाहजहाँ की

* बीजापुर और दिल्ली के बीच जो सन्धि हुई, उसकी मुख्य शर्तें ये थीं—(१) बीजापुर का आदिलशाह दिल्ली के बादशाह की अधीनता स्वीकार करे; (२) निजामशाही राज्य को दोनों आपस में बाँट लें; (३) शाहजी ने निजामशाही-वंश के एक लड़के को गद्दी पर बिठलाकर उसके नाम से निजामशाही का राज्य चलाने का प्रयत्न किया है। जबतक यह शाहजी जुन्नर, त्रिम्बक और अन्य क़िले शाहजहाँ बादशाह को न दे दे तबतक उसे बीजापुर अपनी नौकरी में न रक्खे। यदि वह शीघ्र शरण न आवे, तो उसे बीजापुर-राज्य में कहीं भी न रहने दिया जाय।

शरण जाना पड़ा । पूना और सूपा नामक परगने शाहजी के हाथ में बने रहे और वह बीजापुर की नौकरी में चला गया । इस प्रकार निजामशाही के पुनरुद्धार का शाहजी का प्रयत्न नष्ट हुआ ।

६

शिवाजी का उदय

विजयनगर के विनाश के बाद कर्नाटक में कई छोटे-छोटे राज्य उत्पन्न हो गये थे और वे सदैव आपस में लड़ा करते थे।

कर्नाटक पर बीजापुर की चढ़ाई के साथ शाहजी

बेदनूर में वीरभद्र नामक राजा राज्य करता था और बसवापट्टन में केंगहनुम नामक उसके माण्डलिक का राज्य था। जब केङ्ग नायक ने वीरभद्र के विरुद्ध बलवा किया, तब वीरभद्र ने उसे हराकर उसकी जागीर ज़ब्त करली। इसपर केङ्ग नायक ने बीजापुर-दरबार से सहायता माँगी और बीजापुर-दरबार ने सहायता स्वीकार कर शाहजी और रणदुल्लाखाँ को कर्नाटक भेजा। इस प्रकार बीजापुर की नौकरी में आने पर शाहजी को शीघ्र ही कर्नाटक पर हमला करने के लिए जाना पड़ा। इस चढ़ाई में मलिक रेहान नामक एक सरदार अपने ४००० सवारों के साथ आया था। इन सब-ने मिलकर वीरभद्र के बेदनूर क़िले को घेर लिया। अन्त में ३०

लाख होन † देने की शर्त पर उसने बीजापुरवालों से सन्धि कर ली। इसमें से १६ लाख उसने तुरन्त दे दिये, और शेष १४ लाख होन तीन किश्तों में देने का वादा किया। रणदुल्लाखाँ के जाने पर यह बाक़ी देने में वीरभद्र टालमटोल करने लगा और उसने केंग नायक पर फिर से हमला कर दिया। इसलिए बीजापुर से सेना आई और उसने वीरभद्र का सारा राज्य ले लिया। रण-दुल्लाखाँ की इस चढ़ाई में बीजापुर ने बंगलोर और शिरीन नाम के दो परगने ले लिये थे। इनकी देखरेख शाहजी को सौंपी गई।

इस चढ़ाई के बाद शाहजी को श्रीरंगपट्टन के कण्डीरवनरस नामक राजा पर चढ़ाई करनी पड़ी। इस चढ़ाई का परिणाम यह हुआ कि कर्नाटक-बालाघाट नामक भाग बीजापुर के राज्य में मिले। इनमें से बंगलोर, होसकोटे, कोलार, दोड्ड, बालापुर और शिरीन जिस सूबे में शामिल थे, वह बालाघाट सूबा शाहजी को जागीर के रूप में दिया गया।

शाहजी को कर्नाटक की जागीर

अबतक लोगों की यह समझ थी की एक बार जीजाबाई को शिवनेरी के क़िले में शिवाजी के जन्म के पहले छोड़ने के बाद शाहजी ने कचित ही उसे अपने पास रक्खा। इस बीच में शाहजी ने मोहने सरदार की लड़की तुकाबाई से शादी करली थी। इसलिए लोगों का मत है कि जीजाबाई पर शाहजी प्रेम नहीं करता था, और इसलिए उसे तथा शिवाजी को शिवनेरी में ही और फिर

शिवाजी पिता के पास

† यह सोने का सिक्का होता था और इसका वज़न साढ़े तीन माशे रहता था।

बाद को पूना में दादोजी कोंडदेव की देखरेख में रख दिया था। परन्तु यह कल्पना 'शिव भारत' नामक ग्रंथ से साफ़ झूठ मालूम पड़ती है। इस ग्रंथ से यह जान पड़ता है कि शाहजी जब उपर्युक्त चढ़ाई के समय कर्नाटक में गया, उस समय वह जीजाबाई और शिवाजी को अपने साथ ले गया था; और ये दोनों शिवाजी के १२ वर्ष के होने तक शाहजी के पास ही रहे थे। शाहजी ने कर्नाटक की अपनी जागीर अपने बड़े लड़के सम्भाजी के नाम कर दी थी और पूना-सूपा की जागीर का थोड़ा-सा हिस्सा शिवाजी के नाम लिख दिया था। शिवाजी की उम्र १२ साल की होने पर शाहजी ने जीजाबाई तथा कुछ अनुभवी नौकरों को साथ देकर उसे पूना भेज दिया। ऐसा करने में उसने शायद बहुत दूर की बात सोची थी। उसने अपने जीवन में यह देख लिया था कि शाह के नाराज़ होने पर किसी भी समय किसी भी सरदार पर आफ़त आ सकती है, इसलिए पहले से ही लड़कों का कुछ बन्दोबस्त कर रखना उसे आवश्यक जान पड़ा। सम्भवतः इसी-लिए उसने जीजाबाई और शिवाजी को पूना और सूपा की जागीर सम्हालने के लिए भेज दिया और सम्भाजी के साथ वह कर्नाटक में रहने लगा।

शिवाजी का बालपन इस प्रकार कुछ तो शिवनेरी में और कुछ कर्नाटक में बीता। शाहजी का बहुतेरा समय लड़ाई में बीता था, इसलिए जन्म से ही शिवाजी का परिचय लड़ाई की बातों और वस्तुओं से होने लगा था। हाथी-घोड़े पर बैठना, तलवार, धनुष, भाला, बरछी आदि शस्त्रों का उपयोग करना तथा निशाना मारना वह

शिवाजी की शिक्षा

बचपन से ही धीरे-धीरे सीखने लगा था। परन्तु जब वह सात वर्ष का यानी "लिपि-ग्रहण-योग्य" हुआ तो शाहजी ने और लड़कों के साथ उसे भी गुरु के सुपुर्द कर दिया।❀

❀ कुछ लोगों का मत है कि शिवाजी निरक्षर था, परन्तु 'शिव-भारत' का वर्णन इसके बिलकुल विरुद्ध है। 'शिवभारत' में साफ़ लिखा है कि 'शिवाजी जब सात वर्ष का हुआ तब शाहजी ने लिपि-ग्रहण-योग्य समझकर और लड़कों के साथ उसे भी गुरु के सुपुर्द किया था।' इसका स्पष्ट आशय यही है कि लिखना-पढ़ना सिखाने का प्रबन्ध शाहजी ने कर दिया। इसलिए यह बात निराधार जान पड़ती है कि शिवाजी लिखा-पढ़ा न था; उल्टे, उसके ऐसा होने के ही पक्ष में अनेक बातें दीख पड़ती हैं। शिवाजी रामायण, महाभारत आदि ग्रंथ अच्छी तरह जानता था। उसके यहाँ कई कवि रहते थे और वह उनका अच्छा आदर करता था। पढ़े-लिखे हुए बिना बहुधा कवियों का आदर राजा लोग नहीं कर सकते। परन्तु शिवाजी के विषय में यह स्पष्ट विधान है कि काव्यों में उसने गति प्राप्त कर ली थी। फिर यह भी सोचने की बात है कि जिसके पिता और भाई जयराम जैसे कवि को समस्या-पूर्ति के लिए समस्या दे सकते थे, जिसका लड़का सम्भाजी बुध-भूषण नामक संस्कृत-ग्रंथ लिख सका था, वह किस प्रकार निरक्षर रहा होगा! चौथी बात यह है कि जिसने राज्य कमाने पर "राज-व्यवहार-कोष" बनवाया और अपने अधिकारियों के पहले के फ़ारसी नाम संस्कृत में परिवर्तित कर दिये, वह क्या बिना पढ़े-लिखे ही ऐसा कर सका? बिना विद्या के ज्वलन्त स्वदेश-भाषा-भिमान पैदा होना भी सम्भव नहीं जान पड़ता। कई अन्वेषकों ने शब्दों की गिनती करके यह दिखला दिया है कि शिवाजी का राज्य होने पर फ़ारसी शब्दों के बदले मराठी शब्दों का उपयोग अधिक होने लगा था। इसमें शिवाजी का हाथ स्पष्ट दीख पड़ता है। यह सब काम बिना विद्या के नहीं हो सकता।

शिवाजी के चरित्र तथा जीवन पर जिन दो मनुष्यों का विशेष प्रभाव पड़ा, वे हैं उसकी माता जीजाबाई और उसका कारबारी दादाजी कोंडदेव। जीजाबाई महत्वाकांक्षी तथा मानी स्त्री थी। उसने निजामशाही का अन्तिम काल देखा था और मुग़ल सेना ने जब

जीजाबाई का प्रभाव

कोई यह कह सकता है कि यदि शिवाजी लिखा-पढ़ा था तो उसके निजी हाथ का लिखा हुआ कोई भी क़ाग़ज़ आज तक क्यों नहीं मिला? इसका प्रथम उत्तर यह है कि राजा लोग क्वचित ही अपने हाथ से कोई चिट्ठी लिखते थे। उनके इस काम के लिए लेखक नियत होते थे और वे इन लेखकों को चिट्ठियों का मज़मून बतलाते थे। यदि जिसके नाम चिट्ठी जाने की है वह पुरुष अच्छे ऊँचे दर्जे का हुआ तो पत्र का समाप्ति-कारक वाक्य अपने हाथ से लिखकर उसपर हस्ताक्षर कर देते थे। इसी प्रकार का एक पत्र शिवाजी का भी मिला है, ऐसा प्रसिद्ध इतिहास-संशोधक स्वर्गवासी राजवाड़े का मत है। इस सम्बन्ध में दूसरी बात यह ख़याल में रखनी चाहिए कि शिवाजी ने अपना बहुतेरा काम जासूसों और दूतों के द्वारा किया और चिट्ठी-पत्री का उपयोग कम किया। कदाचित् यही कारण है कि शिवाजी के समय के क़ाग़ज़-पत्र बहुत नहीं मिलते। तीसरे, जिस प्रकार अन्य कई क़ाग़ज़-पत्र नष्ट हो गये, उसी प्रकार कदाचित् शिवाजी के समय के क़ाग़ज़-पत्र नष्ट हो गये होंगे और उन्हींके साथ शिवाजी के निजी हाथ के लिखे क़ाग़ज़-पत्र भी काल के ग्रास बन गये होंगे। इतने पर भी हमें शिवाजी के निजी हाथ के लिखे क़ाग़ज़-पत्र पाने की आशा अब भी रखना चाहिए। क्योंकि महाराष्ट्र के इतिहास-संशोधन का काम गत तीस-चालीस वर्षों से ही विशेष होने लगा है। गत थोड़े वर्षों में ही जो कुछ सामग्री एकत्र हुई है, उसने हमारी कई पूर्व-धारणाओं को बदल दिया है। इसलिए यह आशा करना अनुचित नहीं कि आगे-पीछे कभी शिवाजी के निजी हाथ के लिखे कुछ क़ाग़ज़-पत्र भी मिल जायँ।

शाहजी को एक स्थान से दूसरे स्थान का खदेड़ा था तब राज्य-हीन होने का अनुभव उसने प्राप्त किया था। वह धर्म में भी विशेष श्रद्धा रखती थी और स्वयं शिवाजी को रामायण, महाभारत जैसे ग्रंथों की कथायें सुनाया करती थी। मालोजी के समय से यह विश्वास भोंसले-घराने में प्रचलित था कि इस वंश में कोई-न-कोई अवतारी पुरुष उत्पन्न होगा और वह गो, ब्राह्मण तथा स्वदेश को मुसलमानों के कष्टों से छुड़ावेगा। जीजाबाई के इस स्वभाव, आचरण तथा विश्वास का शिवाजी पर तीव्र प्रभाव पड़ा। वह भी महत्वाकांक्षी और मानी हो गया। ज्यों-ज्यों वह बड़ा हुआ, त्यों-त्यों उसे यह मालूम होने लगा कि मुसलमान राजाओं की दी हुई जायदाद से सन्तुष्ट होकर तथा उनका किया हुआ अपमान और अत्याचार सहकर जीवन बिताना अनुचित है। माता की धार्मिकता को देखकर उसमें भी धार्मिक प्रवृत्ति पैदा हो गई। जहाँ कहीं भजन-कीर्तन होते, वहाँ वह यथासंभव अवश्य जाया करता था। उसने अपने जीवन में सब प्रसिद्ध मन्दिरों के दर्शनों को जाने का प्रयत्न किया। रामायण और महाभारत की कथाओं का उसके जीवन पर कई प्रकार का प्रभाव पड़ा। एक तो उनसे उसकी धार्मिक प्रवृत्ति का परिपोषण हुआ, दूसरे उनसे उसे सांसारिक और व्यावहारिक बातों का शिक्षण मिला, तीसरे उनमें के वीरों की कथाओं से उनका अनुकरण करने की स्फूर्त्ति उसमें अवश्य उत्पन्न हुई होगी। शिवाजी का जीजाबाई पर अनन्य प्रेम रहा और जीजाबाई ने भी उससे उसी प्रकार प्रेम किया। कोई भी कार्य करने के पहले शिवाजी अपनी माता से सलाह अवश्य लिया करता था और उसका

प्रोत्साहन मिलने पर ही वह उसमें हाथ लगाता था। जीजाबाई को कई बातों का अनुभव था, इसलिए ठीक सलाह देने की योग्यता उसमें पैदा हो गई थी, और वह बहुधा ठीक सलाह ही दिया करती थी।

अब हम यह देखेंगे कि दादाजी कोण्डदेव का शिवाजी के चरित्र और जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा। दादाजी कोण्डदेव पहले

दादाजी कोण्डदेव का प्रभाव

हिंगणी, वेरडी, देउलगाँव। आदि स्थानों का कुलकर्णी यानी पटवारी था। पूना और सूपा की जागीर पाने पर शाहजी ने इसे उसकी व्यवस्था सौंप दी। इस पुरुष ने इस जागीर की स्थिति बहुत सुधारी तथा शिवाजी को सब प्रकार की आवश्यक शिक्षा दी। शिवाजी ने सब युद्ध-शिक्षा इसीके पास आने पर पाई। पूना-सूपा की जागीर जब दादाजी कोण्डदेव के हाथ आई तब उसकी हालत बड़ी खराब थी। जहाँ-तहाँ जंगली जानवर लोगों को कष्ट दिया करते थे। वतनदार और भिन्न-भिन्न अधिकारी आपस में लड़ा करते थे और इस कारण बहुत खून-खराबा हुआ करता था। लगान का कोई ठीक प्रबन्ध न था और वह समय पर जमा न होता था। जंगल की बहुत अधिक बाढ़ थी, जिससे खेती ठीक न होती थी। इन सब दोषों को दूर करने का श्रेय दादाजी कोण्डदेव को है। पूना की जागीर में १२ मावल* शामिल

---

* हम द्वितीय अध्याय में यह बता चुके हैं कि महाराष्ट्र पहाड़ी देश है और उसमें सह्याद्रि पर्वत उत्तर-दक्षिण फैला है। इस पर्वत के पूर्वी ढाल से अनेक छोटी-बड़ी नदियाँ निकलती हैं। प्रत्येक नदी की तराई के भाग को महाराष्ट्र में "मावल" कहते थे। प्रत्येक मावल में एक मुख्य

थे। यहाँ के देशमुख आपस में बहुत लड़ा करते थे। खून का बदला खून से लिया जाता था। इन सब देशमुखों को दादाजी ने बुला-बुला कर समझाया और उनके झगड़े अपने सामने बुलाकर आपस में निपटाने का प्रबन्ध किया। जिन्होंने सीधी रीति से न माना उनसे लड़ाई करके उन्हें नरम किया। इस प्रकार आपसी झगड़े निपटाने के काम की शिक्षा शिवाजी को मिली। फिर दादाजी ने लगान का बन्दोबस्त किया। इसमें बहुत-कुछ मलिक अम्बर की पद्धति का अनुकरण किया गया। इस कारण लोग अधिकारियों के जुल्मों से बचे और लगान समय पर जमा होने लगा। जंगली जानवरों को मारनेवाले को इनाम देने की घोषणा की गई, इससे थोड़े ही वर्षों के भीतर बहुत-से जंगली जानवरों का नाश हो गया। स्थान-स्थान पर उसने चौकी-पहरे बिठला दिये और इस प्रकार चोरों का डर दूर कर दिया। पूना के पास उसने बगीचे लगवाये और उसे आबाद करवाया। इस प्रकार थोड़े ही वर्षों के भीतर शाहजी की जागीर को समृद्ध कर दिया। दादाजी कोण्डदेव के इन सारे कामों से शिवाजी

नदी है, भूमि पहाड़ी है और तब वहाँ जंगल बहुत था। वहाँ के रहने वाले मराठे लोग मावले कहलाते थे। पूना से शिरवल तक बारह मावल थे—अंदर मावल, नाणे मावल, पवन मावल, घोटण मावल, पौडखोरें, मोसे मावल, मुठे मावल, गुंजण मावल, वेलवण्ड मावल, भोरखोरें, शिवतर खोरें, व हिरउस मावल। जुन्नर से चाकन तक के बारह मावल शिवनेर, जुन्नर, मोन्नेर, घोड़नेर, भीमनेर, भामनेर, जामनेर, पिंपद्रनेर, पारनेर, सिन्नर, संगमनेर अकोलनेर थे। 'तराई' को मराठी में 'खोरें' कहते हैं। 'नीरा' से सम्भवतः 'नेर' बना है। इसका अर्थ नदी है।

ने राज्य-प्रबन्ध की अनेक बातें सीखीं और उसने अपने जीवन में उनका भरपूर उपयोग किया। दादाजी के काम से शाहजी तो खुश हुआ ही, परन्तु लोग भी उससे बहुत प्रसन्न हुए। इस पुरुष का निजी जीवन अनुकरणीय और प्रभावकारक था। यह बहुत ही ईमानदार, धार्मिक तथा लोक-हितकारी था। इसके आचरण के दोष ढूँढ निकालना मुश्किल है। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि जो शिवाजी इसके साथ कई सालों तक रहा, उसपर जीजाबाई के समान इसका भी अच्छा प्रभाव पड़ा।

सभासद नामक एक बखर-लेखक ने लिखा है कि 'शिवाजी महाराज ने बंगलोर से पूना आते ही बारहमावल क़ब्जे में कर लिये।' इसका अर्थ कई लोग यह करते थे कि शिवाजी ने बंगलोर से आते ही स्वराज्य-स्थापना का कार्य शुरू कर दिया। परन्तु इसका यह अर्थ उचित नहीं जान पड़ता। इसका उचित अर्थ यही है कि शिवाजी को साथ लेकर दादाजी कोण्डदेव ने पूना के बारह मावल का ठीक-ठीक प्रबन्ध कर डाला, जिनका वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं। तथापि यह कल्पना की जा सकती है कि इस प्रबन्ध के समय उसकी महत्वाकांक्षा ने ज़ोर दिखलाया होगा और स्वराज्य-स्थापना की शक्यता उसे दीख पड़ी होगी।

बारहमावल पर कब्ज़ा

शिवाजी ने अपना कार्य अपनी जागीर से ही प्रारम्भ किया और अपनी जागीर के ही लोगों का इस काम के लिए उपयोग किया। उसके प्रारम्भिक साथियों में दादाजी नरसप्रभु, कान्होजी नाईक, बाजी सरजेराव देशमुख, बाजी पासलकर आदि मुख्य हैं। बाजी नरसप्रभू

प्रारम्भिक साथी

रोहिड़खोरे नामक मावल का रहनेवाला था, और तरुण एवं साहसी पुरुष था। प्रारम्भ में जब शिवाजी तरुण लोगों का संगठन करके स्वतंत्र होने का विचार करने लगा, तब उसमें वाजी नरसप्रभू अग्रणी था और तरुण लोगों का संगठन करने में शिवाजी की मदद करता था। इसी कारण सन् १६४७ के अप्रैल में उसे बीजापुर से बड़े डाट की चिट्ठी मिली थी, जिसपर उसका पिता घबरा गया था। पर यह बात सुनकर शिवाजी ने दादाजी प्रभू को दिलासे की चिट्ठी लिखी और इस प्रकार उसे अपने पक्ष में बनाये रक्खा। शिवाजी जब जीजाबाई के साथ बंगलोर से पूना आया, उस समय उसके साथ जो लोग आये उनमें कान्होजी भी था। यह जेधे-वंशका था और बान्दल देश-मुख नामक एक बागी देशमुख को नष्ट करने में इसने शिवाजी की सहायता की थी। इसके लड़के बाजी ने विशेष पराक्रम दिख-लाया, इसलिए उसे शिवाजी ने सर्जेराव का खिताब दिया। इन दोनों पिता-पुत्रों ने हमेशा ईमानदारी के साथ शिवाजी की सेवा की। बाजी पासलकर मूसेखोरे नामक मावल का देशमुख था और वहाँ वह इज़्ज़तदार आदमी समझा जाता था। इन पुरुषों को उसने शपथ खिलाकर अपने से बाँध लिया और उनकी सहायता से अन्य लोग जमाकर स्वराज्य-स्थापना के कार्य में लगा।

परन्तु शिवाजी के इस कार्य का वर्णन करने के पहले हमें यह देखना चाहिए कि शिवाजी ही इस कार्य में क्यों लगा और वह क्योंकर सफल हो सका?

७

स्वराज्य-स्थापना की कल्पना

स्वराज्य-स्थापना की कल्पना

सबसे पहले इस बात का विचार करना चाहिए कि स्वराज्य-स्थापना की कल्पना पहले-पहल किसे उठी ? वह केवल शिवाजी की उपज थी, अथवा वास्तव में शाहजी की थी, या शाहजी तथा अन्य पूर्वजों से शिवाजी ने यह कल्पना पाई ? इसी-के साथ इस बात का भी विचार करना होगा कि इस कल्पना या कार्य में दादाजी कोण्डदेव का क्या भाग था ? इस सम्बन्ध में अभीतक एकमत नहीं हो सका है। एक पक्ष का कहना है कि स्वराज्य की सारी कल्पना शिवाजी के ही मस्तिष्क की उपज थी, और उसने चुपचाप इस कार्य की तैयारी की। इस पक्ष के समर्थन में वे शिवाजी के सम्बन्ध में लिखे हुए कुछ उद्धरण पेश करते हैं । शिव-दिग्विजय में लिखा है कि "ब्राह्मणोच्छेद-गोवधादि दुष्ट कृत्यों का नाश हुआ, तभी समझना चाहिए कि हिन्दू-कुल

में जन्म सफल हुआ; अन्यथा जीवन दुस्सह होगा।" इसी प्रकार चिटनीस-बखर में शिवाजी के सम्बन्ध में लिखा है कि उसने निश्चय किया कि अपने प्राण भी देकर धर्म की रक्षा करेंगे और "अपने पराक्रम से जो नया राज्य पावेंगे उसीसे जीविका चलेगी; कुछ नई बात करेंगे तब ही जन्म सफल समझना चाहिए। दैव पंगु है, इसलिए दैव पर भार डाल कर पुरुष-प्रयत्न करना चाहिए। फिर दैव ज्यों-ज्यों सहायक हो त्यों-त्यों अधिक करना चाहिए। सफलता दिलानेवाला परमेश्वर है।" इसी प्रकार दादाजी कोण्डदेव के सम्बन्ध में लिखा है कि शिवाजी ने उससे जब इस विषय में पूछा तो उसने उत्तर दिया, "आप जो कुछ कहते हैं, वह ठीक है; परन्तु इसकी सिद्धि होना अत्यन्त कठिन है। सारी पृथ्वी यवनों ने अपने क़ब्ज़े में करली है। सब स्थानों और क़िलों में उनकी सेना भरी हुई है। इस काम (स्वराज्य-स्थापना) के लिए आपके पास अच्छे-अच्छे स्थान चाहिएँ और जगह-जगह हिन्दू राजा और हिन्दू सेना मददगार होनी चाहिए। साहस के साथ अत्यन्त श्रमपूर्वक बड़े-बड़े कार्य करें तब कहीं ईश्वर की अनुकूलता तथा सिद्ध पुरुषों का आशीर्वाद होने पर ये बातें हो सकेंगी। अतः आप जो बात मन में लाते हैं वह अत्यंत कठिन है। आपके पिता ने यवनों की सेवा करके अपनी योग्यता से दौलत प्राप्त की। आपकी बात कहें तो यह योग विपरीत है, इसलिए दिनों-दिन धर्म क्षय होगा। इसलिए यह हो नहीं सकता। काल, देश, और वर्तमान—तीनों से आपकी यह बात मन को नहीं जँचती।"

इसके विपरीत इतिहास-संशोधक राजवाड़े का कहना है

कि मावल में स्वतंत्र राज्य स्थापित करना चाहिए, ऐसा विचार शाहजी का दादाजी कोण्डदेव की सलाह से हुआ था। अफ़ज़लखाँ, मालोजी घोरपड़े वग़ैरा बीजापुरी सरदार द्वेष के कारण शाहजी का पैर कर्नाटक में टिकने न देते थे। शायद इस-लिए शाहजी ने विचार किया कि स्वदेश में अर्थात् सह्याद्रि से लगे हुए भाग में कहीं-न-कहीं स्वतंत्र सत्ता स्थापित करनी चाहिए, ताकि दशों दिशाओं में जन्म-भर एक स्थान से दूसरे स्थान को बार-बार भटकने का मौक़ा न आवे। शिवाजी तथा दादाजी कोण्डदेव के सुपुर्द यह काम हुआ, इसका कारण कदाचित् यह था कि शाहजी ने सोचा कि यदि दादाजी कोण्डदेव इस कार्य में सफल न हुआ तो उस परिस्थिति में उन्हें बीजापुर दरबार में बने रहना ठीक होगा। यह इसी बात से सिद्ध होता है कि सन् १६४१ की सर्दियों में पूना को वापस आने पर शिवाजी ने स्वतंत्र राज्या-धिकार चलाना शुरू कर दिया। इसी विषय में प्रमाण-स्वरूप एक बात वह यह बतलाते हैं कि पूना की जागीर में जागीरदार के नाते शाहजी के अधिकारी सूबेदार, क़ाज़ी, मुजूमदार, हवल-दार, मुक़ादम वग़ैरा तो थे ही, परन्तु नया राज्य स्थापित करने के काम में मेहनत करनेवाले मुजूमदार, सबनीस, डबीर, पेशवा वग़ैरा अधिकारी शिवाजी के अलग थे। उपर्युक्त कथन आपने असली काग़ज़-पत्रों के आधार पर किया है और लिखा है कि "शाहजी का मुख्य प्रधान या सूबेदार दादाजी कोण्डदेव था, पर शिवाजी का मुख्य प्रधान शामराव नीलकंठ था। शाहजी का मुजूमदार नारो सुन्दर था, पर शिवाजी के बालकृष्ण पंत

शाहजी और स्वराज्य की कल्पना

और नीलों सोनदेव थे। शाहजी का हवलदार यानी प्रान्त की सेना का अधिकारी गोमाजी था, पर शिवाजी स्वयं अपनी सेना का अधिकारी था।" आगे आप यह भी कहते हैं कि जाहिर में शाही सूबेदार दादाजी कोण्डदेव का शिवाजी की नवीन राज्य-व्यवस्था के कार्य से कोई सम्बन्ध न था, परन्तु अन्दर-अन्दर वास्तव में वही इस कार्य को करता रहा होगा। दादाजी तथा शाह-जी को स्वराज्य की कल्पना का श्रेय देने के पक्ष में सन् १६२९ में शिवाजी के एक हुक्मनामे पर अंकित उनकी प्रसिद्ध मुद्रा का प्रमाण भी दिया जाता है। वह मुद्रा इस प्रकार है—

प्रतिपच्चन्द्र रेखेव वर्धिष्णुर्विश्ववंदिता ।।
शाहसूनोः शिवस्यैषा मुद्रा भद्राय राजते ।।

इसका अर्थ यह है कि 'प्रतिपदा के चन्द्र के समान बढ़नेवाली विश्व से पूज्य यह शाहजी के पुत्र शिवाजी की मुद्रा लोगों की भलाई के लिए शोभायमान है।' इसपर टीका करते हुए यह कहा जा सकता है कि वर्धिष्णु और विश्ववंदिता नामक दो शब्द कुछ विशेष अर्थ रखते हैं। शिवाजी इस समय तक केवल एक जागीरदार का लड़का था और कयति मावल नामक छोटा-सा भाग उसके नाम से शाहजी ने लिख दिया था। यदि शाहजी का

स्वतंत्र राज्य-स्थापना का विचार न होता तो प्रतिपदा के चन्द्रमा के समान वर्धिष्णु और फिर विश्ववंदिता कहने की कोई आवश्यकता न थी।

इन दोनों के बीच एक तीसरा पक्ष दीख पड़ता है। इस पक्ष का कहना है कि स्वराज्य की कल्पना पहले-पहल शिवाजी के मस्तिष्क से नहीं निकली, जैसा पहले बतला चुके हैं। शिवाजी के वंश में मालोजी के समय से यह विश्वास चला आता था कि भोंसले-वंश में कोई अवतारी पुरुष होगा और वह मुसलमानों से स्वदेश का उद्धार कर स्वतंत्र राज्य स्थापित करेगा। इस विचार का बहुत-कुछ परिपोषण शाहजी के चरित्र और जीवन से हुआ। मलिक अम्बर की मृत्यु के बाद निजामशाही के शासन-सूत्र बहुत समय तक शाहजी के हाथ में बने रहे और वह नाम को छोड़ कर पूर्णतया स्वतंत्र राजा के समान था। स्वतंत्र राज्याधिकार चलाने की आदत हो जाने पर कोई भी पुरुष यह नहीं चाहता कि वह उसे त्याग दे और पराधीन बने। यही बात शाहजी के विषय में भी चरितार्थ होती है। निजामशाही के पूर्णतया नष्ट हो जाने पर भी उसके पुनरुद्धार का प्रश्न शाहजी ने बहुत काल तक न छोड़ा और केवल लाचारी के कारण बीजापुर की नौकरी उसे स्वीकार करनी पड़ी। इस समय उसने जो संधि की थी, उसमें पूना और सूपा की जागीर अपने को देने की शर्त उसने लिखवा ही ली थी। शाहजी जैसे महत्वाकांक्षी, राजनैतिक और अनुभवी पुरुषों को अपने अधीन रखने में ही आदिलशाह ने अपना हित समझा और पूना और सूपा की उसकी पुश्तैनी जागीर उसे दे दी। इससे आदिलशाह का एक

ऐतिहासिक दृष्टि

बड़ा भारी डर दूर हो गया। कर्नाटक में भी जागीर देने का कारण यही जान पड़ता है। आदिलशाह चाहता रहा होगा कि शाहजी किसी प्रकार शांत बना रहे और बीजापुर-राज्य में गड़बड़ न करने पावे। परन्तु शाहजी की स्वतंत्र प्रवृत्ति अब भी नष्ट न हुई थी। कर्नाटक में उसने जब यह प्रवृत्ति दिखलाई तब आदिल-शाह ने उसे क़ैद करवा कर बीजापुर में बुलवा लिया। इस प्रकार यह दीख पड़ता है कि स्वराज्य की कल्पना शिवाजी ने अपने पिता और पितामह से पाई थी।

हमें यही अन्तिम पक्ष विशेष उचित जान पड़ता है। तथापि यह स्मरण रखना चाहिए कि स्वराज्य की कल्पना को कार्य के रूप में परिणत करने का श्रेय शिवाजी को ही दिया जा सकता है। यह विश्वास नहीं किया जा सकता कि जिन लोगों ने अपना सारा जीवन दूसरों की नौकरी में बिताया, यदि कुछ स्वतंत्र राज्या-धिकार का उपभोग किया भी तो तख़्त की ओट से ही, वे स्वतंत्र राज्य की स्थापना के कार्य में योग देंगे। ऐसे लोगों से अधिक से अधिक यही आशा की जा सकती है कि जबतक कोई आपत्ति न आय तबतक तरुणों के कार्यों पर वे विशेष ध्यान न दें और विशेष रोक-टोक न करें। शाहजी तथा दादाजी कोंड-देव के सम्बन्ध में भी यही बात ठीक दीख पड़ती है। यह तो सम्भव ही नहीं कि सदैव पास रहने पर भी शिवाजी के कार्यों का पता दादाजी कोंडदेव को न हो, पर उसने तरुण पुरुषों की उमंगें समझकर शिवाजी के कार्यों और विचारों पर अधिक ध्यान न दिया होगा और यह सोचा होगा कि ज़िम्मेदारी सिर पर आ पड़ने पर ये सब बातें जहाँ की तहाँ ठंडी हो जावेंगी।

इसी कारण कदाचित् शिवाजी के प्रारंभिक कार्यों को उसने नहीं रोका और इसलिए उसे स्वराज्य-स्थापना की पूर्व-तैयारी करने का मौक़ा मिल गया।

इसपर एक आक्षेप किया जा सकता है। ऊपर हमने शिवाजी की जो मुद्रा बतलाई है और उसका जो अर्थ बतलाया है, उसका सामंजस्य ऊपर बताये तीसरे पक्ष से किस प्रकार हो सकता है? इसपर हमारा कथन यह है कि उस काल में जागीर-दार लोग भी अपने को राजा से किसी प्रकार कम न समझते थे। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि जिस शिवाजी के नाम शाहजी ने बालपन से अपनी जागीर का थोड़ा-सा हिस्सा लिख दिया था, उसके नाम से एक मुद्रा भी बना दी थी, और उसका उपयोग शिवाजी के नाम से भेजे हुए हुक्मनामों में होता था। यह हम बताही चुके हैं कि शाहजी ने सम्भाजी और शिवाजी का अलग-अलग प्रबन्ध कर दिया था, जिससे स्वयं आपत्ति में पड़ने पर भी लड़कों को कोई कष्ट न हो। इसलिए यह कह सकते हैं कि शाहजी शिवाजी को ही पूना-सूपा का जागीरदार समझता था और इसलिए उसने पुत्र के नाम से हुक्मनामों पर मुद्रा चालू कर दी थी। इस मुद्रा के वर्धिष्णु और विश्व-वंदिता के अर्थों पर जो विशेष टीका-टिप्पणी की जाती है, उसमें हमें कोई विशेष बल नहीं दीख पड़ता। बढ़ते हुए बालक के विषय में वर्धिष्णु शब्द का उपयोग एक सहज बात है; और जिस जागीर को मानने के लिए एक तरह से सभी लोग बाध्य थे उसके विषय में विश्व-वंदिता कहना अनुचित नहीं। राज्य-विज्ञान की दृष्टि से मनुष्य

एक आक्षेप और उसका उत्तर

का प्रत्येक अधिकार विश्व-वंदित ही होता है। जबतक कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता तबतक स्वराज्य की कल्पना को कार्य के रूप में छिपे-छिपे परिणत करने का श्रेय शाहजी तथा दादाजी कोण्डदेव को देना अनुचित जान पड़ता है।

दूसरा आक्षेप और उसका उत्तर

दादाजी नरसप्रभु देशपांडे को बीजापुर से जब कड़ी डाट मिली तब शिवाजी ने उसे दिलासे की जो चिट्ठी लिखी उसमें ही कदाचित् पहले-पहल "हिन्दवी स्वराज्य" शब्द का उपयोग किया है। उसमें यह भी अवश्य लिखा है कि "दादाजी पंत की उपस्थित में बाबा का यानी दादाजी नरस प्रभु के पिता का, तुम्हारा और हमारा जो करार देव के सामने हुआ वह 'क़ायम वज्र-प्राय' है।" इसी वाक्य से यह शंका की जा सकती है कि दादाजी कोण्डदेव भी शिवाजी के स्वराज्य-स्थापना के कार्य में योग देता था। परन्तु उपर्युक्त वाक्य का अर्थ हमें कुछ भिन्न जान पड़ता है। हम पहले बतला ही चुके हैं कि दादाजी कोण्डदेव ने शिवाजी के बंगलोर से आने पर पूना की जागीर में सब प्रकार का प्रबन्ध करना शुरू कर दिया था। इसमें सबसे पहले और सबसे कठिन जो कार्य था, वह मावल के लड़ाके देशमुखों को क़ब्ज़े में रखने का था। जैसा हम बतला चुके हैं, दादोजी ने देशमुखों को बुला-समझाकर और करार लिखवा कर देशमुखों का प्रबंध किया था। यह कार्य वह बहुधा शिवाजी की उपस्थिति में किया करता था। हम समझते हैं कि दादाजी ने इसी प्रकार का कोई वादा दादाजी नरसप्रभु तथा उसके पिता से किया होगा। इसीका उल्लेख कदाचित् शिवाजी के दादाजी नरस-

प्रभु को भेजे हुए उपर्युक्त पत्र में किया होगा। हाँ, इतना अवश्य इससे दीख पड़ता है कि दादाजी कोण्डदेव के किये हुए इस प्रकार के वादों का उपयोग शिवाजी अपने कार्यों के लिए करता था। इसमें कोई आश्चर्य भी नहीं है। यह मनुष्य का स्वभाव ही है कि रात-दिन सिर पर रहनेवाले अधिकारी को दूर रहनेवाले अधिकारी की अपेक्षा वह अधिक मानता है और उसीका कहा अधिक सुनता है। इसी नियम के अनुसार कदाचित् शिवाजी का कहना मावल के लोगों ने माना हो। इसीके साथ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि इस पहाड़ी भाग पर आदिलशाह का क़ब्ज़ा अच्छी तरह न जमा था और मावल के देशमुख लड़ाकू प्रवृत्ति के थे। शिवाजी ने उनके सामने जब स्वराज्य की कल्पना छिपे-छिपे रक्खी तो आश्चर्य नहीं कि वे उसकी सिद्धि के लिए तैयार हो गये और उस प्रकार कार्य भी करने लगे। क्योंकि अब उन्हें अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कुछ कार्य करने का मौक़ा दीख पड़ा। सारांश, कार्य के रूप में स्वराज्य की कल्पना परिणत करने का श्रेय शिवाजी को ही दिया जा सकता है।

स्वराज्य की कल्पना और जीजाबाई

यदि इस कार्य में किसी नज़दीकी मनुष्य का योग शिवाजी ने पाया ही होगा तो वह अपनी माता जीजाबाई ही से पाया होगा। माता की सम्मति के बिना स्वराज्य-स्थापना का कोई कार्य शिवाजी ने न किया। इसलिए यही अनुमान करना पड़ता है कि इस कार्य की तैयारी में भी उसकी सलाह अवश्य ली होगी। यदि जीजाबाई का मत उसके विरुद्ध होता तो उसने अपने प्राणाधार पुत्र को स्वराज्य-स्थापना के संकटमय

कार्य से अवश्य रोका होता, परन्तु इस प्रकार का कोई भी उल्लेख कहीं भी नहीं दीख पड़ता।

स्वराज्य-स्थापना की कल्पना की सिद्धि के लिए एक और आवश्यक बात

परन्तु उपर्युक्त विवेचन से यह न समझना चाहिए कि स्वराज्य-स्थापना की कल्पना को कार्य के रूप में परिणत कर सकने का सारा श्रेय शिवाजी को ही दिया जा सकता है। यदि लोगों के मन की तथा देश की स्थिति अनुकूल न हुई होती तो शिवाजी इस कार्य में न पड़ता और उसके विचार जहाँ के तहाँ विलीन हो जाते; और यदि वह पड़ता ही तो उसे सफलता न मिली होती। इसलिए स्वराज्य-स्थापना का इतिहास जानने के पहले उसके उपयुक्त परिस्थिति का इतिहास जान लेना चाहिए।

८

उपयुक्त परिस्थिति

इतिहास की दृष्टि से पहला ही जो प्रश्न उपस्थित होता है, वह यह है—महाराष्ट्र में ही क्यों स्वतंत्रता की कल्पना उठी, हिंदुस्थान के अन्य मुसलमानी भागों में क्यों नहीं उठी ? गत अध्याय में इसका कुछ उत्तर आ गया है। हम कह चुके हैं कि और बातों की अनुकूलता न होती तो शिवाजी को इस कार्य में पड़ने की दृढ़ इच्छा न होती। वह जो इस कार्य में सब संकटों को देखते हुए भी पड़ा और सफलता प्राप्त की, वह कई प्रकार की अनुकूल स्थिति के कारण ही। इस अनुकूल स्थिति के स्वरूपों में मुख्य ये हैं—(१) लोगों के मन की दशा, (२) धार्मिक स्थिति, (३) राजकीय परिस्थिति और (४) हिन्दुओं का वर्चस्व।

अनुकूल स्थिति के स्वरूप

एक राष्ट्र का क़ब्ज़ा दूसरे राष्ट्र पर तभी पक्का समझा जा सकता है कि जब विजेता लोग विजित लोगों के मनों को जीत लें। यह बहुधा दो प्रकार से सम्भव हो सकता है। एक तो अच्छा शासन करके, और दूसरे अपनी सभ्यता को उन्हें देकर अपने समाज में उन्हें पूरी तौर से शामिल कर लेने से। परन्तु यह याद

मुसलमानों का शासन

रखना चाहिए कि इन दोनों का सम्बन्ध एक-दूसरे से बहुत अधिक है। मुसलमानों का शासन हिन्दुओं के लिए क्वचित ही अच्छा रहा। मुसलमानों में मजहबी जोश बहुत था और बहुतेरे शासक तथा उनके अधिकारी अपने शासन और समस्त कार्यों में यह दिखलाया करते थे कि मुसलमानों का धर्म और उनके रस्म-रिवाज हिन्दुओं के धार्मिक विचार और आचार से इतने भिन्न हैं कि उन दोनों का सामाजिक मेल-जोल कभी सम्भव नहीं जान पड़ता; और जबतक मुसलमान शासक अपना शासन-कार्य अपने धार्मिक आचार-विचार के अनुसार करते रहे तबतक उनका राज्य हिन्दुओं की दृष्टि से कभी भी अच्छा न हो सका और इसलिए ऐसे शासक अपने कार्यों से प्रजा के मन को कभी भी न जीत सके।

मुसलमानों की सभ्यता भी ऐसी न रही की जिसका हिंदुओं के मन पर अच्छा प्रभाव पड़ सके। जहाँ कहीं मुसलमानों की संख्या अधिक रही और उनका ज़ोर अच्छा चल सका, वहाँ उन्होंने लोगों पर अपने कुछ आचार-विचार बरबस लाद दिये। परन्तु जहाँ उनकी संख्या बहुत न रही और उनका ज़ोर न चल सका, वहाँ वे यह काम न कर सके; उलटे उन्हें ही स्वयं हिन्दुओं की कई बातें माननी पड़ीं। उदाहरणार्थ उत्तर-हिन्दुस्थान में सरकारी भाषा फ़ारसी रही, परन्तु दक्षिण-हिन्दुस्थान में लोगों की ही भाषा को सरकारी काम-काज में स्थान मिला। उत्तर-हिन्दुस्थान में बहुतेरे सरकारी कर्मचारी मुसलमान थे, पर दक्षिण में अधिकांश कर्मचारी हिन्दू ही रहे। इन दोनों बातों में यहाँ भी पहले-पहल मुसलमान शासकों ने उत्तर का अनुकरण करना चाहा, पर वे

मुसल्मानों की सभ्यता

इसमें विफल हुए और उन्हें नवीन परिस्थिति के अनुकूल ही काम करना पड़ा।

मुसलमानों की विजय दक्षिण में पूरी न हो सकी। इसका बड़ा भारी कारण हम प्रारम्भ में बतला चुके हैं। दक्षिण के पहाड़ी स्वरूप की ओर दृष्टि आकर्षित करके हम यह दिखा चुके हैं कि ऐसे लोगों का पूरी तौर से सदैव के लिए स्वतंत्रता को भूल जाना सम्भव न था। यही कारण है कि पहाड़ी भागों में कभी भी मुसलमानी सत्ता अच्छी तरह न जमी और मुसलमान शासकों ने उन भागों में अपनी सत्ता पूरी तौर से स्थापित करने का विशेष प्रयत्न भी नहीं किया। इसी कारण जब दादाजी कोंडदेव और शिवाजी पूना में आये तब उन्हें मावलों में शान्ति स्थापित करनी पड़ी, और इस कार्य में बीजापुर का दरबार विशेष आक्षेप भी न कर सका। जब कभी शिवाजी के कार्यों की शिकायत बीजापुर को पहुँच जाती और शिवाजी से कैफ़ियत तलब की जाती, तब वह यही उत्तर देता कि मैं केवल बाग़ी लोगों का प्रबन्ध कर रहा हूँ। इस बहाने उसने पहाड़ी भागों में स्वराज्य-स्थापना के प्रारम्भिक कार्य किये।

मुसलमान दक्षिण के लोगों को कभी भी पूरी तौर से न जान सके

महाराष्ट्रियों की स्वातंत्र्य-भावना को जागृत रखने का कार्य वहाँ के सन्त-मण्डल ने किया। ज्ञानेश्वर के समय से लगाकर शिवाजी के समय तक महाराष्ट्र में अनेक सन्त हुए। रामानुज के समय से भक्ति-मार्ग का ज़ोर धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा था। इसने दक्षिण में भी तेरहवीं सदी से ज़ोर पकड़ा। इसके पहले

धार्मिक जागृति और स्वातंत्र्य-भावना

ईश-प्राप्ति के जो मार्ग प्रचलित थे, वे साधारण लोगों को आकर्षक नहीं जान पड़ते थे। ज्ञान-मार्ग सदैव थोड़े लोगों के लिए हो सकता है। सब ही उसका अनुसरण नहीं कर सकते। कर्मठ-मार्ग में कुछ बड़े भारी दोष हैं। पहले तो ऊँच-नीच का भाव उसमें बहुत ज्यादा है। बहुतेरे धार्मिक आचार उच्च वर्ग के लिए बताये हैं, नीच वर्गों को शास्त्रों ने उनसे वंचित कर दिया है। इसलिए यह मार्ग साधारण लोगों को कभी भी ठीक न जँचा। इसमें एक दोष यह भी है कि कुछ आवश्यक द्रव्य हुए बिना इस मार्ग का अनुसरण अच्छी तरह नहीं हो सकता। इन्हीं दो कारणों से बहुधा इसके विरुद्ध समय-समय पर आन्दोलन हुआ है। परन्तु उपर्युक्त दोनों मार्गों के दोष भक्ति-मार्ग में नहीं हैं। इसके लिए न तो विशेष ज्ञान की आवश्यकता है, और न विशेष द्रव्य की। भक्ति-मार्ग में न तो कोई ऊँचा है, और न कोई नीचा; सब समान हैं। इसीलिए समय-समय पर कर्मठों के विरुद्ध आन्दोलन हुआ। महाराष्ट्र में जो अनेक संत हुए, उनमें से कई ब्राह्मण न थे, और कुछ तो बिलकुल नीची जाति के थे। मुख्य संतों के नाम ये हैं—(१) पुंडलीक, (२) मुकुन्दराज, (३) चाँगदेव, (४) निवृत्तिनाथ, (५) ज्ञानदेव, (६) सोपानदेव, (७) मुक्ताबाई, (८) नामदेव, (९) गोरा, (१०) चोखामेला, (११) रोहिदास, (१२) नरहरि, (१३) कूर्मदास, (१४) दामाजी पंत, (१५) एकनाथ, (१६) जनार्दन स्वामी, (१७) मृत्युञ्जय, (१८) सरस्वती गंगाधर, (१९) मुधेश चांगा, (२०) महालिंगदास, (२१) त्रिम्बक स्वामी, (२२) दासो-पंत, (२३) मुद्गल, (२४) विष्णुदास नामा, (२५) नामा-

पाठक केन्दूरकर, (२६) रंगनाथ स्वामी मोगरेकर, (२७) निरंजन पंढरपूरकर, (२८) तुकाराम, (२९) रामदास, (३०) आकाबाई, (३१) वेणूबाई, (३२) विट्ठल कवि बीड़कर (३३) उद्धव गोसाई, (३४) रंगनाथ स्वामी, (३५) केशव स्वामी, (३६) आनन्दमूर्ति ब्रह्मनालकर, (३७) मुक्तेश्वर, (३८) शिवराम स्वामी, (३९) नागेश मिंगारकर, (४०) देवदास देवीदास, (४१) बोधले बाबा, (४२) संतोबा, (४३) शेख मुहम्मद, (४४) वामन पंडित, और (४५) अवचित्त-सुत काशी। ये सिर्फ़ सत्रहवीं सदी के अन्त तक के नाम हैं। इनमें नाम-देव दर्जी था, गोरा कुम्हार था, चोखामेला महार था, रोहिदास चमार था, नरहरि सुनार था, शेख मुहम्मद मुसलमान था, तुकाराम मराठा क्षत्रिय था और व्यापार-धन्धा करने के कारण बानी कहलाता था। इनमें से कुछ ने जाति-भेद के विरुद्ध भी प्रयत्न किया है। तेरहवीं सदी में जो मानभाव-पन्थ पैदा हुआ, वह जाति-भेद मानता ही न था। वामन पण्डित जैसे संस्कृत के बड़े भारी पण्डित ने यह स्पष्ट लिख रक्खा है कि वेद-मंत्र का अधिकार सबको है। ऊपर हमने जो अब्राह्मण सन्त गिनाये हैं, उनमें कई के अनुयायी-वर्ग में ब्राह्मण भी शामिल थे। इसलिए यह तो बेखटके कह सकते हैं कि इस नवीन धर्म-मार्ग ने समाज में भिन्नता के स्थान में थोड़ी-बहुत एकता अवश्य स्थापित की होगी। यह मार्ग ही ऐसा है कि इसमें उच्चता या नीचता के भाव आ ही नहीं सकते। इसके सिवाय इस मार्ग ने समाज में एकता स्थापित करने का और उसे जागृत करने का अन्यरूप से भी कार्य किया है। उपर्युक्त संत-मालिका में से बहु-तेरों ने उपदेश देकर या ग्रंथ लिखकर लोगों की धार्मिक निद्रा को

तोड़ने का प्रयत्न किया है। कार्यशील जागृति-काल के बाद सुषुप्तावस्था आ ही जाती है। यह मानव-सृष्टि का सामान्य नियम है। यही बात शंकराचार्य के बाद हिन्दुस्थान में कुछ सदियों तक दीख पड़ी। सारे भारतवर्ष में भक्ति-मार्ग की लहर फैली और इस मार्ग के कई उपदेशक तथा कवि जहाँ-तहाँ हुए। यही बात महाराष्ट्र में भी हुई, पर यहाँ वह बहुत अधिक परिमाण में हुई। इस कारण धार्मिक जागृति भी यहाँ बहुत अधिक रही। ज्यों-ज्यों धार्मिक जागृति हुई, त्यों-त्यों लोगों को यह जँचने लगा कि हम अपने धार्मिक कार्य स्वतंत्रता-पूर्वक नहीं कर सकते। इस अनुभव के साथ उन्होंने जैसे-जैसे मुसलमानी-शासन के ख़िलाफ़ अपनी आवाज़ उठानी शुरू की, वैसे-वैसे स्वराज्य की आवश्यकता भी उन्हें प्रतीत होने लगी। महालिंगदास सोलहवीं सदी में हुआ। म्लेच्छ-सेवा करने के विषय में उसने ब्राह्मणों का बड़ा धिक्कार किया है, और वर्णाश्रम-धर्म के पालन पर ज़ोर देकर स्वदेश और स्वधर्म का अभिमान उसने व्यक्त किया है। त्रिम्बक स्वामी ने मराठी भाषा का बहुत अभिमान दिखलाया है। मुद्गल कवि ने जो रामायण लिखी है, उसका युद्ध-काण्ड इतना वरिश्री-पूर्ण है कि शिवाजी के प्रत्येक क़िले में वह पढ़ा जाता था। अवचित-सुत काशी ने अपने 'द्रौपदी-स्वयंवर' नामक ग्रंथ में उत्कट स्वदेशाभिमान और स्वदेश-प्रेम दिखलाया है। ऐसी अवस्था में यह कहना किसी भी प्रकार उचित नहीं दीख पड़ता कि इन साधु-संतों ने लोक-जागृति का कुछ भी कार्य नहीं किया। उनके उपदेश, कीर्तन, भजन आदि के समय सैकड़ों लोग एकत्र हुआ करते थे। इसलिए उनकी बातों का लोगों के मन पर प्रभाव पड़े बिना न रहा

होगा। इस प्रभाव का एक प्रमाण यह है कि कर्मठ लोग भी थोड़े-बहुत जाग उठे, और उन्होंने नये-नये ग्रंथ बनाकर अथवा पुराने ग्रंथों पर टीका-टिप्पणी लिखकर अपने मार्ग के प्रचार का प्रयत्न किया। परन्तु भक्ति-मार्ग ने जो एक बार सिर उठाया, वह फिर कभी न दबा। उसकी सफलता के कुछ कारण ऊपर बता ही चुके हैं। परन्तु एक भारी कारण यह भी था कि उन्होंने जो कुछ लिखा और कहा, वह सब लोगों की बोली में। ज्ञान-मार्गों का बहुतेरा साहित्य और कर्म-मार्गों का बहुतेरा कर्म-साहित्य संस्कृत-भाषा में था। परन्तु भक्ति-मार्ग के बहुतेरे ग्रंथ और उपदेश लोगों की बोली में होने के कारण उनसे अधिक लोग लाभ उठा सके और इस कारण अधिक लोगों ने इस मार्ग का अनुसरण किया।

परन्तु इन संतों से बहुत अधिक कार्य अकेले रामदास स्वामी ने किया। इनका जन्म सन् १६०८ में हुआ था और इनकी मृत्यु शिवाजी के दो वर्ष बाद हुई। यह आजन्म ब्रह्मचारी रहे। राम के परम-भक्त थे और स्थान-स्थान घूमा करते थे।

रामदास स्वामी का कार्य

इन्होंने देश की स्थिति को अच्छी तरह जाँच-समझ लिया था और इस बात को बहुत अधिक अनुभव किया था कि स्वराज्य के सिवाय धर्माचरण ठीक रीति से नहीं हो सकता। इन्होंने स्थान-स्थान पर "महाराष्ट्र-धर्म" का उपदेश किया। इसमें कदाचित चार बातें सम्मिलित थीं। देवशास्त्राचार, देशाचार, कुलाचार और जात्याचार। इस महाराष्ट्र-धर्म का आचरण महाराष्ट्र में महाराष्ट्रियों का राज्य हुए सिवा नहीं हो सकता था। इनके तमाम ग्रंथों से यही दीख पड़ता है कि इन्होंने लोगों के स्वधर्म

और स्वदेश के अभिमान को बहुत अधिक जागृत किया। इनके इस सम्बन्ध के उपदेशों का सार "मराठा तेवढ़ा मिलवावा, महाराष्ट्र-धर्म वाढ़वावा" में भरा है। दासबोध ※ आदि ग्रन्थों में इस बात की पुकार इन्होंने मचाई ही है। पर ऐसा जान पड़ता है कि समय-समय पर पर राज्य के विरुद्ध अपनी आवाज़ छोटी-छोटी स्वतंत्र रचनाओं में भी उठाई है। 'परचक्र-निरूपण' पर एक रचना और 'आसमानी सुलतानी' पर तीन रचनायें इनकी मिली हैं। उनका सार यह है कि सारे देश का धन-द्रव्य चला गया, अकाल पड़ने लगे, लूट-मार होने लगी, लोग मरने लगे और गाँव उजड़ गये; डकैती, चोरी और लड़ाई-झगड़े मन-माने होने लगे, पर-चक्र आया और हज़ारों जीव मारे गये; दुष्टों ने नाक-कान काटे, स्त्रियों को भ्रष्ट किया और लोगों को बाँधकर समुद्र में फेंक दिया; चोरों ने सौदागरों का नाश किया और काफ़िलों को लूटा; मुसलमानों ने गुर्जरिणियों और ब्राह्मणियों को पतित किया, कई स्त्रियों को जहाज़ पर ले गये, कई स्त्रियों को दूसरे देशों में गुलाम बनाकर बेच डाला और सैकड़ों स्त्रियाँ बड़ी बुरी तरह से मर गईं। इस प्रकार के उपदेश का लोगों के मन पर क्या परिणाम हुआ होगा, यह स्पष्ट ही है। तथापि यह स्मरण रखना चाहिए कि रामदास स्वामी का यह कार्य शिवाजी के कार्यारम्भ के बहुत पहले से स्वतंत्र रीति से हो रहा था। उस समय के एक उपलब्ध पत्र से यह जान पड़ता है कि सन् १६५८ तक रामदास स्वामी और शिवाजी का परिचय न हुआ था। ‡

※ इसका हिन्दी अनुवाद पूना के चित्रशाला-प्रेस से निकल चुका है।

‡ इस बात का अधिक विचार हमने एक परिशिष्ट में किया है।

उनका परिचय सम्भवतः इसीके बाद हुआ होगा। रामदास स्वामी ने ही जो महाराष्ट्र में स्वराज्य और महाराष्ट्र-धर्म की अधिक पुकार मचाई, उसका कारण यही हो सकता है कि उनके समय में मुसलमानों के धार्मिक अत्याचार बहुत बढ़ गये थे। शिवाजी के विषय में यह कथा प्रचलित ही है कि एक कसाई को गाय मारते देख बालपन में ही उसने उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। इस समय मंदिरों को गिराना, स्त्रियों पर बलात्कार करना, पुरुषों और स्त्रियों को पकड़ कर जबरदस्ती मुसलमान बनाना और धार्मिक कार्यों में बाधा डालना मुसलमानों ने अधिक शुरू कर दिया था। इसलिए धर्म की पुकार मचना बिलकुल स्वाभाविक था। अतः पर-राज्य में स्वधर्माचार की सम्भावना न देख मुसलमानी शासन के विरुद्ध आन्दोलन शुरू हो गया। रामदास स्वामी ने सात-आठसौ से भी ऊपर मठ स्थापित किये। इन मठों के द्वारा स्वधर्माचरण के लिए स्वराज्य की आवश्यकता का उपदेश लोगों में कितना फैला होगा, यह हम सरलता से जान सकते हैं। फिर यदि यह स्मरण रक्खें कि रामदास स्वामी हमेशा यहाँ-वहाँ घूमते और उपदेश देते रहे, तो हम उनके कार्य के विस्तार की कुछ कल्पना कर सकते हैं।

जनता में स्वराज्य की कल्पना होने का एक प्रमाण

इतने पर भी यदि किसी को यह शंका हो कि शिवाजी के कार्य का आधार कोई सार्वजनिक कल्पना, विचार या आन्दोलन न था, तो उसे हम "जेधे करीना" के निम्नलिखित वाक्य पेश करते हैं—"आम्ही स्वामीच्या पायाशी ईमान धरुन वतनास देखील पाणी सोडिले. आम्ही व आपले लोक देखील राजश्री

स्वामी पुढे खस्त होवे ऐसा आमचा दृढ़ विचार आहे. तुमचा मुद्दा काय तो बोलणें. मुसलमान बेईमान आहे. कार्य जालिया वरीनस्ते निमित्य ठेऊन नाश करील. हे मऱ्हाष्ट राज्य आहे. अवधियानी हिम्मत धरुन, जमाव घेऊन, राजश्री स्वामी संनिध राहोन एक-निष्टे ने सेवा करावी 'आणि' ऐशा हिम्मतीच्या गोष्टी सांगितल्या तेंव्हा अवधे देशमुख बोलले कि तुमचा विचार तोच आमचा विचार इमान पुरस्कर आहे।" ये वाक्य अफ़ज़लखाँ के आक्रमण के बाद कार्य-नीति की चर्चा के समय कहे गये हैं। इसमें महाराष्ट्र राज्य शब्द स्पष्टतया आये हैं। यदि स्वतंत्र राज्य की स्थापना की कल्पना अकेले शिवाजी की होती तो उस समय उपर्युक्त शब्दों का उपयोग न होता और न लोगों ने सर्व-त्याग की तैयारी ही दिखलाई होती। इसी भावना से इन शब्दों का उपयोग इसके बाद भी कई बार हुआ दीख पड़ता है। अतएव यह मानना ही होगा कि महाराष्ट्र राज्य की कल्पना लोगों में सर्वत्र प्रचलित हो चुकी थी और जिस किसी ने थोड़ा-बहुत इतिहास पढ़ा है उसे यह कहना ही होगा कि बिना दीर्घ-कालीन आन्दोलन के ऐसी कल्पना का प्रचार लोगों में नहीं हो सकता। वास्तविक बात यह है कि मुसलमानी राज्य होने पर भी लोगों में स्वराज्य की कल्पना बनी ही रही; ज्यों-ज्यों मुसलमानों ने अधिकाधिक अत्याचार किये, त्यों-त्यों इस कल्पना ने अधिकाधिक ज़ोर पकड़ा। अन्त में रामदास स्वामी के समय स्वराज्य और स्वधर्म की पुकार इतनी अधिक मच गई कि उस समय स्वधर्म के लिए स्वराज्य की स्थापना सम्भव हो सकी।

अबतक हमने स्वराज्य-स्थापना की अनुकूल स्थितियों की

मुख्य-मुख्य बातों का विचार किया। परन्तु इनके सिवा कुछ और बातें भी इस कार्य के लिए अनुकूल रहीं।

अन्य अनुकूल बातें

हम बतला ही चुके हैं कि मुसलमानी राज्य में बहुतेरे कर्मचारी हिन्दू ही थे। प्रारम्भ में तो उन्हें ऊँचे पद न दिये जाते थे, परन्तु धीरे-धीरे उन्हें भी बड़े-बड़े अधिकार मिलने लगे और छोटी-बड़ी जागीरें भी वे पाने लगे। १६ वीं सदी के अन्त में मराठे सरदारों के कई घराने दक्षिण में महत्व-पूर्ण हो गये। उनमें से कुछ के नाम ये हैं—शिरके, घाटगे, घोरपड़े, मोहिते, महाड़िक, मोरे, निम्बालकर, जाधव और भोंसले। इन घरानों ने अनेक युद्धों में भाग लिया था, बहुत-से पराक्रम के कार्य किये थे, कई राजाओं के उत्थान और पतन के ये कारण हुए थे और कई बार छोटे-बड़े मंत्रियों का भी काम किया था; इसलिए जो कुछ हम शाहजी के सम्बन्ध में कह चुके हैं, वह इन घरानों के लोगों पर भी लागू होता है। एक बार स्वतंत्र अधिकार चलाने का अनुभव पाने पर स्वतंत्र राज्य स्थापित करने की इच्छा पैदा होना बिलकुल स्वाभाविक ही है। बहमनी-राज्य के पाँच टुकड़ों में से शिवाजी के समय तक केवल दो ही बचे थे और इन दोनों के बहुतेरे शासन-सूत्र हिन्दू सरदारों के हाथ में आ चुके थे, मुरार जगदेव ने आदिलशाही में पच्चीस वर्ष तक मुख्य प्रधान का काम किया। इसी प्रकार मुरारराव, जगदेवराव, रायराव, कदमराव, मदन पंत आदि सरदारों ने कुतुबशाही में बड़े-बड़े काम किये थे। इसलिए एक दृष्टि से कह सकते हैं कि हिन्दुओं का राज्य थोड़ा-बहुत इस समय स्थापित हो ही चुका था। जहाँ स्वतंत्रता की भावना पहले से

चनी हो, समय-समय पर उसका परिपोषण हुआ हो, और उसका कुछ दृश्य-रूप दीख पड़ा हो, वहाँ थोड़ा भी धार्मिक या राजकीय अत्याचार सहन होना सम्भव नहीं है। शिवाजी के जन्म-काल के समय मुसलमानों ने जो धार्मिक और राजकीय अत्याचार हिंदुओं पर किये, उसकी प्रतिक्रिया भी उस समय तुरन्त ही दीख पड़ी। इसका एक उदाहरण यह है कि बीजापुर ने जब कर्नाटक के हिन्दू राजाओं को नष्ट करके वहाँ मुसलमान-धर्म के प्रचार का विचार किया, तब शाहजी ने इन हिन्दू राजाओं को बचाने का भरकस प्रयत्न किया। सारांश यह है कि उस समय की राजकीय स्थिति भी स्वराज्य-स्थापना के अनुकूल थी।

इसपर प्रश्न हो सकता है कि फिर शिवाजी को किस बात का श्रेय दिया जाय? यदि सारी परिस्थिति अनुकूल थी, तो शिवाजी ने ऐसा कौन-सा बड़ा काम किया? इसका उत्तर यह है कि शिवाजी अपने काल का प्रतिनिधि था, उस समय की कल्पनाओं और भावनाओं से वह रँगा हुआ था। स्वधर्म, स्वदेश और स्वजन के लिए उसमें सप्रेम अभिमान था। कार्य के लिए किन-किन साधनों का किस-किस ढंग से उपयोग किया जाय, यह वह अच्छी तरह जानता था। साधारण लोगों में उसने अपने को शामिल कर लिया था। स्वदेश और स्वधर्म के लिए अपनी जान और अपना माल देने के लिए सदैव तैयार रहता था और सब प्राप्य सामग्री का उसने उचित उपयोग करके स्वराज्य की स्थापना कर दिखलाई। स्वराज-स्थापना की कल्पना कदाचित कुछ अन्य लोगों के मस्तिष्क में भी आई होगी, पर अकेले शिवाजी

शिवाजी के कार्य की विशेषता

ने इस कार्य का भार अपने सिर पर लेकर सारे संकटों का सामना करते हुए उसे ठिकाने पहुँचा दिया; यही शिवाजी की विशेषता है।

७

स्वराज्य-स्थापना का प्रारम्भ

स्वराज्य-स्थापना का प्रारम्भिक कार्य

शिवाजी ने स्वराज्य-स्थापना की तैयारी किस प्रकार की, यह पहले बतला चुके हैं। परन्तु उसने ठीक किस समय और किस कार्य से उसका श्रीगणेश किया, इस सम्बन्ध में थोड़ा मतभेद है। शिवभारत-ग्रंथ तथा अन्य कई क़ाग़ज़-पत्रों से ऐसा जान पड़ता है कि शिवाजी के कार्य के प्रारम्भ का साल सन् १६-४५ समझा जाता है। सम्भवतः सबसे प्रथम कार्य दादाजी कोंड-देव के जीते-जी शुरू हुआ, और वह था खड़ेबारे में राजगढ़ नामक क़िला बाँधने का काम। दादाजी कोण्डदेव की मृत्यु सन् १६४७ में हुई। इस समय कर्मचारियों ने नये परवाने माँगे। इसपर शिवाजी का हुक्म निकला कि पहले की परिपाटी ही जारी रहेगी। इस प्रकार शिवाजी ने अपनी जागीर में शान्ति रखने का प्रयत्न किया। बखरों से यह जान पड़ता है कि सन् १६४६ ईस्वी में

क़िलेदार को मिलाकर शिवाजी ने तोरणा नाम का क़िला ले लिया और इसका नाम प्रचंडगढ़ रक्खा। यह पूना से नैऋत्य की ओर बीस मील पर है। इसकी जहाँ-तहाँ मरम्मत करके मावलों की सेना इसमें रक्खी गई। कहते हैं कि इस क़िले में एक जगह शिवाजी को बहुत-सा गड़ा हुआ धन मिला, और उसने घोषित कर दिया कि भवानी देवी ने प्रसन्न होकर यह द्रव्य मेरे काम के लिए दिया है। इस द्रव्य से उसने बारूद-गोला आदि सामान ख़रीदकर क़िले की रक्षा का प्रबन्ध कर दिया। यह स्मरण रखना चाहिए कि शिव-भारत जैसे प्रामाणिक ग्रंथ में अथवा जेधे-शकावली नामक प्रामाणिक शकावली में इस क़िले को लेने की घटना का उल्लेख नहीं है। शाहजी की दूसरी यानी सूपे की जागीर की देख-भाल उसकी दूसरी पत्नी के भाई सम्भाजी मोहिते के हाथ में थी। शिवाजी के कार्य इस पुरुष को पसन्द न थे, और न यह उनका कहना मानता था। दादाजी कोंडदेव की मृत्यु के बाद शिवाजी ने जब इस जागीर पर भी अपना क़ब्ज़ा करना चाहा और यहाँ का हिस्सा माँगा, तो मोहिते ने उसकी कुछ भी पर्वा न की, न उसकी भेंट ही को गया। इसके पास ३०० सवारों की एक टोली थी। एक दिन, मध्य-रात्रि के समय, शिवाजी ने मावले लोगों का एक दल लेकर सम्भाजी मोहिते पर हमला कर दिया और उसे तथा उसके आदमियों को क़ैद कर लिया तथा उसकी सब चीज़ें अपने क़ब्ज़े में कर लीं। फिर शिवाजी ने उसे शाहजी के पास कर्नाटक भेज दिया। शिवाजी के इस कार्य से आसपास सब जगह उसका प्रभाव जम गया। पूना से उत्तर की ओर चाकन नाम का क़िला फिरंगोजी नरसाला नामक क़िलेदार के पास था।

पूना का रास्ता इस क़िले की पहुँच में होने के कारण शिवाजी ने क़िलेदार को किसी प्रकार अपने वश में करके क़िला अपने क़ब्ज़े में कर लिया।

कोंडाणा और पुरन्दर क़िले लिये

इन सब बातों की ख़बर शिरवल के थानेदार ने बीजापुर पहुँचाई और वहाँ के दरबार से शिवाजी के पास धमकी की चिट्ठियाँ भी आईं। परन्तु उसने विशेष झगड़े न उठाये और न कोई सख़्त कार्रवाई की। दादाजी कोण्डदेव की मृत्यु के बाद पाँच-सात महीने के भीतर ही कोण्डाणा नामक क़िला लिया और और उसका नाम सिंहगढ़ रक्खा। यह क़िला भी उसने चालाकी से लिया और उसमें प्राण-हानि न हुई। यह क़िला मावल-भाग का नाका था। इसी कारण इसे अपने हाथ में रखना शिवाजी को अत्यन्त आवश्यक जान पड़ा। परन्तु शिवाजी को शीघ्र ही यह क़िला शाहजी की क़ैद से मुक्ति की एक शर्त्त के कारण बीजापुर को वापस देना पड़ा।*

---

*बारामती और इंदापुर नामक स्थान शिवाजी की जागीर में थे, परन्तु उनके बीच का रास्ता पुरन्दर क़िले की पहुँच में था। यह क़िला नीलकंठ नाइक नामक ब्राह्मण क़िलेदार के अधीन था। इस नाइक के पिलाजी और शंकराजी नामक दो भाई थे। इन भाइयों में क़िलेदारी के लिए झगड़े होने लगे। तब उसका निर्णय करवाने के लिए वे शिवाजी के पास आये। शिवाजी सूपा जाने का बहाना करके फ़ौज लेकर पुरन्दर क़िले पर चढ़ गया और उसे अपने कब्ज़े में कर लिया। इसके बाद उन भाइयों को वतन इनाम दिये और उन्हें अपनी नौकरी में रख लिया।

इस प्रकार धीरे-धीरे शिवाजी की हिम्मत और ताक़त दोनों बढ़ने लगीं। निज़ामशाही के नष्ट होने पर कोंकण का उत्तरी-भाग बीजापुर के राजा को मिला। आदिलशाह ने उसे मुल्लाअहमद नामक सरदार को जागीर में दे दिया। उस समय आदिलशाह बहुत दिनों तक बीमार रहा, इसलिए वहाँ कुछ गड़बड़ पैदा हुई। इसके कारण मुल्लाअहमद को आदिल-शाह ने बीजापुर में बुला लिया। सूबेदार के कोंकण में न रहने के कारण वहाँ का बन्दोबस्त कुछ ढीला पड़ गया। इस मौक़े का शिवाजी ने लाभ उठाया। कोंकण से बीजापुर को इस समय जो ख़ज़ाना जा रहा था, उसपर शिवाजी ने अचानक हमला किया; और उसे अपने क़ब्ज़े में करके राजगढ़ ले गया। शीघ्र ही कांगारी, तिकोना, लोहगढ़ वग़ैरा क़िले भी उसने ले लिये और इस प्रकार उत्तर मावल को अपने क़ब्ज़े में कर लिया। उधर आवाजी सोनदेव ने फ़ौज लेकर कल्याण-भाग पर हमला कर दिया और क़िलों समेत उसे अपने अधिकार में कर लिया। शिवाजी ने उसे ही वहाँ का सूबेदार नियत किया।

उत्तर मावल पर क़ब्ज़ा

जंजीरा के कई सरदारों ने पहले ही शिवाजी को यह सन्देश भेजा था कि यदि आप कोंकण में आवें तो हम तलें और घोसाला नामक क़िले लेने में मदद करेंगे। कल्याण लेने पर शिवाजी वहाँ गया और उन क़िलों को ले लिया। वापस आते समय उसने एक से वह प्रसिद्ध तलवार ली, जिसे उसने भवानी तलवार नाम दिया। इसी चढ़ाई के समय जंजीरा के सिद्दी का रायरी

तलें, घोसाला और रायगढ़

नामक पर्वत शिवाजी ने अपने क़ब्ज़े में कर लिया। यहाँ पर इसने लिंगाना नामका मज़बूत क़िला बनाया, जो आगे चलकर रायगढ़ के नाम से मशहूर हुआ।

दक्षिण कोंकण का समुद्री किनारा जंजीरा के सिद्दी के अधिकार में था। वहाँ राजापुर नामक एक समृद्ध शहर था।

दक्षिण कोंकण पर चढ़ाई

शिवाजी यह सुन चुका था कि वहाँ के लोग सिद्दी के शासन से त्रस्त हो गये हैं। अतः उसने उसी समय राजापुर पर भी चढ़ाई कर दी और उसे लेकर उस भाग में अपना अधिकार जमा लिया। इस चढ़ाई से विजयदुर्ग, सुवर्णदुर्ग, रत्नागिरी आदि स्थान उसके क़ब्ज़े में आये।

इस प्रकार इस थोड़े से काल में उसने महाराष्ट्र का बहुत-सा भाग अपने क़ब्ज़े में कर लिया। जो-जो भाग क़ब्ज़े में आते,

मुसलमानों को नौकरी

उनका बन्दोबस्त भी वह तुरन्त करता था। भिन्न-भिन्न कामों के लिए चुन-चुन कर मनुष्य नियत करता और अपनी फ़ौज बढ़ाता था। उसका प्रभाव चारों ओर जम गया और दूसरे लोग उसकी नौकरी में आने लगे। जिस १६४८ के साल उसने सिंहगढ़ आदि क़िले और प्रदेश जीते, उसी साल बीजापुर के पाँच-सात सौ मुसलमान शिवाजी के पास नौकरी करने आये। उन्हें नौकरी में रखने की इच्छा शिवाजी के मन में न थी, परन्तु गोमाजी नाइक नामक उसके एक कर्मचारी ने कहा कि "ये लोग आपका नाम सुनकर आये हैं, इसलिए इन्हें निराश करना ठीक नहीं। यदि आप यह सोचें कि हम केवल हिन्दुओं का ही संग्रह

करेंगे और दूसरों की आवश्यकता न रक्खेंगे, तो राज्य प्राप्त न होगा। जिसे राज्य प्राप्त करना है, उसे चाहिए कि वह अठारह वर्ण और चारों जातियों के लोगों को अपने-अपने धर्म के अनुसार चलने की स्वतंत्रता देकर उनका संग्रह करे।" इस सलाह के अनुसार शिवाजी ने उन मुसलमानों को अपनी नौकरी में रख लिया। परन्तु इसी साल शाहजी की क़ैद की घटना ने शिवाजी के कार्य में विघ्न कर दिया। इसलिए अब हमें यह देखना चाहिए कि शाहजी कैसे क़ैद में पड़ा और पिता के जीवन की इस घटना का पुत्र के कार्यों पर क्या परिणाम हुआ।

शाहजी की क़ैद

विजयनगर के राजवंश का श्रीरंगराज नामक राजा महत्वाकांक्षी था। उसकी इच्छा थी कि राक्षस-तागड़ी के युद्ध के बाद अपने घराने का जो ऐश्वर्य नष्ट हुआ उसे फिर से स्थापित करूँ। इस विचार से उसने जिंजी, तंजौर और मदुरा के राजाओं पर चढ़ाई करके उन्हें रास्ते पर लाने का प्रयत्न किया। परन्तु जिंजी और मदुरा के राजाओं ने उसका आधिपत्य मानने की इच्छा न होने के कारण कुतुबशाह की मदद माँगी। इसपर कुतुबशाह ने श्रीरंग के राज्य पर चढ़ाई कर दी। तब उसे माण्डलिकों से सहायता लेनी पड़ी। अब कुतुबशाह की सेना ने उसके माण्डलिकों पर ही चढ़ाई का विचार करके जिंजी के क़िले को घेर लिया। तब मदुरा के राजा को बड़ा सोच पड़ा। क्योंकि यह साफ़ दिखाई पड़ा कि जिंजी ले लेने पर वह सेना मदुरा पर ही चढ़ाई करेगी। तंजोर के राजा ने तो डर के मारे गोलकुंडा वालों से सन्धि कर ली। इससे मदुरा के राजा की कठिनाई और भी बढ़ गई। उसने बीजापुर-

दरबार से सहायता माँगी। वहाँ से मुस्तफ़ाख़ाँ नामक सेनापति गोलकुंडा वालों से लड़कर जिंजी का घेरा उठवाने के लिए भेजा गया, परन्तु उसने गोलकुंडा वालों से लड़ने के बजाय संधि कर ली। संधि में यह क़रार हुआ कि गोलकुंडा वाले श्रीरंग के राज्य के उत्तरी भाग को अपने अधिकार में करें और बीजापुर वाले जिंजी से लगाकर दक्षिण की ओर के राज्यों को अपने क़ब्ज़े में कर लें। इस समय शाहजी और प्रधान सेनापति मुस्तफ़ाख़ाँ में मतभेद हुआ। इस मतभेद का कारण साफ़-साफ़ जान नहीं पड़ता, तथापि सम्भाव्य कारण यही दीख पड़ता है कि मुस्तफ़ाख़ाँ ने जो विश्वासघात का बर्ताव किया उसमें वह स्वयं शामिल न होना चाहता था। इसीलिए जिंजी के घेरे में शामिल होने से उसने इन्कार कर दिया। मुस्तफ़ाख़ाँ को तो यह भी शंका हुई कि शाहजी कहीं विरुद्ध पक्ष से न मिल जाय। इसलिए उसने आदिलशाह से उसे क़ैद करने की इजाज़त माँगी और एक दिन बड़े सवेरे उसे क़ैद कर भी लिया। यह स्मरण रखना चाहिए कि बाजी घोरपड़े नामक एक मराठे सरदार ने इस काम में मुख्य भाग लिया था। क़ैद करने के बाद शाहजी बीजापुर भेज दिया गया। सम्भवतः यह कार्य सन् १६४८ में हुआ।

वीजापुर से लड़ाई

पिता के क़ैद होने की ख़बर पाकर सम्भाजी ने बंगलोर में और शिवाजी ने पुरन्दर में अपनी-अपनी जागीरों की रक्षा करने का विचार किया। सम्भाजी पर मुस्तफ़ाख़ाँ ने फ़रादख़ाँ, तानाजी डुरे और विट्ठल गोपाल नामक सरदार भेजे; और बड़ी भारी फ़ौज फ़तेख़ाँ के सेनापतित्व में शिवाजी की जागीर पर चढ़ आई। इस फ़ौज ने

बेलसर में डेरा जमाया और वालाजी हैबतराव सरदार ने शिरवल नामक स्थान ले लिया। यह सब खबर शिवाजी के पास पहुँची, तो उसने भी लड़ाई का निश्चय किया। शिवाजी ने कावजी को सेना देकर हैबतराव से लड़ने के लिए भेजा। हैबतराव लड़ाई में मारा गया और उसकी सेना भाग गई। बेलसर में भी दोनों पक्षों का सामना हुआ, परन्तु यहाँ मराठों को पीछे हटना पड़ा। शिरवल की खबर सुन कर फ़तेखाँ को बड़ा गुस्सा आया और उसने पुरन्दर पर चढ़कर शिवाजी का सामना करने का निश्चय किया। परन्तु यहाँ उसकी हार हुई और वह समर से भाग गया। इस कारण उसकी सेना भी भाग गई। ये घटनायें सम्भवतः सन् १६४९ में हुईं।

इसी साल मुस्तफ़ाखाँ की मृत्यु हो गई और आदिलशाह ने शाहजी को कुछ शर्तों पर मुक्त करने का निश्चय किया। उसकी

शाहजी की मुक्ति

मुख्य शर्त यह थी कि शिवाजी सिंहगढ़ क़िले को और सम्भाजी बंगलोर को उसे वापस दे दें और फिर शिवाजी कोई गड़बड़ न करे, तो पुरन्दर आदि भाग शिवाजी के अधिकार में रहने दिये जावेंगे। शिवाजी सिंहगढ़ को वापस न देना चाहता था। परन्तु सोनोपत उवीर जैसे चतुर पुरुष ने यह सलाह दी कि आपको अपने पिता की मुक्ति अवश्य करानी चाहिए और बीजापुर से खुल्लमखुल्ला लड़ना ठीक न होगा, समयानुसार भेदनीति से काम लेना ही अधिक उचित होगा। इसके अनुसार शिवाजी ने सिंहगढ़ वापस दे दिया और शाहजी की मुक्ति हो गई। कुछ लोगों का मत है कि शिवाजी ने इस समय मुग़ल बादशाह शाहजहाँ की नौकरी में जाने का

डर दिखला कर शाहजी की मुक्ति करवाई। क्योंकि आदिलशाह इस समय मुग़लों से शत्रुता नहीं करना चाहता था।

जावली-विजय और चन्द्रराव मोरे का वध

इस घटना के बाद चार वर्ष तक शिवाजी के कार्यों का कुछ पता नहीं लगता। सम्भवत: वह आदिलशाह से किये हुए वादे के अनुसार चुपचाप बैठा रहा, ताकि शाहजी बीजापुर में किसी प्रकार की आपत्ति में न पड़ने पाय। परन्तु सन् १६५३ में कर्नाटक में बहुत-से झगड़े उठ खड़े हुए और उनका बन्दोबस्त करने के लिए आदिलशाह ने शाहजी को भेज दिया। इसलिए अब शिवाजी अपना कार्यारम्भ करने के लिए स्वतंत्र हो गया। पहला झगड़ा जो उठ खड़ा हुआ वह जावली के मोरे से था। उस साल पहले तो दोनों में काफ़ी बनती थी और शिवाजी ने चन्द्रराव मोरे को सहायता भी दी थी, परन्तु सन् १६५१ में वीरवाड़ी के पटेल से झगड़ा हुआ तो वह पटेल आश्रय के लिए शिवाजी के पास आया। शिवाजी ने उसे आश्रय ही नहीं दिया बल्कि मीरासी भी दी। इसके विपरीत शिवाजी के प्रदेश के एक अपराधी को चन्द्रराव ने आश्रय देकर रख लिया। इस प्रकार दोनों में वैमनस्य पैदा हुआ और वह बढ़ता ही गया। अन्त में मोरे का बन्दोबस्त करने का शिवाजी ने निश्चय किया। सन् १६५५ में उसने जावली पर चढ़ाई कर दी। तब चन्द्रराव मोरे रायरी को भाग गया। वहाँ सिलीमकर नामक मनुष्य की मध्यस्थता में शिवाजी और चन्द्रराव की भेंट हुई और चन्द्रराव अपने दो लड़कों समेत शिवाजी के आश्रय में आ गया। परन्तु इसके बाद पिता-पुत्रों ने न जाने क्या अक्षम्य

अपराध किया, जिसपर शिवाजी ने उन्हें मार डाला। चन्द्रराव का भाई प्रतापराव बीजापुर को भाग गया, परन्तु वहाँ उसे किसी ने दाद न दी, क्योंकि आदिलशाह इस समय आसन्नमरण था और इस कारण बीजापुर में जहाँ-तहाँ गड़बड़ मची हुई थी।

शिवाजी और औरंगज़ेब का प्रथम सम्बन्ध

अब हमें शिवाजी और औरंगज़ेब से जो सम्बन्ध हुआ, उसका वर्णन करना चाहिए। उत्तर की ओर उसकी जागीर से मुग़लों का राज्य लगा हुआ था और इस समय औरंगज़ेब दक्षिण का सूबेदार था। वह औरंगाबाद में रहता था। किसी-न-किसी बहाने गोलकुंडा और बीजापुर से झगड़ा करके वह उन राज्यों से लड़ाई छेड़ता और उन्हें जीतकर मुग़ल-साम्राज्य में मिलाना चाहता था। इस इच्छा के अनुसार उसने गोलकुण्डा से सन् १६५६ में युद्ध ठान दिया और उसे माण्डलिक बना लिया। इसके सिवा गोलकुण्डा के प्रसिद्ध सरदार मीरजुमला को किसी प्रकार बहकाकर अपने पक्ष में कर लिया। कर्नाटक में शाहजी और मीरजुमला के कई झगड़े पहले ही हो चुके थे, इसलिए शिवाजी को यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि मैं अब किस नीति का अवलम्बन करूँ। ऊपर बता ही चुके हैं कि इस समय बीजापुर का आदिलशाह मरणासन्न था। अतएव औरंगज़ेब ने बीजापुर के कामों में हस्तक्षेप करना शुरू किया। यह सब देखकर शिवाजी ने अपने प्रदेश का बन्दोवस्त किया और औरंगज़ेब के मन का पता लेना चाहा। इस विचार से उसने औरंगज़ेब के पास अपना दूत भेजा। औरंगज़ेब ने उससे कहा कि शिवाजी यदि हमारे

कामों में शामिल होगा तो उसका फ़ायदा ही होगा। मौक़ा देख-कर शिवाजी ने औरंगज़ेब से बातचीत जारी रक्खी। उधर बीजा-पुर-दरबार से भी वह पत्र-व्यवहार करने लगा।

बीजापुर के कार्य में औरंगज़ेब का हस्तक्षेप

सन् १६५६ में महमूद आदिलशाह मर गया और उसके बाद अली नाम का १८ वर्ष का लड़का बीजापुर की गद्दी पर बैठा। इससे वहाँ बड़ी गड़बड़ मची। इस गड़बड़ को औरंगज़ेब ने और बढ़ा दिया। उसने कहा कि अली महमूदशाह का औरस लड़का न होने से गद्दी का वारिस नहीं है; फिर उसने गद्दी पर बैठने के पहले दिल्ली-दरबार की मंज़ूरी नहीं ली है। इसी बहाने बीजापुर चढ़ाई करने का निश्चय करके उसने शाहजहाँ से उसकी मंज़ूरी माँगी। इधर उसने सेना की तैयारी शुरू कर दी और बीजापुर के सरदारों को भिन्न-भिन्न प्रलोभन देकर अपने पक्ष में मिला लिया। इस प्रकार वहाँ दो पक्ष हो गये और वे आपस में झगड़ने लगे। इसी समय कर्नाटक में जहाँ-तहाँ बलवे हो रहे थे और उन्हें शान्त करने में शाहजी लगा हुआ था। बीजापुर के कुछ सरदारों ने इस समय शाहजी की जागीर में हस्तक्षेप करना चाहा, इसलिए उसने उन्हें लिख भेजा कि हमारे कामों में यदि हस्तक्षेप किया तो ठीक न होगा। हमारा आदर रखते हुए यदि हमसे नौकरी लेंगे तो हम करेंगे, नहीं तो हमें छुट्टी दे दो; हम कहीं भी दूसरी जगह जाकर नौकरी करके पेट भरेंगे।

इधर इसी प्रकार शिवाजी को भी बीजापुर के विरुद्ध शिका-

यत करनी पड़ी। उसकी हक़ीक़त यह है। ऊपर हम बता ही चुके हैं कि बीजापुर पर चढ़ाई करने के लिए औरंगज़ेब ने शाहजहाँ से मंज़ूरी

मुग़लों से अनबन

माँगी। शाहजहाँ ने मंज़ूरी देते समय यह लिखा कि हो सके तो बीजापुर के पूरे राज्य को जीत कर शामिल कर लो, लेकिन अगर यह न हो सके तो सन् १६३६ की संधि के अनुसार बीजापुर को जितना प्रदेश दिया था वह तो ज़रूर वापस ले लो और यदि डेढ़ करोड़ रुपये कर देकर बीजापुर का राज्य मांडलिक होने को राज़ी हो तो उससे संधि करलो और फिर गोलकुण्डा को लेने के लिए चढ़ाई करो। इससे यह साफ़ दीख पड़ता था कि बीजापुर ने यदि मुग़लों से संधि कर ली तो भीमा और नीरा के बीच का भाग मुग़लों का हो जावेगा और वहाँ के जागीरदार और मीरासदारों के मालिक मुग़ल होंगे। यही रंग-ढंग देख शिवाजी ने दोनों पक्षों से चिट्ठी-पत्री शुरू कर दी; और इन दोनों पक्षों ने चाहा कि शिवाजी हमसे मिले। दूसरे साल तो औरंगज़ेब ने शिवाजी को अपनी ओर खींचने का बहुत अधिक प्रयत्न किया, क्योंकि इस समय औरंगज़ेब ने बीजापुर पर चढ़ाई कर दी थी। वेदर के पास दोनों पक्षों की मुठभेड़ हुई। इसमें मुग़लों को जय तो मिली, परन्तु उनके बहुत-से लोग मारे गये। अन्त में शिवाजी ने बीजापुर से ही मिलने का निश्चय किया और मुग़लों के राज्य पर चढ़ाई कर दी। यह सुनकर औरंगज़ेब गुस्से से लाल हो गया और उसने अपने अधिकारियों को सख़्त हुक्म दिया कि शिवाजी, उसके प्रदेश और लोगों को बिलकुल नष्ट कर डालो। इसके अनुसार मुग़लों ने शिवाजी का पीछा करना शुरू कर दिया। शिवाजी

मुग़लाई से निकल कर पूना वापस आया। यहाँ भी मुग़ल सेना आनेवाली थी, परन्तु दैव अनुकूल था। गर्मी के दिन समाप्त होकर बरसात लग गई और नदियाँ पानी से उमड़ उठीं। इसलिए मुग़ल सेनापति को अपनी सरहद पर चुपचाप पड़े रहना पड़ा।

बीजापुर और मुग़लों की लड़ाई

इस प्रकार मुग़ल सेना से शिवाजी को दण्ड देने का काम तुरन्त न हो सका। इधर औरंगज़ेब को एक दूसरी बात में बहुत निराश होना पड़ा। बीजापुर के साथ की लड़ाई में उसे अच्छी विजय मिली थी और वह उस राज्य को समूल नष्ट करना चाहता था, इसलिए बीजापुर के सरदारों ने सीधे दिल्ली-दरबार से बातचीत शुरू कर दी। वहाँ पर शासन-सूत्र शाहजहाँ के बड़े लड़के दारा के हाथ में थे। वह नहीं चाहता था कि औरंगज़ेब बहुत बलवान बन जाय। इसलिए बादशाह के नाम से उसने औरंगज़ेब को चिट्ठी भेजी कि इस हुक्म के देखते ही बीजापुर से युद्ध करना बन्द कर दो। इसके अनुसार औरंगज़ेब को बीजापुर से संधि करनी पड़ी। संधि की शर्तें ये थीं—बीजापुर डेढ़-करोड़ रुपये कर दे और उसके बेदर, कल्यानी और परारण्डा नामक क़िले तथा निज़ामशाही के कोंकण के क़िले और शिवाजी के क़ब्ज़े के पूना और सूपा के प्रदेश मुग़ल लें। परन्तु इस संधि के अनुसार क़िले और प्रदेशों को लेने का काम मुग़लों से न हो सका, क्योंकि औरंगज़ेब के नाम दारा के पास से आये हुए हुक्म के अनुसार औरंगज़ेब के बहुत-से सरदार अपनी फ़ौज लेकर मालवा चले गये और सेना के जाने पर बीजापुर वालों

ने संधि के अनुसार प्रदेश देने में टालमटोल करना शुरू कर दिया।

इस प्रकार बीजापुर के राज्य को नष्ट करने के काम में निराश होकर औरंगज़ेब बेदर को वापस चला आया। अब वह

आपत्ति और उसका निवारण

शिवाजी को उसके कार्यों के लिए भरपूर दण्ड देने को स्वतंत्र हो गया और बरसात के समाप्त होते ही उसने पूना-सूपा पर चढ़ाई करने का निश्चय किया। इससे शिवाजी बड़ी भारी कठिनाई में पड़ा। उसे सूझता न था कि क्या किया जाय। परन्तु दिल्ली में शाहजहाँ के सख्त बीमार होने की ख़बर दक्षिण में पहुँचते ही सारी बातें बदल गई।

पिता की बीमारी की ख़बर पहुँचने पर दक्षिण की अपेक्षा उत्तर की ओर औरंगज़ेब को अधिक ध्यान देना पड़ा। इसलिए अब वह शिवाजी से नरम बातें करने लगा। शिवाजी ने भी मौक़ा देखकर उससे जितना ऐंठते बने उतना ऐंठने का विचार किया और नम्रता का पत्र-व्यवहार जारी रक्खा। परन्तु औरंगज़ेब कुछ कम चालाक न था। इधर तो शिवाजी को लिख दिया कि सब-कुछ तुम्हारी इच्छा के अनुसार मैं कर दूँगा और उधर बीजापुर-दरबार को लिख दिया कि शिवाजी को निकाल बाहर करो! इस प्रकार औरंगज़ेब ने मुग़ल-साम्राज्य के प्रदेश को सुरक्षित रखना चाहा। इतना काम करके वह उत्तर की ओर अपने भाइयों से गद्दी के लिए झगड़ने को चला गया।

बीजापुर वालों ने जो संधि करली थी उससे शिवाजी संकट

में पड़ गया था। औरंगज़ेब के चले जाने पर बीजापुर से झगड़ा करने के लिए अब वह स्वतंत्र हो गया। सन् १६५७ और १६५८ में बीजापुर के सरदार एक दूसरे को गिराने में लगे हुए थे। इस समय मुल्ला-अहमद वहाँ का सूत्रधार था और अफ़ज़लख़ाँ उसीके मत का होने के कारण ज़ोरदार बन गया था। इस ख़ाँ का ज़ोर कम करने के विचार से शिवाजी ने कर्नाटक पर चढ़ाई कर दी और कृष्णा नदी तक लूट-मार मचा दी। तब बीजापुर-दरबार ने शिवाजी को नष्ट करने के लिए अफ़ज़लख़ाँ को भेजा।

कर्नाटक पर चढ़ाई

अफ़ज़लख़ाँ और शाहजी के बीच बहुत दिनों से खटपट चल रही थी। सन् १६५५ में कनकगिरि के राजा ने बलवा किया, इसलिए शाहजी का ज्येष्ठ पुत्र सम्भाजी उसे दबाने को गया। उस अवसर पर सम्भाजी और अफ़ज़लख़ाँ के बीच झगड़ा हुआ, और इसमें गोली लगने से सम्भाजी मर गया। इसलिए शाहजी अफ़ज़लख़ाँ पर बहुत अधिक नाराज़ था। यह ऊपर बता ही चुके हैं कि इस ख़ाँ का महत्व बीजापुर में बहुत बढ़ गया था। इसलिए अलीआदिलशाह ने जब शिवाजी पर चढ़ाई करने के लिए उससे कहा, तो उसने प्रतिज्ञा की कि शिवाजी को मैं पकड़कर आपके सामने पेश करूँगा। इस प्रतिज्ञा के अनुसार आवश्यक तो यह था कि अफ़ज़लख़ाँ शिवाजी के पूना पर चढ़ाई करता, परन्तु जावली का प्रतापराव मोरे दो-तीन वर्षों से बीजा-पुर में रहता था। उसकी इच्छा थी कि मैं चन्द्रराव का ख़िताब पाऊँ, और शिवाजी से जावली वापस लूँ। इसके सिवा जावली

शिवाजी पर अफ़ज़ल-ख़ाँ की चढ़ाई

का स्थान अच्छे मौक़े पर था। वह क़िला हाथ में रहने पर वहाँ से सह्याद्रि पर्वत और वाई के प्रदेश पर हुकूमत चलाने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती थी। इन सब बातों का विचार करके और प्रतापराव की इच्छा पूरी करने के लिए अफ़ज़लख़ाँ वाई की ओर गया। रास्ते में उसने पंढरपुर और तुलजापुर के देवस्थानों को नष्ट किया। ये सब बातें सुनकर शिवाजी जावली को आया। इसलिए उस स्थान को सरलता-पूर्वक ले लेने की कल्पना अफ़-ज़लख़ाँ को छोड़ देनी पड़ी। अब उसके सामने दो ही उपाय थे। या तो जावली पर चढ़ाई करता, या जावली वापस देने के लिए शिवाजी से बातचीत करता। उसने दूसरे मार्ग का अव-लम्बन किया और कुछ तो डाँट-डपट का और कुछ मेल-जोल का संदेश भेजा। इस संदेश में अफ़ज़लख़ाँ ने शिवाजी के छोटे-बड़े कृत्य गिना डाले थे और यह डर दिखलाने का प्रयत्न किया था कि उसके शत्रु अब एक हो रहे हैं। इसका तात्पर्य यह था कि शिवाजी अपना सब प्रदेश और क़िले देकर संधि कर ले। शिवा-जी को यह मालूम था कि अफ़ज़लख़ाँ बीजापुर में उसे यहाँ से पकड़कर ले जाने की प्रतिज्ञा करके आया है। अब जब वह संधि की बातें करने लगा तो उसमें उसे धोखेबाज़ी दीख पड़ना स्वाभाविक था। इसलिए उसके मन का पता ले लेना आवश्यक जान पड़ा। इसके लिए उसने एक तर्कीब की। उसने अफ़ज़लख़ाँ को संदेशा भेजा कि आप यदि जावली आवेंगे तो ठीक होगा। आपके माँगे हुए क़िले और जावली मैं देने को तैयार हूँ। आप आवेंगे तो मैं आपके सामने अपनी तलवार रख दूँगा। शिवाजी ने सोचा कि मेरा प्रदेश लेकर ही संधि करने का उसका विचार

हो तो खाँ भेंट के लिए न आवेगा; परन्तु यदि मुझे पकड़कर लेजाना उसका उद्देश होगा, तो भेंट का संदेश वह तुरन्त स्वीकार कर लेगा। अफ़ज़लखाँ ने भेंट की बात तुरन्त मान ली। परन्तु उसके सलाहकारों को यह बात ठीक न जँची। उन्होंने कहा—यदि शिवाजी की इच्छा वास्तव में शरण आने की हो, तो उसे ही आपके सामने आकर सिर नवाना चाहिए; इस सीधी बात को छोड़कर आपही उसके पास जावें, यह कहाँ का न्याय है? परन्तु वह तो घमण्ड से फूला हुआ था। उसने उत्तर दिया कि मुझे नज़दीक आया देखकर स्वयं यम भी डर के मारे मुझसे संधि कर लेगा; फिर शिवाजी कौन बड़ी बात है? यह कहकर वह प्रतापगढ़ की ओर चल दिया।

परस्पर की चालें

अफ़ज़लखाँ ने आकर कोयना नदी पर डेरा डाला। अब दोनों ओर के दूत आने-जाने लगे और मेल-जोल की बातें होने लगीं। शिवाजी और अफ़ज़लखाँ तो एक-दूसरे के विषय में सशंक थे, परन्तु लोगों को तो ऐसा जान पड़ा कि संधि अवश्य होगी। लोगों के ऐसा सोचने का एक भारी कारण था। खाँ के साथ आये हुए सरदारों को भेंट में देने के लिए बड़े-बड़े जवाहर वग़ैरा मोल लेना शिवाजी ने शुरू कर दिया था। परन्तु यह सब ऊपरी दिखावट थी। अफ़ज़लखाँ ने निश्चय कर लिया था कि शिवाजी ने मुझपर विश्वास किया है, इस सिलसिले में दोस्ती का बहाना करके मैं उसके पेट में गुप्त कटारी घुसेड़ दूँगा। और शिवाजी ने उसका यह कपट पहचान लिया था, इसलिए उसका फल उसे देने का उसने निश्चय कर लिया था।

भेंट के सम्बन्ध में जो तय हुआ, उसकी शर्तें ये थीं— (१) दोनों सशस्त्र आवें; (२) खाँ पालकी में बैठकर आते समय केवल दो-तीन ही सेवक लावे; (३) दोनों की रक्षा के लिए दस-दस सैनिक एक बाण की दूरी पर पीछे खड़े रहें; (४) ऐसी स्थिति में दोनों संधि की गुप्त बातचीत करें।

भेंट की शर्तें

खाँ ने वाई में पहुँचते ही शिवाजी को डराने का प्रयत्न किया और उसने समझा कि वह डर गया है। इसलिए प्रत्यक्ष भेंट के समय उसने अपने हाथ की तलवार पास के नौकर को दे दी और यह दिखलाना चाहा कि मैं निःशस्त्र हूँ। उसने सोचा कि ऐसा करने से शिवाजी निःशंक होकर भेंट के लिए बिलकुल नजदीक आवेगा और तब मैं उसके पेट में गुप्त कटारी घुसेड़ने का मौक़ा पाऊँगा। उसे केवल इसी बात का सोच था कि डरा हुआ शिवाजी नज़दीक आकर मुझसे मिलेगा या नहीं। उसे इस बात का पूरा विश्वास था कि हाथ में आने पर मैं उसे अवश्य ज़ख्मी कर डालूँगा। वह महा-घमंडी था। उसे इस बात की शंका भी न थी कि शिवाजी मेरा कपट पहचान लेगा और मेरी कटारी का वार निष्फल कर देगा, या वह उसे उलटे मुझपर ही चला देगा। अफ़ज़लखाँ ने शिवाजी से मिलते ही अपनी कटारी का वार उसपर किया; परन्तु उसके शरीर में जिरह-बख्तर था, इसलिए वह वार निष्फल हुआ। अब शिवाजी ने अपनी तलवार उसके पेट में घुसेड़ दी, और उसकी आँतें बाहर निकल आईं। इस समय शिवाजी ने जिस तलवार का उपयोग किया, वह प्रसिद्ध भवानी तलवार थी।

अफ़ज़लखाँ का वध

शिव-भारत में तो केवल इसीका उल्लेख है, परन्तु अन्य ग्रंथों में शिवाजी के पास बिचवा ‡ और वाघनख होने का भी उल्लेख है।

अफ़ज़लखाँ की मृत्यु होने पर उसके शरीर-रक्षक शिवाजी पर दौड़े, परन्तु सम्भाजी कावजी वग़ैरा मराठे वीर भी उन्हें रोकने के लिए दौड़ पड़े। इस समय जिवामहाल नामक वीर ने बहुत पराक्रम दिखलाया। अफ़ज़लखाँ के भोईलोग उसका शरीर लेकर भाग रहे थे। येसाजी कंक ने पीछा कर उन्हें रोका और खाँ का सिर काट लिया। उसे लेकर कुछ वीरों के साथ शिवाजी प्रतापगढ़ के क़िले में चला गया।

खाँ का कपट पहचान कर शिवाजी ने अपनी फ़ौज आस-पास के जंगल में जहाँ-तहाँ रख दी थी। अब वह बाहर निकल आई और बीजापुर की फ़ौज से उसने लड़ाई ठान दी। परन्तु वे लोग तो पहले ही घबरा गये थे, इसलिए रण से भागने लगे। उन्हें भागते देख-कर मराठों ने उनका पीछा किया और बहुत-से लोगों को काट डाला। पश्चात् बीजापुर का बहुत-सा सामान मराठों के हाथ लगा।

खाँ की सेना की हार

इस बात की खबर जब अली आदिलशाह को मिली, तो उसे बड़ा दुःख हुआ। उसकी माँ तो ईश्वर का नाम ले-लेकर रोने लगी। तीन दिन तक उसने कुछ भी न खाया-पीया। फिर वह शीघ्र ही मक्के को हज करने चली गई। यह घटना १६६९ के १० नवम्बर को हुई। उसके बाद भागे हुए कुछ सरदारों ने अली आदिलशाह को दिलासा

शिवाजी पर बीजापुर वालों की दूसरी चढ़ाई

‡ यह कटार के समान छोटा सा शस्त्र होता है।

दिलाया और रुस्तमजमाँ को सेनापति बनाकर फिरसे मराठों पर सेना भेजी। बीजापुर में खबर पहुँची थी कि मराठों ने वाई का भाग ले लिया है और वे पन्हाला क़िले की ओर जा रहे हैं, इसलिए बीजापुर की फ़ौज भी उसी ओर चली। परन्तु शीघ्र ही उसे खबर मिली कि मराठों ने पन्हाला ले लिया। अब तो आदिलशाह का धैर्य जाता रहा। परन्तु किसी प्रकार मराठों को रोकने का निश्चय किया। उसके साथ अफ़ज़लखाँ का लड़का फ़ाज़लखाँ अपने पिता के वध का बदला लेने के लिए आया था। दोनों पक्षों का कोल्हापुर के पास युद्ध हुआ। शिवाजी के नेताजी पालकर नामक सेनापति ने फ़ाज़लखाँ पर जो ज़ोरों का हमला किया तो वह मैदान से भाग गया। यह देखकर बीजापुर की सेना में भगदड़ मच गई और मराठों की विजय हुई।

बीजापुर को मुग़लों की सहायता; बाजीप्रभु का पराक्रम

इस विजय के बाद शिवाजी पन्हाला को लौट आया और नेताजी ने बीजापुर के राज्य में लूट-मार मचाकर कोल्हापुर वग़ैरा ले लिये। अब तो बीजापुर वाले बहुत ही घबरा गये। उन्होंने पहले ही दिल्ली से मदद माँगी थी, अब फिर लिखा; परन्तु वहाँ से मदद आने के लिए समय दरकार था। तबतक शिवाजी को रोक रखना बीजापुर वालों को आवश्यक जान पड़ा, इसलिए उन्होंने पहले के एक बाग़ी सरदार सिद्दी जोहार को शिवाजी पर चढ़ाई करने को कहा। उसके साथ अफ़ज़लखाँ का लड़का फ़ाज़लखाँ भी आया था और वाड़ी का सामन्त भी उसकी सहायता के लिए पहुँचा था। शिवाजी ने

सिद्दी से लड़ने के लिए राघो बल्लाल अत्रे को और सावन्त से लड़ने के लिए बाजी पासलकर को भेजा। सावन्त और पासलकर का घमासान युद्ध हुआ और ये दोनों सेनापति मारे गये। स्वयं शिवाजी कोल्हापुर के आस-पास की रक्षा के लिए पन्हाला में बन्दोबस्त से बना रहा। वे बरसात के दिन थे, परन्तु शत्रु ने उसी समय आकर घेर लिया। उधर दिल्ली में यह निश्चय हुआ कि बीजापुर की सहायता के लिए सेना भेजी जाय। इसके अनुसार औरंगजेब ने शाइस्ताखाँ को सेनापति बनाकर बड़ी भारी सेना भेजी। इस सेना ने मंदिरों और मठों का विध्वंस किया और गाँवों को नष्ट कर डाला। फिर पूना, सूपा, इन्द्रापुर और चाकण के परगणे ले लिये। इस समय जीजाबाई राजगढ़ में थी। चारों ओर से हमला हुआ देखकर इसने निश्चय किया कि पन्हाला के घेरे से शिवाजी को किसी प्रकार मुक्त करना ही चाहिए। नेताजी पालकर ने इस घेरे को उठवाने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु वह सफल न हुआ। एक दिन रात को शिवाजी कुछ सैनिकों सहित इस घेरे में से बचकर निकल आया और विशालगढ़ क़िले की ओर जाने लगा। यह ख़बर पाते ही सिद्दी जोहार ने शिवाजी का पीछा करने को फ़ौज भेजी। इस सेना ने शिवाजी को रोकने का प्रयत्न किया, परन्तु उससे कुछ न बन पड़ा। शत्रु को आते देखकर शिवाजी ने बाजीप्रभु देशपाण्डे के सेनापतित्व में गोलखिंडी नामक घाटी में सेना खड़ी करदी और स्वयं क़िले पर चढ़ने लगा। उसे यह बतला दिया था कि क़िले में हमारे पहुँचने तक शत्रु को तुम यहीं रोक रक्खो; क़िले में पहुँचने पर हम तोप दागेंगे, तब तुम भी चले आना। शीघ्र ही

बीजापुर की फ़ौज उस घाटी में आ पहुँची और आगे बढ़ने लगी, परन्तु बाजीप्रभु ने उसपर ऐसे ज़ोरों से हमला किया कि उसे पीछे लौटना पड़ा। फिर बीजापुर की दूसरी सेना ने हमला किया, परन्तु बाजीप्रभु ने बड़ी शूरता से उसे भी पीछे हटा दिया। इतने में फ़ाज़लखाँ के साथ और लोग आये। इन्होंने अब तीसरी बार हमला किया। इस समय दोपहर की प्रचण्ड धूप पड़ रही थी और बाजी के बहुत-से लोग काम आ गये थे। ऐसे समय में यह तीसरा हमला हुआ था, तथापि बाजीप्रभु निधड़क लड़ रहा था। इस समय उसका ख़याल क़िले की तोप की आवाज़ की ओर लगा था। ऐसे समय स्वयं उसे गोली लगी और वह गिर पड़ा। इतने में तोप की आवाज़ सुनाई दी। तब, मरने के पहले, उसने कहा कि मैंने अपना कर्तव्य-पालन किया। यह घटना १४ जुलाई १६६० की है।

फ़ाज़लखाँ वग़ैरा को उस दुर्घटघाटी में आगे बढ़ने की हिम्मत न हुई। वे वापस चले गये। शिवाजी ने देखा कि मुझे दो शत्रुओं से लड़ना होगा, इसलिए पन्हाला के क़िलेदार को सन्देश भेजा कि क़िले को शत्रु के हाथ में दे दो और तुम चले आओ। इस प्रकार पन्हाला सिद्दी जोहार के हाथ में चला गया। सिद्दी जोहार शिवाजी को न पकड़ सका, यह देख आदिलशाह ने उसे वापस बुला लिया; परन्तु वह बीजापुर जाने के बदले कर्नाटक में अपनी जागीर को चला गया। शिवाजी विशालगढ़ से राजगढ़ को आया। यहाँ से उसने बीजापुर के प्रदेश में कई हमले किये, परन्तु इससे कोई विशेष फल न

शिवाजी और बीजापुर के बीच सन्धि

निकला। तब समय देखकर उसने बीजापुर वालों से सन्धि करली। इस सन्धि में शाहजी ने मध्यस्थ का काम किया। इस निमित्त से शिवाजी की पिता से कई वर्षों में भेंट हुई। बीजापुर ने शिवाजी की सब शर्तें मंजूर कीं। उत्तर में कल्याण से दक्षिण में खोंडा तक और पश्चिम में दाभोल से पूर्व में इंदापुर तक सब प्रदेश शिवाजी को दे दिया और उसका स्वातंत्र्य मान लिया। सन्धि में दूसरों के हमलों से परस्पर रक्षा की शर्त भयी थी। शिवाजी ने यह शपथ ली थी कि शाहजी के जीते जी मैं बीजापुर-राज्य में गड़बड़ न मचाऊँगा। इसके बाद शिवाजी ने रायगढ़ को अपनी राजधानी बनाया।

१०

मुगलों से प्रथम युद्ध

अब शिवाजी को शाइस्ताखाँ की ओर ध्यान देने का अवसर मिला। इस समय तक वह उससे मेल-जोल की चिट्ठी-पत्री ही करता रहा। सन् १६६१ में मुग़लों ने कल्याण चौर भिवंडी प्रदेश ले लिये थे, बीजापुर की सन्धि के अनुसार ये भाग शिवाजी के थे। शाइस्ताखाँ ने आगे बढ़ना उचित न समझा, इसलिए उसने दो साल आराम से पूना में बिताये।* अब शिवाजी ने इसकी खबर लेनी चाही। उसने मोरोपंत पेशवा को सेना देकर जुन्नार के उत्तर के क़िले लेने के लिए भेजा। नेताजी पालकर

युद्ध का प्रारम्भ

* 'शिवभारत' को देखने से यह पता चलता है कि शाइस्ताखाँ पूना में आने पर बिलकुल चुप-चाप न बैठा था। उसने शिवाजी को पकड़ने के लिए सह्याद्रि से राजगढ़ की ओर सेना भेजी। इसका सेनापति कारतलबखाँ था और उसे कोंकण में चौल, कल्याण, भिवण्डी, पनवेल आदि स्थान लेने का काम सौंपा गया था। इस सेना के साथ सुप्रसिद्ध 'रायबागीण' भी थी। यह सेना लोहगढ़ के पास के दक्षिणोत्तर मार्ग से एक पगडण्डी से पर्वत के नीचे उतरी। जहाँ यह पगडण्डी समाप्त होती थी वहाँ घना जंगल



कोंकण की चढ़ाई
(सन् १६६१ ई०)

मुग़लों के प्रदेश में लूट-मार करता हुआ औरंगाबाद तक चला गया। स्वयं शिवाजी सिंहगढ़ में था। शाइस्ताखाँ पूना में बड़े बन्दोवस्त से है, यह सुनकर उसे भगाने की शिवाजी ने एक अच्छी युक्ति सोची।

शाइस्ताखाँ पर शिवाजी का हमला

पूना में शाइस्ताखाँ अपने ज़नानख़ाने के साथ शिवाजी के लाल महल में रहता था। दक्षिण की तरफ़ सिंहगढ़ के रास्ते पर उसका सहकारी सेनापति जसवन्तसिंह दस हज़ार सेना सहित डेरा डाले पड़ा था। शिवाजी ने एक हज़ार वीर अपने साथ लिये और नेताजी पालकर तथा मोरोपन्त पेशवा को एक-एक

था। शिवाजी ने शाइस्ताखाँ की चालें जान ली थीं और इस जंगल में अपनी सेना रख दी थी। उम्बरखिण्डी के पास मुग़ल-सेना के आते ही मराठों ने उन्हें घेर लिया। अन्त में रायबागीण की सूचना से कारतलबखाँ ने शिवाजी के पास दूत भेजकर जीव-दान माँगा। द्रव्य लेकर मराठों ने उन्हें जीव-दान दिया। इसके बाद शाइस्ताखाँ ने कुछ समय तक मराठों की ओर ध्यान न दिया और वह बीजापुर का कोंकण का प्रदेश लूटने और लेने में लगा रहा। जेधेशकावली में अम्बरखिण्डी के युद्ध का प्रसंग सन् १६६१ के प्रारम्भ में हुआ बताया है।

इस प्रसंग के कुछ काल बाद कोंकण का शृंगारपुर शिवाजी ने लिया। यहाँ का राजा सूर्यराव शिवाजी से सदैव दुरंगी चालें चला करता था। अम्बरखिण्डी के युद्ध के बाद शिवाजी ने राजापुर की लूट की। उसके बाद बीजापुर के आदिलशाह के कहने से सूर्यराव ने शिवाजी की सेना पर अचानक हमला कर दिया, परन्तु तानाजी भाऊसुरे ने उसे मार भगाया। इसके बाद सूर्यराव को शृंगारपुर से भागना पड़ा और यह स्थान शिवाजी के हाथ आया।

हज़ार सैनिक देकर उन्हें जसवन्तसिंह के डेरे के चारों तरफ़ रख दिया। फिर चार सौ चुने हुए आदमी लेकर वह मुग़लों के डेरे पर आया। वहाँ उसके रक्षकों से यह कह दिया कि हम मुग़लों के पक्ष के मराठे सैनिक हैं। इस प्रकार वहीं उसने कुछ समय बिताया। फिर ये लोग एक बरात के साथ मिल कर शहर में आये और मध्यरात्रि के समय शाइस्ताख़ाँ के डेरे पर हमला कर दिया। वे रमज़ान के दिन थे, इसलिए दिनभर के रोज़े के बाद लोग खूब खा-पीकर सो रहे थे। केवल कुछ रसोइये सवेरे का खाना बनाने के लिए जागे हुए थे। उन्हें मराठों ने चुप-चाप साफ़ कर दिया। फिर रसोईघर से भीतर घुसने का रास्ता बनाने लगे। तब कुछ लोग जाग पड़े और उन्होंने ख़ाँ को ख़बर दी। परन्तु वह तो खूब सो रहा था, नींद में खलल डालने पर उसने उन लोगों को खूब डाटा। इधर रास्ता बनते ही शिवाजी और उसके २०० साथी ज़नानख़ाने में घुसे। वहाँ जो परदे लगे हुए थे, उन्हें फाड़कर शिवाजी खुद शाइस्ताख़ाँ के पास पहुँच गया, तब कहीं स्त्रियों ने घबराकर उसे जगाया। शाइस्ताख़ाँ खिड़की से निकलकर भागा। तब शिवाजी ने अपनी तलवार फेंककर उसे मारी। इससे उसकी तीन अँगुलियाँ कट गईं। अचानक एक स्त्री ने रोशनी बुझा दी। फिर तो वहाँ खूब गड़बड़ मची। इसी समय दासियों ने शाइस्ताख़ाँ को सुरक्षित स्थान में पहुँचा दिया। उधर बाहर के २०० मराठों ने रक्षकों को काट-छाँट डाला। फिर ये लोग नक्कारख़ाने में घुसे और वहाँ के लोगों को ख़ाँ की ओर से नगारे बजाने का हुक्म दिया। इस गड़बड़ से आख़िर मुग़ल-सेना जाग पड़ी और शत्रु आया समझकर तैयारी करने लगी। शाइस्ताख़ाँ का लड़का अब्दुलफ़तेहख़ाँ

तुरन्त अपने पिता की मदद को दौड़ा आया। परन्तु इस गड़बड़ में मराठों ने उसका काम तमाम कर दिया। इसी प्रकार एक मुग़ल सरदार को भी उन्होंने मार डाला। फिर शिवाजी ने अपने आदमियों को जमा किया और वहाँ से भाग आया।

शाइस्ताख़ाँ का उच्चाटन

मुग़लों ने पहले तो अपनी छावनी में ही खोज की; फिर वे मराठों का पीछा करने को निकले। परन्तु शिवाजी ने इन्हें छकाने के लिए पहले ही बन्दोबस्त कर रक्खा था। उसने कात्रज के घाट की ओर बैलों के सींगों में तथा झाड़ों में मशालें बँधवा कर कुछ आदमी रख दिये थे और उन्हें बता दिया था कि सूचना मिलते ही मशालों को जला देना। इसी प्रकार वे मशालें जलाई गईं। मुग़लों को ऐसा जान पड़ा कि शिवाजी कात्रज की ओर गया है, इसलिए वे उधर ही गये। अन्त में दिन निकलने पर असली बात का पता लगा और वे कोंडाणा की ओर वापस आये। उनके बिलकुल पास आने तक शिवाजी ने कुछ न किया, परन्तु तोपों की मार के भीतर उन्हें आया देख क़िले से गोले छोड़ना शुरू किया। इससे मुग़ल-सेना मरने लगी। शाइस्ता-ख़ाँ बड़ी चिन्ता में पड़ा। इतने में एक गोला उसके हाथी को लगा और वह मर गया। अब तो ख़ाँ का धैर्य जाता रहा। उसने सोचा दिन बरसात के हैं, शिवाजी दग़ाबाज़ है, कह नहीं सकते कि किस समय वह क्या करेगा, इसलिए बरसात समाप्त होने पर ही जो कुछ बन सकेगा वह करेंगे। ऐसा विचारकर वह उत्तर की ओर चला गया और औरंगाबाद में छावनी डालकर रहने लगा।

औरंगज़ेब को जब यह हाल मालूम हुआ तब उसे अपने मामा शाइस्ताख़ाँ पर बड़ा ग़ुस्सा आया। उसने उसका बहुत अपमान किया और बंगाल के सूबे में भेज दिया। यह घटना सन् १६६३ में हुई।

इसके बाद सन् १६६४ में, शिवाजी ने सूरत पर हमला किया। वहाँ ६ दिन तक कर वसूल करता रहा। यह सब द्रव्य लेकर वह रायगढ़ को सुरक्षित वापस आया। इसी समय शिवाजी के जहाज़ी बेड़े के अधिकारियों ने मक्का को जानेवाले यात्रियों से भरे हुए जहाज़ पकड़े और लोगों से बहुत-सा द्रव्य लेकर उन्हें छोड़ दिया। इस बात की ख़बर जब औरंगज़ेब को लगी, तो वह मारे ग़ुस्से के उबल उठा। वह स्वयं शिवाजी पर चढ़ाई करना चाहता था, परन्तु उत्तर में इस समय बलवे हो रहे थे, इसलिए वह दक्षिण में नहीं आ सकता था। तथापि उसने जयपुर के राजा मिर्ज़ा जयसिंह और एक मुसलमान सरदार दिलेरख़ाँ को तुरन्त रवाना किया। वे बड़ी शीघ्रता से पूना तक दौड़े आये। उन्होंने शिवाजी के क़िले लेने का निश्चय किया।

मुरारबाजी का पराक्रम

दिलेरख़ाँ ने पुरन्दर को घेर लिया और पास ही जयसिंह सब बात की व्यवस्था करने के लिए डेरे डालकर रहने लगा। पुरन्दर का क़िला मुरारबाजी पहाड़कर के हाथ में था और उसके पास दो हज़ार सैनिक थे। मुग़लों का आना सुनकर उसने इस बात का बन्दोबस्त किया कि उन्हें घास-दाना न मिले और उनके गोले-बारूद को उसने आग लगवा दी। इतने पर भी दिलेरख़ाँ ने सब

व्यवस्था ठीक करके घेरे का काम शुरू किया। परन्तु बहुत दिनों तक उनसे कुछ भी न बन पड़ा, क्योंकि गुप्त मार्गों से अनाज ऊपर पहुँच जाता था और वहाँ गोला-बारूद भी भरपूर था। अन्त में जब एक दिन उन्होंने बहुत कोशिश की तब कहीं बाहरी कोट के भीतर उनका प्रवेश हुआ। मराठों की सेना क़िले के भीतरी कोट में थी। मुग़लों को ऐसा जान पड़ा कि शत्रु डरकर भाग गये। इसलिए जो भाग उनके क़ब्ज़े में आया था उसीमें लूट-मार करने लगे। उनकी यह अव्यवस्था देख मराठों ने उनपर गोले दागना शुरू किया। तब तो मुग़लों की सेना में बड़ी गड़बड़ मच गई। कई तो मर गये, कई नीचे भाग गये, और कई यहाँ-वहाँ कोने-काने में छिप रहे। फिर मुरारबाजी ने उनका ऐसा पीछा किया कि उन्हें खदेड़ते-खदेड़ते दिलेरख़ाँ के डेरे तक ले आया। अपनी यह फ़ज़ीहत देखकर दिलेरख़ाँ को जोश चढ़ा। उसने भागनेवाले लोगों को डाट-फटकार दी और उन्हें वापस बुलाकर फिर से हमला किया। इस समय मराठों और मुग़लों का घमासान युद्ध हुआ। मुरारबाजी बहुत ज़ोर से लड़ता रहा, परंतु दुर्दैव से उसकी ढाल टूट गई और फिर दिलेरख़ाँ का एक बाण उसे लगा। उससे मुरारबाजी की मृत्यु हो गई। अब दिलेरख़ाँ को जान पड़ा कि क़िला शीघ्र ही मेरे अधीन हो जायगा। इसलिए उसने ऊपर तक हमला किया और वहाँ के लोगों को शरण आने के लिए कहा। परन्तु लोगों ने उत्तर दिया कि एक मुरारबाजी के मरने से क्या होता है, हम भी तो वैसे ही शूर हैं। अन्त में उन्होंने मुग़लों को क़िला न लेने दिया।

यह मुग़ल सेना जिस समय दक्षिण में आई उस समय

शिवाजी कोंकण में था। वापस आने पर उसे मुग़लों की चढ़ाई का पता लगा। शीघ्र ही उसे मुरारबाजी के मरने की खबर भी मिली। तब उसे यह स्पष्ट देख पड़ा कि पुरन्दर मुग़लों के हाथ में गये बिना न रहेगा और वे एक-के-बाद-एक मेरे क़िले ले लेंगे। कुछ देर तो वह बड़ी चिन्ता में पड़ा, पर अन्त में उसने मुग़लों से मेल करने का निश्चय किया। राजा जयसिंह से रघुनाथ पंडित द्वारा भेंट की बातचीत शुरू हुई। जयसिंह ने रघुनाथ पण्डित का सन्मान-पूर्वक स्वागत किया और उसका संदेश खुशी से सुना। जबसे शाइस्ताखाँ की फ़ज़ीहत हुई थी तबसे शिवाजी की धाक मुग़लों पर जम गई थी। उन्हें इस बात का यक़ीन न था कि लड़ाई जारी रखने पर हमें विजय ही मिलेगी। अतः जयसिंह ने शिवाजी की भेंट का संदेश स्वीकार किया।

मुग़लों से सन्धि करने का विचार

जयसिंह का जवाब मिलने पर शिवाजी ने उसकी भेंट को जाने की तैयारी की। स्वयं उसने तो सादी पोशाक धारण की परन्तु साथ जानेवाले सैनिकों को खूब सजाया। भेंट का स्थान पुरन्दर के पास ही निश्चित हुआ था। शिवाजी को आते देखकर जयसिंह ने कुछ आगे बढ़कर उसका स्वागत किया। फिर एक डेरे में उनकी बात-चीत हुई। इस समय शिवाजी ने जयसिंह के धर्माभिमान को जागृत करने का प्रयत्न किया। 'आपको जो क़िले चाहिएँ, उन्हें मैं देता हूँ और उनपर आपका झण्डा चढ़वा देता हूँ। परन्तु इस बात का श्रेय मुसलमानों को न मिलने पावे। मैं हिन्दू हूँ और आप भी हिन्दू हैं। यहाँ पहले हिन्दुओं का ही राज्य

मुग़लों से सन्धि

था। हिन्दू-धर्म की रक्षा करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषों के सामने मैं दस बार सिर झुकाने को तैयार हूँ। आप कभी ऐसा काम न करेंगे, जिससे अपने देश तथा मान की हानि होगी। ऐसी बातें सुनकर जयसिंह का धर्माभिमान जागृत हो उठा और उसने बड़ी खुशी से संधि करना स्वीकार किया। परन्तु उसे इस बात की आवश्यकता जान पड़ी कि ऐसा करने से पहले शिवाजी दिलेर-खाँ से मिल ले। इसलिए उसने अपने मामा सुभानसिंह को साथ देकर दिलेरख़ाँ के पास शिवाजी को भेज दिया। शिवाजी भेंट के लिए आ रहे हैं, यह सुनकर दिलेरखाँ बड़ा खिन्न हुआ। इसका कारण यह था कि पुरन्दर अबतक दिलेरखाँ के हाथ आया न था और संधि होने से उसे लेने का श्रेय उसे न मिलता। इसलिए पहले तो उसने टालमटोल की, परन्तु अन्त में संधि के लिए तैयार हो गया। शिवाजी और मुग़लों के बीच इस समय जो संधि हुई, उसकी शर्तें ये थीं:—(१) शिवाजी स्वयं अपने पास बारह क़िले और उनके आस-पास का मुल्क रक्खे, (२) शिवाजी के आठ वर्ष के लड़के सम्भाजी को पाँच हज़ार की मनसबदारी मिले, (३) बीजापुर के राज्य में शिवाजी चौथ और सरदेशमुखी वसूल कर सके परन्तु इसके लिए वह ११ किश्तों में १ करोड़ ४० लाख रुपये नज़राना दे, (४) आवश्यकता पड़ने पर स्वयं शिवाजी बादशाह की नौकरी करे। शिवाजी की बहुत इच्छा थी कि कोलाबा के पास के हबशियों का जंजीरा प्रदेश मुझे मिले। परन्तु इस पर उसे यह उत्तर मिला कि जब तुम स्वयं बादशाह की भेंट को आओगे तब इस बात का विचार किया जायगा।

११

क़ैद, मुक्ति और स्वराज्य की मान्यता

पुरन्दर की सन्धि होने पर जयसिंह ने बीजापुर के राज्य पर चढ़ाई की और शिवाजी को अपनी मदद के लिए बुलाया। वादे के मुताबिक़ शिवाजी ने उसकी मदद न की। जयसिंह ने इसका वर्णन औरंगजेब को लिख भेजा। यह सुन कर वह बहुत खुश हुआ। उसने फिर शिवाजी को अपनी भेंट के लिए आग्रह-पूर्वक बुलवाया। शिवाजी की भी बहुत दिनों से इच्छा थी कि मैं स्वयं बादशाह की हालत देख आऊँ, इसलिए उसने औरंगजेब का निमन्त्रण स्वीकार किया। पर जाने के पहले उसने क़िलों का अच्छा बन्दोबस्त किया और अपने राज्य का सारा कारोबार मोरोपंत पेशवा, अन्नाजीदत्तो सचिव और नीलो सोनदेव मुजुमदार नाम के तीन अधिकारियों के सुपुर्द कर दिया। यह भी कह दिया कि आगरे में मेरा कुछ भला-बुरा हो तो तुम घबराना नहीं, बस, राजाराम को गद्दी पर बिठला कर राज्य की रक्षा करना।

आगरे को प्रयाण

इसके बाद सम्भाजी, कुछ विश्वासपात्र साथी तथा एक हज़ार सैनिक अपने साथ लेकर वह औरंगाबाद गया। वहाँ पर जयसिंह से भेंट की। जयसिंह ने अपने पुत्र रामसिंह को शिवाजी की सब व्यवस्था करने के लिए पहले ही लिख रक्खा था। दो महीने में शिवाजी सन् १६६६ की गर्मी के दिनों में आगरे पहुँचा। शहर के बाहर रामसिंह उसके स्वागत के लिए आया था। बादशाह ने शिवापुरा नाम की हवेली शिवाजी के लिए नियत की थी, उसी में शिवाजी ठहरा। फिर तीन दिन के बाद औरंगज़ेब ने शिवाजी की भेंट लेने का निश्चय किया। हिजरी सन् के अनुसार उस दिन बादशाह का पचासवाँ जन्म-दिन था। इसके लिए उसने बड़ी भारी तैयारी की थी और सब सरदारों को दरबार में बुलाया था। शिवाजी भी रामसिंह के साथ दरबार गया। वहाँ उसने बादशाह को सलाम किया और नज़राना दिया। फिर औरंगज़ेब ने मारवाड़ के राजा जसवंतसिंह के नीचे की ओर उसे खड़े होने को कहा। यह सुनते ही शिवाजी को क्रोध आया और दिखलाये स्थान पर जाते समय उसने कहा, मेरी फ़ौज ने जिसकी पीठ देखी है उसके नीचे खड़े रहने को कहने का क्या अर्थ है! बादशाह ने उसके कहने का मतलब जानना चाहा, पर वह बात किसी प्रकार टाल दी गई। इसके बाद औरंगज़ेब ने शान्ति-पूर्वक रामसिंह से कहा कि शिवाजी को उसके डेरे पर ले जाओ। शिवाजी के वहाँ पहुँचने पर उसे औरंगज़ेब का संदेश मिला कि अब तुम कभी दरबार में न आओ; तुम्हें जो कुछ कहना हो वह अपने दूत की मार्फ़त ही कहो।

इसके बाद शीघ्र ही फ़ौलादजंग नाम के कोतवाल को हुक्म

मिला कि शिवाजी पर पाँच हज़ार सवारों का पहरा रक्खा जाय।

कैद

अब शिवाजी बड़ी मुसीबत में पड़ा। उसने रामसिंह के ज़रिये बादशाह से प्रार्थना की कि मुझे यदि अपने देश को वापस जाने की आज्ञा न देनी हो तो न दो; पर मेरे साथ आये हुए लोगों को यहाँ की आबहवा मुआफ़िक नहीं, इसलिए उन्हें तो वापस जाने दो! यह बात औरंगज़ेब को पसन्द आ गई। उसने शिवाजी की फ़ौज को वापस जाने का हुक्म दे दिया। केवल कुछ चुने हुए लोग शिवाजी के पास रह गये। इसके बाद फिर कई बार शिवाजी ने अपने देश को वापस जाने की इजाज़त माँगी, पर वह न मिली। औरंगज़ेब पहले ही दिन उसके स्वाभिमानी भाव को देख चुका था। उसे इस बात का विश्वास न हुआ कि दक्षिण में वापस जाने पर वह मेरी नौकरी करेगा। अतएव उसने उसे आगरे में ही रख लेने का विचार किया। औरंगज़ेब ने एक बार रामसिंह से कहा कि जबतक शिवाजी आगरे में रहना मंजूर न करे तबतक उसपर कड़ा पहरा रक्खा जाय। औरंगज़ेब के इस विचार की कल्पना शिवाजी को पहले ही हो चुकी थी, इसलिए अपनी जान खतरे में डालकर भी किसी प्रकार वहाँ से निकल भागने का उसने निश्चय किया।

अब शिवाजी ने बादशाह को संदेश भेजना शुरू किया कि मैं आगरे में रहने को तैयार हूँ। इधर दरबारियों को उसने बड़े-बड़े

कैद से मुक्ति

पिटारे भेजने शुरू किये। पहले-पहल पहरेदार लोग पिटारों को अच्छी तरह देख-भाल लेते थे, कुछ समय बाद उन्होंने इस काम में ढिलाई

शुरू करदी। अब शिवाजी के आदमियों ने पहरेदारों को बतलाया कि शिवाजी की तबीयत ठीक नहीं है, इसलिए गड़बड़ न किया करो। इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। फिर एक दिन शाम को सम्भाजी और शिवाजी अलग-अलग पिटारे में बैठकर पहरे से बाहर निकल आये। मिठाई के पिटारे समझ कर पहरेदारों ने हमेशा की तरह देख-भाल न की। सम्भाजी और शिवाजी पूर्व-निश्चित स्थान पर आये। वहाँ शिवाजी के साथियों ने भागने की व्यवस्था पहले ही कर रक्खी थी। भेष बदलकर किसी प्रकार वे मथुरा पहुँचे। इधर हिरोजीफ़रज़ंद शिवाजी के पलंग पर कपड़े ओढ़कर कुछ देर तक पड़ा रहा। फिर वह उठकर बाहर आया और पहरेदारों को उसने कहा कि महाराज आज ज्यादा बीमार हैं, इसलिए मैं दवाई लाने बाहर जाता हूँ, तुममें से कोई भीतर न जाना। यह कहकर वह बाहर निकला और दक्षिण की तरफ चल दिया। दूसरे दिन दोपहर तक भी जब पहरेदारों ने वहाँ कुछ हल-चल न देखी, तब वे भीतर गये। तब कहीं उन्होंने देखा कि शिवाजी वहाँ नहीं थे। फिर तो यह खबर चारों ओर फैल गई। बादशाह को जब यह बात मालूम हुई, तब वह फ़ौलादखाँ पर बहुत गुस्से हुआ और तुरन्त उसकी मनसब ज़ब्त करली। औरंगज़ेब को अपनी चतुरता का बड़ा घमण्ड था, परन्तु शिवाजी ने अपनी युक्ति से उसका यह घमण्ड चूर-चूर कर दिया। दक्षिण की ओर जायँगे तो पकड़े जायँगे, इस विचार से शिवाजी पहले उत्तर की तरफ़ मथुरा गया। सम्भाजी को अपने साथ रखना ठीक न समझकर उसे वहीं किसीके पास रखने का निश्चय किया। वहाँ पर मोरोपंत पेशवा के साले कृष्णा-

जी पंत, काशी पंत और विशाजी पंत नामक तीन भाई थे। उनका और नीराजी का परिचय था। उन्होंने सम्भाजी को अपने पास रख लेना स्वीकार किया। फिर वैरागी का वेष धारणकर शिवाजी प्रयाग, काशी, गया, जगन्नाथ आदि होते हुए गोंडवन के रास्ते कुतुबशाही और आदिलशाही की हद्द में आकर रायगढ़ पहुँचा। इस प्रकार दक्षिण छोड़ने के दस महीने बाद शिवाजी अपने स्थान को वापस आया। वहाँ उसने देखा कि राज्य की जो व्यवस्था मैंने कर दी थी वह ज्यों-की-त्यों चली जा रही है। इसपर उसे बड़ा आनन्द हुआ। थोड़े ही दिनों के बाद कृष्णाजी वग़ैरा पेशवा के साले सम्भाजी को लेकर दक्षिण में पहुँचे।

औरंगज़ेब को शंका हुई कि शिवाजी के भागने में रामसिंह की मदद थी, इसलिए उसने उसे दरबार में आने से मना कर दिया। इधर जयसिंह से भी औरंगज़ेब ने इसी प्रकार का बर्ताव किया। शिवाजी के आगरा जाने पर जयसिंह ने बीजापुर का घेरा डाला था, परन्तु वह इस काम में सफल न हुआ। तब वह औरंगाबाद को वापस चला आया। इस समय शिवाजी दक्षिण में पहुँच चुका था। इसलिए औरंगज़ेब को यह डर पैदा हुआ कि कहीं ये दोनों हिन्दू मिल न जायँ। इस विचार से औरंगज़ेब ने जयसिंह को वापस बुला लिया, दिलेरख़ाँ को मालवा में भेज दिया, और दक्षिण की सूबेदारी में अपने लड़के मुअज़्ज़म और जोधपुर के राणा जसवन्तसिंह को भेजा। आगरे में इन दोनों का स्वभाव शिवाजी जान चुका था। उसने जसवन्तसिंह को धन देकर और मुअज़्ज़म से मीठी-मीठी बातें करके यह लिख-

शिवाजी और औरंगज़ेब की संधि

चाया कि शिवाजी और मुग़लों के बीच जो संधि हुई थी, वह क़ायम की जाय । बादशाह ऐसा करने को राज़ी हुआ, परन्तु वह इतना ही करके न रुका । उसने शिवाजी की राजा की पदवी मान्य की । कोंडाणा और पुरन्दर के क़िले छोड़कर पूना-सूपा की जागीर वापस देदी और साथ ही बरार का हिस्सा जागीर में दे दिया । इस बरार की जागीर के बन्दोबस्त के लिए तथा पुरन्दर की संधि में बादशाह से सम्भाजी को मिले हुए पाँच हज़ार की मनसब चलाने के लिए, प्रतापराव गूजर को पाँच हज़ार फ़ौज देकर औरंगाबाद की मुग़ल छावनी में रख दिया । इस संधि के अनुसार शिवाजी को बीजापुर के राज्य में चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का हक़ मिला था । इससे बीजापुर वाले घबरा गये । उन्होंने तीन लाख रुपये वार्षिक कर इस शर्त पर देना स्वीकार किया कि हमारे राज्य को कष्ट न पहुँचे । इसी प्रकार गोलकुण्डा के सुलतान ने भी पाँच लाख वार्षिक कर देना स्वीकार किया । इन संधियों के होने पर शिवाजी को दो वर्ष तक किसी से झगड़ा न करना पड़ा । यह समय उसने अपने राज्य की व्यवस्था करने में लगाया ।

१२

औरंगज़ेब और आदिलशाह में युद्ध

युद्ध का निश्चय

औरंगज़ेब ने अपने लड़के मुअज्ज़म की मार्फ़त शिवाजी से सुलह की और शिवाजी ने अपनी मराठा-सेना प्रतापराव गूजर के अधीन औरंगाबाद की मुग़लों की छावनी में रख दी। परन्तु यह सुलह बहुत दिन तक न रही। इधर शिवाजी मुग़ल-साम्राज्य में लूट-मार कर ही रहा था, और उधर औरंगज़ेब भी अपने छल-कपट के दांव-पेंच खेल रहा था। औरंगज़ेब ने चाहा कि किसी युक्ति से मैं शिवाजी को फिर से पकड़ लूँ। उसने मुअज्ज़म को सिखाया कि तुम यह दिखलाओ कि बादशाह से मेरी खटपट हो गई है; फिर तुम शिवाजी से मिल जाओ और इस प्रकार उसे अपनी पकड़ में लाओ। प्रारम्भ में मुअज्ज़म ने औरंगज़ेब के कहे अनुसार थोड़ा-बहुत आचरण किया; परन्तु जब औरंगज़ेब का उसे यह हुक्म मिला कि शिवाजी और प्रतापराव गूजर को क़ैद कर लो, तब उसने चुपचाप प्रतापराव गूजर को वहाँ से रवाना कर दिया। वह शीघ्र ही रायगढ़ पहुँच गया। इन सारी बातों

को देख उसे मुग़लों से युद्ध करने का और उन्हें दिये हुए क़िले वापस लेने का निश्चय करना ही पड़ा।

दिये हुए क़िलों में पुरन्दर और सिंहगढ़ नाम के क़िले महत्व-पूर्ण थे। उन्हें खोने की बात शिवाजी और उसकी माता के हृदय में चुभी हुई थी। अतएव इन क़िलों के लेने से ही इस युद्ध का कार्य प्रारम्भ करने का शिवाजी ने विचार किया। सिंहगढ़ लेने का काम अपने बालमित्र तानाजी मालसुरे को दिया। वह अपने भाई सूर्याजी तथा एक हज़ार चुने हुए मावले लेकर एक रात्रि के अन्धेरे में सिंहगढ़ के नीचे पहुँच गया। क़िले का बन्दोबस्त मुग़लों ने बहुत अच्छी तरह से किया था। मुसलमान बना हुआ उदयभानु नाम का शूर राठौड़ सरदार वहाँ का क़िलेदार था। सुव्यवस्थित दुर्जेय क़िले को लेना बड़े साहस का काम था, परन्तु तानाजी ने उसे पूर्ण करने का निश्चय कर लिया। उसने अपने एक हज़ार लोगों के दो दल बनाये। एक दल अपने साथ लिया और दूसरा अपने भाई सूर्याजी के अधीन पीछे रख दिया; फिर वह एक विकट रास्ते से क़िले की दीवार के एक अपरिचित भाग के पास पहुँचा। घोरपड़ (कमान) के ज़रिये एक मावला दीवाल पर चढ़ गया। फिर रस्सी के ज़रिये ३०० मनुष्य ऊपर चढ़े। इतने में राजपूतों को इनके आने का पता लग गया। वे लोग युद्ध की तैयारी कर दौड़ आये। दोनों पक्षों में घमासान युद्ध हुआ और उसमें ५० मावले तथा ५०० राजपूत मारे गये। इसी समय तानाजी और उदयभानु का प्रत्यक्ष सामना हुआ और वे भी इस लड़ाई में काम आये। तानाजी के मरने पर मराठे

सिंहगढ़-विजय

भागने लगे थे, परन्तु इतने में सूर्याजी अपना दल लेकर क़िले में आ पहुँचा। उसने मावलों में वीरश्री जाग्रत की और राजपूतों पर हमला किया। इनमें से बहुतेरे मारे गये या क़िले की दीवाल से कूदकर भागने के प्रयत्न में मर गये। इस प्रकार सन् १६७० के फ़रवरी महीने में सिंहगढ़ का क़िला शिवाजी के हाथ लगा।

सिंहगढ़ लेने पर एक महीने के भीतर ही सूर्याजी ने पुरन्दर का क़िला भी ले लिया। उत्तर की ओर मोरोपंत पिंगले और आवाजी सोनदेव माहुली का क़िला और कल्याण का भाग लेने के लिए गये।

चान्दवड़ की लड़ाई

इसी साल यानी सन् १६७० में शिवाजी ने दूसरी बार सूरत पर चढ़ाई की और तीन दिन तक शहर को लूटा। तीसरे दिन उसे पता लगा कि मुग़ल फ़ौज उससे लड़ने आ रही है। इसलिए वह सूरत वालों से १२ लाख वार्षिक कर पाने का क़रार करके रायगढ़ की ओर चला गया। शिवाजी का विचार था कि सालेर-मुलेर के पास से चाँदवड़ होते हुए कुञ्चमघाट से कोंकण जावें। परन्तु चाँदवड़ के पास ही उसे मुग़ल फ़ौज का मुक़ाबला करना पड़ा। उसने अपनी फ़ौज के चार दल किये। सूरत की लूट का माल ले जाने वाला दल इनके अलावा अलग ही था। उसने निश्चय किया कि सब दल शत्रु की चाल को देख-भालकर लूट वाले दल के कहे अनुसार चलें। फिर उसने यह गप उड़ा दी कि मैं औरंगाबाद लेने जा रहा हूँ। उसके दो दल मुग़ल फ़ौज के दोनों ओर रह कर उसे कष्ट देने लगे। मुग़ल फ़ौज का अधिपति प्रसिद्ध दाऊदख़ाँ पन्नी था और इकलाज़ख़ाँ और बाँकेख़ाँ उसके मददगार थे। बाँकेख़ाँ चाँदवड़ के पास सामने आया, परन्तु

शिवाजी से हारकर वह चांदोड़ के क़िले में जा छिपा। शिवाजी धीरे-धीरे आगे बढ़ा। दूसरे दिन दाऊदखाँ की फ़ौज आ पहुँची। उसमें इकलाजखाँ सामने था। मराठों ने एकदम उसपर जोरों का हमला कर दिया और इकलाजखाँ को ज़ख्मी कर डाला। इतने में दाऊदखाँ स्वयं आगे बढ़ा। इस समय शिवाजी और दाऊदखाँ के बीच बहुत जोरों का युद्ध हुआ। तीन हज़ार मुग़ल और कुछ मराठे मारे गये और दाऊदखाँ रण छोड़कर भाग गया। मुग़लों के चार हज़ार घोड़े और कुछ सरदार शिवाजी के क़ब्ज़े में आये, परन्तु शिवाजी ने इन लोगों को तुरन्त छोड़ दिया। रास्ते में रायबागिन नाम की स्त्री ने उसका रास्ता रोकने का प्रयत्न किया, परन्तु उसे भी शिवाजी ने हरा दिया। इस प्रकार वह सूरत की लूट लेकर सुरक्षित रायगढ़ पहुँचा।

कल्याण का क़ब्ज़ा

सूरत से आने पर मोरोपंत को उसने माहुली का क़िला लेने को भेजा। पहले-पहल तो मोरोपंत उस क़िले को न ले सका, परन्तु क़िलेदार के बदलने पर शीघ्र ही उसने उसे ले लिया। इसके बाद शीघ्र ही कर्नाला और लोहगढ़ के क़िले भी लिये। इस प्रकार थोड़े ही समय में कल्याण-भाग पर शिवाजी का क़ब्ज़ा जम गया।

सालेर का युद्ध

अब शिवाजी ने प्रतापराव गूजर और मोरोपन्त पिंगले को मुग़लों के भाग में लूट-मार करने के लिए भेजा। इन दोनों ने बहुत-सी चौथ और सरदेशमुखी वसूल की। ये सब बातें जब औरंगज़ेब ने सुनीं, तो उसे अत्यन्त क्रोध आया। उसे शक हुआ कि मुअज्ज़म और जसवन्तसिंह शायद शिवाजी से मिले हुए हैं। अतएव उसने

जसवन्तसिंह को वापस बुलाकर महावतखाँ को भेजा और सारी फ़ौज उसके सुपुर्द कर दी। शाहज़ादे के पास केवल एक हज़ार लोग औरंगाबाद में रहे। महावतखाँ का सहायक दिलेरखाँ नियत हुआ। महावतखाँ ने शीघ्र ही औंढा और पट्टा नाम के क़िले ले लिये। दिलेरखाँ ने अपनी फ़ौज के दो दल किये और चाकण तथा सालेर के क़िलों को घेर लिया। मोरोपन्त और प्रतापराव सालेर की मदद को पहुँचे। इस मराठा फ़ौज को रोकने के लिए महावतखाँ ने इकलाज़खाँ को भेजा। पहले-पहल प्रतापराव ने डर जाने का भाव दिखलाकर भागना शुरू किया। इसलिए मुग़ल फ़ौज उसका पीछा करने के लिए अव्यवस्थित रूप से दौड़ने लगी। अब प्रतापराव लौट पड़ा। इस समय दोनों पक्षों में घनघोर युद्ध हुआ। इसे सालेर की लड़ाई कहते हैं, जो सन १६७२ में हुई थी। इसमें मुग़लों का पूर्ण पराजय हुआ। उनके २२ बड़े-बड़े सरदार और दस हज़ार दूसरे लोग मारे गये। इकलाजखाँ मराठों के हाथ पड़ा और दिलेरखाँ भाग गया। शत्रु का बहुत-सा सामान मराठों के हाथ लगा। इसके बाद मुग़ल सालेर का घेरा उठाकर औरंगाबाद चले गये। इन लड़ाई के बाद औरंगज़ेब ने महावतखाँ और शाहज़ादा मुअज़्ज़म को वापस बुला लिया और गुजरात के सूबेदार खाँ-जहाँ को दक्षिण का सूबेदार बनाकर भेजा। मराठों ने अब अहमदनगर और औरंगाबाद के आस-पास के भाग को लूटना शुरू किया। बरसात के दिनों में मोरोपंत पिंगले बड़ी भारी फ़ौज लेकर कोंकण पहुँचा और उसने वहाँ जोहार और रामनगर नाम के दो कोरी-राज्य जीत लिये। खाँ जहाँ को मराठों से लड़ने की

हिम्मत न होती थी, इसलिए उसने शिवाजी से युद्ध करना बन्द कर दिया; और भीमा नदी के किनारे पेड़गाँव में अपनी छावनी डालकर वह रहने लगा। यह स्थान मराठों के प्रदेश के पास था, इससे उनके प्रदेश पर यहाँ से सरलता-पूर्वक हमला हो सकता था और उनकी हलचल की देख-रेख भी रक्खी जा सकती थी। अतएव ख़ाँजहाँ ने यहाँ एक क़िला बनवाया और अपने पहले नाम पर बहादुरगढ़ * उसका नाम रक्खा। यहाँ पर इसके बाद कई बरसों तक मुग़लों की छावनी बनी रही।

इस युद्ध से छुट्टी पाते ही शिवाजी को बीजापुर से लड़ना पड़ा। जब से शाहजी के कहे अनुसार उसने बीजापुर से सन्धि की थी तबसे उसने पिता के जीते जी इस राज्य से युद्ध न किया। परन्तु सन १६६४ में शाहजी की मृत्यु हो गई, तब शिवाजी पितृ-वचन से मुक्त होगया। सन् १६७२ में अली आदिलशाह के मरने पर बीजापुर के दरबार में गड़बड़ मच गई। नया आदिलशाह छोटा था। ख़वासख़ाँ वहाँ का वज़ीर था और अब्दुलकरीम बहलोलख़ाँ सेनापति था। वज़ीर तो शिवाजी से झगड़े करने के लिए तैयार न था, परन्तु सेनापति शिवाजी को साफ़ नष्ट करने का विचार कर रहा था। जिस समय (सन् १६७०-७२) शिवाजी और मुग़लों के बीच युद्ध जारी था, उस समय बीजापुर-दरबार और मुग़लों के बीच शिवाजी के विरुद्ध कुछ बात-चीत हो रही थी। शिवाजी को यह सब मालूम था, और

बीजापुर से युद्ध की तैयारी

* इसका वास्तविक नाम बहादुर ख़ाँ था और ख़ां जहां नाम का ख़िताब मिला था।

वह भी अपनी तैयारी में था। बीजापुर वाले चढ़ाई करना चाहते हैं, यह सुनकर उसने विशालगढ़ में बड़ी भारी सेना एकत्र की और उसके एक दल ने पन्हाला क़िला ले लिया।

अब बीजापुर की फ़ौज उसपर चढ़ आई। उसे दूसरी ओर लगा रखने के विचार से अन्नाजी दत्तो ने हुबलीशहर पर हमला किया और उसे लूटा। यह शहर व्यापार का स्थान था और धनाढ्य था। यहाँ पर अंग्रेज़, फ्रेंच और डच लोगों के भी गोदाम थे। शिवाजी के आदमियों ने उन सबसे कर वसूल किया। फिर बाई से लगाकर तुंगभद्रा तक के सब भाग में और पश्चिम किनारे पर बीजपुर के प्रदेश में मराठों ने अपना शासन स्थापित करना शुरू किया।

हुबली की लूट और बाई से तुंगभद्रा तक क़ब्ज़ा

शिवाजी से लड़ने के लिए बहलोलख़ाँ लोधी बड़ी भारी फ़ौज लेकर आया। शिवाजी ने उससे लड़ने को प्रतापराव गूजर को भेजा। प्रतापराव बीजापुर के प्रदेश में लूट-मार करते हुए ख़ास बीजापुर तक आ पहुँचा। तब बहलोलख़ाँ पन्हाला का घेरा छोड़कर बीजापुर की मदद को गया। प्रतापराव ने अब उसका रास्ता रोक लिया। इस कारण उम्बरानी के पास बहलोल ख़ाँ और प्रतापराव में घमासान युद्ध हुआ। बहलोलख़ाँ के लोगों को पानी भी न मिला, इसलिए उसने यह करार किया कि अब मैं मराठों से कभी छेड़छाड़ न करूँगा। प्रतापराव ने उदार मन से शरण आये शत्रु को जीवदान दिया, परन्तु बहलोलख़ाँ के अगले कार्यों से यह दीख पड़ा कि प्रतापराव ने यह उदारता दिखलाकर उचित काम नहीं किया। बहलोलख़ाँ शिवाजी से

उम्बरानी और जेसरी के युद्ध

व्यक्तिगत शत्रुता रखता था और उसीके कारण यह युद्ध उठ खड़ा हुआ था। शिवाजी ये बातें अच्छी तरह जानता था और इस-लिए उसका विचार था कि बहलोलखाँ को पूर्णतया नष्ट किये और बीजापुर से मैं निर्भय न होऊँगा। प्रतापराव के उदार कार्य की खबर मिलने पर शिवाजी ने उसे संदेश भेजा कि बीजापुर वालों की हड्डी नरम किये बिना हमें चेहरा न दिखाओ। शिवाजी के कथन की सचाई शीघ्र ही दीख पड़ी। प्रतापराव को दूर गया देखकर बहलोलखाँ शिवाजी के प्रदेश में उपद्रव मचाने लगा। इसपर प्रतापराव ने गुस्से होकर उस पर फिर से हमला किया। परन्तु उसने अपनी फ़ौज की व्यवस्था की ओर भरपूर ध्यान न दिया, इससे उसके कुछ चुनिन्दे लोग और वह स्वयं भी समर में मारे गये और शेष फ़ौज को बीजापुर की फ़ौज ने तितर-बितर कर दिया। परन्तु सुदैव से हंसाजी मोहते नामका एक मराठा सरदार उसी भाग में कुछ दूर पर था। प्रता-पराव की मृत्यु की खबर पाते ही बड़े वेग से वह बहलोलखाँ से लड़ने के लिए दौड़ आया। इस कारण भागनेवाले मराठों को धैर्य मिला और सबने मिलकर ऐसे ज़ोरों का हमला किया कि बीजापुर की फ़ौज हारकर भाग गई। यह लड़ाई सन् १६७४ के फ़रवरी महीने में जेसरी नामक स्थान में हुई।

बहलोलखाँ के बीजापुर लौट जाने पर मराठों ने आदिलशाही में बहुत गड़बड़ मचा दी। इस समय बीजापुर के दरबार में फिर से झगड़े उठ खड़े हुए। बहलोलखाँ ने खवासखाँ वज़ीर को मार डाला। इस दुष्कृत्य का परिणाम उसे शीघ्र ही भुगतना पड़ा। मराठों

बीजापुर-विजय स्थगित

ने शीघ्रता से बीजापुर के प्रदेश को जीतना शुरू कर दिया। बहलोलखाँ और मुग़ल सरदार दिलेरखाँ में मित्रता थी और दोनों शिवाजी को नष्ट करना चाहते थे। उनको औरंगज़ेब का ज़ोर भी था। परन्तु बहलोलखाँ का दरबार तथा लोगों में कुछ भी प्रभाव न था, इसलिए वह अपना मतलब पूरा न कर सका। इधर सन् १६७४-७५ में शिवाजी राज्याभिषेक तथा राज्य-व्यवस्था में लगा हुआ था। अतएव फ़िलहाल उसे बीजापुर को जीतने का इरादा मुल्तवी कर देना पड़ा।

१३

राज्याभिषेक और अन्त

पहलेपहल कोंडाणा किला लेने के समय से अबतक २६-२७ वर्ष बीत चुके थे। शिवाजी ने इस समय तक बहुत-सा प्रदेश अपने क़ब्ज़े में कर लिया था। यह पहले बतला ही चुके हैं कि इसकी स्थापना महाराष्ट्रियों की स्वराज्य-कल्पना के कारण हो सकी। तथापि अबतक उसपर यह छाप नहीं लगी थी कि जिस स्वराज्य-कल्पना की भावना लोगों के मन में बन रही थी उसीका यह मूर्तिमान स्वरूप है। इस राज्य के विषय में लोगों की यह भावना होना आवश्यक था। इस कारण उसके सहकारियों को इस बात की आवश्यकता जान पड़ी कि जिस पुरुष ने इस राज्य की स्थापना की वह अपना राज्याभिषेक कराकर अपने को हिन्दू-धर्म का प्रतिपालक कहला ले। इस प्रकार यह राज्य हिन्दू-धर्म का संरक्षक समझा जावे और सब लोग इसके संरक्षण एवं वर्धन में सहायक

राज्याभिषेक की आवश्यकता

हों। राज्याभिषेक से एक और लाभ होने की सम्भावना थी। शिवाजी की पुराने प्रसिद्ध मराठे घराने के सरदारों ने मदद की थी, और इनमें से कई उसकी नौकरी में भी थे, परन्तु ये लोग अपने को भोंसलों की बराबरी के अथवा उनसे भी ऊँचा समझते थे और शिवाजी के साथ अपने वर्त्ताव में इस बात की ऐंठ भी दिखलाते थे। यह कल्पना महाराष्ट्र के स्वतंत्र राज्य के लिए घातक थी। जिस समय लोकतंत्र की कल्पना देश में नहीं थी, उस समय यह आवश्यक था कि एकतंत्र के मूर्तिमान राजा की आज्ञायें सब कोई भक्ति-भाव से मानें। इस प्रकार की कल्पना हुए बिना शिवाजी का कार्य स्थायी न हो सकता था। राज्याभिषेक की तीसरी आवश्यकता यह थी कि शिवाजी लोकमान्य राजा दीख पड़ा। उसने अबतक जितना राज्य जीता था, वह पहले या तो बीजापुर के राज्य में था या मुग़ल-साम्राज्य में था। ये दोनों राज्य शिवाजी को बाग़ी, लुटेरा आदि कहा करते थे। जो उसे अपना सरदार समझते थे, वे भी उसे स्वतंत्र राजा तथा उसके राज्य को स्वतंत्र राज्य नहीं मानते थे। राज्याभिषेक से शिवाजी को यह दिखला देना था कि मैं अपने देश का स्वतंत्र राजा हूँ और मेरी प्रजा मुझे ऐसा ही मानती है। इस प्रकार की लोकमान्यता मिलने पर आदिलशाह तथा मुग़ल बादशाह के उसे लुटेरा, बाग़ी आदि कहने में कोई जान नहीं रह सकती थी। उलटे वही यह कह सकता था कि तुम लोग यहाँ विदेशी हो और लोकमान्यता से नहीं किन्तु सेना के बल से इस देश पर राज्य कर रहे हो। उपर्युक्त बातों का विचार करके शिवाजी तथा उसके सहकारियों ने राज्याभिषेक का निश्चय किया।

इस कार्य में एक कठिनाई उपस्थित हुई। हिन्दू-शास्त्र के अनुसार केवल क्षत्रियों को राज्याभिषेक का अधिकार मिला है।

कठिनाई और उसका निवारण

शिवाजी के मूल पुरुष क्षत्रिय थे, परन्तु महाराष्ट्र में रहते-रहते पूरी तौर से मराठे बन चुके थे। इस कारण उसके घराने में क्षत्रियों की रीति-भाँति कुछ भी न रह गई थी और कदाचित क्षत्रिय मूल की बात भी सामान्य स्मृति से दूर हो चुकी थी। इसलिए इस समय महाराष्ट्र के ब्राह्मण लोग शिवाजी का राज्याभिषेक करने को तैयार न थे। ये दोनों अड़चनें इस समय दूर की गई। कहते हैं कि शिवाजी ने उदयपुर को अपने आदमी भेजकर उस घराने से अपने सम्बन्ध की मान्यता प्राप्त की, तथा काशी से वहाँ के प्रसिद्ध पंडित गागाभट्ट को इस कार्य के लिए बुलाया।

राज्याभिषेक का दिन सन् १६७४ के जून की छठी तारीख यानी शक संवत् १५९६ की ज्येष्ठ शुद्ध त्रयोदशी निश्चित हुई।

राज्याभिषेक

शिवाजी का व्रतबन्ध अबतक न हुआ था, ज्येष्ठ शुद्ध चतुर्थी को सम्पन्न हुआ; फिर त्रयोदशी तक भिन्न-भिन्न धार्मिक संस्कार होते रहे। त्रयोदशी के दिन राज्याभिषेक का कार्य प्राचीन शास्त्रों के अनुसार समाप्त हुआ। इस तिथि से शिवाजी ने राज्याभिषेक शक शुरू किया। रायगढ़ को अपनी राजधानी बनाया। 'क्षत्रियकुलावतंस श्री राजा शिव छत्रपति' नाम की उपाधि धारण की। गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक, स्वधर्म-संरक्षक और स्वराष्ट्र-संवर्धक के कर्तव्य उसने अपने ऊपर ज़ाहिरा तौर पर लिये। अपने मंत्रियों के

फ़ारसी नाम बदलकर संस्कृत नाम रक्खे। राज-कारबार के उपयोग में आने वाले फ़ारसी शब्दों के लिए संस्कृत शब्दों का 'राज-व्यवहार-कोष' रघुनाथ पंडित-द्वारा तैयार करवाया। अबतक उसके मंत्रियों के काम पूर्णतया निश्चित नहीं हुए थे, इसलिए उसने अपने अष्ट-प्रधान-मण्डल के भिन्न-भिन्न कार्यों के वर्णन का आज्ञा-पत्र जारी किया। इस राज्याभिषेक के समय सर्व-साधारण ने जो हर्ष प्रकट किया, उसने यह सिद्ध कर दिया कि यह राज्य शिवाजी का नहीं किन्तु महाराष्ट्र का और हिन्दू-धर्म का राज्य है। इस घटना के कुछ दिनों बाद ही शिवाजी की माता जीजाबाई की मृत्यु हुई।

पोर्त्तगीज़ों पर चढ़ाई तथा फलटण पर क़ब्ज़ा

इसके बाद, इसी वर्ष, उसने पोर्त्तगीज़ों के बसई-भाग पर हमला किया। उसने मोरोपन्त के साथ दस हज़ार सेना कल्याण की ओर भेजी। पोर्त्तगीज़ों ने इस समय कुछ हिंदुओं को जबरदस्ती ईसाई बना डाला था। इसलिए मोरोपन्त ने उनसे चौथ की माँग की। पोर्त्तगीज़ों ने मराठों का चौथ का हक़ तो स्वीकार न किया, परन्तु कुछ धन देकर किसी प्रकार यह संकट दूर किया। सन् १६७५ में धर्मपुर राज्य के कुछ लोगों ने कल्याण-भाग में हमला किया। यह शक था कि मुग़लों ने कदाचित् उन्हें उकसाया था। इसलिए मोरोपन्त ने खानदेश के औंढा और पट्टा नामके दो क़िले वापस ले लिये। फिर शिवाजी ने शिवनेरी लेने का फिर से प्रयत्न किया, परन्तु इस कार्य में वह इसबार भी विफल हुआ। इसलिए यहाँ का घेरा उठाकर वह फलटण के आस-पास के मार्ग में पहुँचा। दो

साल पहले अब्दुलकरीम बहलोलखाँ ने इसे ले लिया था। फिर वह कोंकण में, कोंडा क़िले को लेने के लिए, पहुँचा; और घेरा डालकर सन् १६७६ में उसे ले लिया। फिर लूट-मार करते हुए वह रायगढ़ वापस आया। हम्बीरराव मोहिते ने मुग़लों के प्रदेश में गुजरात तक चढ़ाई की और लूट का बहुत-सा माल रायगढ़ ले आया। इसके बाद इस वर्ष का वर्षाकाल समाप्त होने पर फलटण-भाग पर फिर चढ़ाई की और वहाँ के नाईक निम्बालकर को भगा कर तथा वहाँ अनेक क़िले बनाकर उसपर उसने अपना क़ब्ज़ा पक्का कर लिया। इसके बाद शिवाजी कुछ समय तक रायगढ़ में बीमार रहा। इसी बीमारी के समय उसने कर्नाटक-विजय की बात सोची।

कर्नाटक-विजय का निश्चय

यह पहले बतला ही चुके हैं कि शाहजी की कुछ जागीर कर्नाटक में भी थी। उसमें बंगलोर और तंजोर के भाग और अरणी तथा पोर्टोनोव्हो के क़िले शामिल थे। साथ ही पहले यह भी बतलाया जा चुका है कि यह जागीर शाहजी ने अपने प्रथम पुत्र सम्भाजी को देना चाहा था, परन्तु सम्भाजी की मृत्यु के बाद उसके सौतेले भाई व्यंकोजी ने उसपर अपना क़ब्ज़ा कर लिया था और वह तंजोर में रहता था। उसके पास रघुनाथ नारायण हनुमंते नाम का चतुर कारबारी था। परन्तु व्यंकोजी डरपोक और आलसी पुरुष था, इस कारण इन दोनों में न पटी और रघुनाथ पंत शिवाजी के पास चला आया। शिवाजी कर्नाटक-विजय की बात सोच ही रहा था। इसी बीच रघुनाथ पन्त भी उसके पास आ पहुँचा।

कर्नाटक-विजय का एक कारण और उपस्थित हुआ। इस समय गोलकुण्डा की स्थिति बुरी थी। औरंगज़ेब गोलकुण्डा लेने के ताक में ही बैठा था, इसलिए रघुनाथ पन्त ने सोचा कि यदि कुतुबशाह और शिवाजी की मैत्री हो जाय तो गोलकुण्डा नष्ट होने से बच जायगा और शिवाजी को उसकी मदद मिल सकेगी। गोलकुण्डा के शासन-सूत्र इस समय मादन्ना और आकन्ना नाम के दो भाइयों के हाथ में थे। इसलिए रघुनाथ पन्त ने सोचा कि कुतुबशाही और शिवाजी के बीच मैत्री होने में कठिनाई न होगी। अतएव रघुनाथ पन्त शिवाजी के पास जाने के पहले गोलकुण्डा में गया। इस समय मुग़लों से बीजापुर वालों का मेल था और वे दक्षिणी भाग को जीतकर मुग़लों के क़ब्ज़े में देने की बात सोच रहे थे। उनका यह विचार कुतुबशाही के लिए नाशक था, इसलिए रघुनाथ पन्त ने सोचा कि शिवाजी और कुतुबशाह के बीच मैत्री होना सम्भव है और दोनों मिलकर दक्षिण भाग को मुग़लों के हाथ में जाने देने से अवश्य रोकेंगे।

ऐसा विचारकर रघुनाथ पन्त पहले गोलकुण्डा गया और वहाँ के कारबारी मादन्ना और आकन्ना से मिला। उन्हें इस बात के लिए राज़ी किया कि कुतुबशाह और शिवाजी के बीच मैत्री हो और दोनों मिलकर उस भाग को पहले ही जीत लें कि जिसे मुग़ल और बीजापुर ले लेना चाहते हैं। यहाँ से वह फिर शिवाजी की भेंट को गया और अपने मन की सब बातें उसे बताईं। शिवाजी ने अपने कारबारियों की सलाह ली और कर्नाटक की चढ़ाई का निश्चय कर लिया।

शिवाजी ने अपने साथ बड़ी भारी फ़ौज और बहुत-सा सामान

लिया और पहले वह गोलकुण्डा को गया। वहाँ उसने कुतुबशाह से मित्रता की सन्धि की और कर्नाटक-विजय के कार्य में उसे भी शामिल कर लिया। दोनों में यह निश्चय हुआ कि जो कुछ प्रदेश जीता जाय वह दोनों में आधा-आधा बाँट लिया जाय। शिवाजी यहाँ क़रीब एक महीने बना रहा। इसके बाद उसने दक्षिण की ओर कूच किया।

गोलकुण्डा से मेल

तुंगभद्रा के किनारे प्रेमल में उसने पड़ाव किया। यहाँ से वह श्री शैल-मल्लिकार्जुन और निवृत्ति-संगम नामक तीर्थ-क्षेत्रों के दर्शनों को गया। वहाँ घाट, मठ, धर्मशाला आदि बनवा कर और बहुत-सा दान-धर्म करके वह जिञ्जी की ओर बढ़ा। रास्ते में वेलोर लेने के लिए उसने जो फ़ौज भेजी थी उसने वेलोर ले लिया। जिञ्जी के समीप पहुँचने पर वहाँ के क़िलेदार ने क़िला ख़ाली कर दिया। शिवाजी ने वहाँ लगान आदि का बन्दोबस्त महाराष्ट्र के समान ही शुरू किया, और इसके बाद कावेरी के किनारे त्रिनमल्ली उर्फ़ त्रिवादी में पड़ाव किया।

वेलोर तथा जिंजी की विजय

त्रिनमल्ली से उसने अपने भाई व्यंकोजी को लिखा कि पुरखों की जायदाद का आधा हिस्सा हमें भी दो। दोनों पक्ष के लोगों की बात-चीत शुरू हुई, फिर व्यंकोजी शिवाजी की भेंट को आया। शिवाजी ने उसे अनेक प्रकार से समझाया और उससे अपना हिस्सा माँगा। व्यंकोजी शिवाजी के पास क़रीब दो-ढाई महीने रहा, परन्तु इस बात का उसने कोई फ़ैसला नहीं किया। सम्भवतः

शिवाजी और व्यंकोजी के बीच झगड़ा व समझौता

उसे यह आशा थी कि बीजापुर से मुझे मदद मिलेगी और बड़े भाई को आधा हिस्सा देने से मैं बच जाऊँगा। अन्त में जब शिवाजी ने यह देखा कि व्यंकोजी किसी प्रकार का जवाब नहीं देता, तो उसने उसे अपने स्थान को वापस जाने की छुट्टी दे दी। पर बीजापुर से व्यंकोजी को जो पत्र आया, उससे वहाँ से मदद मिलने की आशा नष्ट हो गई। इतने पर भी कुछ मुसलमानों ने उसे शिवाजी से लड़ने के लिए उकसाया। शिवाजी चाहता था कि दोनों पक्षों में लड़ाई का मौक़ा न आवे; परन्तु व्यंकोजी ने जब उसकी फ़ौज पर हमला कर ही दिया, तो दोनों पक्षों में वालकुण्डपुर के पास लड़ाई हुई। इस लड़ाई में व्यंकोजी हार गया और उसके कई आदमी मारे गये। लड़ाई का हाल शिवाजी को मालूम होते ही उसने अपने भाई को पत्र-द्वारा फिर भी समझाने का प्रयत्न किया। अन्त में दोनों में मेल हो गया। इस संधि की एक शर्त यह भी थी कि बीजापुरवाले यदि बराबरी के नाते हमसे मदद माँगें तो वह हम दें, परन्तु यह मदद नौकरी के रूप में न होगी। यह शर्त बहुत महत्व की है और शिवाजी के वास्तविक हृदय की द्योतक है। वह यह न चाहता था कि हिन्दू लोग मुसलमानों के गुलाम बने रहें। यही बात उसने व्यंकोजी को भी एक पत्र में दरसाई है। कदाचित् इसी कारण उसने कर्नाटक पर चढ़ाई की। पुश्तैनी जायदाद के आधे हिस्से की माँग बीजापुर और मुग़लों को दिखलाने के लिए बहाना था। कर्नाटक की चढ़ाई में उसका मुख्य उद्देश्य यह था कि उस भाग में मुसलमानों के बजाय हिन्दुओं का शासन रहे, ताकि उसके स्वतंत्र हिन्दू राज्य को किसी प्रकार का डर न

पैदा हो; और इसलिए व्यंकोजी उसके कहे अनुसार चले। यदि व्यंकोजी ने उसका कहना मान लिया होता, तो कदाचित् दोनों भाइयों के बीच क़तई झगड़ा पैदा न हुआ होता।

कर्नाटककी चढ़ाई का परिणाम

इस चढ़ाई से कर्नाटक में उसका दबदबा जम गया। बंगलोर, कोलार आदि क़िले और गदग, मुलगुंद, लक्ष्मीश्वर, बेलवाड़ी आदि स्थान उसके क़ब्ज़े में आये। इसमें से कुछ उसने व्यंकोजी तथा उसकी स्त्री को दे दिये। रघुनाथ पंत को उसने अपने प्रदेश के इधर का कारबारी बनाया और मुग़लों की चढ़ाई का हाल सुनकर वह शीघ्र ही रायगढ़ को लौट गया। साथ में वह कर्नाटक से बहुत-सा द्रव्य भी ले गया।

सावनूर की लड़ाई और तुंगभद्रा-कृष्णा के दोआब पर क़ब्ज़ा

वापस आते समय शिवाजी ने तुंगभद्रा के उत्तर में कुछ फ़ौज रख दी थी। तुंगभद्रा और कृष्णा के बीच का दोआब बीजापुर के अधिकार में था। दक्षिण के जीते हुए प्रदेश से आवागमन की सरलता के लिए इस भाग को जीतने की आवश्यकता मराठों को जान पड़ी। इसलिए मोरोपंत पिंगले ने कोपल नाम का स्थान अपने क़ब्ज़े में कर लिया। कर्नाटक में सेनापति हम्बीरराव मोहिते के अधीन शिवाजी ने कुछ सेना रख दी थी, उसे अब उसने वापस बुलाया। मार्ग में हम्बीरराव मोहिते कुछ समय दोआब की मराठी छावनी में रहा। यहाँ पर बीजापुर की फ़ौज ने सावनूर के पास उसपर हमला कर दिया। हम्बीरराव ने बीजापुर की फ़ौज को पूर्णतया हरा दिया और उसके अधिकारी हुसेनख़ाँ मायना को क़ैद कर

लिया। इसपर बीजापुर ने एक बड़ी भारी फ़ौज भेजी। हम्बीरराव सावधान ही था और धनाजी जाधव उसकी मदद को आ पहुँचा था। दोनों ने बीजापुर की फ़ौज को बीजापुर तक खदेड़ दिया। इस लड़ाई से तुंगभद्रा और कृष्णा का दोआब मराठों के क़ब्ज़े में आया। शिवाजी ने रघुनाथ पंत के भाई जनार्दन नारायण हनुमंते को इस भाग का अधिकारी नियत किया।

कर्नाटक जाते समय शिवाजी ने गोलकुंडा से जो मेल किया था, वह बीजापुर के कारबारी बहलोलखाँ को अच्छा न लगा।

बीजापुर की मुग़लों से रक्षा करने का प्रयत्न

वह गोलकुंडावालों पर बहुत नाराज़ हुआ। दक्षिण का मुग़ल सूबेदार दिलेरखाँ कुतुबशाह और आदिलशाह को नष्ट करने के लिए तैयार बैठा था। उसने पहले बीजापुर से मेलकर के गोलकुंडा पर चढ़ाई की। परन्तु मादन्ना ने बहुत मेहनत करके फ़ौज जमा की और बीजापुर वालों को तथा मुग़लों को हरा दिया। इसके बाद शीघ्र ही बहलोलखाँ मर गया। मसाऊदख़ाँ सिद्दी उसकी जगह कारबारी हुआ। दिलेरखाँ की गोलकुण्डा की चढ़ाई का हाल औरंगज़ेब को अच्छा न लगा। उसने उसे तुरन्त बीजापुर पर चढ़ाई करने का हुक्म भेजा। इस हुक्म के अनुसार दिलेरख़ाँ ने बीजापुर पर चढ़ाई की और उसे घेर लिया। यह देख मसाऊदख़ाँ को कुछ न सूझ पड़ा कि किस प्रकार बीजापुर की रक्षा की जाय। अन्त में उसे यह विचार आया कि शिवाजी से सहायता माँगूँ। उसने शिवाजी को बहुत नम्रता के साथ पत्र लिखा। शिवाजी ने मसाऊदखाँ की प्रार्थना स्वीकार करली और बीजापुर के घेरे को उठवा देने की

युक्ति सोची। वह गोदावरी नदी पार कर जालना शहर को पहुँचा और वहाँ उसने बहुत-सा कर वसूल किया। पास ही औरंगाबाद में सुलतान मुअज़्ज़म था, परन्तु शिवाजी ने उसकी कोई पर्वाह न की और मुग़लों के प्रदेश में खूब गड़बड़ मचा दी। परन्तु दिलेरखाँ बीजापुर का घेरा छोड़ता ही न था। उसने बीजापुर को लेने का पूर्ण निश्चय कर लिया था। मुअज़्ज़म ने रणमस्तखाँ को दस हज़ार फ़ौज देकर शिवाजी पर चढ़ाई करने को भेजा, वह उसका पीछा करता हुआ आया। दोनों की जालना* के पास मुठभेड़ हुई और बड़ी भयंकर लड़ाई हुई। पहले तो ऐसा जान पड़ा कि मराठे हार जावेंगे। उनका सिधोजी निम्बालकर नामका सरदार मारा गया और संताजी घोरपड़े पीछे हटा। तब शिवाजी ने स्वयं सैन्य को उत्तेजना दी और शत्रु पर हमला कर मुग़ल सेना को मार भगाया। फिर किशनसिंह के अधीन २० हज़ार मुग़ल फ़ौज आ पहुँची। इसपर बहरजी नायक के दिखलाये हुए रास्ते से शिवाजी सब लूट समेत नासिक के पास पट्टा नामक क़िले में चला गया। तब मुग़ल सेना औरंगाबाद लौट गई। पट्टा में शिवाजी ने कुछ काल तक विश्राम किया। इसलिए उसने उसका नाम विश्रामगढ़ रख दिया। यहाँ से वह रायगढ़ को चला आया।

रायगढ़ पहुँचते ही उसे बीजापुर का संदेश मिला कि तुरन्त यहाँ आकर आदिलशाही को बचाओ। शिवाजी ने फिर से यह काम स्वीकार किया और बड़ी शीघ्रता से बीजापुर के लिए रवाना हो गया। परन्तु रास्ते में उसे मालूम हुआ कि

सम्भाजी का विद्रोह और उसकी शान्ति

* ग्रेण्ट डफ़ का मत है कि यह लड़ाई संगमनेर के पास हुई।

सम्भाजी मुझसे बाग़ी होकर दिलेरख़ाँ से जा मिला है। इस-लिए पहले उसे इस आपत्ति को दूर करने में लगना पड़ा। सम्भाजी बालपन से ह कामी और मद्यपी था। शिवाजी ने उसे सुधारने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु सफ़लता न मिली। उसने उसे कुछ काल तक रामदास स्वामी की संगति में भी रक्खा था, परन्तु वहाँ भी वह न सुधरा। इसके बाद वह घर में झगड़े-फ़साद करके घर से निकल गया और दिलेरख़ाँ के पास पहुँचा। उसने इसे अपने पास रख लिया और औरंगजेब को इस बात की ख़बर दे दी। परन्तु उत्तर पहुँचने के पहले ही दिलेरख़ाँ ने कुछ फ़ौज देकर सम्भाजी को भूपालगढ़ लेने के लिए भेजा। क़िले के मोर्चे लगाकर सम्भाजी क़िले के सामने खड़ा हो गया। क़िले का हवलदार फिरंगोजी नरसाला था। यह वही पुरुष था, जिसने सन् १६६२ में चाकण के क़िले पर शाइस्ताख़ाँ से टक्कर ली थी। सामने सम्भाजी को देख-कर उसकी फ़ौज पर गोले बरसाने की हिम्मत फिरंगोजी को न हुई। क़िला अधीन कर देने का सम्भाजी का सख़्त हुक्म पहुँचते ही क़िले के बहुतेरे लोग रातों-रात भाग गये। जो थोड़े-बहुत बच रहे, उनके साथ सम्भाजी ने क़िला हाथ में आने पर बड़ी क्रूरता का व्यवहार किया; परन्तु शीघ्र ही उसे अपने राज्य में वापस आना पड़ा, क्योंकि उसे आश्रय में रखने की दिलेरख़ाँ की सिफ़ा-रिश औरंगजेब को पसन्द न हुई। वह शक्की आदमी था; उसे शक हुआ कि शिवाजी ने ही उसे मुग़लों का हाल जानने के लिए भेजा है। इसलिए उसने दिलेरख़ाँ को अधिकारच्युत किया, ख़ाँजहाँ बहादुर को सूबेदार बनाकर भेजा और सम्भाजी को क़ैद कर दिल्ली

भेजने के लिए लिखा। इसी समय शिवाजी ने सम्भाजी को समझाने के लिए कुछ लोग भेजे थे। विश्वासघात करके सम्भाजी को क़ैद करने की हिम्मत दिलेरखाँ को न हुई। इसलिए उसने शिवाजी के पास से आये हुए लोगों से सम्भाजी की भेंट करा दी और उन्हें भाग जाने के लिए कहा, इस कारण सम्भाजी पिता के पास वापस चला आया। उसे अब १की ठोकर लग गई थी। उसे यह स्पष्ट जँच गया कि दिलेरखाँ की सज्जनता के कारण ही मैं बच सका। शिवाजी ने उसे कुछ उपदेश की बातें बतलाई और पन्हाला किले में अच्छी देख-रेख में रख दिया। पिता की मृत्यु होने तक वह वहीं रहा।

शिवाजी यद्यपि सम्भाजी को वापस लाने की खट-पट में लगा था, तथापि बीजापुर को सहायता देने का काम कर ही रहा था।

शिवाजी ने बीजापुर को बचा लिया

उसने हम्बीरराव को बीजापुर भेजा। इस सेनापति ने दिलेरखाँ की सेना को रसद न मिलने दी। फिर और भी मराठे बीजापुर की मदद को पहुँचे। यह देख मसाऊदखाँ की हिम्मत बढ़ी। अन्त में दिलेरखाँ त्रस्त हो गया और बीजापुर को लेना उसे असम्भव जान पड़ा। इसी समय मोरोपन्त पिंगले ने औंढा और नहावागढ़ नामक मुग़ल किले लिये और खानदेश पर अपनी सेना फैला दी; इस कारण दिलेरखाँ घेरा उठाकर वापस चला गया। इस प्रकार शिवाजी ने बीजापुर को इस समय बचा दिया और आदिलशाही और कुछ वर्ष जीती रही। मसाऊदखाँ ने शिवाजी के उपकार माने, दोनों की बीजापुर के पास भेंट हुई। इस अवसर पर उसने कर्नाटक के शिवाजी के जीते हुए सब प्रदेश पर मराठों का अधिकार स्वी-

कार किया और शाहजी की तमाम जागीर शिवाजी को दे दी।

बीजापुर की रक्षा का काम शिवाजी के जीवन का अन्तिम काम था। इसके बाद वह थोड़े दिनों की बीमारी के बाद शीघ्र ही मर गया। शिवाजी ने अपना कार्य केवल १८ वर्ष की अवस्था में प्रारम्भ किया था। तबसे मृत्यु-पर्यन्त उसे कभी भी विश्रान्ति न मिली। वह सदैव लड़ाई-झगड़ों में लगा रहा। इस कारण कोई आश्चर्य नहीं कि केवल ५० वर्ष की अवस्था में, केवल सात दिन के ज्वर के बाद, गुड़घी रोग से, उसका अन्त हो गया!

अन्त

१४

मराठों का जंगी बेड़ा

शिवाजी को अधिकांश लड़ाइयाँ ज़मीन पर ही लड़नी पड़ीं; परन्तु कोंकण के समुद्री किनारे पर अधिकार जमाने के लिए वहाँ के मुसलमान, अंग्रेज़ तथा पोर्त्तगीज़ लोगों से कुछ समुद्री युद्ध भी उसे करने पड़े। इस किनारे पर तथा इधर के समुद्र में मिलनेवाली नदियों के मुख पर चौल, दाभोल आदि बन्दरगाह बहुत प्राचीनकाल से प्रसिद्ध थे। यहाँ अरब, ईरान आदि देशों के लोग व्यापार के लिए आया करते थे। इसलिए भड़ोंच से गोवा तक कोंकण के भाग को अपने क़ब्ज़े में रखने की आवश्यकता शिवाजी को आरम्भ से ही जँच गई थी। कोंकण को जीतने पर उसकी रक्षा के प्रबन्ध का काम भी करना पड़ा और इसके लिए उसने धीरे-धीरे जंगी बेड़े का बन्दोबस्त किया तथा किनारे पर कुछ मज़बूत क़िले और बन्दरगाह बनवाये।

जंगी जहाज़ी बेड़े की आवश्यकता

शिवाजी को समुद्र पर जो झगड़ा करना पड़ा, वह मुख्यतः

जंजीरा के सिद्दी सरदार से हुआ। बम्बई के दक्षिण की ओर

कोंकण के उत्तरी किनारे पर क़ब्ज़ा तथा जंगी बेड़े की व्यवस्था

क़रीब ४५ मील पर राजापुर की खाड़ी है। उसके उत्तरी किनारे पर दंडा और राजपुरी नाम के बन्दरगाह हैं। उनमें से राजपुरी बिलकुल खाड़ी के मुँह के पास है और दंडा उसके आग्नेय की ओर क़रीब दो मील पर है। इन दोनों स्थानों का संयुक्त नाम दंडा-राजपुरी है। इस खाड़ी के पश्चिम की ओर एक पथरीला द्वीप है और उसपर मज़बूत क़िला बना हुआ है। यही प्रसिद्ध जंजीरा है। ❀ यह स्थान सिद्दी लोगों के अधिकार में था और उसके सामने के कोंकण भाग पर भी उनका ही शासन था। ये लोग ऐबीसोनिया (हबसाण) से आये हुए थे, इसलिए उन्हें हब्शी भी कहते थे। सय्यद शब्द का अपभ्रंश होकर वे सिद्दी कहलाने लगे। वे बड़े शूर और अच्छे दर्यावर्दी लोग थे। चौदहवीं सदी से उन्होंने हिन्दुस्थान के साथ व्यापार शुरू किया और हिन्दुस्थान के किनारे पर बसने लगे। दक्षिण में जब मुसलमानी राज्य स्थापित हुए तब इन लोगों ने अच्छा नाम कमाया और इनमें से कई लोग सरदार बन गये। प्रारम्भ में कोंकण का भाग अहमदनगर की निजामशाही में था और इसलिए सिद्दी सरदार उसके मातहत थे। सन् १६३६ में निजामशाही के नष्ट होने पर कोंकण का भाग बीजापुर की

❀ जंजीरा शब्द के दो अर्थ हैं। एक तो यह उस द्वीप का नाम है; और दूसरे समुद्र के अथवा समुद्री किनारे के किसी भी क़िले को जंजीरा कहते हैं।

आदिलशाही में चला गया, तब बीजापुर-दरबार ने जंजीरा के सिद्दी सरदार को वज़ीर का ख़िताब देकर कोंकण का सूबेदार नियत किया। दोनों में शर्त यह थी कि सिद्दी समुद्री व्यापार की रक्षा करे तथा मक्का को जानेवाले यात्रियों को किसी प्रकार का कष्ट न होने दे। इस समय से जंजीरा के सिद्दी सरदार का शासन नागोठना से बाणकोट तक के कोंकण-भाग में जारी हुआ। उत्तर की ओर नागोठना से कल्याण तक का कोंकण-भाग बीजापुर के अधिकार में था और उसके लिए अलग सूबेदार कल्याण में नियत हुआ था। शिवाजी ने सन् १६४८ में कोंकण में जाकर तलें, घोसाले आदि क़िले हस्तगत किये, तबसे सिद्दी लोगों का मराठों से वास्ता पड़ने लगा। सिद्दी लोग हिन्दू-धर्म के विरोधी थे और कोंकण के हिन्दुओं को कष्ट दिया करते थे। इसलिए शिवाजी ने जंजीरा के सिद्दी को कोंकण से मार भगाने का निश्चय किया। अनुकूल अवसर पाकर उसने नागोठना से बाणकोट तक सब क़िले जीत लिये और कोंकण के उस भाग पर अपना कब्ज़ा जमाया। अन्त में केवल दंडा और राजपुरी सिद्दी के हाथ में रह गये, क्योंकि यहाँ पर उसने बहुत मज़बूत क़िलेबन्दी की थी। इन्हें लेने का काम शिवाजी ने शामराव रांभेकर को सौंपा, परन्तु वह सन् १६५९ में विफल होकर वापस चला आया। दूसरे साल राघोबल्लाल अत्रे ने यह काम अपने ऊपर लिया और बहुत परिश्रम करके दोनों स्थानों पर क़ब्ज़ा कर लिया। अब सिद्दी के हाथ में किनारे का कुछ भी भाग न रहा, केवल जंजीरा बच रहा। मराठों ने इसे भी लेने का निश्चय किया, परन्तु यह क़िला समुद्र में दूर होने के कारण किनारे से इसपर मार

न बैठती थी। समुद्र-तट मराठों के हाथ में होने के कारण खाने-पीने की चीजें तथा अन्य सामान सिद्दी को यहाँ से न मिलता था, मगर सिद्दी के पास जहाज़ होने से वह सब सामान दूसरे स्थानों से ले आता था। अतएव शिवाजी को जहाज़ों का जंगी बेड़ा तैयार करना पड़ा। उसने शीघ्र ही दक्षिण कोंकण जीतकर वाड़ी के सावन्त आदि हिन्दू रजवाड़ों को अपने मातहत कर लिया। सुवर्णदुर्ग, विजयदुर्ग आदि समुद्री क़िले दुरुस्त किये और कई नये क़िले बनाये। इनमें मालवण का सिन्धुदुर्ग मुख्य है। इस क़िले के बनने का काम तीन वर्ष तक चलता रहा और सन् १६६४ में स्वयं शिवाजी के हाथों इस क़िले का प्रवेश-महोत्सव हुआ। सुवर्ण-दुर्ग, विजयदुर्ग, पद्मदुर्ग, अंजनवेल, रत्नागिरी आदि स्थानों में जहाज़ बनाने का काम चलता था। कोंकण के समुद्री किनारे पर कोली तथा भण्डारी जाति के लोग रहते थे। वे बड़े कट्टर तथा समुद्र-संचार करने में प्रवीण थे। उन्हींमें से शिवाजी ने अपने जंगी बेड़े के लिए लड़ाकू लोगों की भरती की। प्रारम्भ में शिवाजी के पास केवल तीन जहाज़ थे, परन्तु उसके अन्त समय तक उनकी संख्या साठ से भी अधिक हो गई थी। इस जंगी बेड़े में सब मिलाकर पाँच हज़ार लोग थे। दरिया सारंग और माय-नायक भण्डारी नामक दो पुरुष इनके मुख्य अधिकारी थे। सिधोजी गूजर और कान्होजी आँगरे नामक दो पुरुषों ने शिवाजी के इस बेड़े में नौकरी करके आगे अच्छा नाम कमाया। शिवाजी के समय में मालवण का सिंधुदुर्ग ही उसके बेड़े का मुख्य स्थान था।

मराठों का जंगी बेड़ा तैयार हुआ तब गोवा के पोर्त्तगीज़

शिवाजी से दबे और उन्होंने उससे सन्धि करली। उन्होंने समय-समय पर उसे गोला-बारूद और तोप देना स्वीकार किया और हर साल वे शिवाजी को नज़राना भी भेजने लगे।

दक्षिणी कोंकण पर क़ब्ज़ा

शीघ्र ही मराठों के इस बेड़े का संचार पूरे कोंकण किनारे पर होने लगा और इससे उसे ख़ूब लाभ हुआ। समुद्री किनारे का व्यापार बढ़ा और मराठे जहाज़ ईरान और अरब के बन्दरों को भी जाने-आने लगे। कोंकण के किनारे पर डच, अंग्रेज़ आदि यूरोपीय लोगों के जो कारखाने थे, उनसे भी इन लोगों का व्यापार शुरू हुआ और उन सब पर शिवाजी का दबदबा अच्छा जम गया। सन् १६६५ में ८५ छोटे जहाज़ और ३ बड़े जहाज़ लेकर ७ हज़ार लोगों के साथ शिवाजी मालवण से निकला और गोवा से दक्षिण की ओर १३० मील पर बिदनूर राज्य के बन्दरगाह में अचानक उतरा। वहाँ उसने बहुत-सा कर वसूल किया, फिर वह वापस लौटा। रास्ते में गोकर्ण-क्षेत्र में उतरकर, महाशिवरात्रि के दिन उस क्षेत्र में स्नान करके, महाबलेश्वर के दर्शन को गया। फिर कारवार, अंकोला आदि बन्दरगाहों से कर वसूल करते हुए वह वापस आया। इस अवसर पर कारवार के अंग्रेज़ व्यापारियों ने भी कर दिया था। इसके बाद शिवाजी ने स्वयं फिर कभी समुद्री चढ़ाई न की। हाँ, इस घटना के दस वर्ष बाद यानी सन् १६७५ में शिवाजी ने गोवा के पास का फोण्डे नाम का मज़बूत क़िला और कानड़ा का भाग बीजापुर वालों से जीत लिया। इस प्रकार कारवार, शिवेश्वर, अंकोला आदि उत्तर कानड़ा के स्थान मराठों के अधिकार में आये और कारवार के पास की गंगावती

नदी मराठा-राज्य की दक्षिण सीमा हुई। उस भाग के बिदनूर और सोंधे नामक राज्य मराठों के मातहत बने और हर साल कर देने लगे। मराठों का जहाजी बेड़ा मज़बूत होने के कारण इस भाग को क़ब्ज़े में रखने का काम शिवाजी के समय में कठिन न था, परन्तु उसकी मृत्यु के बाद मराठों ने इस भाग की ओर विशेष ध्यान न दिया। तथापि अब भी वहाँ मराठी संसर्ग के संस्कार दीख पड़ते हैं।

यह बताही चुके हैं कि जंगी जहाजों का बेड़ा बनाने में शिवाजी का मुख्य उद्देश्य जंजीरा को क़ब्ज़े में करने का था, परन्तु इस काम में वह कभी सफल न हुआ। जहाज़ी बेड़ा तैयार होनेपर शिवाजी ने जंजीरा को घेरकर जीतने की कईबार कोशिश की। अन्त में सन् १६७० में उसने यह काम स्वयं अपने हाथ में लिया। उसने अपने बेड़े से जंजीरे को ऐसा घेर डाला कि वहाँ के लोग भूखों मरने लगे और बिलकुल त्रस्त हो गये। वहाँ का मुख्य सरदार फ़तेखाँ क़िला छोड़ देने को तैयार हुआ; परन्तु सिद्दी सम्बूल, सिद्दी क़ासिम और सिद्दी खैरियत नाम के तीन छोटे सरदारों को फ़तेखाँ का विचार ठीक न लगा। वे हिंदुओं के कट्टर द्वेषी थे। उन्होंने फ़तेखाँ को क़ैद किया और सूरत के मुग़ल सूबेदार से मदद माँगी। इस मदद के आने पर मराठों को अपना घेरा उठा लेना पड़ा। इस समय से जंजीरा के सिद्दी मुग़लों के मातहत हुए। सिद्दी सम्बूल को याक़ूबखाँ का ख़िताब देकर औरंगज़ेब ने अपने जहाज़ी बेड़े का मुख्य अधिकारी बनाया। इसी साल होली के अवसर पर मराठों को

जंजीरा को जीतने का प्रयत्न

उसमें मशगूल देख सिद्दियों ने जल और स्थल दोनों ओर से हमला करके दंडा-राजपुरी वापस लेली। इसके बाद मराठों ने जंजीरा को लेने का कई बार प्रयत्न किया, परन्तु सूरत के मुग़ल अधिकारी की सिद्दियों को मदद रहने के कारण वे अपने कार्य में कभी सफल न हुए।

मुग़ल बादशाह के जंगी बड़े के अधिकारी होने पर सिद्दी लोग अधिक साहस के काम करने लगे। बरसात में वे बम्बई के बन्दरगाह में अपना बेड़ा ठहराते, मराठों के बन्दरगाहों पर हमला करके लूट-मार करते, लोगों को पकड़ कर ले जाते और कभी-कभी उन्हें क़त्ल भी कर डालते थे। ऐसे कार्यों के कारण शिवाजी को सिद्दी पर बहुत गुस्सा आया। बम्बई का बन्दरगाह अंग्रेज़ों के क़ब्ज़े में था। इसलिए उचित तो यह था कि वे सिद्दी को अपने बन्दरगाह में न ठहरने देते; परन्तु सूरत में उनका गोदाम होने के कारण मुग़लों का विरोध करने की उनकी हिम्मत न होती थी, इसलिए वे दुरंगी चाल चला करते थे।

बम्बई के अंग्रेज़ों को दबाने का प्रयत्न

अन्त में शिवाजी ने सिद्दी का जुल्म बन्द करने के लिए एक अच्छी युक्ति सोच निकाली। बम्बई-बन्दर के प्रवेश-मार्ग के पास खान्देरी और अन्धेरी नाम के दो द्वीप हैं। उस समय तक किसी का उनकी ओर ध्यान न था। शिवाजी ने उन्हें अपने क़ब्ज़े में लेकर उनपर क़िलेबन्दी करने का विचार किया। सन् १६७८ में मराठों ने खांदेरी अपने क़ब्ज़े में ले लिया और उस पर क़िले-बन्दी शुरू करदी। यह बात अंग्रेज़ों के साथ-साथ सिद्दी को भी खतरनाक जान पड़ी, इसलिए उन्होंने मराठों का काम न

होने देने का निश्चय किया। इस कारण मराठों और अंग्रेज़ों के जंगी बेड़ों में दो-एक वार झगड़ा हुआ। इसपर शिवाजी ने कल्याण के पास अपनी फ़ौज तैयार कर बम्बई पर हमला करने का विचार किया। यह देख अंग्रेज़ों ने शिवाजी से मेल कर लिया और खान्देरी की क़िलेबन्दी के विरोध का काम छोड़ दिया। सिद्दी ने पास ही के अन्धेरी-द्वीप पर तोपें खड़ी कीं। इसलिए मराठों के जंगी बेड़े के अधिकारी दौलतख़ाँ ने उससे युद्ध किया। परन्तु वह उसमें ज़ख्मी हो गया और मराठों के बेड़े का भी बहुत नुक़सान हुआ। इस कारण अन्धेरी-द्वीप सिद्दी के क़ब्ज़े में बना रहा, परन्तु खान्देरी-द्वीप की क़िलेबन्दी इस समय तक पूरी हो चुकी थी और वह मराठों के ही क़ब्ज़े में रहा। तथापि अन्धेरी-द्वीप सिद्दी के क़ब्ज़े में रहने के कारण बम्बई के अंग्रेज़ों को दबाने का शिवाजी का हेतु भरपूर सफल न हुआ। इसी समय बम्बई के पास के प्रदेश की सिद्दी और पोर्त्तगीज़ों से रक्षा करने के लिए, अलीबाग के पास नौघर में समुद्र के किनारे जो पथरीली ज़मीन थी उसपर शिवाजी ने सन् १६८० में एक क़िला बनवाया और उसका नाम जंजीरे कुलाबा रक्खा। इसी समय से यह स्थान मराठों के जंगी बेड़े का केन्द्रस्थान हो गया।

इस प्रकार शिवाजी ने जंगी बेड़ा तैयार करने का तथा कोंकण का समुद्री तट सुरक्षित रखने का भरपूर प्रयत्न किया और उस किनारे के सब प्रतिस्पर्धियों पर दबदबा जमाया। शिवाजी इस बात की अत्यन्त सावधानी रखता था कि मेरा बेड़ा हमेशा अच्छी तरह तैयार रहे और उसे किसी चीज़ की कमी

बेड़े की व्यवस्था पर कड़ी दृष्टि

न हो। एक बार प्रभावली के सूबेदार जिवाजी नायक ने नियमानुसार अन्न तथा अन्य सामग्री न पहुँचाई। जब शिवाजी को यह बात मालूम हुई, तब उसे बड़ा गुस्सा आया और उसने सूबेदार को एक बड़ी कड़ी चिट्ठी लिखी। इस चिट्ठी से स्पष्ट जान पड़ता है कि शिवाजी अपने बेड़े के सम्बन्ध में अत्यन्त दक्ष रहता था। उसमें उसने जिवाजी नायक को साफ़ लिख दिया कि यह न समझो कि ब्राह्मण होने के कारण मैं तुम्हारा मुलाहज़ा करूँगा। बेड़े को आवश्यक सामान पहुँचाते समय उसे इस बात का ख़याल रहता था कि प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट न हो। फल वाले अथवा छोटे-छोटे पौधे काटने से उसने अपने अधिकारियों को मना कर दिया था; और जो कुछ लकड़ी आवश्यक होती, उसे उसके मालिक को उचित दाम देकर लेने का हुक्म दिया था।

———

१५

शिवाजी की शासन-व्यवस्था

शिवाजी न केवल अच्छा योद्धा और कुशल सेनापति ही था बल्कि अच्छा व्यवस्थापक भी था। मृत्यु के समय उसके राज्य की सीमा उत्तर में रामनगर से दक्षिण में गंगावती नदी तक और पूर्व में बागलान से नासिक, पूना, सातारा आदि लेते हुए कोल्हापुर तक थी। यही उसका स्वराज्य था। इसमें उसने बहुत अच्छी शासन-व्यवस्था की थी। शिवाजी को शासन-व्यवस्था की कई बातें दादाजी कोण्डदेव की देख-रेख से मालूम हो गई थीं। फिर उसने अपनी बुद्धि से मुसलमानों के शासन-प्रबन्ध की कई अच्छी बातें ग्रहण कीं। महाभारत, रामायण आदि प्राचीन-ग्रन्थों से उसने जो कुछ पढ़ा-सुना था, उसका भी उसने अपनी कल्पना के बलपर शासन-व्यवस्था के लिए उपयोग किया और ऐसी उत्तम शासन-व्यवस्था प्रचलित की कि जिसने अनेक आपत्तियों के आने पर भी स्वराज्य को नष्ट न होने दिया।

शिवाजी की शासन-व्यवस्था के आधार

शिवाजी की शासन-व्यवस्था की आधार-शिला उसका अष्ट-प्रधानमंडल था। इसमें मुख्यतया आठ मंत्री थे—(१) पेशवा या पंत-प्रधान, (२) मुजुमदार या अमात्य, (३) वाकनीस या मंत्री, (४) उवीर या सुमन्त, (५) सुरनीस या सचिव, (६) पंडितराव, (७) सरनौवत या सेनापति, और (८) न्यायाधीश। राज्याभिषेक के समय शिवाजी ने अपने अष्ट-प्रधान-मंडल की सुव्यवस्था की। उनके पहले फ़ारसी नाम बदलकर संस्कृत नाम रक्खे और उनके कार्यों का आज्ञापत्र प्रचलित किया। वह यह है—(१) मुख्य प्रधान सब राज-काज करे। राजपत्रों पर सिक्का (मुहर) लगावे, सेना लेकर युद्ध तथा चढ़ाई करे, जो मुल्क जीता जाय उसका उचित बन्दोबस्त करके आज्ञा के अनुसार चले। सब सरदार और सेना उसके साथ जावें; और वह सब के साथ चले। (२) सेनापति सब सेना की रक्षा और युद्ध तथा चढ़ाई करे। जो मुल्क जीता जाय उसकी आवश्यक रक्षा कर हुक्म के मुताबिक कार्रवाई करे। फ़ौज के लोगों का कहना सुने। फ़ौज के सब सरदार उसके साथ चलें। (३) अमात्य राजा के सब जमा-ख़र्च की देख-रेख कर दफ्तरदार और फड़नीस को अपने अधीन रक्खे। लिखने का काम सावधानी से करे। फड़नीस और चिटनीस के पत्रों पर अपना सिक्का लगावे। युद्ध करे और जीते हुए भाग का उचित प्रबन्ध कर आज्ञा के अनुसार चले। (४) पंडितराव सब धर्माधिकार, धर्म-अधर्म देखकर दण्ड करे। शिष्टों का सत्कार करे। आचार-व्यवहार, प्रायश्चित्तपत्र आदि जो हों उनपर अपनी सम्मति-सूचक चिह्न करे। दान-कार्य, शान्ति, अनुष्ठान तत्काल

अष्ट-प्रधान-मण्डल

करे। (५) सचिव राजपत्रों को ठीक तौर से देखकर कम-अधिक मज़मून को ठीक करे। युद्ध करके जो मुल्क जीते जायँ उनकी रक्षा कर आज्ञा के अनुसार चले। राजपत्रों पर सम्मति-सूचक चिन्ह करे। (६) न्यायाधीश सब राज्य के न्याय-अन्याय का विचार कर धर्म के अनुसार फ़ैसला करे। न्याय-पत्रों पर सम्मति-सूचक चिन्ह करे। (७) मंत्री सब मंत्र-विचार और राज्य-कार्य साव-धानी से करे। नियंत्रण और वाकनीसी उसके अधिकार में हैं। मुल्क की रक्षा कर युद्ध आदि करे। राज-पत्रों पर समय-सूचक चिह्न करे। (८) सुमन्त पर-राज्य से पत्र-व्यवहार करे, उनके जो दूत आवें उनका सत्कार करे, युद्धादि करे। राजपत्रों पर समय-सूचक चिह्न करे।

शिवाजी के इस आज्ञापत्र से प्रकट होता है कि उसके सब मंत्रियों में पेशवा मुख्य था और इसीलिए उसका यह नाम रक्खा गया था। राज-काज का सारा उत्तरदायित्व भी पद के अनुसार उसपर रक्खा गया था। ऐसी अवस्था में यह कहना कि अन्य मंत्री किसी प्रकार उसके मातहत न थे, अनुचित है।* यह सत्य है कि शिवाजी के ये प्रधान बहुत-कुछ उसके नौकर ही थे और प्रधानतः उसे सलाह-मश्वरा देने का ही कार्य किया करते थे। परन्तु इतिहास से यह भी सिद्ध है कि कई चढ़ाइयाँ उन्होंने अपने मन से भी की हैं और शिवाजी ने बहुधा उनका कहना माना है। पंडितराव और न्यायाधीश को छोड़कर शेष प्रधानों को युद्ध आदि भी करने पड़ते थे और यह भी उनके कार्य का एक भाग

* अध्यापक यदुनाथ सरकार; शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम्स, पृष्ठ ४११

था। उनमें से कुछ सूबेदारी का भी काम करते थे। जब कभी वे राजधानी में न रहते तब उनके मुतालिक यानी प्रतिनिध्यात्मक अधिकारी उनका काम किया करते थे। इन आठ प्रधानों के अलावा चिटनीस और फड़नीस नाम के दो महत्वपूर्ण अधिकारी और थे। चिटनीस के हाथ में राजकीय पत्र-व्यवहार का काम था। फड़नीस राज के दान-पत्र लिखा करता था। क़िलों के हवलदारों से पत्र-व्यवहार करने के लिए गढ़नीस नाम का अधिकारी था। मुसलमान राजाओं से पत्र-व्यवहार करने के लिए पारसनीस नाम का अधिकारी था। इनके सिवाय इसी प्रकार के कुछ और भी अधिकारी थे, जो प्रधान-मंडल के मातहत थे और जिनके हाथ में शिवाजी के राज्य के "कारख़ाने" यानी भिन्न-भिन्न वस्तुओं की कोठियाँ थीं। जबतक शिवाजी का यह प्रधान-मंडल अपने मूलरूप में चलता रहा तबतक सब काम ठीक-ठीक होते रहे और औरंगजेब के भयंकर-आक्रमण की आपत्ति का सामना भी सफलता-पूर्वक हो सका।

मुल्की व्यवस्था

शिवाजी ने अपने राज्य की मुल्की व्यवस्था भी बहुत उत्तम की थी। पहले ज़मीन का लगान अनाज के रूप में वसूल किया जाता था और ज़मींदार या ठेकेदार उसे सरकार में जमा किया करता था। शिवाजी ने ये दोनों प्रथायें उठा दीं। उसने ज़मीन की पैमायश करके उसका लगान ज़मीन की क़िस्म के अनुसार क़ायम कर दिया और उसे वसूल करने के लिए अपने निजी सरकारी कर्मचारी नियत किये। पहले जब ज़मींदार या ठेकेदार लगान वसूल किया करते थे तब लोगों को बहुत कष्ट होता था। क्योंकि

वाजिब से ज्यादा वसूल करना और सरकार में कम दाखिल करना उनका नियम ही था। इस दोष को दूर करने के लिए शिवाजी ने अपने राज्य को प्रान्तों में, प्रान्तों को तर्फों में और तर्फों को मौज़ों में बाँट डाला। प्रान्त का अधिकारी सूबेदार अथवा मुख्य देशाधिकारी होता था, जिसकी तुलना आजकल के ज़िलाधीश से की जा सकती है। इसके नीचे तर्फ के अधिकारी हवलदार होते थे, जिन्हें कहीं-कहीं परिपत्यागार भी कहते थे। इनकी तुलना आजकल के तहसीलदारों से की जा सकती है। गाँवों में लगान-वसूली के लिए पटेल होते थे और हिसाब रखने के लिए कुलकर्णी नियत किये जाते थे। ज़मीन की पैमायश करके उसका रक़बा काश्तकार के नाम पर चढ़ाया जाता और सरकारी लगान के लिए उससे इक़रारनामा लिखवाया जाता था।

न्याय-व्यवस्था

शिवाजी के समय में न्याय-व्यवस्था बहुत-कुछ पहले जैसी ही प्रचलित थी। गांवों में न्याय का काम बहुधा पंचायतों द्वारा पटेल करता था। यदि पक्षकार उसके न्याय से संतुष्ट न होते तो वे अपने मामले न्यायाधीश के सामने ले जा सकते थे। कुछ मामले हाजिर-मजलिस के सामने, यानी सब मंत्रियों की सभा में, पेश होते थे। इस अवसर पर कदाचित् सभानायक और महाप्रश्निक नामके दो पुरुष पक्षकारों से जिरह करने के लिए नियत किये जाते थे।

सैनिक व्यवस्था

शिवाजी की सैनिक व्यवस्था भी बहुत अच्छी थी। दो तरह की सेना थी-घुड़सवार और पैदल। नौ पैदल सिपाहियों पर एक नायक, पाँच नायकों पर एक हवलदार, दो या तीन हवलदारों पर एक जुमले-

दार, दस जुमलेदारों पर एक हज़ारी और सात हज़ारियों पर एक सरनौबत होता था। पच्चीस सवारों पर एक हवलदार, पाँच हवलदारों पर एक जुमलेदार, दस जुमलेदारों पर एक हज़ारी और पाँच हज़ारियों पर एक पंच हज़ारी होता था। इन फ़ौजी अधिकारियों को हिसाब-किताब में सहायता देने के लिए उनके मातहत कर्मचारी अलग होते थे। घुड़सवारों के दो भेद थे—एक बारगीर और दूसरा शिलेदार। बारगीर प्रत्यक्ष सरकारी नौकर होता था। उसे घोड़ा और अन्य सामान खुद सरकार से मिलता था। इसीलिए ये सरकारी पागा के लोग कहलाते थे। शिलेदार ऊँचे दर्जे का आदमी होता था और वह अपना निजी घोड़ा तथा अन्य सामान रखता था। फ़ौज को वेतन नियत समय पर दिया जाता था। शिलेदारों को नियत रक़म मिलती थी; लोगों की तरफ बाक़ी रहा हुआ लगान वसूल कर अपना वेतन पूरा करलें, ऐसा कभी न होने पाता था। शिलेदार सिरजोर न होने पावें, इसके लिए उन्हें पागा की मातहती में रक्खा जाता था, अथवा कुछ बारगीर उनके साथ शामिल कर दिये जाते थे, नये सिपाही तभी रक्खे जाते थे जब उनके चाल-चलन की ज़मानत पुराने सिपाही देते थे। तथापि यह स्मरण रखना चाहिए कि शिवाजी को सिपाहियों की कमी कभी न पड़ी। जो सिपाही लड़ाई में ज़ख्मी होते, उन्हें अपने पोषण के लिए उचित रक़म मिला करती थी। मरे हुए सिपाहियों के आश्रित सम्बन्धियों के पालन-पोषण के लिए भी उचित प्रबन्ध कर दिया जाता था और उनमें से जो कोई फ़ौजी काम करने के लायक होते वे नौकर रख लिये जाते थे।

शिवाजी का सैनिक शासन बहुत कड़ा था। कोई भी सैनिक अपने साथ स्त्री आदि किसी को नहीं रखता था। किसी भी ब्राह्मण, स्त्री, गाय, बालक और दुर्बल मनुष्य को किसी भी प्रकार का कष्ट देने की सख्त मनाई थी। सब लूट सरकार में जमा होती थी, तथापि लूट लाने वाले को उचित पुरस्कार दिया जाता था। लूट का सामान छिपाने से बड़ी कड़ी सजा मिलती थी। युद्धों में जो पराक्रम दिखलाते उनका भिन्न-भिन्न प्रकार से सन्मान किया जाता था।

शिवाजी के क़िलों की व्यवस्था उसके सैनिक शासन का ही भाग था। मृत्यु के समय उसके हाथ में २४० क़िले थे।

क़िलों की व्यवस्था

प्रत्येक क़िले पर एक मराठा हवलदार और उसके अधीन उसीकी जाति के सहायक क़िले के भिन्न-भिन्न भागों की रक्षा के लिए रहते थे। बहुधा इनकी संख्या ५०० रहती थी, परन्तु समयानुसार बढ़ाई जाती थी। हवलदार के दो सहायक अधिकारी होते थे। एक सबनीस और दूसरा कारखाननीस। वास्तव में इन तीनों के ज़िम्मे ही क़िले की व्यवस्था का काम था। जमाबन्दी का काम सबनीस के अधिकार में था और क़िले के आसपास के प्रदेश की देखभाल भी वही करता था। दाना, घास, बारूद, गोला, मरम्मत आदि का काम कारखाननीस करता था। महाराष्ट्र-भर में आज जो सैकड़ों क़िले दिखाई पड़ते हैं, उनमें से बहुतसे शिवाजी के समय के हैं और वे इस पुरुष की दूर दृष्टि और राजकार्य-चातुरी के साक्षी हैं। उसके क़िले के तीन भेद थे। पानी में अथवा अंतरीप पर बनवाये हुए क़िले को जंजीरा या दुर्ग कहते थे। पहाड़ी किले को गढ़ और मैदानी क़िले को भूमिकोट

या कोट कहते थे। पहले दो प्रकार के क़िलों को ही शिवाजी महत्व-पूर्ण समझता था। वे ऐसे स्थानों पर बनाये जाते, जहाँ शत्रु की जल्दी पहुँच न हो। क़िलों में सब प्रकार का बन्दोबस्त रहता था, ताकि घेरा पड़ने पर किसी चीज़ की कमी न मालूम पड़े। इन्हीं क़िलों के कारण शिवाजी का कार्य सरल और सफल हुआ। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि शिवाजी ने बहुत-सा द्रव्य क़िले बनवाने में और उन्हें सुरक्षित रखने में ख़र्च किया। वास्तविक बात तो यह है कि शिवाजी के क़िले उसके राज्य के आधार-स्तम्भ थे। उनका इतिहास बहुत ही मनोरंजक तथा वीरश्री-परिप्लुत है।

शिवाजी के राज्य के विभाग और "लूट"

शिवाजी के प्रदेश के दो विभाग थे-एक स्वराज्य और दूसरा मुग़लाई। ऊपर जिस शासन-व्यवस्था का वर्णन किया है, वह स्वराज्य की है। मुग़लाई में शिवाजी सर-देशमुखी और चौथ वसूल किया करता था। परन्तु बहुत काल तक उसका यह अधिकार आदिलशाह, कुतुबशाह और दिल्ली के बादशाह ने नहीं माना। इसलिए बहुधा वह इनके राज्यों में लूट किया करता था; और इसी कारण शिवाजी के शत्रुओं ने सदैव उसे लुटेरा कहा है। परन्तु वास्तव में यह उसके साथ बड़ा भारी अन्याय है। यदि किसी पुरुष को दूसरे देश पर चढ़ाई करने का कुछ भी अधिकार हो सकता है, तो किसी भी पुरुष को अपने देश में स्वतंत्रता स्थापित करने का पूर्ण अधिकार है। स्वयं शिवाजी ने सूरत के मुग़ल सूबेदार को जो उत्तर दिया, वह इस आक्षेप का ख़ासा जवाब है। उसने कहा था कि "तुम्हारे बादशाह ने ही मुझे

अपने देश और लोगों की रक्षा करने के लिए सेना रखने को वाध्य किया है, और इस सेना का खर्च उसीकी प्रजा को देना होगा।" यदि औरंगज़ेब को हिन्दुस्थान में राज्य करने का अधिकार था, तो शिवाजी को अपने देश में स्वतंत्रता स्थापित करने का उससे सौ गुना अधिक अधिकार था; और यह कार्य युद्ध के सिवाय उस समय न हो सकता था। युद्ध के लिए द्रव्य की आवश्यकता थी और मुसलमान राजाओं की तथा उनकी सहायक प्रजा की अथवा अन्य विरोधियों की लूटों के सिवाय उसके पास कोई अन्य उपाय न था। जो लोग राज़ी-खुशी से स्वतंत्रता के कार्य में योग न देते थे, उनसे सख़्ती से द्रव्य लेना शिवाजी अपना कर्तव्य समझता था। जिन लोगों की नस-नस में गुलामी भर गई थी, उनको वह इसी प्रकार जबरदस्ती स्वतंत्रता के पाठ पढ़ाना चाहता था। इसमें उसने किसी की भी मुरव्वत न की। यह पहले बतला ही चुके हैं कि शिवाजी ने अपने भाई व्यंकोजी से पुश्तैनी जायदाद का आधा हिस्सा माँगा, उसका मूल कारण यही था कि वह अपने को आदिलशाह का नौकर तथा उनकी कृपा से पलने वाला समझता था। फिर यह स्मरण रखना चाहिए कि लूट करते समय शिवाजी किसी को अनावश्यक कष्ट नहीं देता था। ग़रीब, बालक, स्त्री, वृद्ध और किसानों को उसने कभी तक-लीफ़ नहीं होने दी। जब किसी स्थान में वह लूट के लिए पहुँ-चता, तो वहाँ के मुख्य-मुख्य लोगों को बुलाकर उस गाँव की हैसियत के अनुसार द्रव्य माँगता था। यदि इस सीधी रीति से वे लोग द्रव्य दे देते, तो वह वहाँ से चुपचाप चला जाता; परन्तु यदि माँगा हुआ द्रव्य देने से इन्कार करते, तो उसके सिपाही

बस्ती में घुस जाते और जबरदस्ती द्रव्य ले आते थे। यदि कहीं सशस्त्र प्रतिकार होता, तो शिवाजी के आदमियों को भी उनका उसी प्रकार सामना करना पड़ता। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि शिवाजी की लूट स्वराज्य-प्राप्ति के लिए एक प्रकार के कर की वसूली ही थी, क्योंकि, यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो चुकी है कि उसके "स्वराज्य" में यह काम बिलकुल न होने पाता था। इतिहास हमें बतलाता है कि अनेक शासकों को अपने राज्य की रक्षा के लिए लोगों से जबरदस्ती द्रव्य लेना पड़ा है। जब उनका यह काम उचित हो सकता है। तब किस नीति के अनुसार स्वराज्य-स्थापना के लिए जबरदस्ती द्रव्य लेने का शिवाजी का काम अनुचित कहा जा सकता है ? जिन लोगों से शिवाजी ने अपने कार्य के लिए जबरदस्ती द्रव्य लिया वे तो उसे लुटेरा कहते ही हैं, परन्तु आश्चर्य तो यह है कि उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के शास्त्रीय इतिहास-लेखक भी उनकी हाँ में हाँ मिलाते हैं। हाँ, यह अवश्य स्वीकार करना चाहिए कि शिवाजी को लूट की आय यथेष्ट होती थी और इससे उसका बहुत-सा काम चलता था। परन्तु इससे दो बातें सिद्ध होती हैं; एक तो शत्रु की शक्ति कम होती थी, और दूसरे उसकी निजी शक्ति बढ़ती थी।

भूमि-कर और लूट की आय के अलावा शिवाजी की आय के कुछ अन्य साधन भी थे। उनमें से मुख्य तो कुछ कर थे, और कुछ विशिष्ट बातों में राजकीय अधिकार का अमल था।

आय के अन्य साधन और टकसाल

यह हम बतला ही चुके हैं कि शिवाजी अपना भूमि-कर

बहुधा द्रव्य के रूप में लिया करता था। इसके लिए सिक्के ढालने की आवश्यकता थी। अतः राज्याभिषेक के साल से उसने रायगढ़ में एक टकसाल जारी की, परन्तु अन्य राज्यों के सिक्कों का चलन उसने अपने यहाँ नहीं रोका। सभी प्रकार के असली सिक्के उसके राज्य में चलते थे।

शिवाजी की शासन-व्यवस्था के कुछ सामान्य नियम बहुत ही अच्छे थे। वह अपने सब कर्मचारियों को समय पर और नक़द वेतन दिया करता था। केवल एक-दो अपवादों को छोड़कर, उसने किसीको सरकारी काम के बदले में जागीर नहीं दी। उसके इस नियम की उत्तमता इतिहास से सिद्ध है। जागीर की प्रथा राज्य की नींव को ढीली कर देती है और अन्त में उसे नष्ट कर डालती है। हम आगे चलकर देखेंगे कि जब महाराष्ट्र के शासकों ने शिवाजी के इस अच्छे नियम का उल्लंघन किया, तब उन्होंने महाराष्ट्र के विनाश का बीज बो दिया। अस्तु। शिवाजी का एक दूसरा अच्छा नियम यह था कि वह किसी को सरकारी नौकरी वंश-परम्परा से नहीं देता था बल्कि योग्यता देखकर देता था। वंश-परम्परा से नौकरी देना किसी प्रकार उचित नहीं कहा जा सकता। इस बात का क्या निश्चय है कि पुत्र भी पिता के समान योग्य हो ? यदि इतिहास के आधार पर कुछ कहा जा सकता है, तो हम यही कहेंगे कि योग्य पिता का पुत्र बहुधा अयोग्य हुआ करता है। इसलिए सरकारी नौकरी वंश-परम्परा से चलाना अयोग्य लोगों के हाथ में शासन के सूत्र देना है। इससे राज्य नष्ट हुए बिना

शिवाजी की शासन-व्यवस्था के सामान्य नियम

नहीं रहता। पेशवों ने जागीर की प्रथा को जारी करके सरकारी नौकरी को आनुवंशिक करने की प्रथा भी जारी कर दी। इसके जो बुरे परिणाम हुए, वे आगे चलकर इतिहास में हमें दीख पड़ते हैं। शिवाजी तो अपने बड़े-बड़े कर्मचारियों का भी तबादला किया करता था और कभी-कभी अधिक योग्य पुरुष मिलने पर पहले के कम योग्य लोगों के बदले में उन्हें रख लेता था। कार्य का कौशल ही उसके पास पुरस्कार का कारण होता था। शिवाजी ने जिस तीसरे अच्छे नियम का पालन किया, वह है धार्मिक सहिष्णुता। इस बात में उसमें और उसके प्रतिस्पर्धी औरंगजेब में जमान-आस्मान का अन्तर देख पड़ता है। कहाँ तो वह शिवाजी, जो हिन्दू होने पर भी, हिन्दू-धर्म का प्रतिपालक और उद्धारक कहलाने पर भी, अपनी आँखों के सामने हिन्दुओं पर होते हुए अत्याचार देखते रहने पर भी, सब धर्म के लोगों को एकसा समझता था; और कहाँ वह औरंगजेब, जिसकी अधिकांश प्रजा हिन्दू होने पर भी वह उनपर अपना धर्म जबरदस्ती लादना चाहता था! शिवाजी ने कभी मुसलमान-धर्म की निन्दा नहीं की। कुरान हाथ में पड़ने पर सन्मान-पूर्वक वह उसे किसी मुसलमान को दे देता था। उसने कभी कोई मसजिद नहीं ढाई; उलटे, हिंदू मंदिरों के समान उनके भी खर्च का बन्दोबस्त उसने कई बार कर दिया। हिन्दुओं के समान मुसलमानों को भी उसने अपनी नौकरी में रक्खा और कुछ को तो उसने काफ़ी ऊँचे पद भी दिये। अब इससे औरंगजेब की तुलना कीजिए। हिन्दुओं के वेदों का पठन-पाठन उसने बंद किया, उनकी पाठशालायें बन्द कीं, उनके सैकड़ों मंदिर ढा दिये और मूर्त्तियाँ नष्ट करवादीं; सम्भवतः वह

हिन्दुओं को नौकरी देता ही न था, और यदि किसी को देता ही तो उसके साथ अथवा उसके सिरपर एक मुसलमान अवश्य रख देता था ! उसने हिन्दुओं को मुसलमान-धर्म में परिवर्त्तित करने का प्रयत्न कई बार किया और इस हेतु से उसने उनके ऊपर जजिया-कर का भारी बोझ लाद दिया। अतएव कोई आश्चर्य नहीं कि शिवाजी सदैव अपने कार्य में सफल होता रहा और औरंगजेब के भाग्य में सदैव विफलता बनी रही। उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट है कि शिवाजी बहुत ही उत्तम व्यवस्थापक और शासक था। उसका सारा जीवन अशान्ति में बीता, परन्तु वह सदैव अपने मन में शान्त बना रहता था। इस कारण वह बड़ी से बड़ी और छोटी से छोटी बात की ओर ध्यान दे सकता था। उसने अपने एक सैनिक अधिकारी को शक संवत् १५९६ की वैशाख शुद्ध पूर्णिमा (५ मई १६७४) को जो पत्र लिखा, उसमें उसने इस बात की ताकीद की है कि लोगों पर जोर-जबरदस्ती किसी प्रकार की न करनी चाहिए; परन्तु यह भी लिखा है कि घास-दाना आदि का प्रबन्ध पहले से ही कर रखना चाहिए, और रात को छावनी में किसी प्रकार की आग न रहने देनी चाहिए। इस हेतु से उसने तमाखू पीने की भी मनाही कर दी थी। इतना ही नहीं, उसने दीये भी रखने की मनाही कर दी थी; क्योंकि कभी-कभी चूहे उनकी बत्ती ले जाते हैं और उससे आग लगने का डर रहता है। इन बातों से यह स्पष्ट है कि शिवाजी अपने कामों में कितनी बारीकी से ध्यान रखता था। इसी कारण उसे कभी अपने काम में विफलता न हुई। सारे अच्छे व्यवस्थापक छोटी-बड़ी सभी बातों की ओर शान्त चित्त से ध्यान दिया करते हैं, तभी वे

अपने कार्य में सफल होते हैं। शिवाजी भी ऐसे ही पुरुषों में से एक था। इसी कारण वह औरंगज़ेब, कुतुबशाह और आदिलशाह जैसे बड़े-बड़े शत्रुओं के बीच रहने पर भी अपना काम अच्छी तरह से कर सका और एक छोटे-से जागीरदार से स्वतंत्र राज्य का संस्थापक हो सका।

टिप्पणी

सरदेशमुखी और चौथ

जिस प्रकार आजकल कर वसूल करने के लिए कुछ पुरुष नियत होते हैं, उसी प्रकार आदिलशाही और निजामशाही की स्थापना होने पर "देशमुख" नियत किये जाते थे। उनका पहला काम लगान की वसूली था; परन्तु दूसरा काम यह भी था कि जो कुछ भाग उनके हाथ में हो, उसके अमल के लिए वे ज़िम्मेदार हों। इस भाग से जो कुछ वसूली होती थी, उसका दसवाँ हिस्सा उन्हें मिलता था। इसमें से पाँच सैकड़ा नक़द या अनाज के रूप में दिया जाता था और शेष पाँच सैकड़े के लिए खेती के लायक़ ज़मीन दी जाती थी। इसीको वतन कहने की प्रथा वहाँ प्रचलित हुई। ये वतनदार देशमुख अपने को बहुत ऊँचे दर्जे के समझते थे। मुख्य अथवा ऊँचे दर्जे के देशमुख सरदेशमुख कहलाते थे। शिवाजी का पिता जागीरदार तो था, पर देशमुख न था। इस कारण महाराष्ट्र के अन्य देशमुख अपने को शिवाजी से ऊँचे दर्जे का समझते थे, क्योंकि यह देशमुखी वंश-परम्परा से चली आती थी। अतएव शिवाजी ने भी चाहा कि मुझे भी देशमुखी का अधिकार मिले। इसी हेतु से उसने जुन्नर और अहमदनगर के प्रान्त में सन् १६५० के लगभग इस अधिकार की माँग की। परन्तु शाहजहाँ ने इसे किसी प्रकार टाल दिया। सन् १६५७ में

उसने फिर से औरंगज़ेब से यह अधिकार माँगा। उसने इस समय इस बात का भी प्रस्ताव किया कि औरंगज़ेब शाहजहाँ से मुझे इस बात की इजाज़त ला दे कि मैं फ़ौज खड़ी कर दाभोल और उसके आस-पास के भाग ले लूँ और औरंगज़ेब के भाई-भाई के युद्ध के समय दक्षिण की रक्षा करूँ। औरंगज़ेब ने कोंकण-विजय की अनुमति तो दे दी, पर सरदेशमुखी के विषय में आवाजी सोनदेव के दिल्ली आने पर उससे विचार करने का वचन दिया। सन् १६६६ में जयसिंह और शिवाजी के बीच पुरन्दर की जो संधि हुई, उस अवसर पर भी उसने फिर सरदेशमुखी के अधिकार का प्रश्न छेड़ा। इसी अवसर पर पहले-पहल उसने चौथ की भी माँग की। यह लगान-वसूली का चौथाई हिस्सा था। इस बात का भी उसने शिवाजी के दिल्ली आने पर विचार करने का वचन दिया; परन्तु उनकी इस भेंट का कोई नतीजा न निकला। अन्त में सन् १६६७ में औरंगज़ेब ने शिवाजी को राजा का ख़िताब देकर बरार में जागीर दी और उसके लड़के सम्भाजी को मंसब दी। सम्भवतः यह उसने शिवाजी की चौथ और सरदेशमुखी की पुरानी माँगों को पूर्ण करने के लिए किया। परन्तु शिवाजी इतने से सन्तुष्ट होने वाला न था। उसने बीजापुर और गोलकुण्डा से चौथ और सरदेशमुखी वसूल की। सन् १६६८ में बीजापुर ने चौथ और सरदेशमुखी के बदले तीन लाख रुपये वार्षिक देने का वादा किया और गोलकुण्डा उसी समय पाँच लाख रुपये देने को राज़ी हो गया। इसके बदले में शिवाजी ने मुग़लों से उनकी रक्षा करने का भार अपने सिर पर लिया। सरदेशमुखी का मतलब हम ऊपर बतला ही चुके हैं। पर चौथ का मतलब यह था कि जो यह ले, वह चौथ देने वाले भाग की रक्षा करे। शिवाजी ने और उसके उत्तराधिकारियों ने चौथ के इस मतलब को कभी-कभी निबाहा, परन्तु बहुधा सरदेशमुखी और चौथ दोनों लूट के समान वसूल की जाती थीं। इस अधिकार का एक मतलब आगे चलकर यह भी निकला कि जो जिस भाग में चौथ या सरदेशमुखी ले उसीको समय

पड़ने पर उस हिस्से को अपने राज्य में शामिल करने का अधिकार है। मराठों ने इस मतलब का अमल कई बार किया। इस दृष्टि से चौथ और सरदेशमुखी की तुलना लार्ड वेलज़ली की सहायक प्रथा से की जा सकती है।

१६

शिवाजी का शील, स्वभाव तथा योग्यता

अबतक हमने शिवाजी के जिन कार्यों और नियमों का वर्णन किया है उनसे शिवाजी के शील, स्वभाव और योग्यता का बहुत कुछ पता लग सकता है। परन्तु इतिहास में यह एक ऐसा व्यक्ति है, जिसके विषय में अभी भी अनेक भ्रान्त कल्पनायें प्रचलित हैं। अतएव शिवाजी के शील, स्वभाव तथा योग्यता का थोड़ा-बहुत विचार करना आवश्यक है।

शिवाजी का चरित्र

सफलता प्राप्त करने के लिए लोकनायक को जिस गुण की सर्व-प्रथम आवश्यकता है, वह है उसका शील। शील-रहित लोग धोखेबाजी से भले ही चार दिन धूम मचा लें, पर जीवन में उन्हें सफलता नहीं मिल सकती। किसी भी क्षेत्र में जाइए, सुन्दर शील ही सफलता की नींव दिखाई पड़ेगी। जबतक अनुयायी यह न जान लें कि जिसका आदेश हम मानते हैं वह दुर्गुणों से रहित है, तबतक वे निर्भय होकर विश्वास-पूर्वक उसका आदेश न मानेंगे। यदि

उन्हें थोड़ी भी शंका हो कि हमारा नायक किसी प्रकार हमें धोखा देगा, तो वे भी उसी प्रकार उससे बर्ताव करेंगे। इसके लिए शिवाजी के प्रतिस्पर्धी औरंगज़ेब का ही उदाहरण पर्याप्त है। शिवाजी के शील के विषय में इतना कहना पर्याप्त है कि उसे किसी प्रकार का व्यसन न था। हम पहले बतला ही चुके हैं कि स्त्री, बालक, किसान, वृद्ध आदि निस्सहाय लोगों को किसी प्रकार का कष्ट देने की उसने सख्त मनाही कर दी थी। बड़ी सख्ती के साथ इस नियम का पालन किया जाता था और इसे तोड़नेवाले को प्राण-दण्ड तक हो सकता था। एक-दो बार उसके सरदारों ने मुसलमान स्त्रियों को पकड़ लिया और उन्हें उसके पास ले गये। शिवाजी ने लानेवालों को धिक्कार कर, उन स्त्रियों को वस्त्र आदि देकर, सन्मान-पूर्वक उनके आप्त जनों के पास भेज दिया। शिवाजी के चरित्र की प्रशंसा उसके निन्दकों ने भी की है। मुसलमानी इतिहास-लेखक खाफ़ीखाँ ने उसके शुद्ध चरित्र के लिए प्रशंसा के उद्गार निकाले हैं। आजकल भी जिन्होंने शिवाजी के विरुद्ध बहुत कुछ लिखा है उन्होंने स्वीकार किया है कि उसका व्यक्तिगत चरित्र बहुत ऊँचे दर्जे का था।*

यह तो सब मानते ही हैं कि शिवाजी अत्यन्त धर्मशील था; यहाँ तक कि उसने अपना राज्य रामदास स्वामी को प्रदान कर दिया था। इसीसे यह ज्ञात होता है कि स्वराज्योद्धार का कार्य उसने निस्स्वार्थ भाव से किया। हिन्दू क्षेत्रों के दर्शनों के समय तथा राम-

शिवाजी की धर्मशीलता तथा अन्य गुण

* अध्यापक यदुनाथ सरकार; 'शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम्स', पृष्ठ ४३९।

दास स्वामी की भेंटों के समय उसने यह कई बार प्रकट किया कि मैं इन सांसारिक झगड़ों से दूर होकर धर्म-सिद्धि में लीन होना चाहता हूँ। ऐसे समय रामदास स्वामी तथा अन्य पुरुषों को शिवाजी को यह जतलाना पड़ा कि स्वराज्य-सिद्धि ही धर्म है। इतनी धार्मिकता रहने पर भी वह सर्व-धर्म-सहिष्णु था। इसके उदाहरण हम पहले देही चुके हैं। शिवाजी का व्यक्तिगत जीवन बहुत सादा था और वह अपने शरीर के लिए आवश्यकता से अधिक खर्च कभी न करता था। यदुनाथ सरकार को भी लिखना पड़ा है कि वह पितृ-भक्त पुत्र, प्रेमपूर्ण पिता और सब स्त्रियों की ओर ध्यान देने वाला पति था। शिवाजी के स्वदेशाभिमान के उदाहरण पहले आही चुके हैं। शिवाजी संकट से कभी न डरनेवाला था। संकट के समय सदैव वह स्वयं आगे रहता था और स्वराज्य-स्थापना के बाद भी उसने अपना यह क्रम न छोड़ा। अफ़ज़लखाँ से त्रस्त रहने पर भी शिवाजी ही स्वयं उससे मिलने गया। शाइस्ता-खाँ के महल में स्वयं शिवाजी ही आगे बढ़ा। रण में सदैव वह आगे ही रहता था। इसके उदाहरण हम पहले बतला चुके हैं। सारांश, शिवाजी में साहस की मात्रा बहुत अधिक थी। परन्तु इसका मतलब यह नहीं कि वह साहस-प्रिय था। चातुर्य का उपयोग करने पर ही वह साहस का उपयोग करता था। पर विशेषता यह थी कि साहस की आवश्यकता का समय आने पर वह साहस दिखलाने से पीछे न हटता था। रामदास स्वामी जैसे निस्पृही और स्पष्टवक्ता पुरुष ने शिवाजी को "यशस्वी, कीर्तिमान्, सामर्थ्यवान्, नीतिमान, समझदार, आचारशील, विचारशील, दानशील, कर्मशील, सर्वज्ञ, सुशील, धर्म-मूर्ति, निश्चय का

महामेरु, अखंड निर्धारी, राजयोगी" कहा है; और साथ ही यह भी कहा है कि उसके गुण-महत्व की क्या तुलना हो सकती है !

इन गुणों के साथ उसमें एक आवश्यक गुण यथेष्ट बुद्धि का भी था। इस गुण का महत्व बड़ा भारी है और अनेक कार्यों में इसकी आवश्यकता होती है। कई बार तो इसी के बल पर सफलता मिलती है। बाबर, अकबर, औरंगज़ेब, शेरशाह आदि पुरुष इसीके बल पर सफल हुए। शिवाजी ने इनसे कहीं अधिक बुद्धिमत्ता दिखलाई है। शिवाजी के क़िलों की रचना, अष्ट-प्रधान-मण्डल की व्यवस्था, सेना का संगठन, मुल्की व्यवस्था, और शासन के समान्य नियम—ये सभी उसकी बुद्धिमत्ता के परिणाम-स्वरूप दीख पड़ते हैं। अफ़जलखाँ से भेंट करने के प्रसंग पर अतुल साहस के सिवा उसने जो बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता दिखलाई वह प्रशंसा ही के योग्य है। इसी प्रकार शाइस्ताखाँ को पूना से जिस प्रकार भगा दिया, उसमें भी उसकी बुद्धिमत्ता अच्छी तरह प्रकट होती है। आगरा जाने के पहले राज्य का अच्छा बन्दोवस्त करना, वहाँ क़ैद में पड़ने पर उससे चुपचाप चालाकी से छूट आना, चतुरता से सम्भाजी की रक्षा करना और मुग़ल राज्य में से सुरक्षित लौट आना—ये सब बातें उसकी प्रगाढ़ बुद्धिमत्ता की प्रदर्शक हैं।

यथेष्ट बुद्धि

लोकनायक में एक और बात की आवश्यकता होती है। उसे अपने कार्य की सफलता का पूर्ण विश्वास होना चाहिए। किसी भी उच्च कार्य को करने में निराशा बार-बार सामने आती है। यदि नेता को ही अपने कार्य की सफलता की आशा न हो तो अनुयाइयों को

आवश्यक आत्म-विश्वास

कहाँ से हो सकती है ? शिवाजी को अपने कार्य की सफलता का पूर्ण विश्वास था। उसे भी "बुजुर्ग" लोग कहा करते थे कि अभी तरुण है, कुछ दिन के बाद सीधा हो जायगा; पर उसे निराशा छू तक न गई थी। उसने ऐसे बहुत ही कम काम किये कि जिनकी सफलता के विषय में उसे पूर्ण विश्वास न रहा हो। उसे पूर्ण विश्वास था कि मैं महाराष्ट्र को फिर से स्वतंत्र कर सकूँगा, और उसने यह स्वतंत्रता प्राप्त करके ही छोड़ी।

मनोमोहक वार्त्तालाप और उत्तम शरीर

शिवाजी का वार्त्तालाप इतना मनोमोहक होता था कि जिससे वह बोलता वही उसकी बात मान लेता था। अफ़ज़लखाँ के वकील की तथा औरंगज़ेब के सरदार मिर्ज़ा जयसिंह की बहुत कुछ यही हालत हुई। इस गुण के बल पर उसने कई लोगों को अपने पक्ष में शामिल कर लिया था। शिवाजी यद्यपि बहुत ऊँचा-पूरा मोटा-ताज़ा न था, तथापि वह यथेष्ट सुदृढ़ था। जिस किसी ने उसका चित्र देखा है, उसे यह मानना होगा कि यह रुआबदार पुरुष था। उसे अपने जीवन में बहुत बीमारियों से सामना न करना पड़ा। अन्त तक उसमें अपने कार्य के लिए आवश्यक बल तथा चपलता बनी रही।

सहायकों से बर्ताव

लोकनायकों में एक गुण की और आवश्यकता होती है। उन्हें चाहिए कि वे अपने सब सहायकों को अपने समान ही समझें। इतिहास के पाठक यह जानते हैं कि बाबर की सफलता का एक प्रधान कारण उसका यही गुण था। शिवाजी के साथियों में दाजी नरसप्रभु, बाजी फासलकर, येसाजी कंकु, तानाजी मालसुरे, फिरं-

गोजी नरसाला, संभाजी कावजी, मानकोजी दहातोंडे, गोमाजी नाइक, नेताजी पालकर, सूर्याजी मालसुरे, हिरोजी फ़रज़ंद, देवजी गाढ़वे, मुरारबाजीप्रभु, बालाजी आवजी चिटनीस, बाजीप्रभु देश-पाण्डे, आबाजी सोनदेव, प्रतापराव गूजर, मोरोपंत पिंगले, राघो बल्लाल अत्रे, अन्नाजी दत्तो, दत्ताजी गोपीनाथ, रावजी सोमनाथ, निराजी रावजी, बालाजी आवाजी आदि पुरुष मुख्य थे। इन लोगों ने शिवाजी के लिए अपने प्राण सदैव तैयार रक्खे थे; और शिवाजी भी इन्हें उसी प्रकार चाहता था। इनमें से कुछ पुरुप समय-समय युद्ध में काम आये। उनकी मृत्यु पर शिवाजी ने सदैव अत्यन्त शोक प्रदर्शित किया। तानाजी मालसुरे की मृत्यु पर तो वह बालक के समान रोया। मृत साथियों के आप्त सम्बन्धियों के पालन-पोषण का उसने सदैव उचित प्रबन्ध किया। जिन पुरुषों का उसने अपने काम के लिए उपयोग किया, उनको वह कर्मचारी नहीं किन्तु सहकारी समझता था। वे लोग उसके उच्च उद्देश्य को अच्छी तरह समझते-बूझते थे; और इसलिए वे सब संसारिक लोभों को दूर कर उसके लिए तन-मन से प्रयत्न करते थे। ऐसे ही साथी मिलने के कारण शिवाजी को अपने उद्देश्य की सिद्धि में पूर्ण विश्वास था और वह उसे सिद्ध कर सका।

शिवाजी और रामदास स्वामी

जिन-जिन लोगों ने शिवाजी को उसके कार्य में सहायता की, उनमें श्री समर्थ रामदास स्वामी की भी गणना होती है। परन्तु यह प्रश्न अभीतक विवादास्पद ही है कि रामदास स्वामी ने शिवाजी को कितनी और किस प्रकार की सहायता पहुँचाई।

कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि शिवाजी को रामदास स्वामी ने ही इस कार्य में प्रवृत्त किया। कुछ यह कहते हैं कि स्वराज्य-स्थापना के कार्य में रामदास स्वामी का कुछ भी हाथ न था। हमारी समझ में दोनों पक्ष भूल में हैं। ऐतिहासिक क़ाग़ज़-पत्रों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सन् १६५८ तक रामदास स्वामी और शिवाजी की भेंट न हुई थी।❀ इसलिए यह कहना कि रामदास स्वामी ने शिवाजी को इस कार्य में प्रवृत्त किया, नितान्त अनैतिहासिक जान पड़ता है। इस साधु पुरुष के ग्रंथों और अन्य रचनाओं से यह तो स्पष्ट जान पड़ता है कि रामदास स्वामी के हृदय में मुसलमानों के शासन के विरुद्ध भावनायें उत्पन्न हो गई थीं और सम्भवतः उन्होंने उनका जनता में प्रचार भी किया। शिवाजी के उद्योग को समझने की बुद्धि उनमें यथेष्ठ थी। और उन्होंने अपनी यात्राओं में लोकमत जागृत करके जनता को शिवाजी के कार्य का महत्व समझा भी दिया। शिवाजी से परिचय होने पर वह उसे, उसके कार्य में, उत्तेजना देते रहे। हमारी समझ में इससे अधिक कार्य स्वराज्य-स्थापना के लिए रामदास स्वामी ने न किया। रामदास स्वामी का कार्य प्रत्यक्ष न था; न वह सिपाही एकत्र करते थे और न लड़ने की शिक्षा किसी को देते थे। उनका कार्य अप्रत्यक्ष था। वह लोगों की नीति

❀ 'महाराष्ट्र-इतिहास-मंजरी'; पृष्ट ९४। तथापि धुलिया के श्री शंकर श्रीकृष्णदेव का मत है कि इन दो पुरुषों की भेंट सन् १६४५ में हो चुकी थी और रामदास स्वामी ने शिवाजी को उसके कार्य में प्रत्यक्ष सहायता दी। इसी बात का प्रतिपादन श्री अनंतदास रामदासी ने भी किया है। (श्री समर्थांचा गाथा)।

सुधारते, सच्चे धर्म की कल्पना करा देते और यह छाप डालते जाते थे कि धर्म का उद्धार स्वराज्य के बिना न होगा। स्वामीजी के कार्य का महत्व यही है और इसी नाते से शिवाजी का और उनका सम्बन्ध रहा, अन्यथा वह निरीच्छ थे और अपना समय ईश-सेवा में बिताया करते थे।†

---

† शिवाजी के "भगवा झण्डा" (गेरुआ झण्डा) का भी सम्बन्ध रामदास स्वामी से माना जाता है। उसकी कथा ऐसी है। एक बार शिवाजी सातारा में थे। कृष्णा और येना के संगम के माहुली नामक स्थान पर रामदास स्वामी उस समय रहते थे। माहुली के पूर्व की ओर जरण्डा नामक पर्वत पर स्वामी भिक्षा माँगने गये। उसी समय शिवाजी वहाँ आये थे। स्वामीजी ने उनके दरवाज़े पर भिक्षा माँगी। शिवाजी ने एक क़ाग़ज़ पर कुछ लिखकर स्वामी की झोली में उसे डाल दिया। स्वामी ने जब उसे पढ़ा तो ज्ञात हुआ कि शिवाजी ने तो अपना समस्त राज्य दे दिया है! स्वामीजी ने उसे स्वीकार करने जैसा भाव दिखलाया और इसलिए शिवाजी दिनभर उनकी सेवा में बना रहा। संध्या-समय रामदास स्वामी ने उससे पूछा कि राज-कार्य की तुलना में यह सेवा-कार्य कैसा लगता है? शिवाजी ने उत्तर दिया कि मैं पद की कोई पर्वाह नहीं करता, गुरु महाराज के पास रहने को मिले तो मैं सुखी हूँ। रामदास स्वामी ने तब वह राज्य-दान वापस कर दिया और कहा कि "अपना राज्य वापस ले लो, राज्य करना राजाओं का काम है, ब्राह्मणों का काम ईश-सेवा करना है।" तथापि शिवाजी के बहुत आग्रह करने पर रामदास स्वामी ने अपनी पादुकायें दे दीं और तबसे शिवाजी ने उनके प्रतिनिधि के नाते राज्य-कार्य किया। इसी समय से शिवाजी ने अपना झण्डा 'भगवा' (गेरुआ) बनाया। इस कथा में थोड़ा-बहुत हेर-फेर भी कहीं-कहीं दीख पड़ता है।

शिवाजी के कार्य के विषय में एक प्रश्न विचारणीय है। शिवाजी का उद्देश्य क्या था ? क्या वह केवल महाराष्ट्र में स्वराज्य-स्थापना करना चाहता था, अथवा सारे हिन्दुस्थान में हिन्दू-साम्राज्य जमाना चाहता था ? इस प्रश्न के विषय में दो मत हैं। एक पक्ष का कहना है कि शिवाजी का उद्देश्य सारे भारतवर्ष में हिन्दू-साम्राज्य स्थापित करने का था। इस पक्ष के समर्थन में शिवाजी का कोई पत्र अब तक नहीं मिला है। इसलिए इस पक्ष को केवल तर्क का आधार ढूँढना पड़ा है। उनकी आधारात्मक बातें ये हैं —(१) शिवाजी ने छत्रपति की पदवी धारण की और राज्याभिषेक-शक शुरू किया, यह केवल छोटे-से महाराष्ट्र का राजा बनने के लिए नहीं किन्तु सारे भारतवर्ष में हिन्दू-साम्राज्य स्थापित करने के विचार से ही ऐसा किया। (२) यदि केवल महाराष्ट्र की सीमा के भीतर उसे अपना राज्य स्थापित करना होता तो शिवाजी ने अपने भाई व्यंकोजी से झगड़ा न किया होता। वह भी फिर महाराष्ट्र में अपना राज्य स्थापित करके चुपचाप बना रहता। (३) चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने की पद्धति में शिवाजी का विशिष्ट हेतु दीख पड़ता है। वह यह है कि इस हक़ के आधार पर मराठों को चाहे जिधर, चाहे जितनी दूर तक, फैलने का मौक़ा मिले। (४) जयसिंह से सुलह करके दिल्ली को जाने में उसका कुछ विशिष्ट हेतु था। सम्भवतः वह यह देखना चाहता था कि उत्तर-हिन्दुस्थान के राजपूत राजा हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना में कहाँ तक मेरे सहायक होंगे। (५) शिवाजी ने समुद्री किनारे को अपने क़ब्ज़े में रखने के विचार से सिद्दी को हराने के लिए बहुत प्रयत्न किया। यदि

उसका हेतु महाराष्ट्र तक परिमित होता तो समुद्री किनारे को अपने क़ब्ज़े में करके अंग्रेज़, पोर्त्तगीज़ वग़ैरा विदेशी लोगों को दबाव में रखने का प्रयत्न उसने न किया होता। (६) शिवाजी के हिन्दू-साम्राज्य की कल्पना के कुछ अस्पष्ट उल्लेख बखरों में दीख पड़ते हैं। उदाहरणार्थ शिव-दिग्विजय में लिखा है कि दिल्ली जाकर वहाँ अधिकार चलाने का योग इस समय नहीं दीख पड़ता, क्योंकि औरंगज़ेब बादशाह अवतारी पुरुष है। इससे ऐसा जान पड़ता है कि शिवाजी का विचार दिल्ली में राज्य करने का था, परन्तु वह यह जानता था कि औरंगज़ेब के जीते जी यह बात नहीं हो सकती ❀। इसी प्रकार श्रीसावरकर ने "हिन्द पद पादशाही" नामक अपनी पुस्तक में शिवाजी के सन् १६४५ के एक पत्र के आधार पर उपर्युक्त कल्पना की स्थापना करने का प्रयत्न किया है। इस पत्र का उल्लेख हम अन्यत्र कर चुके हैं। उसमें "हिन्दवी स्वराज्य" शब्द आये हैं। इसके आधार पर आप यह कहते हैं कि शिवाजी सारे भारतवर्ष में हिन्दू-स्वराज्य स्थापित करना चाहता था।

हमें तो उपर्युक्त प्रमाणों में कोई सार नहीं दीख पड़ता। उनमें से कुछ तो बिलकुल सारहीन हैं। चक्रवर्ती, छत्रपति अथवा बादशाह कहला लेना उस काल में एक साधारण बात थी। यदि छोटी-छोटी जागीरों के शासक राजा कहला ले सकते थे। तो महाराष्ट्र का शासक छत्रपति की पदवी अवश्य धारण कर सकता था। व्यंकोजी से लड़ने का उद्देश्य हम बतला ही चुके हैं कि शिवाजी

❀ श्री गो० स० सरदेसाई की 'मराठी रियासत'; पृष्ठ ३६४–६६।

यह चाहता था कि मेरा भाई अपने को मुसलमानों का नौकर न कहलावे। सरदेशमुखी और चौथ वसूल करने के उद्देश्य भी हम बतला ही चुके हैं। उनमें प्रधानतया द्रव्य-प्राप्ति का ही उद्देश्य था। हाँ, इतना और अधिक कह सकते हैं कि वह यह चाहता था कि अपने पड़ोस के प्रदेश दूसरे न लेने पावें। दिल्ली को जाने का उसका उद्देश्य यदि कुछ हो सकता है तो केवल यही कि मुग़ल-साम्राज्य का बल ज्ञात हो जाय। समुद्री किनारे को अपने अधिकार में रखना उसे आवश्यक था, क्योंकि कोंकण में उसका राज्य स्थापित हो चुका था। बखरों के उल्लेखों पर कुछ भी ज़ोर देना ठीक न होगा, क्योंकि उनमें से कोई भी शिवाजी के समय में नहीं लिखी गईं। स्वयं सर देसाईजी को अपनी पुस्तक में कई स्थानों पर यह कहना पड़ा है कि इन बखरों का उपयोग समझ-बूझ कर ही करना चाहिए। इतिहास और मनुष्य-स्वाभाव के आधार पर यही कहा जा सकता है कि शिवाजी का उद्देश्य केवल महाराष्ट्र में स्वराज्य स्थापित करने का था। शिवाजी की मृत्यु के बाद रामदास स्वामी ने सम्भाजी को जो उपदेशात्मक पत्र लिखा है, उसमें यही बतलाया है कि सब मराठों को एक करो और महाराष्ट्र-धर्म*बढ़ाओ। इन शब्दों में महाराष्ट्र की परिमित कल्पना स्पष्ट दीख पड़ती है। "हिन्दवी स्वराज्य" शब्दों के विषयमें हमें यह कहना है कि ये शब्द उस समय लिखे गये थे, जब शिवाजी १५ वर्ष का था। उस समय उसकी दृष्टि में आदलिशाही और कुतुबशाही के राज्य दीख पड़ते थे। इन्हीं की तुलना में उसने

---

* "मराठा तितका मिलवावा—महाराष्ट्र-धर्म वाढवावा।"

अपने भावी राज्य को हिन्दू-राज्य कहा है। जब एक छोटा-सा स्वतंत्र हिन्दू-राज्य भी न हो, तब अखिल-भारतीय स्वतंत्र हिन्दू-साम्राज्य की कल्पना मन में आना मनुष्य-स्वभाव के विरुद्ध जान पड़ता है।

शिवाजी का सारा जीवन लड़ने में बीता, तथापि ऐसे समय में भी उसने थोड़े-बहुत लोकोपयोगी काम किये। हम यह बतला ही चुके हैं कि राज्याभिषेक के समय शिवाजी ने राजकीय पत्र-व्यवहार के फ़ारसी शब्दों के लिए संस्कृत शब्दों का उपयोग शुरू किया और इसके लिए उसने राज-व्यवहार-कोष रघुनाथ पंडित से बनवाया। इसके अलावा करण-कौस्तुम, शिव-भारत और शिवार्कोदय नामक तीन ग्रंथ और बनवाये। करण-कौस्तुम ज्योतिष-ग्रंथ है। शिव-भारत में शिवाजी का जीवन चरित्र वर्णित है। शिवर्कोदय में "श्लोक वार्तिक" टीका पर गागा भट्ट ने श्लोकबद्ध टीका की है। श्लोकवार्तिक टीका जैमिनी के पूर्व मीमांसा-ग्रंथ की टीका है। इस प्रकार लोकाचार को ठीक-ठीक मार्ग दिखलाने के लिए शिवाजी ने भी कुछ प्रयत्न किया—फ़ारसी शब्दों के बदले संस्कृत शब्दों के उपयोग का भाषा तथा साहित्य पर स्थायी परिणाम हुआ। मुसलमानी राज्य स्थापित होने पर शिवाजी के समय तक व्यवहार की भाषा में फ़ारसी शब्दों का बहुत अधिक उपयोग होने लगा था। शिवाजी के परिवर्तन से धीरे-धीरे मराठी और संस्कृत शब्दों का उपयोग अधिक होने लगा और ग्रंथ-रचना भी अधिक हुई। विद्वानों का उचित मान करने की रीति शिवाजी ने ही जारी की और इससे धीरे-धीरे विद्या बढ़ी। इसी रीति को आगे चलकर पेशवों ने भी जारी

शिवाजी के लोकोपयोगी कार्य

रक्खा। शिवाजी की राज्य-स्थापना से इतिहास का सर्व-सामान्य सिद्धान्त सिद्ध होता है कि स्वराज्य के विना किसी प्रकार की उन्नति नहीं हो सकती। स्वराज्य स्थापित होने पर ही भाषा और साहित्य, आचार और विचार धन और बल में उन्नति होना शक्य है।

शिवाजी के समय में एक बड़ा भारी लोकोपयोगी काम हुआ। आदिलशाही का एक सरदार फलटण का बजाजी नाइक निम्बालकर, आदिलशाह के दबाव और धमकी के कारण, मुसलमान हो गया था। जीजाबाई ने लोगों की सम्मति से उसे फिर से हिन्दू-धर्म में ले लिया। इस निम्बालकर-घराने से शिवाजी का पुराना सम्बन्ध था। इस शुद्धि पर लोग कुछ आक्षेप न करें, इसके लिए शिवाजी की लड़की सखूबाई बजाजी के बड़े लड़के महादाजी को ब्याह दी गई। बजाजी नायक का मुसलमान होना आपद्धर्म समझा गया था और शास्त्रों के आधार पर ही वह फिर से हिन्दू-धर्म में लिया गया। इसके बाद इसी प्रकार के कुछ और उदाहरण इतिहास में हुए। इससे यह दीख पड़ता है कि जीजाबाई और शिवाजी ने शुद्धि की प्रथा का प्रारम्भ बहुत पहले कर दिया था।

शिवाजी के समय में "शुद्धि"-कार्य

शिवाजी का इतिहास समाप्त करने के पहले हमें यह अच्छी तरह जान लेना चाहिए कि हिन्दुस्थान के इतिहास में शिवाजी का क्या स्थान है। हम यह प्रारम्भ में ही बतला चुके हैं कि कई प्रकार की अनुकूल स्थिति ने शिवाजी के कार्य को सम्भव किया। इसीको ऐसा कह सकते हैं कि अनुकूल

हिन्दुस्थान के इतिहास में शिवाजी का स्थान

स्थिति ने शिवाजी को जन्म दिया। यानी यदि स्थिति अनुकूल न होती तो शिवाजी जैसा पुरुष उस समय न हुआ होता। इतिहासवेत्ता यह जानते ही हैं कि विना अनुकूल स्थिति के कोई भी महापुरुष नहीं पैदा होता। परन्तु इसीमें महापुरुष अपना कार्य कर दिखाते हैं। उनकी विशेषता यह रहती है कि वे अपने काल के प्रतिनिधि होते हैं। यही बात शिवाजी के विषय में चरितार्थ होती है। उस काल के लोगों की जो इच्छा थी, वही उसकी इच्छा थी। उस काल के लोगों का जो ध्येय था, वही उसका ध्येय था। उस काल के लोगों की जो महत्वाकांक्षा थी, वही उसकी महत्वाकांक्षा थी। उस काल के लोगों का जो सुख-दुःख था, वही उसका सुख-दुःख था। उस काल के लोगों की जो स्फूर्ति थी, वही उसकी स्फूर्ति थी। सारांश, वह अपने काल का पूर्ण प्रतिनिधि था। साथ ही इसके वह अपने काल को पहचान सकता था। उसे मालूम था कि इस कार्य में लोग मेरा साथ देंगे और उनका उपयोग करना मेरा कर्तव्य है। उसे आन्तरिक स्फूर्ति हो गई थी कि परमेश्वर ने मुझे दुनिया में इसी कार्य के लिए भेजा है। उसे विश्वास हो गया था कि ईश्वर मुझे सफलता देगा। शिवाजी का व्यक्तित्व समझने के लिए हम अपने से एक प्रश्न कर सकते हैं। उस परिस्थिति में रहनेवाले लाखों लोग थे, पर शिवाजी ही को क्यों स्वराज्य-स्थापना की स्फूर्ति हुई ? मारटिन लूथर के समय पोप के घृणित कृत्यों को देखने और समझनेवाले लाखों थे, पर विटेनवर्ग के चर्च पर लेख लिखकर चिपकाने की स्फूर्ति और हिम्मत इसी महापुरुष को क्यों हुई ? इस प्रश्न के उत्तर में यदि आप कुछ कह सकते हैं, तो यही कहेंगे कि परि-

स्थिति का महत्व तो है ही, पर उसका उपयोग करने का महत्व व्यक्ति को है। यही उत्तर शिवाजी के लिए भी उपयुक्त है। उसके समय में स्वतंत्रता की पुकार पैदा हो गई थी, पर लोक-शक्ति बिखरी हुई थी और कभी-कभी तो मराठे लोग आपस ही में मार-काट किया करते थे। शिवाजी ने इस बिखरी हुई शक्ति को एकत्र किया और स्वतंत्रता की जो ध्वनि यहाँ-वहाँ सुनाई देती थो उसे उसने उसका मूल-मंत्र बना दिया। उसने महाराष्ट्र की शक्ति पैदा नहीं की—वह तो वहाँ पहले ही थी। उसका परिणाम यहाँ-वहाँ अलग-अलग दीख पड़ता था। शिवाजी ने उस शक्ति का सम्मिलन करके उसका एक निश्चित ध्येय बना दिया। यही उसकी महाराष्ट्र के लिए वास्तविक सेवा हुई और इसी बात के लिए हमें उसे श्रेय देना चाहिए। एक बार लोकनायक बन जाने पर लोग उसीकी ओर सहायता और उद्धार के लिए देखा करते थे। इसके कई उदाहरण हैं। इनमें से सावनूर का उदाहरण ध्यान में रखने लायक़ है। जब सावनूर के लोग मुसलमानों का अत्याचार अधिक न सह सके तब उन्होंने शिवाजी को पत्र लिखा और उसे अपने उद्धार के लिए आमन्त्रित किया। उसमें उन्होंने उसे स्पष्टतया हिन्दू-धर्म का प्रतिपालक और उद्धारक कहा है। जिन्हें शिवाजी के देशोद्धारक होने के विषय में शंका हो, उन्हें उपर्युक्त पत्र अवश्य अच्छी तरह पढ़ना चाहिए। शिवाजी के देशोद्धारक होने की बात कई मामूली प्रमाणों से भी सिद्ध हो सकती है। हम प्रश्न कर सकते हैं कि किस सांसारिक लाभ के लिए शिवाजी के सहकारियों ने उसके कहने पर अपने प्राण खतरे में डाले और

उनमें से कई ने आत्म-यज्ञ भी किया ? उसका नाम लेते ही लोगों में क्यों जोश पैदा हो जाता था और वह जोश उसकी मृत्यु के बाद भी कई वर्ष तक क्यों बना रहा ? उसके जीते जी ही लोग उसे विष्णु का और उसके मरने के बाद शिव का अवतार क्यों समझने लगे ? आज दिन तक महाराष्ट्र में घर-घर उसके नाम की पूजा क्यों होती है ? सार यह है कि महाराष्ट्र के स्वातंत्र्य-सिद्धि के कार्य से उसने जिन लोगों की स्वार्थ-सिद्धि में बाधा की, उन लोगों का कथन बहुतांश में शिवाजी के विरुद्ध ही रहेगा । इसलिए महाराष्ट्रीय हुए बग़ैर—कम से कम हिन्दू हुए बिना तो शिवाजी का महत्व किसी की समझ में नहीं आ सकता। यदुनाथ सरकार जैसे छिद्रान्वेषी पुरुष को भी अपनी पुस्तक के अन्त में शिवाजी के महत्व का गायन करना पड़ा है । आपने वहाँ जो कुछ कहा है, उसे हम यहाँ ज्यों का त्यों दिये देते हैं

यदुनाथ सरकार का मत

"शिवाजी का वास्तविक महत्व उसकी कल्पना में अथवा राजकीय दूर-दर्शिता में नहीं है, किन्तु उसके शील और कार्यक्षमता में हैं। दूसरों को अच्छी तरह समझ लेना, उचित प्रबन्ध कर लेना और किसी भी परिस्थिति में अन्तःस्फूर्ति से यह जान लेना कि क्या सम्भव है और क्या लाभदायक है, यही उसके जीवन की सफलता के कारण थे । इनके साथ-साथ हमें उसकी व्यक्तिगत नीतिमत्ता और आदर्श की उच्चता को भी मद्देनजर रखना चाहिए । क्योंकि इन्हींके कारण अच्छे-अच्छे लोगों ने भी उसका साथ दिया। उसकी सर्व-सहिष्णुता और न्यायपरता के कारण उसके राज्य का कोई भी पुरुष असन्तुष्ट नहीं हुआ ।

उसने बहुत परिश्रम से अच्छी व्यवस्था स्थापित की और अपने राज्य में नैतिक नियमों का पालन अच्छी तरह करवाया। इसलिए लोग अन्य स्थानों की अपेक्षा उसके यहाँ अधिक सुखी थे। उसकी बड़ी-बड़ी विजयों को देखकर लोगों को बहुत खुशी हुई और उनकी हिम्मत बढ़ी, और उसका नाम मराठों के लिए नव-जीवन का मूलमंत्र हो गया। उसकी मृत्यु के नौ वर्ष के भीतर ही उसका राज्य नष्ट हो गया। परन्तु मराठों का उसने जो एक राष्ट्र वना डाला, वह उसका अविनाशी कार्य था; और लोगों में जो उसने जोश भर दिया, वह लोगों का अमूल्य धन था।

"यह सच है कि दक्षिण के तीन मुसलमानी राज्यों के आपसी झगड़ों से तथा उनकी भीतरी कमज़ोरियों से शिवाजी को सिर उठाने का मौक़ा-मिला, परन्तु उसकी सफलता का कारण शत्रुओं की कमज़ोरी नहीं किन्तु उच्च आदर्श है। मैं उसे हिन्दुओं का अन्तिम प्रतिभाशाली पुरुष और राष्ट्र-संवर्धक मानता हूँ। उसकी शासन-व्यवस्था उसकी निजी वस्तु थी और जिस प्रकार रणजीतसिंह ने अपने शासन में वाहरी सहायता ली उस प्रकार शिवाजी ने नहीं ली। उसकी सेना ने अपने ही लोगों से शिक्षा-पाई और वे ही लोग उसके संचालक रहे। रणजीतसिंह के सामान फ्रेंच अथवा अन्य किसी विदेशी लोगों को उसने नहीं बुलाया। उसने जो कुछ रचा और बनाया, वह बहुत दिनों तक चलता रहा। पेशवाई के परम-समृद्ध काल से भी उसकी शासन-व्यवस्था की प्रशंसा होती रही।

"शिवाजी पढ़ा-लिखा न था। उसने पुस्तकों से कुछ न

सीखा। ❀ कोई शाही दरबार, सभ्यनगर अथवा सुव्यवस्थित सेना देखने के पहले ही उसने अपने राज्य और शासन-व्यवस्था की स्थापना की थी। किसी अनुभवी मंत्री या सेनापति से उसे किसी प्रकार की सहायता अथवा मंत्रणा नहीं मिली। उसकी प्रतिभा ही कुछ ऐसी थी कि बिना किसी सहायता के अकेले उसने सुव्यवस्थित राज्य, अजेय सेना और विशाल तथा लोकोपकारी शासन-व्यवस्था की स्थापना की।

"उसके पहले मराठे लोग दक्षिण के राज्यों में तितर-बितर फैले हुए थे। उसने उनका एक शक्तिशाली राष्ट्र बना दिया और यह सब उसने उस समय किया कि जब मुग़ल बादशाहत, बीजापुर की आदिलशाही, पोर्त्तगीज़ राष्ट्र और जंजीरा के सिद्दी जैसी चार प्रचण्ड बलशालिनी शक्तियाँ उसका घोरतम विरोध कर रही थीं। आधुनिक काल में अन्य किसी हिन्दू ने यह योग्यता नहीं दिखाई। बखरकारों ने शिवाजी की भौतिक सम्पत्ति यानी हाथी, घोड़े, सिपाही, नौकर, जवाहिर, सोना, चांदी आदि का भरपूर लेखा दिया है। परन्तु शिवाजी ने भावी पीढ़ी के लिए महाराष्ट्र का नवजीवन-रूपी अमूल्य धन बना रक्खा, उसका उन्होंने उल्लेख नहीं किया।

"उसके पहले मराठे लोग केवल किराये के टट्टू अथवा विदेशियों के बन्दे गुलाम थे। राज्य का कारबार तो चलाते थे, परन्तु उसकी व्यवस्था में उनका कुछ भी हाथ न था। सैनिक बनकर वे अपना रक्तपात तो करते, परन्तु युद्ध अथवा संधि की

❀ इस बात को हम अन्यत्र ग़लत सिद्ध कर चुके हैं।

बातों में वे कुछ न बोल सकते थे। वे सदैव मातहती का काम करते रहे। कभी अगुआ न बने। शिवाजी ही पहला पुरुष था कि जिसने दिल्ली की बादशाही और बीजापुर की आदिलशाही को चुनौती दी और इस प्रकार अपने लोगों को सिखाया कि चाहो तो तुम भी युद्ध का कार्य स्वतंत्रतया कर सकते हो। फिर उसने स्वराज्य स्थापित किया और इस प्रकार अपने लोगों को यह बतला दिया कि राज्य के भिन्न-भिन्न विभागों के शासन की योग्यता तुममें भी है। उसने अपने उदाहरण से यह सिद्ध कर दिया है कि हिन्दू भी राष्ट्र की रचना और राज्य की स्थापना कर सकते हैं, शत्रुओं को हरा सकते हैं, अपनी निजी रक्षा कर सकते हैं, साहित्य और कला, व्यापार और उद्योग-धन्धे की उन्नति कर सकते हैं, अपने निजी जंगी और व्यापारी बेड़े बनाकर उनका संचालन कर सकते हैं और विदेशियों से भी बराबरी की समुद्री लड़ाइयाँ लड़ सकते हैं। सारांश, उसने हिन्दुओं को अपना परम उत्कर्ष करना सिखा दिया। उसने यह सिद्ध कर दिया है कि हिन्दू-जाति केवल जमाइतदार और चिटनीस ही नहीं वरन् जनपति और छत्रपति पैदा कर सकती है। जहाँगीर बादशाह ने प्रयाग के अक्षय वट को बिलकुल जड़ तक कटवा डाला और उसकी ठूँठ पर पिघला हुआ लाल-लाल लोहा डलवा दिया। इससे वह समझ बैठा कि मैंने उसे नष्ट कर डाला। परन्तु एक ही वर्ष के भीतर उसने अपनी बाढ़ फिर से शुरू की और इस बाढ़ की विघ्न-बाधाओं को एक ओर ढकेल दिया।

"शिवाजी ने यह सिद्ध कर दिया है कि हिन्दुत्व का वृक्ष अभी मरा नहीं है। वह अब भी सदियों की राजकीय दासता,

शासन की अनुभव-हीनता और बाक़ायदा अत्याचार के भार से दबा रहने पर भी ऊपर उठ सकता है। नवीन शाखायें और पत्ते पैदा कर वह अब भी आकाश में अपना सिर उठा सकता है।" ❀

❀ अध्यापक यदुनाथ सरकार-कृत 'शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम्स'; पृष्ठ ४४०–४४४।

१७

सम्भाजी

शिवाजी की जब मृत्यु हुई, तब उसका सबसे बड़ा लड़का सम्भाजी पन्हाला क़िले में नज़रबन्द था। शिवाजी की मृत्यु की ख़बर पाते ही मोरोपन्त पेशवा और अन्नाजी दत्तो सचिव रायगढ़ को आये और वहाँ पर यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि गद्दी पर किसे बिठलाया जाय। सम्भाजी सबसे बड़ा लड़का होने के कारण वास्तविक अधिकारी था, परन्तु उसके दुर्व्यसनी और अविचारी होने के कारण सबको भय था कि वह यदि गद्दी पर बैठा तो राज्य पर संकट आये बिना न रहेंगे। दक्षिण के राज्य नष्ट करने के लिए स्वयं औरंगज़ेब के दक्षिण में शीघ्र आने की ख़बर थी। इसलिए सबको इस बात की आवश्यकता जान पड़ी कि मराठा-राज्य सुव्यवस्थित रहे। शिवाजी की एक पत्नी

पहले राजाराम
फिर सम्भाजी

सोयराबाई ने यह सूचना की कि मेरे लड़के राजाराम को गद्दी पर बैठा कर सब कोई राज-कारबार चलावें। मोरोपंत पेशवा और अन्नाजी दत्तो ने यह बात पसन्द की और दूसरे बड़े-बड़े लोगों को अपनी ओर करके उन्होंने राजाराम को गद्दी पर बैठाने का विचार निश्चित कर लिया। कोल्हापुर में जनार्दन पन्त हणमंते सुमन्त था। उसे पन्हाला का बन्दोबस्त अच्छी तरह से रखने को लिखा गया। पन्हाला में हिरोजी फ़रजंद को इस बात की चिट्ठी लिखी गई कि सम्भाजी को शिवाजी की मृत्यु की खबर बिलकुल न लगने दो। इस प्रकार इन लोगों ने सम्भाजी को छोड़, राजाराम को गद्दी पर बैठाकर, सुव्यस्थित रीति से राज्य चलाने का निश्चय किया। शिवाजी की मृत्यु के एक महीने बाद राजाराम का राज्याभिषेक भी हो गया। परन्तु बहुत शीघ्र ही यह विचार विफल हो गया। शिवाजी की मृत्यु की खबर एक कान से दूसरे कान होती हुई सम्भाजी तक पहुँच गई। हिरोजीफ़रज़ंद के नाम हुक्म लेकर जो लोग गये थे, उन्हें डाट-डपट कर सच बात उसने पूछ ली। तत्काल उसने उग्र रूप धारण किया। हुक्म लाने वाले लोगों को उसने क़िले की दीवार से गिराकर मार डाला। हिरोजी फ़रज़ंद कोंकण में भाग गया, अतएव पन्हाला क़िला सरलता से उसके क़ब्ज़े में आगया। जनार्दन पंत हणमंते सेना-सहित कोल्हापुर में था। सम्भाजी ने उसकी सेना को अपनी ओर कर लिया और उसके पैरों में बेड़ियाँ डाल दीं। यह देख कर हम्बीरराव मोहिते सेनापति सम्भाजी से जा मिला। आगे की व्यवस्था के लिए मोरोपंत पिंगले पन्हाला की ओर जा रहा था। सेनापति को उस मसलहत में से अलग हुए देख कर मोरोपंत भी संभाजी

से जा मिला। तब सम्भाजी ने रायगढ़ की ओर कूच किया। यह क़िला भी शीघ्र ही उसके हाथ लग गया। यह क़िला हाथ आते ही अपने विरुद्ध लोगों को उसने सज़ा देना शुरू किया। अन्नाजी दत्तो और मोरोपंत पिंगले को उसने क़ैद में डाल दिया और राजाराम की माँ सोयराबाई को दीवार में चिनवा कर मार डाला!

इस समय बादशाह औरंगज़ेब का लड़का मुहम्मद अकबर बाप से बाग़ी हो कर सम्भाजी के आश्रय में आया। सम्भाजीने उसका आदर-सत्कार करके रायगढ़ के पास उसे रख लिया। कुछ समय बाद सम्भाजी को यह ख़बर लगी कि अन्नाजी दत्तो आदि अकबर से मिलकर राजाराम को गद्दी पर बैठाने का षड्यन्त्र रच रहे हैं। यह ख़बर पाते ही सम्भाजी बाघ के समान रायगड़ दौड़ आया और उस षड्यन्त्र में जिस-जिसके शामिल होने की उसे शंका हुई उस-उसको उसने मृत्यु-दण्ड दिया। अन्नाजी दत्तो तथा बालाजी आवजी चिटनीस को उसने हाथी के पैरों के नीचे कुचलवा डाला। इस समय

सम्भाजी कलुषा के क़ब्ज़े में

सम्भाजी बिलकुल चिढ़ गया था और कलुषा नाम का एक दुष्ट कनौजिया ब्राह्मण उसका मुख्य सलाहकार बन बैठा था। यह भोंसलों का प्रयाग का पुश्तैनी पण्डा था और सम्भाजी के राज्याभिषेक के कुछ ही दिन पहले वह दक्षिण में आया था। उसने तथा अन्य सलाहकारों ने सम्भाजी को क्रोधवश देखकर शिवाजी के उत्तमोत्तम पुरुषों को मौत के रास्ते लगा दिया। अन्त में सम्भाजी की पत्नी येसूबाई ने उसकी आँखें खोलीं, तब कहीं उसे अपनी ग़लती मालूम पड़ी। उसने बालाजी आपजी के लड़के खंडो और

नीलो को उनके पिता का काम सौंपा। परन्तु शांत-चित्त से काम करने लायक़ सम्भाजी न था। कलुषा पर उसका सारा भरोसा था, और वह शिवाजी के समय के कारबारियों को दूर करने के लिए सदैन तत्पर रहता था। सम्भाजी पर उसका दबाव दिनों-दिन बढ़ता ही गया।

सम्भाजी को सुधारने की इच्छा से दो बड़े पुरुषों ने प्रयत्न किया। इनमें से एक रामदास स्वामी थे। इन्होंने सम्भाजी को उपदेश देने के विचार से जो पत्र लिखा, उसका सार यह था कि कारबारियों के पुराने अपराध क्षमा कर उन्हें अपने हाथ में लो और अच्छी तरह राज्य चलाओ। शिवाजी ने जो कुछ प्राप्त किया उसीके लिए यदि लड़ते रहोगे तो शत्रु को अपना सिर उठाने का मौक़ा मिलेगा। इसलिए ऐसा न कर रामदास स्वामी ने शिवाजी के कार्यों आदि का उसे ध्यान दिलाया। इस उपदेश के थोड़े ही दिनों बाद, सन् १६८२ में, रामदास स्वामी की मृत्यु हो गई। सम्भाजी को सीधे रास्ते पर लाने का प्रयत्न करने वाला दूसरा पुरुष कर्नाटक का प्रसिद्ध रघुनाथ नारायण हणमंते था। उसने औरंगजेब की होने वाली चढ़ाई की ओर ध्यान आकर्षित किया। परन्तु सम्भाजी को उसकी बातें ठीक न लगीं, यह देखकर रघुनाथ पंत कर्नाटक को वापस चला गया। वहाँ सन १६८२ में उसकी भी मृत्यु हो गई। उसके बाद जिंजी के प्रदेश की व्यवस्था शिवाजी के जामात्र हरजी राजा महाड़िक को सौंपी गई और नीलो मोरेश्वर पिंगले उसका सहायक नियत हुआ।

सम्भाजी व्यसनी और हठी तो था, परन्तु बहादुर था।

जंजीरा के सिद्दियों से उसने जो युद्ध किये, उनमें उसकी वीरता अच्छी तरह दीख पड़ी। यह बतला ही चुके हैं कि शिवाजी ने जंजीरा को लेने की बहुत कोशिश की, परन्तु वह इस में सफल न हो सका। शिवाजी की मृत्यु के बाद सिद्दी ने मराठों पर भयंकर अत्याचार करने शुरू किये और औरंगज़ेब ने उसे इस काम में प्रोत्साहन दिया। सम्भाजी को जब यह खबर लगी, तब उसे बड़ा गुस्सा आया और उसने सिद्दी को मटियामेट करने का निश्चय किया।

जंजीरा के सिद्दियों से झगड़ा

प्रथम खंडोजी फ़रज़ंद ने अपने ज़िम्मे जंजीरा में जाकर बग़ावत फैलाने का काम लिया। इस विचार से उसने जंजीरा में सिद्दी की नौकरी कर ली, परन्तु उसके षड्यंत्र का हाल सिद्दी को किसी प्रकार मालूम हो गया और सिद्दी ने उसे प्राण-दण्ड दिया। फिर दादजी रघुनाथ देशपांडे ने जंजीरा को घेरा डाल कर लेने का विचार किया। स्वयं सम्भाजी अकबर को साथ लेकर जंजीरा को लेने के लिए कोंकण में गया और अपने कार्य की सफलता के लिए एक अजब युक्ति सोची। उसने समुद्र लूट डालने का विचार किया, परन्तु उससे यह काम न बन पड़ा। रणमस्तखाँ नाम का मुग़ल सरदार कल्याण के आस-पास लूट-मार मचाने लगा, इस कारण सम्भाजी को उधर जाना पड़ा। इसके बाद सिद्दी ने दादजी को हरा दिया। सम्भाजी को पोर्तगीज़ लोगों से भी लड़ना पड़ा था। ये लोग कोंकण में अच्छे बलवान बन बैठे थे और साष्टी या साल सत्ती, दमन, वसई, खेदंडा और गोवा नाम के बन्दर

जंजीरा से युद्ध

उनके हाथ में थे। मराठों और मुसलमानों के बीच जब कभी युद्ध होते। तो ये भी कभी एक पक्ष में और कभी दूसरे पक्ष में शामिल होते थे। शिवाजी और सिद्दी के बीच जब युद्ध चला था तब पोर्तगीज़ों ने मराठों के मार्ग में कई कठिनाइयाँ पैदा कीं। इस-लिए सम्भाजी ने उनकी अच्छी खबर लेने का विचार किया और खेदंडा उर्फ़ चौल बन्दर को घेर लिया। तब गोवा के गवर्नर ने मराठों के प्रदेश में गड़बड़ मचाई और फोंडा नामक क़िले को घेर लिया। यह ख़बर पाते ही सम्भाजी उधर दौड़ गया और पोर्त्तगीज़ सेना के पिछले भाग पर हमला कर दिया। इसपर पोर्त्तगीज़ गवर्नर ने घेरा उठाकर गोवा को वापस जाने का विचार किया। तब फोंडा के पास मराठों और पोर्त्तगीज़ों की भयंकर लड़ाई हुई और उसमें इन यूरोपियनों का पूर्ण पराभव हुआ। इससे मराठों ने अच्छा नाम पाया और पोर्त्तगीजों पर उनकी धाक जम गई। पोर्त्तगीज़ों ने औरंगज़ेब से आश्रय माँगा और उसने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। फोंडा में सम्भाजी ने एक नया मज़बूत क़िला बनवाया और पोर्त्तगीज़ों का गोवा के उत्तर का सब प्रदेश लूट-मार कर साफ़ कर दिया। इससे पोर्त्तगीज़ लोग बिलकुल दब गये और उन्होंने सम्भाजी से संधि की बात चलाई। सम्भाजी का विचार तो सिद्दी और पोर्त्तगीज़ दोनों को समूल नष्ट कर देने का था, परन्तु उसे ये विचार एक ओर रख देने पड़े; क्योंकि उत्तर से औरंगज़ेब-रूपी आपत्ति महाराष्ट्र पर आई, और सम्भाजी को अपना सारा समय उससे अपने राज्य की रक्षा करने में लगाना पड़ा।

औरंगज़ेब ने महाराष्ट्र पर चढ़ाई करने और उसे लेने के

लिए कई सेनापति भेजे थे, परन्तु शिवाजी ने उनकी दाल न गलने दी और उनका हेतु सदैव विफल किया। कुछ साल औरंगज़ेब को राजपूताने से लड़ना पड़ा और इन लोगों ने उसे खूब तंग किया। इसी समय शाहज़ादा अकबर राजपूतों से जा मिला था, परन्तु औरंगज़ेब ने उनमें भेद-नीति का बीज बोकर अकबर को दक्षिण की ओर भगवा दिया। हम यह देख ही चुके हैं कि अकबर वहाँ से भागकर दक्षिण में सम्भाजी से मिला और कुछ समय तक उसके पास रहा। उसके बाप औरंगज़ेब ने राजपूतों से संधि करली और किसी प्रकार उनसे छुट्टी पाई। अब कहीं उसे दक्षिण की ओर ध्यान देने की फ़ुरसत मिली। शिवाजी की मृत्यु हो ही चुकी थी। इसलिए उसे ऐसा जान पड़ा कि अधिक से अधिक दो साल में हम सारे दक्षिण को जीत लेंगे।

औरंगज़ेब की चढ़ाई

इस विचार से औरंज़ेब बड़ी भारी सेना लेकर सन् १६८१ के सितम्बर मास में अजमेर से दक्षिण की ओर रवाना हुआ। उसने अपने साथ कई प्रकार की सेना, अच्छा तोपख़ाना और यूरोपियन गोलंदाज़ लिये थे। इस प्रकार एक चलता-फिरता शहर लेकर वह सन् १६८१ के अन्त तक दक्षिण में आ पहुँचा।

औरंगज़ेब ने पहले मराठों का प्रदेश जीतने का विचार किया। इसके अनुसार उसने अपने लड़के मुअज़्ज़म को और आज़म को आगे भेजा। आज़म ने मराठों के उत्तरी प्रदेश पर हमला किया और मुअज़्ज़म जुन्नर से निकल कर कल्याण-प्रान्त में पहुँचा। आज़म ने भेद-नीति के सहारे सालेर का क़िला

रामसेज लेने का मुग़लों का वृथा प्रयत्न

सरलता से ले लिया। फिर बागलान भाग के कई क़िले हस्तगत कर सन् १६८२ में रामसेज नामक क़िले को मुग़लों ने घेर लिया। तब उस क़िले को मदद पहुँचाने के विचार से सेनापति हम्बीर-राव मोहिते बागलान में पहुँचा। रामसेज के पास उसकी मुग़लों से भारी लड़ाई हुई। हम्बीरराव हारकर सातारा मिरज की ओर वापस आया। इसपर मुग़लों ने उसका पीछा किया, परन्तु अब वे स्वयं आफ़त में पड़े। मराठों ने बार-बार हमले करके उनको तंग कर डाला। औरंगज़ेब ने यह खबर पाकर आज़म को वापस बुला लिया। उधर रामसेज के मराठे बड़ी वीरता से लड़े। मुग़लों ने उनपर दो बार ज़ोरों का हमला किया, परन्तु दोनों बार उनका प्रयत्न व्यर्थ हुआ। अन्त में मुग़लों ने घेरा उठा लिया और वह क़िला मराठों के हाथ में बना रहा।

मुअज़्ज़म आफ़त से बचा

इधर मुअज़्ज़म कल्याण-प्रान्त में लूटमार करता हुआ दक्षिण कोंकण में वेंगुरला तक पहुँचा। इसी समय सम्भाजी ने गोवा के पास पोर्त्तगीज़ों को अच्छी शह दी थी। उसे दूर करने के लिए ही मुअज़्ज़म की यह चाल थी। मराठों ने मुग़लों का कभी खुले रण में सामना न किया। मुअज़्ज़म ने मुल्क को बर्बाद करने का जो काम किया उससे उसका निजी नुक़सान हुआ। कोंकण में वैसे ही अनाज कम पैदा होता है; जो थोड़ा-बहुत पैदा हुआ था, वह भी उसने नष्ट कर डाला। मराठे क़िलों में रहते थे और उनके पास भरपूर अन्न-सामग्री थी। इसलिए मुग़ल सैनिकों को खाने को न मिला। इस बात की खबर जब औरंगज़ेब ने पाई, तब उसने सूरत के सूबेदार को मुअज़्ज़म को अनाज भेजने के

लिए लिखा और शाहबुद्दीन नामक एक सरदार को फ़ौज देकर उसकी मदद के लिए भेजा। सूरत से अनाज के जो जहाज़ आये, उनमें से कई मराठों ने पकड़ लिये। इसी समय मुअज़्ज़म की सेना में बीमारी शुरू हुई। इससे वह बड़ी आफ़त में पड़ा। अन्त में और मदद पहुँचने पर वह किसी प्रकार पश्चिमी घाट लाँघकर सन् १६८४ के मार्च महीने में कृष्णानदी के किनारे वालवे नामक स्थान में पहुँचा और वहीं छावनी डालकर रहने लगा।

इसके बाद सम्भाजी ने भड़ोंच पर हमला किया और वहाँ बहुतेरी लूट की। इसके बाद दस हज़ार मराठों का दल बादशाही सेना की आँख बचाते हुए बुरहानपुर पहुँचा और उसके आस-पास बड़ी गड़-बड़ मचा दी। यह ख़बर पाते ही औरंग-ज़ेब ने उस दल पर ख़ाँजहाँबहादुर को भेजा, परन्तु मराठे उससे बचकर अपने मुल्क में वापस चले आये। इसके बाद औरंगज़ेब ने अपने लड़के कामबख़्श को बुरहानपुर के बन्दोबस्त के लिए नियत किया। इस प्रकार औरंगज़ेब का मराठों को जीतने का यह प्रयत्न व्यर्थ हुआ। उसके तीन साल वृथा गये। इसलिए उसने फ़िलहाल मराठों के पीछे पड़ने का प्रयत्न छोड़ दिया। अब उसने बीजापुर की आदिलशाही और गोलकुण्डा की कुतुबशाही की ख़बर लेने का विचार किया। इसलिए उसने अपना मोर्चा बीजापुर की ओर फेरा। आज़म ने पिता के हुक्म से सन् १६८५ में बीजापुर पर घेरा डाला।

मराठों को जीतने का विचार छोड़कर औरंगज़ेब का बीजापुर की ओर मोर्चा

इससे सम्भाजी को कुछ अवकाश मिला, परन्तु उसका उसने समुचित उपयोग नहीं किया। उसने यह न सोचा कि आदिलशाही

सम्भाजी की विलासिता

और कुतुबशाही के नष्ट होने पर मुग़ल सेना के सारे हमले मेरे ही राज्य पर होंगे। सन् १६८६ में आदिलशाही को और सन् १६८७ में कुतुबशाही को औरंगज़ेब ने नष्ट कर डाला। फिर औरंगज़ेब ने मराठों की ओर अपना मोर्चा फेरा। इस समय सम्भाजी कलुषा के क़ब्ज़े में पूरी तरह जा चुका था। यह पुरुष अपने को बड़ा भारी मंत्र-तंत्रवेत्ता कहा करता था और उसमें सम्भाजी का बड़ा भारी विश्वास था। इसलिए सम्भाजी ने उसे "छंदोगा मात्य" यानी वेदवेत्ता की पदवी दे रक्खी थी। जब कभी औरंगज़ेब की चढ़ाइयों की बात निकलती तो वह कहा करता कि बादशाह को नष्ट करने के लिए सेना की आवश्यकता ही क्या है—मैं मंत्र-तंत्र से चाहे जब बादशाह को साफ़ कर दूँगा। सम्भाजी ऐसी बातों से बड़ा खुश होता और उसका सन्मान किया करता था। इस समय वास्तव में सारा राज्य-कारबार कलुषा के हाथ में सौंप कर सम्भाजी अपने व्यसनों में मस्त था। लगान की वसूली का कुछ ठीक-ठिकाना न था, सारा राज्य-प्रबन्ध बिगड़ गया था, और सेना में कुछ भी व्यवस्था न रह गई थी। शिवाजी के समय के नियम अब न पाले जाते थे। इस प्रकार जहाँ-तहाँ गड़बड़ मच गई थी। ऐसे समय में औरंगज़ेब ने आज़मशाह के अधीन खानदेश की ओर इतिकदखाँ के अधीन कोंकण में और मुक़र्रबखाँ के अधीन कोल्हापुर की ओर—ऐसे कुल मिलाकर तीन दल भेजे।

मुक़र्रबखाँ को यह पता लगा था कि सम्भाजी संगमेश्वर में

रहता है और ऐश-आराम में मस्त है। उसने किसी प्रकार संग-मेश्वर के रास्ते का पता लगा लिया और कुछ सेना लेकर वह वहाँ जा पहुँचा।

सम्भाजी का वध

सम्भाजी की इस समय ऐसी बुरी हालत थी कि मुग़लों के आने की ख़बर देने वालों को ही उसने डाट दिया! इस कारण शीघ्र ही कलुषा और वह स्वयं मुग़लों के हाथ में पड़े। मुक़र्रबख़ाँ ने उन्हें क़ैद कर औरंगज़ेब के पास भेज दिया। औरंगज़ेब ने यह सोचा कि सम्भाजी को अपने पास रखने से मराठों के क़िले जल्द ले सकूँगा। इसलिए उसने उसे अपने पास रखने का विचार किया। तथापि उसने पहले यह चाहा कि सम्भाजी को मुसलमान बनालूँ। इस विचार से उसने सम्भाजी को यह संदेश भेजा कि यदि तुम मुसलमान हो जाओ तो मैं तुम्हें जीवन-दान दे दूँगा। सम्भाजी यद्यपि दुर्व्यसनी था, तथापि वह शिवाजी का लड़का था। बादशाह की क़ैद में रहना ही उसे अपमान-कारक जान पड़ा। इसलिए वह अपने जीवन से ही मुक्त होना चाहता था। औरंगज़ेब के अपमानकारक संदेश से वह इतना चिढ़ गया कि उसके उत्तर में उसने कहला भेजा कि यदि तुम अपनी बेटी मुझसे ब्याह दोगे तो मैं मुसलमान हो जाऊँगा। सम्भाजी इतना कह-कर ही न रुका, उसने मुहम्मद पैग़म्बर को गालियाँ भी दीं। उसकी सब बातें जब औरंगज़ेब के कानों पड़ीं, तो वह क्रोध से लाल हो गया और तत्काल उसने हुक्म दिया कि सम्भाजी की जीभ काट कर आँखें फोड़ के और फिर टुकड़े-टुकड़े करके उसके प्राण ले लेना। इस प्रकार सन् १६८९ के मार्च महीने की ११ वीं तारीख़ को अत्यन्त क्रूरता-पूर्वक सम्भाजी का वध हुआ।

इसके याद औरंगज़ेब को ऐसा जान पड़ा कि बस मराठों का राज्य अपनी मुट्ठी में आ गया। परन्तु यह उसकी कल्पना ही थी, और कल्पना ही रही। सम्भाजी निर्दयता-पूर्वक मारा गया, पर मराठों को तो औरंगज़ेब अपने अधीन नहीं ही कर सका।

टिप्पणी

सम्भाजी के विषय में सर देसाई का मत कुछ भिन्न है। उनके कथनानुसार औरंगज़ेब ने जिस समय बीजापुर को जीता, उस समय वहाँ के मुख्य सरदार सर्जेख़ाँ को सन् १६८७ में सम्भाजी का मुल्क जीतने के लिए भेजा। सर्जेख़ाँ वाई तक आया। यहाँ पर मराठों का सेनापति हम्बीरराव मोहिते अपनी छावनी डाले पड़ा था। मुग़लों और मराठों का घमासान युद्ध हुआ। उसमें मुग़लों का पराभव तो हुआ, परन्तु तोप का गोला लगने से सेनापति की मृत्यु हो गई। ऐसे समय में हम्बीरराव की मृत्यु से महाराष्ट्र की बड़ी हानि हुई।

कर्नाटक का कारबार शिवाजी के दामाद हरजीराजा महाड़िक के हाथ में था। बीजापुर को जीतने पर औरंगज़ेब ने अपनी फ़ौज गोलकुण्डा पर भेजी और फिर उसका इरादा कर्नाटक को जीतने का था। इसलिए कर्नाटक के अपने मुल्क की रक्षा के लिए सम्भाजी ने मोरोपंत पिंगले के भाई केशवपंत पिंगले और सन्ताजी घोरपड़े को दस हज़ार फ़ौज देकर जिंजी की ओर सन् १६८७ के जून महीने में भेजा। परन्तु केशवपंत और हरजी राजा के बीच झगड़े उत्पन्न हुए। सम्भाजी की फ़ौज कर्नाटक में पहुँचने की ख़बर पाकर औरंगज़ेब ने तुरन्त कुछ फ़ौज मैसूर वग़ैरा जीतने के लिए भेजी। मराठों के पहुँचने के पहले ही मुग़लों ने बंगलोर शहर ले लिया। इधर हरजीराजा ने सम्भाजी के उद्देश्य के अनुसार जिंजी का अच्छा बन्दोबस्त किया। उसके बाद कुछ समय तक केशवपंत तथा हरजी मित्र-भाव से रहे, परन्तु जल्द ही उन दोनों में फिर से झगड़े उठ खड़े हुए।

इस समय मुग़लों ने पूर्वी किनारे पर बहुत दूर तक अपना क़ब्ज़ा जमा लिया था। हरजी का कहना था कि मुग़ल फ़ौज से लड़कर पूर्वी किनारे को अपने क़ब्ज़े में कर लेना चाहिए। परन्तु केशवपंत उसकी कुछ सुनता न था। अन्त में हरजी ने अपनी ही हिम्मत पर अर्काट, कांचीवरम्, पूनामाली आदि स्थान और उनके आसपास का मुल्क थोड़े ही समय में जीत लिया और उस भाग से कर भी वसूल किया। हरजी का पराक्रम देखकर केशवपन्त तथा संताजी उसकी मदद को पहुँचे और उन सबने मिलकर बहुत-सा मुल्क जीता।

इधर इसी समय महाराष्ट्र में सम्भाजी ने पन्हाला के दक्षिण का सब प्रदेश जीत लिया। इस समय सम्भाजी के लिए बहुत अच्छा अवसर प्राप्त हुआ था। औरंगज़ेब के कृत्यों के कारण चारों ओर असन्तोष फैला था। उसके सरदार और लड़के उससे ऊब गये थे। उसका कोई भी सरदार आगे बढ़ने की हिम्मत न करता था। जो मौक़ा शिवाजी को कभी प्राप्त न हुआ था, वह सम्भाजी को प्राप्त हुआ। यदि सम्भाजी में थोड़ी भी चतुरता और विचार-शक्ति होती, तो वह इस समय खुद बादशाह की फ़ौज को बिलकुल साफ़ कर सकता था। परन्तु वह तो इस समय अपने व्यसनों में मग्न था। इसी कारण औरंगज़ेब दक्षिण में अपने पैर बनाये रख सका और सन् १६८८ के फ़रवरी महीने में वह बड़ी भारी फ़ौज कर्नाटक में भेज सका। वहाँ मराठों और मुग़लों के बीच कोई भारी लड़ाई न हुई। कभी-कभी छोटी-छोटी टोलियों की लड़ाइयाँ हो जाती थीं। इसी प्रकार से सन् १६८८ का साल बीत गया। आगे सन् १६८९ में शीघ्र ही सम्भाजी पकड़ा गया और उसका वध हुआ।

१८

महाराष्ट्रियों का जीवन-संग्राम

(सन् १६८९–१७०७ तक मुग़लों से युद्ध)

सम्भाजी के वध की ख़बर पाकर सब मुख्य-मुख्य मराठे सरदार रायगढ़ में एकत्र हुए और उन्होंने इस बात का विचार किया कि मराठा-राज्य की रक्षा अब किस प्रकार की जाय। औरंगज़ेब का ख़याल तो यह था कि सम्भाजी के वध से मराठे दब जावेंगे, परन्तु बात कुछ भिन्न ही निकली। सम्भाजी ने अनेकों को मार डाला था और अपने व्यसनों से लोगों का प्रेम नष्ट कर डाला था, तथापि वह उनका राजा था और शिवाजी का पुत्र था। उसके वध का बदला लिये बग़ैर मराठे कभी शान्त न रह सकते थे। इस कारण महाराष्ट्र में जहाँ-तहाँ उसके वध से विद्रोह की प्रवृत्ति पैदा हुई और महाराष्ट्रियों में बहुत जोश दीख पड़ा। इस जोश को बढ़ाने वाला सबसे भारी कारण यह था कि औरंगज़ेब महाराष्ट्र के राज्य को निगलना चाहता था। इसलिए

स्वराज्य की रक्षा के लिए येसूबाई की सलाह

शरीर में प्राण रहते स्वराज्य की रक्षा करने का सैकड़ों लोगों ने निश्चय किया। रायगढ़ में स्वराज्य-रक्षा का विचार करने के लिए जो प्रमुख सरदार एकत्र हुए, उनमें कुछ ये थे—जनार्दन पन्त हणमंते, प्रल्हाद नीराजी, रामचन्द्र पंत बहुतकर, खंडो बल्लाल चिटनीस, महाजी नायक, सन्ताजी घोरपड़े, धनाजी जाधव और खण्डेराव दाभाड़े। इस समय सम्भाजी की पत्नी येसूबाई और उसका छोटा लड़का शिवाजी रायगढ़ ही में थे और राजाराम वहीं सम्भाजी के हुक्म से नज़रबन्द था। पहले बतला ही चुके हैं कि येसूबाई बहुत चतुर, उदार और समयज्ञ स्त्री थी। उसने इस समय भी अपने ये गुण दिखलाये। उसने यह सलाह दी कि मेरा लड़का अभी बहुत छोटा है, इसलिए उसे गद्दी पर बिठलाना ठीक न होगा। मेरे देवर राजाराम के हाथ में राज्य का कारबार देकर और उन्हें अपने साथ लेकर तुम यहाँ से चले जाओ। सब-का एक जगह रहना ठीक नहीं। यदि एक जगह रहे तो सबके सब बादशाह के हाथ में पड़ेंगे। यह क़िला मज़बूत है और मैं यहाँ अपने बाल शिवाजी को लेकर रहती हूँ। तुम सब जब यहाँ से बाहर निकलोगे तो शत्रु तुमपर टूट पड़ेंगे। इसलिए फिर जहाँ तुम सब एकत्र होगे वहीं मुझे यहाँ से ले चलो। इस सलाह में बहुत चतुरता, गहरा देश-प्रेम और भारी स्वार्थ-हीनता थी। येसूबाई की बात सबको पसन्द आई। राजाराम स्वभाव से कुछ उदार और मिलनसार पुरुष था। भावज का सन्देशा सुन कर उसने राज्य का कारबार अपने हाथ में लेना मंज़ूर किया, परन्तु वह जन्म भर गद्दी पर न बैठा।

येसूबाई को पीछे छोड़ जाना राजाराम को ठीक न जँचा।

पर समय के अनुसार उसे करना ही पड़ा। रायगढ़ का अच्छा बन्दोबस्त करके वह प्रतापगढ़ को आया। वहाँ से वह भिन्न-भिन्न क़िलों का ठीक-ठीक बन्दोबस्त करते हुए आगे बढ़ा।

स्वराज्य-रक्षा के लिए राजाराम का प्रयत्न

भिन्न-भिन्न क़िलेदारों को यह बतलाया गया कि क़िले किसी प्रकार मुग़लों के हाथ में न जाने पावें। क़िलों के इस प्रबन्ध के काम में राजाराम को प्रल्हाद नीराजी ने बहुत सहायता दी। इसी समय में सन्ताजी घोरपड़े ने एक दिन रात को तुलापुर में बादशाही छावनी पर हमला कर दिया और खुद औरंगजेब के तम्बू के सोने के कलश निकाल लाया। इधर धनाजी जाधव ने रणमस्तखाँ की फ़ौज पर फलटण के पास हमला कर दिया और उसको अच्छी तरह साफ़ कर दिया।

यह बतला ही चुके हैं कि इतिकतखाँ के अधीन एक सेना कोंकण में भेजी गई थी। इस सेना ने सन् १६८९ के मार्च की २६ वीं तरीख़ को रायगढ़ घेर लिया। क़िले पर उसने कई हमले किये, पर उसके प्रयत्न विफल हुए। क़िला स्वयं बहुत मजबूत था और क़िले के लोगों

रायगढ़ का पतन और येसूबाई तथा बाल शिवाजी का मुग़लों के हाथ पड़ना

ने बड़ी वीरता से उसकी रक्षा की। परन्तु दुर्दैव से इतने आत्मत्यागियों में एक देशद्रोही निकल आया। उसका नाम सूर्याजी पिसाल था। इतिक़तखाँ ने उसे वाई की देशमुखी का प्रलोभन दिया और वह उस प्रलोभन में फँस गया। उसने क़िले के गुप्त मार्ग मुग़लों को दिखला दिये। उन मार्गों से मुग़ल क़िले पर चढ़ गये और उसपर उन्होंने अपना क़ब्ज़ा कर लिया। येसूबाई

और शिवाजी मुग़लों के हाथ पड़े। इतिक़तख़ाँ ने उन्हें तुरन्त औरंगज़ेब की छावनी में भेज दिया। औरंगज़ेब उसपर बहुत ख़ुश हुआ और जुलफ़िकारख़ाँ का ख़िताब देकर उसने इसका सन्मान किया। येसूबाई और शिवाजी को औरंगज़ेब ने अपनी छावनी में रख लिया। उस छोटे-से शिवाजी को वह प्यार से 'साह' कहा करता था, इसी कारण आगे चल कर उसका नाम साहू हुआ।

औरंगज़ेब को इस बात की ख़बर लग चुकी थी कि सम्भाजी का भाई राजाराम और कई मराठे सरदार फ़ौज जमा कर रहे हैं।

राजाराम का महाराष्ट्र छोड़कर जिंजी को प्रस्थान

इसलिए राजाराम का पीछा कर उसे पकड़ लाने के लिए उसने फ़ौज भेजी। राजाराम इस समय पन्हाला क़िले पर था। मुग़लों की ख़बर पाकर वह विशालगढ़ को गया। वहाँ से वह रॉंगना को भागा। परन्तु मुग़ल फ़ौज उसका पीछा करना छोड़ती ही न थी। इसलिए राजाराम और उसके कारबारी बड़ी आपत्ति में पड़े। उन्हें यह स्पष्ट दीख पड़ा कि हम यदि मुग़लों के हाथ में पड़ते हैं तो स्वराज्य-रक्षा के सारे मनोरथ विफल होंगे। परन्तु शीघ्र ही उन्हें एक उपाय सूझ पड़ा। उन्होंने जिंजी की ओर भाग जाने का विचार किया। इसलिए तुरन्त जिंजी को जाने की तैयारी राजाराम और उसके कारबारी करने लगे। रामचन्द्र नीलकंठ बहुतकर को महाराष्ट्र की सब व्यवस्था सौंपी। सिधोजी गूजर और उसके मातहत कान्होजी आँग्रे को समुद्र-तट के प्रबन्ध का काम दिया और महाजी नाइक पानसबल को महाराष्ट्र का सेनापति नियत किया। इसके बाद राजाराम, प्रल्हाद नीराजी, खंडोबल्लाल चिटनीस, धनाजी जाधव, संताजी घोरपड़े,

खण्डेराव दाभाड़े आदि लोगों ने लिंगाइत यात्रियों का वेष धारण कर जिंजी की राह ली। वे राँगना से निकलकर गोकर्ण होते हुए बंगलोर की ओर चले। उनके कर्नाटक जाने की ख़बर बादशाह को लग गई। उसने कर्नाटक के फ़ौजदार क़ासिमख़ाँ को उन्हें पकड़ने का हुक्म भेजा। इसने राजाराम के बंगलोर पहुँचने के पहले ही बहुत बारीकी से कर्नाटक में उसका पता लगाना शुरू किया। उसके इस कार्य की ख़बर राजाराम के आदमियों को मिल गई और खंडोबल्लाल चिटनीस की चतुरता से ये लोग १६८८ के अन्त में किसी प्रकार सकुशल जिंजी पहुँचे।

जिंजी पहुँचकर राजाराम ने अष्ट-प्रधान नियत किये। नीलो मोरेश्वर पिंगले को मुख्य प्रधान बनाया। महाजी नाइक महासबल मर गया था, इसलिए सन्ताजी घोरपड़े को सेनापति नियत किया। पंत-प्रतिनिधि नाम का नया पद बना कर प्रल्हाद नीराजी को उसपर नियुक्त किया। हरजी राजे महाडिक और नीलो मोरेश्वर पिंगले पहले से ही जिंजी में थे। वहाँ उन्होंने अच्छी व्यवस्था कर रक्खी थी। उस भाग के क़िलों का बन्दोबस्त भी उन्होंने अच्छा किया था। इसलिए वहाँ सन्ताजी घोरपड़े और धनाजी जाधव की आवश्यकता न देख उन्हें महाराष्ट्र में भेज दिया। प्रल्हाद नीराजी की सलाह से राजाराम नें लोगों को जागीर और पदवियाँ देना शुरू किया। जागीरें बहुधा मुग़ल मुल्क में दी जाती थीं। इसलिए मराठों ने उन जागीरों पर अपना हक़ जमाने के विचार से उस मुल्क में खूब गड़बड़ मचा दी। औरंगज़ेब को जब ख़बर लगी कि राजाराम जिंजी को पहुँच गया,

जिंजी से स्वराज्य-रक्षा के प्रयत्न

तो जुलफ़िकारख़ाँ को फ़ौज देकर उसने उसे लेने के लिए भेजा। इस सेनापति ने जिंजी पर घेरा डाला। इधर राजाराम के चले जाने पर मुग़लों ने पन्हाला क़िला ले लिया और जिस विशालगढ़ क़िले पर रामचन्द्र पंत बहुतकर महाराष्ट्र के बन्दोबस्त के लिए रहता था उसे घेर लिया। रामचन्द्र पंत ने बहुत समय तक क़िले की रक्षा की; परन्तु जब उसने यह देखा कि क़िला अपने हाथ में नहीं टिक सकता, तब वहाँ से निकला और सातारा चला गया। यहाँ से उसने घूम-फिर कर मराठों के अधीनस्थ क़िलों में सब सामग्री का बन्दोबस्त किया। मुग़ल लोग जहाँ कहीं मिलते, वहीं मराठे उनपर हमला कर देते थे। इससे उनपर इनकी अच्छी धाक जम गई और अकेले-दुकेले घूमने से वे डरने लगे।

बादशाह ने बीजापुर, गोलकुण्डा और महाराष्ट्र के राज्य जीत तो लिये, पर उनसे एक कौड़ी भी वसूल न होती थी।

मराठों ने मुग़लों से कई स्थान वापस लिये

बीजापुर और गोलकुण्डा के घुड़सवारों ने सैकड़ों दल बनाकर और अपने को मराठे कहकर नासिक, बीड़, बेदर आदि में लूट-मार शुरू की। इस कारण बादशाह की फ़ौज को सब मुख्य शहरों और क़िलों का बन्दोबस्त करते-करते समय नहीं मिलता था। इतने में धनाजी जाधव व सन्ताजी घोरपड़े महाराष्ट्र में वापस आये। उन्होंने बादशाह को तंग कर डाला। उनके वापस आते ही रामचन्द्र पन्त ने वाई के मुग़ल फ़ौजदार पर हमला करने के लिए उनसे कहा। उन्होंने उसपर अचानक हमला करके उसे क़ैद कर लिया और वाई में अपनी सत्ता स्थापित कर ली। फिर सन्ताजी ने मीरज के फ़ौजदार पर

हमला करके वह स्थान भी ले लिया। इस पराक्रम के लिए रामचन्द्र पन्त ने उसे मीरज की देशमुखी दे दी। धनाजी और सन्ताजी के पराक्रम देखकर अन्य मराठे शिलेदारों का साहस बढ़ा और उन्होंने मुग़लों के प्रदेश में कर वसूल करना शुरू किया। राजाराम ने इन सबको ख़िताब आदि देकर उत्तेजना दी। इसी समय संकराजी नारायण खण्डेकर ने युक्ति से राजगढ़ क़िला मुग़लों से वापस ले लिया और उसके बाद परशुराम पंत प्रतिनिधि ने सन् १६९२ ईस्वी में पन्हाला जीत लिया। इस प्रकार महाराष्ट्र में जहाँ-तहाँ गड़बड़ मच गई और मराठों की विजय व बादशाह की पराजय होने लगी। औरंगज़ेब जिंजी की सेना को मदद न पहुँचा सके, इस विचार से धनाजी और सन्ताजी ने एक भारी हमला करने का विचार किया। उन्होंने एक अच्छी भारी सेना तैयार कर गोदावरी के किनारे का सब प्रदेश लूटने की बात सोची। यह भाग बहुत उपजाऊ था। धनाजी और सन्ताजी ने लूटमार कर उसे साफ़ कर दिया। उत्तर-हिन्दुस्थान से आने वाले अनाज में से बहुत-सा उन्होंने लूट लिया और उसके साथ बन्दोबस्त के लिए जो सरदार थे उनपर हमला कर उन्हें क़ैद कर लिया। फिर उनसे बहुत-सा द्रव्य लेकर उन्हें छोड़ दिया।

भरपूर अन्न-सामग्री न मिलने से बादशाह को बड़ी चिन्ता हुई। उसने सोचा कि राजाराम को क़ैद किये बिना मराठों की यह गड़बड़ बन्द न होगी। इस विचार से उसने अपने लड़के कामबख़्श तथा जुलफ़िकारख़ाँ के बाप आसफ़ख़ाँ को फ़ौज देकर, जिंजी को जल्द लेने के लिए, जुलफ़िकारख़ाँ की मदद को भेजा। स्वयं अपनी

मुग़लों के प्रदेश में लूटमार

छावनी हटाई और वह कृष्णा के किनारे गलगले नामक स्थान को आया। परन्तु मराठे कहाँ इन बातों से डरने वाले थे? उन्होंने अपना कार्य पहले के समान ही जारी रक्खा। परसोजी भोंसले ने बरार में धूम मचाई, खंडेराव दाभाड़े गुजरात के पीछे पड़ गया, और हैवतराव निम्बालकर गोदावरी के प्रदेश का ध्वन्स करने लगा; और इन सबपर संताजी घोरपड़े व धनाजी जाधव की तान थी। अन्त में सन् १६९५ में निराश होकर औरंगज़ेब भीमा नदी के किनारे ब्रह्मपुरी नामक स्थान में चला आया।

मुग़लसेना जिंजी को लेने के लिए

ऊपर बताया जा चुका है कि जुलफ़िकारखाँ को जिंजी लेने का काम सौंपा गया था। यह क़िला अनेक पर्वत जोड़कर बनाया गया था और उसका घेरा बड़ा भारी था। पहले-पहल जब जुलफ़िकारखाँ वहाँ पहुँचा तो उसे यह जान पड़ा कि मेरी फ़ौज इस काम के लिए भरपूर नहीं है। इसलिए उसने नई फ़ौज आने तक तंजोर वग़ैरा स्थान लेने का विचार किया। वहाँ से बहुत-सा कर वसूल कर वह वापस आया, परन्तु तब भी बादशाह की मदद न पहुँची थी। अन्त में कई बार लिखने पर बड़ी मुश्किल से ऊपर बताये मुताबिक़ आसिफ़खाँ और कामबख़्श के अधीन कुछ फ़ौज पहुँची।

जिंजी के पास सन्ताजी और धनाजी का पराक्रम

औरंगज़ेब ने मदद तो भेजी, परन्तु घेरे का काम कुछ ढीला रहा। बादशाह ने अपने लड़के कामबख़्श को जिंजी के घेरे का मुखिया नियत किया था, इस कारण जुलफ़िकारखाँ को अपना अपमान हुआ सा जान पड़ा और वह तथा उसका पिता दोनों असन्तुष्ट हुए तथा घेरे का काम उदासीनता से करने लगे।

इस समय रामचन्द्र पन्त ने धनाजी और सन्ताजी को बड़ी भारी फ़ौज देकर कर्नाटक रवाना किया। ये दोनों बादशाह की फ़ौज से किसी प्रकार बचते हुए कर्नाटक में घुसे और कांजीवरम के फ़ौजदार अलीमरदानखाँ पर कावेरीपाक नामक स्थान में हमला किया और उसे घेर लिया। इस कारण इस खाँ को संताजी के अधीन होना पड़ा (१३ दिसम्बर १६९२)। आगे जब वह जिंजी पहुँचा, तब एक लाख होण देकर उसने अपनी मुक्ति कराली। इसके बाद सन्ताजी ने जिंजी को घेरने वाली फ़ौज़ पर हमला किया। दूसरी ओर से धनाजी ने भी धावा बोल दिया और उसी समय क़िले की सेना ने भी भीतर से चढ़ाई की। इस अवसर पर बहुत-से मुग़ल सैनिक मारे गये, इस्माइलखाँ नामक सरदार ज़ख़्मी होकर क़ैद हो गया, और कुछ सामग्री भी मराठों के हाथ लगी। मराठों ने कांजीवरम और कड़प्पा नामक स्थानों पर अपनी सत्ता जाहिर की और वहाँ अपना सूबेदार भी नियत कर दिया।

मुग़लसेना में फूट और मराठों की विजय

मराठों की गड़बड़ चारों ओर मची होने के कारण बादशाह तथा जिंजीवालों को एक दूसरे की ख़बर न पहुँचती थी। ऐसे समय में पहले तो यह गप उड़ी कि बादशाह पागल हो गया है, और फिर दूसरी गप यह फैली कि वह मर गया! इससे मुग़लसेना में ख़ूब गड़बड़ होगई। कामबख़्श को गद्दी का लोभ लगा, यह देखकर मराठों ने उससे बातचीत शुरू की। इससे कामबख़्श बहुत ख़ुश हुआ। उसने अपनी फ़ौज को कूच के लिए तैयार होने का हुक्म दे दिया। उसकी यह तैयारी देख जुलफ़िकारख़ाँ और आसफ़ख़ाँ ने मराठों से मेल करने का अभियोग उसपर

लगाया और उसे क़ैद कर लिया। ऐसे समय में कांजीवरम से बहुत-सा कर वसूल कर सन्ताजी घोरपड़े सन् १६९३ के प्रारम्भ में जिंजी पहुँचा और मुग़ल सेना पर हमला करके उसे जर्जर कर डाला। अन्त में आसफ़ख़ाँ ने सन्ताजी घोरपड़े से सन्धि कर ली। उसमें यह निश्चित हुआ कि मुग़लों को मराठे वान्देवाश जाने दें और वहाँ पर बादशाह का जिस प्रकार हुक्म आवे उस प्रकार वे करें, तबतक मराठे उन्हें तंग न करें। यहाँ की सब ख़बर औरंगज़ेब को पहुँची, तो उसने कामबख़्श को वापस बुलवा लिया और जिंजी के घेरे का समस्त अधिकार फिर से जुलफ़िकारख़ाँ को दे दिया। पर उस साल के मई महीने तक वह वान्देवाश में ही बना रहा। इस प्रकार मुग़ल फ़ौज की फ़ज़ीहत कर पूर्व-कर्नाटक में मराठों ने अपना क़ब्ज़ा जमाने का प्रयत्न किया। वेलोर के पास के सतगढ़ का राजा मराठों से मिल गया। सन्ताजी ने त्रिचनापल्ली का घेरा डाला। इस बीच में राजाराम भी जिंजी से निकल कर वहाँ आ पहुँचा। तब त्रिचनापल्ली के नायक ने मराठों से संधि कर ली। इसके बाद राजाराम अपने चचेरे भाई व्यंकोजी के लड़के शाहजी से मिला और उससे धन-जन की सहायता का वचन लेकर जिंजी को वापस लौट आया। इसके बाद सन्ताजी और धनाजी फिर से महाराष्ट्र को वापस गये। तब कहीं, सन १६९४ में, जुलफ़िकारख़ाँ को कर्नाटक में मुग़ल-सत्ता स्थापित करने का अवसर मिला। सतगढ़ के राजा को उसने अपनी ओर मिला कर मार डाला। फिर त्रिचनापल्ली, तंजोर आदि के राजाओं को मुग़ल सत्ता मानने को बाध्य किया और उनसे बहुत-सा धन तथा कर वसूल किया तथा कई क़िले लिये। फिर

उस साल के अक्तूबर महीने में उसने जिंजी के घेरे का काम शुरू किया। परन्तु उसका मुख्य लक्ष्य द्रव्य वसूल करने की ओर था। सन् १६९५ के अक्तूबर में उसने वेलोर का घेरा डाला। इतने में सन्ताजी और धनाजी फिर कर्नाटक आये। इसपर ज़ुलफ़िकारख़ाँ घेरा उठाकर सावधानी के साथ अरकाट में रहने लगा।

सन्ताजी ने मुग़लों के छक्के छुड़ाये

इधर सन्ताजी ने मुग़लों के क़ब्ज़े के पश्चिम कर्नाटक में ख़ूब गड़बड़ मचा दी। इसकी ख़बर जब औरंगज़ेब को पहुँची, तो उसे भगाने के लिए उसने अपने पास की फ़ौज भेजी। कर्नाटक का फ़ौजदार क़ासिम भी उससे आ मिला। सन्ताजी ने इस फ़ौज को चुपचाप आने दिया। फिर एक दिन मुग़ल सेना जब डेरे डालने के प्रयत्न में थी तब सन्ताजी ने अचानक उसपर हमला कर दिया और उसे घेर लिया। इस कारण मुग़लों को किसी प्रकार की सामग्री न मिल सकी और उन्हें भूखों मरना पड़ा। फ़ौज की इस हालत की ख़बर पाकर औरंगज़ेब ने, हिम्मतख़ाँ नामक सरदार के साथ, उसकी मदद के लिए और फ़ौज भेजी। हिम्मतख़ाँ के नज़दीक पहुँचते ही सन्ताजी ने उसपर ज़ोरों से हमला किया। ख़ाँ तो किसी प्रकार जान बचाकर भाग गया, परन्तु फ़ौज को मराठों की शरण आना पड़ा। सन्ताजी ने मुग़ल सरदारों से ख़ूब द्रव्य लेकर उन्हें छोड़ दिया। क़ासिमख़ाँ ने शर्म के मारे विष खाकर जान दे दी। हिम्मतख़ाँ हार कर भाग गया था, वह अब और सेना लेकर फिर से आया। बसवापट्टम के पास मैदान में मराठों और मुग़लों की मुठभेड़ हुई। मराठों ने भागने का बहाना किया। मुग़लों ने समझा कि मराठे डर गये, अतएव

वे इनका पीछा करने लगे। पर पहाड़ी भाग में पहुँचते ही मराठे लौट पड़े और उन्होंने मुग़लों पर बड़े जोरों का हमला किया। ख़ूब मारकाट शुरू हुई और स्वयं हिम्मतख़ाँ मारा गया (जनवरी सन् १६९६)। मुग़लों की सेना भाग गई और उसका सामान मराठों के हाथ लगा।

जुलफ़िकारख़ाँ ने जिंजी को घेर तो रक्खा था, पर वह अपने काम में बहुत सुस्ती करता था। औरंगज़ेब की उम्र ८० वर्ष की हो चुकी थी और उसके अधिक दिन जीने की आशा न थी। इसलिए वह दक्षिण में कदाचित् अपना कोई राज्य स्थापित करना चाहता था। सम्भवतः इसी विचार से उसने घेरे का काम बहुत दिनों तक चलाने का विचार किया; पर जब उसे इस बात का पता चला कि जिंजी के लेने का काम यदि शीघ्र समाप्त न होगा तो बादशाह मुझे वापस बुला लेगा, तब जुलफ़िकारख़ाँ ने अपना काम बड़े जोश से शुरू किया।

जुलफ़िकारख़ाँ और जिंजी

राजाराम और उसके कारबारियों को अब चिन्ता उत्पन्न हुई। रामचन्द्र पन्त ने उन्हें महाराष्ट्र में आने को लिखा था। इसलिए अब उन्होंने महाराष्ट्र में ही वापस आने का निश्चय किया। मुग़ल सेना में कुछ मराठे सरदार थे। खंडो बल्लाल चिटनीस ने अपने भाषण से उनका स्वदेशाभिमान जागृत किया और उनकी सहायता से राजाराम तथा कारबारियों को सुरक्षित महाराष्ट्र में जाने का अवसर मिला। इसके बाद सन् १६९८ में जुलफ़िकारख़ाँ ने जिंजी का क़िला लिया, पर मराठों के राजा और उसके कारबारियों के बच-

राजाराम महाराष्ट्र में वापस

कर निकल जाने के कारण औरंगज़ेब का हेतु सिद्ध न हुआ।

इस समय मराठों की ओर एक वहुत बुरी घटना हुई। धनाजी जाधव और सन्ताजी घोरपड़े के बीच कुछ वैमनस्य उत्पन्न हो गया था, इस कारण एक बार धनाजी ने संताजी पर हमला कर दिया। सन्ताजी अपनी जान बचाने के लिए माने नामक घराने के आश्रय में पहुँचा, पर वह वहाँ मारा गया। (सन् १६९७)।

सन्ताजी व धनाजीका आपसी झगड़ा और सन्तोजी का वध

राजाराम जिंजी से निकलकर सुरक्षित विशालगढ़ पहुँचा। यहाँ आनेपर राज्य-व्यवस्था में उसने कुछ फेरफार किये। अबतक रायगढ़ ही मराठों की राजधानी समझा जाता था। राजाराम ने अब सातारा को राजधानी बनाया। धनाजी जाधव सेनापति नियुक्त हुआ। रामचन्द्र पन्त को अमात्य का पद दिया गया। संकराजी नारायण खाण्डेकर सचिव हुआ। कान्होजी आँग्रे को जंगी बेड़े का सब अधिकार मिला। जिन-जिन लोगों ने महत्वपूर्ण काम किये थे, उन्हें-उन्हें जागीरें दी गई और उनका उत्साह बढ़ाया गया।

राज्य-व्यवस्था का नवीन प्रबन्ध

सन् १६९९ की बरसात समाप्त होते ही राजाराम ने खानदेश वरार की ओर बड़ा भारी हमला करने का विचार किया। इसलिए उसने बहुत भारी फ़ौज जमा की। इतनी बड़ी फ़ौज पहले कभी न हुई थी। राजाराम ने बादशाह की छावनी पर हमला कर शाहू को मुक्त करने का प्रयत्न किया; पर

राजाराम का आखरी प्रयत्न और मृत्यु

उस समय शाहू और बादशाह दोनों अपने डेरे में न थे, इसलिए राजाराम का प्रयत्न विफल हुआ। इसके बाद वह फ़ौज उत्तर की ओर बढ़ी और कर की वसूली तथा मराठों की सत्ता स्थापित करती हुई बरार को गई। फिर वह जालना को आई। इस समय जुलफ़िकारख़ाँ ने मराठों पर हमला किया, पर वे किसी प्रकार बच कर चले ही आये। रास्ते में राजाराम बीमार हुआ। सिंहगढ़ पहुँचने तक उसकी बीमारी बहुत बढ़ गई और थोड़े ही दिनों के बाद, सन् १७०० के मार्च महीने की ३ री तारीख़ को, वहाँ उसकी मृत्यु हो गई।

मराठों को दबाने की औरंगज़ेब की युक्ति

राजाराम के मरनेपर भी मराठों ने अपना काम पहले जैसा ही जारी रक्खा। उसकी मृत्यु के बाद उसकी पत्नी ताराबाई ने अपने लड़के शिवाजी को गद्दी पर बिठलाया और स्वयं सब कारबार देखने लगी। औरंगज़ेब ने जब देखा कि मराठे दबने के बदले दिनोंदिन बलवान होते जाते हैं, तो उसने विचार किया कि उनके क़िले भी लेने चाहिएँ और लूटमार करने वालों पर अलग फ़ौज भेजनी चाहिए। इस विचार से उसने जुलफ़िकारख़ाँ को कर्नाटक से बहुत जल्द वापस आने के लिए लिखा। औरंग-ज़ेब ने अपनी सेना के दो भाग किये और यह निश्चय किया कि एक भाग क़िले ले और दूसरा भाग लूटमार करने वालो को नष्ट करे। पहला काम उसने स्वयं अपने ज़िम्मे लिया और दूसरा आज़मशाह के लड़के बेदरबख़्श और जुलफ़िकारख़ाँ को सौंपा।

सन् १६९५ से औरंगज़ेब की छावनी ब्रह्मपुरी में थी। वहाँ

से वह सन् १६९९ के अक्तूबर में क़िले लेने के लिए आगे बढ़ा।

औरंगज़ेब की आशा-वृद्धि

बहुत शीघ्र उसने वसन्तगढ़ नाम का क़िला ले लिया। फिर उसने सातारा क़िले का घेरा डाला। मराठों का अनुमान था कि वसन्तगढ़ को लेने पर औरंगज़ेब पन्हाला की ओर जावेगा, इसलिए उन्होंने सातारा क़िले में अच्छा बन्दोबस्त नहीं किया था, तथापि उन्होंने आज़मशाह को चुपचाप अपनी ओर मिला लिया और उसकी सहायता से समय-समय पर आवश्यक अन्न-सामग्री क़िले में ले जा सके। इसी कारण वे क़रीब पाँच महीने औरंगज़ेब की सेना का सामना करते रहे। अन्त में जब अन्न-सामग्री न मिली, तब मराठों ने क़िला मुग़लों के हवाले कर दिया। इस घटना के केवल एक महीने बाद राजाराम की मृत्यु हुई। इन सब बातों से औरंग-ज़ेब की आशा बढ़ी और उसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब मेरा प्रयत्न सफल होगा।

सातारा लेने पर औरंगज़ेब ने परली को घेरा और दो महीने में उसे ले लिया। इसके बाद बरसात शुरू हुई। इससे पहाड़ी भाग में उसकी सेना की दुर्दशा होने लगी।

औरंगज़ेब की भेदनीति; उसकी प्रारम्भिक विजय पर मराठों की लूटमार का जारी रहना

इसलिए वे मैदान में छावनी डालने के विचार से वहाँ से चलने लगे। पर कृष्णा नदी की बाढ़ से उनके सैकड़ों लोग नष्ट हुए। इन कठिनाइयों का मुक़ाबला करते हुए उसने मान नदी के किनारे खवासपुर में छावनी की। यहाँ उसने फ़ौज का ठीक-ठीक बन्दोबस्त किया। बरसात समाप्त होने पर पन्हाला को उसने घेरा और सन १७०१ के मई महीने में उसे ले लिया। इसके बाद

पूरे पाँच वर्ष तक औरंगज़ेब इसी प्रकार क़िले लेने का सपाटा चलाता रहा। वर्धनगढ़, नन्दगिरी, चन्दन-वन्दन, विशालगढ़, वहादुरगढ़, राजगढ़ तीरणा, पुरन्दर आदि क़िले उसने ले लिये। इसके साथ ही औरंगज़ेब ने अपनी भेद-नीति का प्रयोग किया। उसने कुछ ऐसी जाली चिट्ठियाँ बनवाई कि जिससे एक दूसरे को मराठे सरदारों का मुग़लों से मिलने का संशय हो। उसका यह प्रयत्न भी बहुत कुछ सफल हुआ। इसी कारण ताराबाई और रामचन्द्र पंत में अनबन शुरू हो गई। ताराबाई का विश्वास परशुराम त्रिम्बक पर विशेष था। इस समय तक कई पुराने पुरुष मर चुके थे। धनाजी जाधव, रामचन्द्र पन्त, परशुराम त्रिम्बक और संकराजी नारायण ही मुख्य पुरुष थे। परन्तु इनमें भी पर्याप्त मेल नहीं था। इस बात का पता औरंगज़ेब को लग गया। इस-लिए उसने बेदरवख़्श और जुलफ़िकारख़ाँ को सन्देशा भेजा कि मराठों को साफ़ करने का मौक़ा यही है। यह बात तो ठीक है कि इस समय मराठों में भरपूर मेल नहीं था, परन्तु अब भी थोड़ा-बहुत पुराना जोश बना हुआ था। ताराबाई ने इस समय लोगों को ख़ूब उत्तेजित किया। सन् १७०२ में मराठों ने सूरत और बुरहानपुर से बहुत भारी कर वसूल किया। सन् १७०५ में मराठों ने नर्मदा नदी पार कर मालवे में चढ़ाई की और वहाँ भी कर वसूल किया। इसपर औरंगज़ेब ने जुलफ़िकारख़ाँ को मालवा में भेजा और बरार व गुजरात का भी बन्दोवस्त किया। पर मराठे इससे कहाँ दबते थे? मुग़ल फ़ौज के आते ही वे तितर-बितर हो जाते, पर उसके कुछ दूर होते ही एकत्र होते और कर-वसूली का अपना काम किया करते थे। मराठों की सफलता का

बड़ा भारी कारण यह था कि मराठे अत्यंत सादगी से रहते थे, परन्तु मुग़ल लोग बहुत विलासी हो गये थे—एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने में ही उन्हें बहुत कष्ट जान पड़ता था। यदि मराठे मुग़लों को हरा देते तो मराठों को बहुत-सी उपयोगी सामग्री मिल जाती, पर यदि मुग़ल मराठों को हरा देते तो मुग़लों के हाथ कुछ न लगता था। इस कारण औरंगज़ेब का मराठों को दबाने का प्रयत्न विफल हुआ।

औरंगज़ेब को मराठों ने किस प्रकार तंग किया ?

मराठों के सब क़िले लेने पर औरंगज़ेब ने बीजापुर में छावनी की। इस काम में उसे बहुत कष्ट सहने पड़े थे और इस कारण वह बहुत त्रस्त हो चुका था। ऐसे समय में उसके लड़के कामबख़्श ने मराठों से संधि करने की सूचना की और औरंगज़ेब ने वह मानली। उसने धनाजी जाधव से संधि की बात शुरू की, परन्तु शर्तें निश्चित न हो सकीं और इसलिए औरंगज़ेब ने यह बातचीत बन्द करदी। इसी समय बीजापुर प्रान्त के वाकिमखेड़े नामक गाँव में पीता नाई ने बड़ी गड़बड़ मचा रक्खी थी। वह मुग़ल फ़ौज पर हमला करता और लूटमार किया करता था। उसे दबाने के लिए औरंगज़ेब ने फ़रवरी सन १७०५ में वाकिम-खेड़े पर घेरा डाला। पर उस भाग के लोगों की तथा धनाजी जाधव की उसको अच्छी मदद मिली। इस कारण जुलफ़िक़ारख़ाँ और कर्नाटक के सूबेदार दाऊदख़ाँ ऐसे बड़े-बड़े सरदारों को औरंगज़ेब ने जब उस छोटे-से गाँव को लेने के लिए भेजा तब कहीं ढाई महीने के बाद वह उनके हाथ लगा।

औरंगज़ेब जब वाकिमखेड़ा लेने में लगा हुआ था तब उसके

अत्यन्त परिश्रम से लिये हुए क़िलों को मराठों ने वापस लेने की शुरुआत की। रामचन्द्र पन्त ने पन्हाला और पावनगढ़ लिये, परशुराम त्रिम्बक ने वसन्तगढ़ और सातारा के ज़िले जीते,

औरंगज़ेब का विफल प्रयत्न और मृत्यु

संकराजी नारायण ने सिंहगढ़, रायगढ़ और रोहिड़ा के क़िले ले लिये। वाकिमखेड़ा लेते-लेते औरंगज़ेब तंग हो चुका था। बहुत परिश्रम करके लिये हुए क़िले मराठों के हाथ वापस जाने की ख़बर पाकर उसे बहुत दुःख हुआ। वह बीमार पड़ा और अहमदनगर को वापस आया। वहाँ सन् १७०७ के फ़रवरी की २० वी तारीख़ को उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार मराठों को जीतने का उसका सारा प्रयत्न विफल हुआ।

१६

मराठा-राज्य का पुनर्सङ्गठन

औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद उसके लड़कों में गद्दी के लिए झगड़े पैदा हुए। मृत्यु की ख़बर पाते ही उसका बड़ा लड़का मुअ-ज़्ज़म काबुल से दिल्ली के लिए रवाना हो गया। दूसरे दो लड़के दक्षिण में थे। उनमें से आज़म, ज़ुलफ़िकारख़ाँ को अपनी ओर मिलाकर, दिल्ली की ओर रवाना हुआ। शाहू उसके साथ ही था। इधर मुग़लों की सेना के उत्तर की ओर जाते ही, मराठों ने अपना देश वापस जीत लेने का क्रम शुरू कर दिया। धनाजी जाधव ने पूना के फ़ौजदार लोधीख़ाँ को हरा दिया और चाकण जीत लिया। यह ख़बर पाकर ज़ुलफ़िकारख़ाँ ने आज़म को यह सलाह दी कि शाहू को

शाहू की मुक्ति और पारस्परिक कलह की तैयारी

अपने राज्य में वापस जाने दें, जिससे वहाँ पर ताराबाई के लड़के शिवाजी और उसके बीच राज्य के लिये झगड़े उठ खड़े हों। आज़मशाह ने उसकी सलाह मानली और शाहू को दक्षिण जाने के लिए स्वतंत्र कर दिया। शाहू वहाँ से मुक्त होकर दक्षिण की ओर बढ़ा। रास्ते में सबसे पहले नन्दुरबार के आस-पास के पहाड़ी प्रदेश का अधिकारी मोहनसिंह उससे मिला। फिर अमृतराव कदमबाडे उसकी ओर आया। तदनन्तर बरार का परशोजी भोंसले और खानदेश का चिमणाजी दामोदर मोघे उससे मिले। इन बड़े-बड़े सरदारों के मिलने पर कई छोटे-मोटे लोग भी शाहू के पक्ष में शामिल हुए। इस प्रकार उसकी सेना अच्छी बढ़ गई। गोदावरी के पास पहुँचने पर उसने अपने आने की ख़बर ताराबाई को भेजी। पर ताराबाई को यह ठीक न लगा। वह कार्यशील और महत्वाकांक्षिणी स्त्री थी। उसने सोचा कि मेरे पति ने ही मराठा-राज्य को किसी प्रकार बचाया और यह शाहू इस बने बनाये राज्य को लेने आ रहा है। इसलिए उसने उसे राज्य न मिलने देने का निश्चय किया। उसने पहले तो यह अफ़वाह उड़ाई कि यह सच्चा शाहू नहीं है। फिर उसने कारबा-रियों को इकट्ठा कर शाहू को राज्य न मिलने देने का निश्चय प्रकट किया। क़िलेदारों और सूबे के अमलदारों को उसने हुक्म भेजा कि शाहू को किसी प्रकार की मदद न दो। फिर, उसने सेनापति धनाजी जाधव और प्रतिनिधि परशुराम त्रिम्बक को सेना देकर शाहू को हरा देने के लिए भेजा। सेना के साथ खण्डो बल्लाल चिटनीस भी था।

शाहू को जब ये बातें मालूम हुईं तब उसने भी निश्चय

किया कि जैसे भी हो मैं अपना राज्य अवश्य लूँगा। रास्ते में पारद के पटेल ने उसका विरोध किया, पर शाहू ने उसे हरा दिया। पारद से निकलकर शाहू ठेठ कड्डस तक आया।

ताराबाई और शाहू का पारस्परिक कलह

उसी समय धनाजी जाधव व परशुराम पन्त वहाँ पहुँचे। धनाजी जाधव का कहना था कि यदि शाहू सच्चा हो तो मुझ से आकर मिले। खण्डो वल्लाल ने पूछ-ताछकर उसके सच्चे होने का निश्चय किया। तब तो धनाजी जाधव उससे मिलने के लिए तैयार हो गया, पर परशुराम पंत-प्रतिनिधि अपना हठ न छोड़ता था। इस कारण दोनों पक्षों में युद्ध हुआ। पर धनाजी जाधव ने उसमें कुछ भाग न लिया, इसलिए परशुराम पन्त की हार हुई और वह भाग गया। फिर धनाजी शाहू से जा मिला और उसका सेनापति नियुक्त हुआ। खण्डोबल्लाल को शाहू ने उसका पूर्व-पद क़ायम रक्खा। प्रतिनिधि भागकर सातारा के क़िले में बन्दो-बस्त से रहने लगा। शाहू आगे बढ़कर चन्दनवन्दन के पास आया और इन किलों को लेकर वहीं उसने वर्षा-काल बिताया। तदनन्तर उसने सातारा लेने का प्रयत्न किया। प्रतिनिधि को अपनी ओर मिलाने के लिए उसने चिट्ठियाँ लिखीं, पर प्रति-निधि वश न हुआ। इसलिए शाहू ने सातारा के क़िलेदार शेख़-मीरा के बाल-बच्चों को क़ैद कर लिया। तब किलेदार ने क़िला शाहू के सपुर्द कर दिया। शाहू ने प्रतिनिधि को क़ैद में डाल दिया। फिर १७०८ के जनवरी महीने में उसने अपना राज्या-भिषेक-समारम्भ किया। इसके बाद दो वर्ष ताराबाई के पक्ष को दबाने में उसने ख़र्च किये। १७०९ के वर्षाकाल के बाद शाहू

सेना लेकर कोल्हापुर की ओर गया। ताराबाई उस समय पन्हाला क़िले में थी। शाहू के आने की ख़बर पाकर वह रॉंगणा क़िले को चली गई। पन्हाला क़िले को लेकर शाहू ने रॉंगणा क़िले पर हमला किया, पर इस समय वह इस कार्य में सफल न हुआ और वापस लौटा। रास्ते में, १७१० के जून में, धनाजी जाधव की मृत्यु हो गई।

धनाजी की मृत्यु से शाहू और ताराबाई का झगड़ा और अधिक बढ़ा, क्योंकि शाहू का पक्ष बहुत कमज़ोर हो चुका था।

धनाजी की मृत्यु और बालाजी विश्वनाथ का उदय

कुछ समय तक तो ऐसा जान पड़ा कि उसका पूर्ण विनाश हो जायगा, पर उसके सौभाग्य से एक बहुत उपयोगी पुरुष उसे मिल गया। बालाजी विश्वनाथ भट्ट उसका नाम था। यही आगे चलकर शाहू का प्रसिद्ध पेशवा हुआ। यह सम्भवः १६७९ में कोंकण से 'देश' में आया था। अपनी योग्यता से बढ़ते-बढ़ते सन् १७०७ में यह दौलताबाद का सरसूबेदार हो गया था। धनाजी जाधव और शाहू का मेल होने में इसका बहुत भाग था। चिमनाजी दामोदर मोघे और बालाजी की अच्छी मैत्री थी। मोघे के शाहू से मिलने पर उसने धनाजी को शाहू से मिलने के लिए आग्रह किया, और धनाजी ने उसका कहना मान लिया। आगे सातारा की गद्दी पर बैठने पर शाहू ने धनाजी को सेनापति-पद के साथ वसूली का काम भी सौंपा। धनाजी ने वसूली का काम बालाजी पर छोड़ दिया। यह काम बालाजी ने इतनी योग्यता से किया कि धनाजी और शाहू दोनों उससे बहुत ख़ुश हुए। धनाजी की मृत्यु के बाद

सेनापति-पद शाहू ने उसके लड़के चन्द्रसेन को दिया, पर वसूली का अधिकार बालाजी के ही हाथ में रहने दिया।

शाहू के पक्ष की कमज़ोरी

यह ऊपर कह ही चुके हैं कि धनाजी की मृत्यु के बाद शाहू का पक्ष बहुत कमज़ोर हो गया था। कई सरदार उसे छोड़कर चले गये। इनमें धनाजी का लड़का चन्द्र-सेन पहला था। यह प्रारम्भ से ही शाहू के विरुद्ध था, केवल सेनापति-पद मिलने के कारण वह शाहू से और भी रुष्ट हो गया। वसूली का अधि-कार स्वतंत्रता-पूर्वक बालाजी को मिला था, इसलिए दोनों में द्वेष उत्पन्न हुआ। एक छोटी-सी बात से दोनों में इतना अधिक झगड़ा बढ़ा कि चन्द्रसेन ने बालाजी को बिलकुल नष्ट करने का विचार किया। अन्त में उसे शाहू से अपनी रक्षा करने के लिए कहना पड़ा। शाहू ने उसकी रक्षा करने का वचन दिया और हैबतराव निम्बालकर को चन्द्रसेन का पराभव करने के लिए भेजा। दोनों पक्षों में जेऊर के पास लड़ाई हुई। चन्द्रसेन हारकर भाग गया और खुल्लम-खुल्ला ताराबाई से जा मिला। फिर उसने हैबतराव निम्बालकर, खण्डेराव दाभाड़े तथा अन्य सर-दारों को अपनी ओर फुसलाया। शाहू के पास अब बहुत थोड़ी फ़ौज रह गई। ताराबाई के पक्ष के सरदार शाहू के प्रदेश में लूटमार मचाने लगे और ऐसा जान पड़ा कि शाहू का राज्य न टिक सकेगा। इस समय केवल बालाजी उसके पक्ष में था। परशुराम त्रिम्बक को उसने क़ैद से मुक्त कर प्रतिनिधि-पद दिया; पर उसका लड़का कृष्णाजी ताराबाई से जा मिला, इसलिए शाहू ने परशुराम पन्त को फिर से क़ैद में डाल दिया।

इस प्रकार बहुत-से सरदार शाहू को छोड़ चुके थे। ऐसे समय में बालाजी ने नई सेना खड़ी की। शाहू ने उसे सेनापति का पद दिया और २५ लाख की जागीर दी। इस समय ताराबाई का पक्ष बलवान हो चुका था और वह शाहू को पकड़ने की कोशिश कर रही थी। इस संकट से बचने के लिए बालाजी और शाहू ने युक्ति सोची। राजाराम की ताराबाई और राजसबाई नाम की दो स्त्रियाँ थीं। ताराबाई और शिवाजी ने ही महाराष्ट्र का दक्षिणी राज्य अपने क़ब्ज़े में कर रक्खा था, इसीलिए राजसबाई और उसका लड़का सम्भाजी उनसे असन्तुष्ट थे। शाहू ने राजसबाई को यह सूचना की कि ताराबाई को क़ैद में डाल दो, उसके लड़के शिवाजी को पागल ठहराकर कारागार में बन्द कर दो; और अपने लड़के सम्भाजी को गद्दी पर बैठाकर राज-कारबार चलाओ; इस काम में मैं तुम्हारी मदद करने को तैयार हूँ। अपने लड़के को गद्दी मिलने की आशा से राजसबाई को बड़ा आनन्द हुआ और वह शाहू के कहने के मुताबिक करने को तैयार हो गई। कुछ लोगों की सहायता से ताराबाई और शिवाजी को पन्हाला में क़ैद कर सन् १७१२ में सम्भाजी राजा बन बैठा। इस प्रकार ताराबाई का पक्ष नष्ट हो गया और घरेलू झगड़ा समाप्त हुआ। शिवाजी चौदह वर्ष के बाद सन् १७२६ में क़ैद में ही मरा। इसके एक लड़के सम्भाजी को इस नये राजा सम्भाजी ने पकड़कर मार डाला, पर रामराजा नामक एक लड़के को ताराबाई ने किसी प्रकार बचा लिया। यही रामराजा शाहू की मृत्यु के बाद सातारा का राजा हुआ।

ताराबाई और उसका लड़का शिवाजी क़ैद में

तारावाई के पक्ष का पतन तो हुआ, पर मराठे सरदार स्वतंत्र बन बैठे थे। वे शाहू की सत्ता मानते न थे। इसलिए शाहू देश की अशान्ति दूर कर अपना अधिकार जमा लेने का प्रयन्त करना पड़ा। इसी प्रयन्त में धोखे से बालाजी दामाजी थोरात की क़ैद में पड़ गया। शाहू ने बहुत-सा धन देकर उसे छुड़वाया, पर थोरात को दबाने का काम वह तुरन्त न कर सका। क्योंकि मान देश में कृष्णराव खटावकर ने और कोंकण में कान्होजी आँग्रे ने गड़बड़ मचा रक्खी थी। शाहू ने खटावकर के विरुद्ध बालाजी को और आँग्रे के विरुद्ध पेशवा बहिरोपंत पिंगले को भेजा। बालाजी और खटावकर के बीच, औंध के पास, भारी लड़ाई हुई। इसमें खटाकर हार गया। इस लड़ाई में परशुराम पंत के लड़के श्रीपतराव ने बड़ा पराक्रम दिखलाया था, इसलिए परशुराम को बंधन-मुक्त कर शाहू ने उसे फिर से प्रतिनिधि-पद पर आसीन किया। आँग्रे और पिंगले के युद्ध में कुछ भिन्न ही परिणाम हुआ। कान्होजी आँग्रे ने बहिरोपंत को हराकर क़ैद कर लिया और लोहगढ़ व राजमाजी नाम के क़िले ले लिये। फिर यह भी अफ़वाह फैली कि वह सातारा पर हमला करना चाहता है।

खटावकर और आँग्रे का शाहू से झगड़ा

इस समय बालाजी खटावकर को हराकर वापस आ चुका था। उसने सोचा कि कान्होजी आँग्रे बलवान सरदार है, इसलिए मेल की बातें करके ही उसे अपने पक्ष में मिलाना चाहिए। बालाजी ने कान्होजी को उसके पूर्वजों की की हुई सेवाओं की याद दिलाई। इसपर कान्होजी मेल करने

आँग्रे से शाहू का मेल और बालाजी विश्वनाथ पेशवा

को तैयार हो गया। बालाजी के कहने से शाहू ने २६ क़िले, जंगी बेड़े का अधिकार और सरखेल-पद उसे दिया। कान्होजी ने शाहू का स्वामित्व स्वीकार किया, बहिरोपन्त को छोड़ दिया और राजमाजी के सिवा शेष क़िले वापस कर दिये। ऐसी भारी विजय प्राप्त कर बालाजी सातारा को वापस आया। शाहू ने सन्मान-पूर्वक उसका स्वागत किया और बहिरोपंत की जगह उसे पेशवा नियत किया।

मराठे सरदारों की विद्रोही प्रवृत्ति और निज़ामुल्मुल्क

अब बालाजी को जो पहला काम करना पड़ा, वह राज्य की व्यवस्था का था। राजाराम के समय औरंगज़ेब ने महाराष्ट्र को अपने क़ब्ज़े कर डाला तब मराठे सरदारों ने सारे देश में दंगा-फ़िसाद मचाकर और लूटमार करके मुग़लों का अधिकार न जमने देने का उपाय किया था। तबसे उनकी यह आदत बेरोकटोक चली आ रही थी। अब इस बात की आवश्यकता जान पड़ी कि देश में लूटमार और दंगे-फ़िसाद बंद हों। पर यह काम सरल न था। यह कठिनाई दक्षिण के सूबेदार निजामुल-मुल्क के कारण और भी बढ़ गई थी। यहाँ पर यह बतलाना आवश्यक है कि यह निजामुलमुल्क कौन था। सन् १७०७ में औरंगज़ेब के लड़के आज़म और मुअज़्ज़म के बीच तख़्त के लिए लड़ाई हुई। उसमें आज़म हार गया और मुअज़्ज़म बहादुर-शाह नाम से बादशाह हुआ। आज़म लड़ाई में मारा गया और जुलफ़िकारख़ाँ मुअज़्ज़म से मिल गया तथा उसका वज़ीर नियुक्त हुआ। जुलफ़िकारख़ाँ के एवज़ी दाऊदख़ाँ पन्नी के हाथ में दक्षिण के ६ सूबों की व्यवस्था थी। बहादुरशाह की मृत्यु के बाद सैयद

अब्दुल्ला और सैयदहुसेन नाम के दो भाइयों ने फ़र्रुखसियर को गद्दी पर बिठलाया। इस काम में चिंकलीजखाँ नामक सरदार ने बड़ी मदद की थी। यही आगे चलकर निज़ामुलमुल्क नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसकी मदद के लिए सैयद बन्धुओं ने उसे दक्षिण का सूबेदार नियत किया और दाऊदखाँ पन्नी को गुजरात में भेज दिया। निज़ामुलमुल्क बड़ा धूर्त पुरुष था। उसने देखा कि मराठा-राज्य में आपसी झगड़े चले हुए हैं, वहाँ के सरदारों को दंगे-फ़िसाद और लूटमार करने की आदत पड़ी हुई है, और वे किसी का अधिकार नहीं मानते। इस परिस्थिति से लाभ उठाकर निज़ामुलमुल्क ने अपनी सत्ता दृढ़ करने का प्रयत्न किया। ताराबाई के पक्ष के पतन के बाद चन्द्रसेन जाधव को भालकी के पास २५-लाख की जागीर देने का लालच दिखलाया और उसे अपने वश में कर लिया। इस प्रकार मराठों का एक बड़ा भारी सरदार मुग़लों का मातहत बन गया। रम्भाजी निम्बालकर नाम का एक बड़ा पराक्रमी सरदार था। उसे अपने वश में करके निज़ामुलमुल्क ने पूना-प्रान्त पर हमला कर दिया। बालाजी विश्वनाथ और हैबतराव निम्बालकर की सेना को पुरन्दर के पास हराकर भगा दिया और पूना-प्रान्त अपने क़ब्ज़े में कर लिया।

मराठे सरदारों के विद्रोह की शान्ति

फिर उसने रम्भाजी को रावरम्भा का ख़िताब देकर पूना-प्रान्त में जागीर दी। हैबतराव निम्बालकर के मरने पर उसका लड़का भी निज़ामुलमुल्क के षड्यंत्र में फँस गया और बारशी के पास एक बड़ी भारी जागीर लेकर मुग़लों का नौकर बन गया। इस प्रकार भिन्न-भिन्न मराठे सरदारों को फुसलाकर

निज़ामुलमुल्क ने अपने मनसबदार बना डाला और मराठा-राज्य के पुरज़े-पुरज़े ढीले कर डाले । अब तो ऐसा जान पड़ने लगा कि मराठा-राज्य के टुकड़े-टुकड़े हो जावेंगे, परन्तु सुदैव से थोड़े ही दिनों के भीतर निज़ामुलमुल्क को सन् १७१५ के अप्रैल में दक्षिण की सूबेदारी छोड़ कर जाना पड़ा । इस समय बालाजी विश्वनाथ ने बड़ी चतुरता दिखलाकर मराठे सरदारों में मेल उत्पन्न किया और मराठा-राज्य को नष्ट होने से बचा लिया । यह कार्य जागीरदारी-प्रथा से सम्पन्न हुआ । यह देख चुके हैं कि शिवाजी इस प्रथा के विरुद्ध था, पर इस समय इसके सिवा बचाव का कोई दूसरा उपाय न था । मराठा-राज्य में ऐक्य उत्पन्न करने के लिए बालाजी ने एक-एक सरदार को जागीर दे डाली । यह निश्चय हुआ कि सरदार अपनी-अपनी जागीर में कर की वसूली करें, न्याय-कार्य करें और शान्ति रक्खें । छत्रपति और उनके मुख्य प्रधानों के हुक्म के सिवा वे पर-राष्ट्रों से लड़ाई अथवा सुलह न करें । निश्चित किया हुआ कर सरकार में चुकावें और अपनी जागीर के हिसाब सरकारी दरखदारों (हिसाब-परीक्षक) को जाँचने दें । इन शर्तों को सरदारों ने ख़ुशी से मान लिया । जागीरें मिलने से उनको बड़ा आनन्द हुआ । कई सरदारों की जागीरें मुग़ल सल्तनत में मिली थीं । इस कारण वहाँ उन्होंने अपना अधिकार जमाने का प्रयत्न किया । अगले चालीस साल में इसीलिए मराठों का राज्य बहुत ज़ोरों से बढ़ा । मराठे सरदारों में ऐक्य रखने के लिए बालाजी विश्वनाथ ने एक और बात भी की । महाराष्ट्र में मुख्य सत्ता की हद के भीतर प्रत्येक सरदार को वतन या इनाम दिया गया । इस वतन का वे बड़ा अभिमान करते

थे और उसकी रक्षा के लिए मुख्य सत्ता से दबकर रहते थे।

अगले इतिहास के लिए हमें यह जान लेना आवश्यक है कि उपर्युक्त व्यवस्था के अनुसार कौन-कौन मुख्य सरदार कहाँ-कहाँ के जागीरदार हुए। कान्होजी आँग्रे से बालाजी ने जो मेल किया था, उसका वर्णन हम ऊपर कर ही चुके हैं। खंडेराव दाभाड़े को खानदेश की जागीर देकर यह आश्वासन दिया गया कि यदि तुम गुजरात जीत लोगे तो वहाँ की जागीर तुम्हें दी जायगी। उत्तेजना के लिए उसे सेनापति-पद भी दिया गया। परसोंजी भोंसले को बरार की जागीर तथा सेनासाहेब सूबा का पद मिला। उदाजी पँवार को मालवा में जागीर प्राप्त करने का प्रोत्साहन दिया गया। फ़तेसिंह भोंसले को कर्नाटक में जागीर मिली। परशुराम पन्त-प्रतिनिधि को नीरा और वारणा के बीच का प्रदेश मिला। स्वयं बालाजी ने पूना के पास के १६ महाल और पुरन्दर और लोहगढ़ नाम के क़िले अपने पास रक्खे। वह राजा का मुख्य सलाहकार हुआ और खानदेश में राज्य की कर-वसूली का काम उसने अपने हाथ में लिया। आगे चलकर इस जागीरदारी-प्रथा के क्या परिणाम हुए, यह हम स्थान-स्थान पर देखेंगे।

मुख्य-मुख्य मराठे सरदारों की जागीरें

थोरात ने नारो शंकर सचिव को क़ैद कर लिया था। बालाजी विश्वनाथ ने चतुराई से बन्धन-मुक्त करवाकर थोरात को क़ैद किया और उसकी गढ़ी गिरवा दी। इस कार्य के बदले बालाजी ने पुरन्दर के सिवा सासवढ़ नाम का स्थान भी अपने क़ब्ज़े में लिया। ये स्थान मराठा-राज्य के अन्त

बालाजी की व्यवस्था से शान्ति और समृद्धि

तक पेशवों के हाथ में बने रहे। पूना-प्रान्त में मुग़लों के सरदार रम्भाजी निम्बालकर की जागीर की व्यवस्था बाजी कदम्ब के हाथ में थी। बालाजी ने निम्बालकर की जागीर क़ायम रखने का आश्वासन देकर बाजी कदम्ब को अपनी ओर मिला लिया और पूना-प्रान्त में अपनी हुकूमत शुरू की। लोगों को भिन्न-भिन्न रियायतें देकर खेती करने की उत्तेजना दी। थोड़े ही समय में इससे जहाँ-तहाँ समृद्धि दीख पड़ी।

तत्कालीन मुग़ल दरबार की स्थिति

बालाजी विश्वनाथ ने अबतक जो काम किया, उतने ही महत्व का एक बड़ा भारी कार्य उसने अपने जीवन के अन्तिम काल में किया। इस कार्य का सम्बन्ध दिल्ली की राजनीति से है। हम ऊपर बताही चुके हैं कि बालाजी विश्वनाथ के पेशवा होने के एक ही साल बाद सैयद अब्दुल्ला और सैयद हुसेन नामके दो भाइयों ने फ़र्रुख़सियर को दिल्ली का बादशाह बनाया। इसलिए मुग़ल राज्य में इन भाइयों के हुक्म के सिवा कुछ भी न होता था और फ़र्रुख़सियर नाम-मात्र के लिए बादशाह था। वह अपनी इस स्थिति से ऊब गया और सैयद-भाइयों की सत्ता कम करने का प्रयत्न करने लगा। अन्त में उसने दोनों भाइयों को अलग करने का विचार किया। इस हेतु से उसने अब्दुल्ला को अपना वज़ीर बनाया, उसके छोटे भाई हुसेनअली को दक्षिण की सूबेदारी दी और निज़ामुलमुल्क को मुरादाबाद के सूबे में बदल दिया। हुसेनअली के दक्षिण में पहुँचने के पहले ही बादशाह ने गुजरात के सूबेदार दाऊदख़ाँ पन्नी को लिखा कि हुसेनअली पर हमला कर उसे मार डालो। बुरहानपुर के पास

दोनों का युद्ध हुआ और उसमें दाऊदखाँ मारा गया (सन् १७१५) तथा हुसेनअली निर्विघ्न दक्षिण पहुँचा। हुसेनअली ने सूरत से बुरहानपुर तक मुग़ल प्रदेश का बन्दोबस्त करना चाहा; पर गुजरात में खण्डेराव दाभाड़े कर वसूल करता था, इसलिए उसने जुलफ़िकारबेग नामक सरदार को सेना देकर दाभाड़े पर हमला करने के लिए भेजा। इस युद्ध में जुलफ़िकारबेग मारा गया और मुग़लों की हार हुई। इसके बाद हुसेनअली ने चन्द्रसेन जाधव और मोकूत्रसिंह को दाभाड़े से लड़ने के लिए भेजा। दोनों पक्षों की मुठभेड़ अहमदनगर के पास हुई। इसमें भी दाभाड़े की जीत रही। मराठों ने अब दक्षिण के छः सूबों में चौथ और सरदेशमुखी वसूल करना शुरू कर दिया।

उधर फ़र्रुख़सियर दोनों भाइयों को नष्ट करने का प्रयत्न कर ही रहा था। इसलिए उन्होंने सोचा कि मराठों से मेल रखना लाभदायक होगा। तब उसने मराठों से सन्धि करली। सन्धि की शर्तें ये थीं—बरार, खानदेश, औरंगाबाद, बेदर, बीजापुर और हैदराबाद नाम के छः सूबों में तथा त्रिचनापल्ली, तंजोर और मैसूर के मांडलिक राज्यों में चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार मराठों को रहे। खानदेश के सिवाय शिवाजी का जीता हुआ सब मुल्क यानी स्वराज्य मराठों को वापस दिया जाय। शिवनेरी और त्रिम्बक के क़िले भी मराठों को दिये जायँ। परसोजी के लड़के कान्होजी भोंसले ने बरार और गोंडवन में जो मुल्क जीता था वह मराठों के कब्जे में रहे और शाहू के रिश्तेदार दिल्ली से मुक्त कर दिये जायँ। शाहू ने अपनी ओर

मराठों और मुग़लों के बीच सन्धि

से यह स्वीकार किया कि चौथ के बदले हम १५ हज़ार फ़ौज दक्षिण के सूबेदार की मदद में रक्खेंगे और सरदेशमुखी के अधिकार के बदले में मुग़ल प्रदेश में शान्ति स्थापित करेंगे, बादशाह को हरसाल १० लाख रुपये कर देंगे और कोल्हापुर के सम्भाजी को कष्ट न पहुँचावेंगे। यह सन्धि सन् १७१८ में हुई। इसके अनुसार शाहू ने हुसेनअली के पास सन्ताजी और राणोजी भोंसले, उदोजी पँवार आदि सरदारों के नेतृत्व में १० हज़ार फ़ौज रवाना कर दी।

फ़र्रुख़सियर को यह सन्धि मान्य नहीं हुई और वह सैयदों का नाश करने का प्रयत्न करने लगा। यह देख हुसेनअली ने

दिल्ली-दरबार के राज्य-कारबार में मराठों का हस्तक्षेप

दिल्ली पर चढ़ाई करने का विचार किया और शाहू से मदद माँगी। शाहू ने बालाजी विश्वनाथ पेशवा और खण्डेराव दाभाड़े को उसकी मदद के लिए जाने की आज्ञा की। बालाजी और दाभाड़े दस-बारह हज़ार फ़ौज लेकर हुसेनअली की मदद के लिए सन् १७१८ के वर्षा-काल के बाद सातारा से चले। बालाजी के साथ उसका बड़ा लड़का बाजीराव और बालाजी महादेव भानू थे। सेनासाहेब सूबा कान्होजी भोंसले के दो भाई सन्ताजी और राणोजी भी मराठा फ़ौज में आ मिले। तब मराठे और हुसेनअली दिल्ली पहुँचे। सैयदों ने फ़र्रुख़सियर को समझाने का बहुत प्रयत्न किया, पर वह उनका कहना मानने को तैयार न हुआ। इसलिए सैयदों ने उसे मार डाला। इसके बाद उन्होंने दो बादशाह गद्दी पर बिठलाये, पर वे शीघ्र ही मर गये। तब उन्होंने रोशनअख़्त्यार को मुहम्मदशाह नाम देकर सन् १७१९

में गद्दी पर बिठलाया। इन राजक्रान्तियों के समय मराठा-सेना वहीं थी। फर्रुखसियर को क़ैद करने के पहले सैयद-पक्ष और बादशाह-पक्ष के बीच दिल्ली में लड़ाई हुई। उसमें मराठों के १५०० सैनिक, सन्ताजी भोंसले तथा बालाजी महादेव भानू मारे गये। आगे शान्ति स्थापित होने पर सन्धि के अनुसार सैयदों ने फ़ौज का ख़र्च तथा सनदें बालाजी के सुपुर्द कीं।

बालाजी को तीन सनदें प्राप्त हुई थीं। एक दक्षिण के छः सूबों की चौथाई की थी, दूसरी इन छः सूबों की सरदेशमुखी की थी, और तीसरा स्वराज्य की थी।

मुग़ल दरबार से तीन महत्वपूर्ण सनदें

इस प्रकार ये सूबाई तथा क़ैद में रहे हुए अन्य लोगों को साथ लेकर सन् १७१९ के वर्षा-काल के आरम्भ में बालाजी सातारा को पहुँचा।

इसके बाद बालाजी ने लगान-वसूली का बन्दोबस्त फिर से ठीक-ठीक किया और उसके नियम निश्चित कर दिये। वे ये थे—

बालाजी विश्वनाथ की मुल्की व्यवस्था

(१) सरदेशमुखी की आमदनी राजा का वतन कहलावेगी, इसपर गद्दी के मालिक के सिवाय और किसी का हक़ न होगा। (२) शेष आय स्वराज्य कहलावेगी; इसमें से (क) २५ सैकड़ा राजा की होगी, इसे राजबाबती कहेंगे, (ख) शेष ७५ सैकड़ा मोकासा कहलावेगी, इसमें से सहोत्रा यानी स्वराज्य का छः सैकड़ा पंत-सचिव का होगा, (ग) शेष ६९ ऐन मोकासा कहलावेगी, इसमें से नाड़गौदा (यानी स्वराज्य के शतपत्र में से तीन सैकड़ा) राजा इच्छानुसार चाहे जिसको दे सकेगा, और (घ) शेष ६६ सैकड़ा में से सरदारों को जागीरें दी जावेंगी।

(३) राजबाबती वसूल करने का काम पेशवा, प्रतिनिधि और सचिव को करना होगा। सहोत्रा स्वयं सचिव वसूल करेगा, परन्तु दूर-दूर के गाँवों में इस वसूली के लिए राजा अपने कर्मचारी भेजेगा। नाड़गौड़ा जिसे मिलेगा, वही उसे वसूल करेगा। इसी प्रकार जागीरदार अपना हक़ वसूल करेगा। सरदार लोगों को एक दूसरे के प्रदेश में, उस-उस प्रदेश के आमदनी को विभाग में, अथवा वहाँ के गाँवों की आमदनी में, कुछ हक़ रहेंगे।

बालाजी ने यह जो पेचीदा व्यवस्था की, उसका हेतु यह था कि सरदार लोग किसी प्रकार को गड़बड़ न मचावें और अपनी-अपनी आमदनी बढ़ावें। बालाजी के ये हेतु उस समय सिद्ध हुए। इसके बाद शीघ्र ही, सन १७२० के अप्रैल महीने की दूसरी तारीख को, सासवड़ में उसकी मृत्यु हो गई। उसके कार्यों का ऊपर जो वर्णन आ चुका है, उससे यह स्पष्ट है कि उस काल में जो कुछ उचित हो सकता था वह सब उसने किया। सरदारों को एक दूसरे से तथा राजा से बाँध डाला और इस प्रकार देश में शान्ति स्थापित की। देश की आमदनी में भाग देकर उसे बढ़ाने के लिए उन्हें उत्तेजना दी। तीसरे उसने मराठा-राज्य की सीमा बढ़ाने की योजना कर दी। इसीके समय में पहले-पहल मराठों की दृष्टि उत्तर की ओर गई। इतना भारी काम बालाजी विश्वनाथ ने किया, तथापि यह मानना होगा कि उसमें से बहुत-सा तात्कालिक स्वरूप का था। इस कारण इस व्यवस्था से आगे कई बड़ी-बड़ी बुराइयाँ पैदा हुईं, जिनसे मराठा राज्य का स्वरूप ही बदल गया।

बालाजी विश्वनाथ के कार्य का स्वरूप

२०

"मूले कुठारः" की नीति

बालाजी विश्वनाथ के दो लड़के थे। बाजीराव बड़ा था और चिमनाजी अप्पा छोटा। दोनों वीर थे; और बहुधा बालाजी के साथ रहा करते थे, इस कारण राज-कार्य का ज्ञान भी उन्हें अच्छी तरह हो गया था। शाहू ने बाजीराव की योग्यता पहले ही देखली थी। इस कारण बालाजी की मृत्यु के बाद बाजीराव को ही उसने अपना पेशवा बनाया। पेशवाई पाते ही बाजीराव ने खानदेश पर चढ़ाई की और मुग़लों के मुल्क की चौथ न देनेवाले फ़ौजदारों को दबाया। दो-तीन वर्ष के भीतर उसने मालवा पर तीन चढ़ाइयाँ कीं। वह बड़ा वीर और साहसी पुरुष था। इस कारण मराठे शिलेदारों पर उसकी धाक जम गई और वे उसके कहे अनुसार चलने लगे।

बाजीराव की चढ़ाइयों का प्रारम्भ

बाजीराव बड़ा महत्वाकांक्षी पुरुष था। बालाजी विश्वनाथ

ने मराठों की दृष्टि उत्तर की ओर फेर ही दी थी। बाजीराव भी उधर ही अपने पराक्रम दिखलाना चाहता था। अतः उसने अपनी नीति पहले से ही निश्चित करली थी। शाहू के दरबार में एक दिन इसी विषय पर प्रश्न छिड़ा, तो उसने इसी नीति का प्रतिपालन किया और कहा—महाराज यदि आज्ञा दें तो मैं दिल्ली जाकर वहाँ के पुराने वृक्ष पर ही घाव लगाऊँगा; मूल के नष्ट होने पर शाखायें अपने आप नष्ट हो जायँगी। इन शब्दों में बाजीराव की महत्वाकांक्षा तथा राजनीति दोनों सम्मिलित हैं।

बाजीराव की महत्वा-कांक्षा तथा नीति

बाजीराव के कार्यों का वर्णन करने के पहले हमें यह देख लेना चाहिये कि मुग़ल राज्य में क्या-क्या परिवर्तन हुए। हम यह देख चुके हैं कि सन् १७१९ में रोशनअख्त्यार मुहम्मदशाह नाम से दिल्ली का बादशाह हुआ। यह भी सैयद-बन्धुओं को न चाहता था। निज़ामुलमुल्क और सैयदों में भी न पटी। उसने सैयदों की एक फ़ौज को लड़ाई में हरा दिया। फिर मुहम्मदशाह ने छल से हुसेनअली का खून करवा डाला और उसके भाई को लड़ाई में हरा दिया। अब निज़ामुलमुल्क बिना किसी विघ्न के दक्षिण का सूबेदार बन बैठा। फिर सन् १७२१ में बादशाह ने उसे अपना वज़ीर बनाया, पर एक साल तक वह अपने सूबे की व्यवस्था करने में ही लगा रहा। सन् १७२२ में वह दिल्ली गया, पर शीघ्र ही उसके और बादशाह के बीच अन-बन हो गई। उसने वज़ीरी का काम छोड़ दिया और वकील-

दिल्ली की राजनैतिक स्थिति और निजामुलमुल्क

ई-मुतालिक की पदवी धारण कर दिल्ली में रहने लगा। समय पाकर एक दिन वह शिकार का बहाना कर दक्षिण के लिए रवाना हुआ। मुहम्मदशाह को जब यह ख़बर लगी, तो उसने गुप्त रीति से हैदराबाद के कोतवाल मुबारिकखाँ को निज़ामुलमुल्क का नाश करने के लिए लिखा; पर कोतवाल लड़ाई में मारा गया। इस प्रकार निजामुलमुल्क सन् १७२४ में अपनी सूबेदारी में सकुशल वापस पहुँचा।

निज़ामुलमुल्क ने मराठों में आपसी झगड़ा उत्पन्न किया

दक्षिण में उसे मराठों से काम पड़ा। वहाँ के छः सूबों की चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का हक़ मराठों को मिल चुका था और वे उन्हें वसूल करते थे। इस कारण उस मुल्क में मराठों की धाक जम गई थी। उसे दूर कर निज़ामुलमुल्क अपने विभाग को पूर्ण स्वतंत्र करना चाहता था। इस विचार से उसने पहला काम यह किया कि अपनी राजधानी औरंगाबाद से हैदराबाद को बदल दी। फिर उसने चाहा कि मराठों से ऐसी संधि की जाय कि वे हैदराबाद के आसपास कर वसूल न करें। सन् १७२६ में बाजीराव कर्नाटक गया था। निज़ामुलमुल्क को अपने कार्य के लिए यह अच्छी सन्धि जान पड़ी और उसने अपना काम बड़ी हिकमत के साथ किया। इस समय शाहू के पास श्रीपदराव प्रतिनिधि ही सलाह देने के लिए था और यह पुरुष बाजीराव से ईर्षा किया करता था। निजाम ने प्रतिनिधि को बरार में जागीर देकर खुश कर लिया। हम यह बता ही चुके हैं कि निजाम ने रावरम्भा

निम्बालकर को पूना-प्रांत में जागीर दी थी। शाहू को ख़ुश करने के लिए उसने निम्बालकर को अब करमाला के पास नई जागीर दी और पूना-प्रान्त में मराठा-सत्ता स्थापित कर दी। फिर उसने प्रतिनिधि के ज़रिये शाहू से यह सन्धि की कि शाहू हैदराबाद के सूबे की चौथ और सरदेशमुखी का हक़ छोड़ दे, चौथ के बदले निज़ाम उसे निश्चित रक़म दे और सरदेशमुखी के बदले इन्दापुर के पास जागीर दे। बाजीराव को यह संधि पसन्द न आई और उसका व प्रतिनिधि का झगड़ा हुआ। निज़ाम को जब यह बात मालूम हुई, तब उसने मराठों की इस आपसी अनबन को अधिक बढ़ाने का विचार किया और कोल्हापुर के सम्भाजी को अपनी ओर मिला लिया। निज़ाम को अब यह पूर्ण आशा हुई कि चन्द्रसेन जाधव, रावरम्भा निम्बालकर और कोल्हापुर के सम्भाजी की सहायता से मैं सरलता-पूर्वक बाजीराव की खबर ले सकूँगा। इसलिए उसने शाहू के कर वसूल करने वाले कर्मचारियों को खदेड़ बाहर किया और उसे ऐसा सन्देश भेजा कि केवल तुम्हारे ही आदमी नहीं बल्कि कोल्हापुर के सम्भाजी के आदमी भी वसूली के लिए आते हैं; इसलिए पहले यह निश्चित हो जाना चाहिए कि तुममें से सच्चा हक़दार कौन है, तब मैं सच्चे हक़दार को वसूली का काम करने दूँगा। इस प्रकार मराठों के आपसी झगड़े से लाभ उठाकर वह उनके चौथ और सरदेशमुखी के हक़ साफ़ नष्ट करना चाहता था।

निज़ाम का सन्देश सुनकर शाहू को बड़ा क्रोध आया। बाजीराव तो पहले ही उससे जलता था। बाजीराव फ़ौज लेकर

निज़ाम के राज्य पर चढ़ बैठा और उसने जालना-प्रान्त में बहुत-सा धन वसूल किया। मुसलमानों से उसके छोटे-छोटे युद्ध हुए और उनमें उसकी जीत रही। फिर बाजीराव सपाटे से औरंगाबाद की ओर गया और बुरहानपुर पर चढ़ाई करने की अफ़वाह उड़ाकर खानदेश में घुसा। बुरहानपुर की ओर थोड़े से लोग भेजकर उसने अपना मोर्चा गुजरात की ओर फेरा और कर की वसूली की। इधर निजामुलमुल्क को ऐसा जान पड़ा कि बाजीराव बुरहानपुर को गया है। इसलिए वह शीघ्र इस स्थान को आया। पर यहाँ आने पर उसे मालूम हुआ कि बाजीराव ने मुझे पूरा-पूरा छकाया। तब ग़ुस्से के मारे पूना को जलाने का विचार कर वह वापस लौटा। वह अहमदनगर तक पहुँचा ही था कि उसे खबर मिली की बाजीराव मेरे मुल्क में लूटमार कर रहा है, इसलिए वह बाजीराव को भगाने के लिए अपने मुल्क में गया। अन्त में बाजीराव ने निज़ाम को पैठण के पास पालखेड़ में घेर कर पूरी तरह परास्त कर दिया। हारकर उसे मराठों से सन्धि करनी पड़ी। निज़ाम ने चौथ और सरदेशमुखी के हक़ मंजूर किये और इनकी वसूली के लिए उपयोगी हों, ऐसे कुछ क़िले उन्हें दिये। यह सन्धि सन् १७२८ में मुंगीशेव गाँव में हुई।

बाजीराव की निज़ामुलमुल्क से लड़ाई और सन्धि

बाजीराव के समय शिन्दे और होलकर घरानों का उदय हुआ। शिन्दे सातारा ज़िले के कोरेगाँव तालुक़ा के कन्हेरखेड़ गाँव के रहने वाले थे। इन्हें गाँव की पटेली मिली थी। राणोजी शिन्दे नाम का एक पुरुष बालाजी विश्वनाथ की सेना में बारगीर था।

शिन्दे और होलकर का उदय

यह नौकरी छोड़कर वह बाजीराव का निजी ख़िदमतगार हो गया। वह अपना काम बड़ी ईमानदारी से किया करता था, इससे बाजीराव उसपर सदैव प्रसन्न रहा-करता था।

होलकर-घराने के लोग नीरा नदी के किनारे जेजुरी के पास के होल नामक गाँव के रहनेवाले थे। इस घराने का प्रथम प्रसिद्ध पुरुष मल्हारराव हुआ। यह पहले भेड़ें चराया करता था, पर बाद में क़िलेदार का काम करने लगा था। इस काम में उसने बाजीराव की मालवा की चढ़ाइयों के समय अच्छा पराक्रम दिखलाया। इस कारण बढ़ते-बढ़ते पाँच हज़ार सैनिकों का सेनापति हो गया और मल्हारजी के बदले मल्हारराव होलकर कहलाने लगा। इसी मल्हारराव ने उत्तर-हिन्दुस्थान में एकबार चढ़ाई करते समय राणोजी शिन्दे को एक पागा का मुखिया बना दिया। अब राणोजी शिन्दे की बढ़ती शुरू हुई और धीरे-धीरे वह होलकर के बराबरी का सरदार बन गया। इस प्रकार ये दो प्रसिद्ध घराने मराठों के बड़े भारी सरदार बन बैठे।

इसी काल के लगभग एक तीसरे घराने का उदय हुआ। इसका नाम गायकवाड़ है। यह बतला चुके हैं कि बालाजी विश्वनाथ ने खंडेराव दाभाड़े को बागलान की जागीर देकर यह आश्वासन दिया था कि यदि तुम गुजरात जीतोगे तो वह भी तुम्हें जागीर में दे दिया जायगा। खंडेराव दाभाड़े ने गुजरात में कर वसूल करना शुरू किया। सैयद हुसेनी ने उसे दबाने का दो बार प्रयत्न किया, परन्तु दोनों बार दाभाड़े की विजय हुई। शाहू उससे बहुत ख़ुश हुआ और उसे सेनापति का पद दिया। दमाजी गायकवाड़ इसी

गायकवाड़ का उदय

खण्डेराव का हस्तक था और उसने अच्छा पराक्रम दिखलाया था। इसलिए शाहू ने उसे सेनापति दाभाड़े का मुतालिक नियत किया और उसे शमशेरबहादुर की पदवी दी। दमाजी के बाद उसका पद उसके पराक्रमी भतीजे को मिला।

सन् १७२४ में जब निजामुलमुल्क दक्षिण में स्वतंत्र बन बैठा, तब गुजरात और मालवे के सूबे भी उसके हाथ में थे। निजामुलमुल्क ने गुजरात के अहमदाबाद में हमीदख़ाँ नामक अपने मामा को अपना एवज़ी नियत किया। निज़ामुलमुल्क के स्वतंत्र होने की बात बादशाह को ठीक न लगी। इस कारण बादशाह ने गुजरात का सूबा निजामुलमुल्क के हाथ से निकालकर वहाँ सरबुलन्दख़ाँ नामक विश्वनीय सरदार को नियत किया। सरबुलन्दख़ाँ इस समय काबुल के सूबे में था। इसलिए उसने अपने आने तक सुजायतख़ाँ नामक पुरुष को अहमदाबाद में अपना एवज़ी मुक़र्रर किया। निजाम का एवज़ी हमीदख़ाँ अपना अधिकार छोड़कर जाने को तैयार न था। इस समय गुजरात में खण्डेराव दाभाड़े के मुतालिक पिलाजी गायकवाड़ के समान कंठाजी कदमबांडे नामक मराठा सरदार भी कर वसूल किया करता था। हमीदख़ाँ ने कण्ठाजी का चौथ की वसूली का हक़ मान्य कर लिया और उसकी सहायता से अहमदाबाद के पास सुजायतख़ाँ पर हमला कर सरबुलन्दख़ाँ के इस एवज़ी को मार डाला। इसी समय सुजायतख़ाँ का भाई रुस्तमअली सूरत का फ़ौजदार था। पिलाजी गायकवाड़ से मिलकर उसने हमीदख़ाँ पर हमला कर दिया। हमीदख़ाँ की ओर मराठे मिले

गुजरात में मराठे और निज़ामुलमुल्क का एवज़ी हमीदख़ाँ

देखकर पिलाजी गायकवाड़ भी उसी पक्ष में जा मिला और रुस्तमअली लड़ाई में मारा गया। इस प्रकार गुजरात में सरबुलन्दख़ाँ के एवज़ियों को मारकर हमीदख़ाँ बना रहा। आगे चलकर बाँडे और गायकवाड़ के बीच चौथ के सम्बन्ध में झगड़े होने लगे। इसलिए हमीदख़ाँ ने यह निश्चय कर दिया कि मही नदी के पश्चिम में बाँडे चौथ की वसूली करे और उसके पूर्व की ओर दाभाड़े का हक़ रहे।

सरबुलन्दख़ाँ के एवज़ियों की यह दुर्दशा देखकर बादशाह ने बुलन्दख़ाँ को गुजरात में जाने के लिए बार-बार कहा, तब कहीं वह अहमदाबाद को आया। अब हमीदख़ाँ छिपे छिपे ही कर वसूल किया करता था। बाँडे और दाभाड़े भी यह काम किया करते थे। इस कारण सरबुलन्दख़ाँ का अधिकार वहाँ ठीक-ठीक जमता न था। सरबुलन्दख़ाँ ने बादशाह से मदद माँगी, पर उसे मिली नहीं। तब बाजीराव ने सरबुलन्दख़ाँ को यह संदेश भेजा कि दक्षिण के समान गुजरात में भी यदि तुम चौथ वसूल करने का हक़ हमें दो तो हम वहाँ का बन्दोबस्त करने को तैयार हैं। दिल्ली से मदद मिलने की आशा से सरबुलन्दख़ाँ बाजीराव का कहना न मानता था। इसलिए चिमनाजी अप्पा सन १७३० में गुजरात में घुसा और कर वसूल करने लगा। अंत में सरबुलन्दख़ाँ को बाजीराव से संधि करनी पड़ी। उसने सूरत शहर को छोड़कर शेष गुजरात की चौथ-सरदेशमुखी के हक़ मराठों को दे दिये। अहमदाबाद की आमदनी पर उन्हें केवल पाँच सैकड़ा मिलना निश्चित हुआ।

बाजीराव ने गुजरात में सरदेशमुखी के हक़ प्राप्त किये

बाजीराव ने यह वादा किया कि २५०० घुड़सवार गुजरात में रखकर मैं उसका बन्दोबस्त करूँगा और पिलाजी गायकवाड़ को गड़बड़ न मचाने दूँगा। इस प्रकार गुजरात में भी मराठों के पैर जम गये।

हम पहले एक जगह बता चुके हैं कि उदाजी पँवार मालवा में लूटमार किया करता था। सन १६९८ में उसने माण्डवगढ़ में अपना डेरा जमाया और कुछ समय तक वह मालवा में स्वैर-संचार करता रहा। आगे जब बालाजी विश्वनाथ ने जागीरदारी की प्रथा जारी की, तब मालवा को जीतने की शर्त पर यहाँ की जागीर उसे मिली। थोड़े ही समय में उदाजी ने धार में अपना अधिकार जमाया और मालवा को अपने हाथ में लाने का प्रयत्न शुरू किया। इसी प्रकार मल्हारराव होलकर ने भी मालवा में कर वसूल करना शुरू किया। सन १७२३ और १७२४ में बाजीराव ने मालवा पर दो भारी चढ़ाइयाँ कीं और वहाँ पर अपनी धाक जमा ली। इसी समय निजामुलमुल्क दक्षिण में स्वतंत्र बन बैठा था। इसलिए बादशाह ने उसके बजाय राजा गिरिधर को मालवा का सूबेदार नियत किया। इस नागर ब्राह्मण ने मुग़लों का अधिकार वहाँ अच्छी तरह जमाना चाहा और मराठों को वहाँ से निकाल बाहर करने की सोची। उस समय इन्दौर का जमींदार नन्दलाल मंडलोई था और वह मराठों का हितचिन्तक था। जयपुर का राजा सवाई जयसिंह पहले गिरिधर का सहायक था; पर जब वह मराठों के विरुद्ध हो गया, तो उसे यह ठीक न लगा। सवाई जयसिंह हिन्दू-धर्म की रक्षा कर बाजीराव की मदद करना चाहता

मालवा में मराठों की धाक

था। सन् १७२६ में मल्हारराव होलकर को साथ लेकर चिमणाजी अप्पा मालवा में घुसा। देवास के ईशान्य की ओर क़रीब ५० मील पर सारंगपुर में चिमणाजी अप्पा और गिरिधर के बीच बड़ा भारी युद्ध हुआ, जिसमें गिरिधर मारा गया। इससे शत्रुओं पर मराठों की धाक फिर से जम गई और नन्दलाल मण्डलोई जैसे लोगों को धैर्य मिला।

अब बादशाह ने गिरिधर के स्थान में उसके चचेरे भाई दयाबहादुर को भेजा। यह सवाई गिरिधर था। उसने मराठों को मालवा से मार भगाने और प्रजा को सख़्ती के साथ दबाने का निश्चय किया। परन्तु उसकी इस नीति के बदले अव्यवस्था ही होने लगी। चाहे जो आता और प्रजा के पास से धन वसूल कर ले जाता। यह मराठों के लिए अपनी सत्ता स्थापित करने का अच्छा अवसर मिला। दयाबहादुर ने मण्डलोई को अपनी ओर मिलाने का बहुत प्रयत्न किया, पर सवाई जयसिंह मण्डलोई को सदा यह जताता रहा कि मराठों को मदद करना हिन्दू धर्म की रक्षा करना है। इसलिए दयाबहादुर की मण्डलोई के पास दाल न गली।

मालवा में मराठों के पैर जमे

समय पाते ही सन् १७३० और ३१ में चिमणाजी अप्पा ने मालवा पर चढ़ाई की। दूसरी चढ़ाई के समय उज्जैन के पास तिरल नामक स्थान में दयाबहादुर से उसका युद्ध हुआ और दयाबहादुर मारा गया। इसके बाद सवाई जयसिंह की मालवा में नियुक्ति हुई। इस प्रकार मालवा के सूबे में मराठों को पूर्ण अनुकूल सूबेदार नियुक्त होने के कारण यह आशा उत्पन्न हुई कि वहाँ चौथ वसूल करने का उनका हक़ शीघ्र ही मान्य हो जायगा।

परन्तु इससे पहले ही यानी सन् १७२५ में पेशवा ने शिन्दे, होलकर और पँवार की मालवा में स्थापना कर दी थी और वहाँ की आमदनी इन लोगों में बाँट दी थी कि इन मराठे सरदारों ने अपने पैर मालवा में किस तरह जमा लिये, यह आगे देखेंगे।

मराठे जब मालवा में अपनी सत्ता स्थापित कर रहे थे उस समय बुन्देलखण्ड के बुन्देले राजपूत अपने पराक्रम से पहले खोया हुआ अपना मुल्क वापस ले रहे थे।

गजेन्द्र मोक्ष

मुहम्मदशाह ने दोनों को दबाने का प्रयत्न किया, पर बुन्देलों की ओर उसने प्रथम दृष्टि दी। इस समय इलाहाबाद का सूबेदार मुहम्मदखाँ बंगश नामक वीर पठान था। बुन्देलों को दबाने का काम बादशाह ने इसके सुपुर्द किया। उसे यह काम पसन्द भी आया। क्योंकि उसका इलाहाबाद का सूबा बुन्देलखण्ड से लगा हुआ था और बुन्देलों ने उसका कुछ हिस्सा जीत लिया था। इसलिए मुहम्मद बंगश ने तुरन्त बुन्देलखण्ड पर चढ़ाई कर दी। इस समय बुन्देलखण्ड का राजा प्रसिद्ध वीर छत्रसाल था, पर अब वह बूढ़ा हो गया था। इस कारण मुहम्मद बंगश अपना कार्य ज़ोरों से करने लगा। यह देख छत्रसाल को अपने राज्य की रक्षा की बड़ी चिन्ता हुई। अंत में उसने बाजीराव पेशवा को सहायता के लिए एक छन्दोबद्ध चिट्ठी लिखी। उसका सार उसके एक दोहे में दीख पड़ता है।

> जो गति ग्राह गजेन्द्र की, सो गति भई है आज: —
> बाजी जात बुन्देल की, राखो बाजी लाज ॥

पत्र पाकर बाजीराव ने बहुत शीघ्र बड़ी भारी सेना और कई बड़े सरदार साथ लेकर उत्तर की ओर कूच किया। मुहम्मद

बंगश की सेना से उसकी १२ मार्च १७३० को जैतपुर के पास भारी लड़ाई हुई। मराठों ने मुसलमानों को तितर-बितर कर दिया और बंगश जैतपुर के क़िले में जा छिपा। मराठों ने इस क़िले पर घेरा डाला और बंगश को रसद वग़ैरा मिलना बन्द कर दिया। कोई उपाय न देख मुहम्मद बंगश वहाँ से भाग गया और क़िला मराठों के हाथ लगा। इस प्रकार बाजीराव ने मुसलमानों से छत्रसाल की रक्षा की।

सागर में गोविन्द पन्त बुन्देले का उदय

तीन-चार साल के बाद सन् १७३३ में छत्रसाल जब बहुत बीमार हुआ, तब रक्षा के विचार से उसने अपने राज्य के तीन टुकड़े किये और उसमें से एक बाजीराव को दे दिया। उसने बाजीराव को लिखा था कि जैसे मेरे दो लड़के हैं वैसे ही तुम मेरे तीसरे हो। बाजीराव ने छत्रसाल का दिया हुआ मुल्क स्वीकार कर उसके लड़के की रक्षा करने का उसको वचन दिया। इसके बाद शीघ्र ही छत्रसाल की मृत्यु हो गई। बाजीराव को छत्रसाल से जो हिस्सा मिला था उसमें कालपी, हटा, सागर, झाँसी, सिरोंज, कुंच, गढ़ाकोटा, हृदयनगर आदि स्थान मुख्य थे। गोविन्द बल्लाल खेर नामका बाजीराव का एक शागिर्द था। उसने बुन्देलखण्ड की राजनीति में अच्छा भाग लिया था। इसलिए बाजीराव ने उसपर प्रसन्न होकर इस नये मुल्क का उसे सूबेदार नियत किया। यह गोविन्द बल्लाल खेर आगे चलकर गोविन्द पंत बुन्देले के नाम से प्रसिद्ध हुआ। धीरे-धीरे गोविन्द पन्त ने नये-नये स्थान हस्तगत किये और नये-नये क़िले बनाये। उसने खुरई के नवाब से भी कुछ भाग जीता था। उसमें

सागर नाम का एक बड़ा भारी तालाब था। उसके किनारे सागर नाम का एक नया शहर बसाकर गोविन्द पन्त ने अपनी राजधानी वहीं बनाई।

शाहू और सम्भाजी के बीच कलह और सन्धि

निजाम और बाजीराव के बीच सन् १७२८ में मुंगी शेवगाँव में जो सन्धि हुई थी, उसमें कोल्हापुर के सम्भाजी का बड़ा अपमान हुआ था। सन् १७२५ के वर्षा-काल के समाप्त होते ही चिमणाजी अप्पा ने गुजरात पर चढ़ाई की और उसके बाद बाजीराव भी वहाँ के सूबेदार सरबुलन्दख़ाँ से वहाँ के चौथ का वादा करा लेने की खटपट में लगा। इस प्रकार बाजीराव और उसके भाई को महाराष्ट्र से दूर गये देख सम्भाजी ने अपने अपमान का बदला लेने की सोची। उदाजी चौहान नाम का एक बाग़ी पुरुष मिरज के आस-पास चौथ वसूल किया करता था। सम्भाजी ने उसे अपनी ओर मिला लिया और वे दोनों शाहू के राज्य में लूट मार करने लगे। शाहू ने श्रीपतराव प्रतिनिधि को सम्भाजी को दबाने का काम सौंपा। श्रीपतराव ने सम्भाजी की फ़ौज पर अचानक हमला किया और उसकी सामग्री लूट ली। सम्भाजी पन्हाला की ओर भाग गया और ताराबाई तथा उसकी सौत राजसबाई श्रीपतराव के हाथ पड़ीं। शाहू ने ताराबाई का सन्मान किया और वापस जाने को कहा, परन्तु वह शाहू के पास सातारा के क़िले में रह गई। इसके बाद २१ अप्रैल १७२१ को शाहू और सम्भाजी के बीच सन्धि हुई। इसके अनुसार वारणा और तुंगभद्रा नदियों के बीच का मुल्क सम्भाजी को मिला। शाहू ने रत्नागिरी

लेकर कोपल का क़िला सम्भाजी को दिया और कोंकण में सालसी के दक्षिण का मुल्क भी सम्भाजी को दे दिया। इस प्रकार मुग़लों के हाथ से छूटने के समय से शाहू का तारावाई से जो झगड़ा हुआ था, उसका पूर्णतया अन्त हुआ।

उपर्युक्त गृह-कलह बन्द होने भी न पाया था कि एक दूसरा शुरू हो गया। सन् १७२९ में खण्डेराव दाभाड़े की मृत्यु हुई और उसका सेनापति-पद उसके लड़के त्रिम्बकराव दाभाड़े को मिला। बालाजी विश्वनाथ की योजना के अनुसार गुजरात का भाग दाभाड़े को मिला था। त्रिम्बकराव को यह बात अच्छी न लगी कि पेशवे मेरे प्रान्त में हस्तक्षेप करें। बाजीराव ने गुजरात में सरबुलन्दख़ाँ का अधिकार जमा दिया, यह बात निजामुलमुल्क को ठीक न लगी। इसलिए निजामुलमुल्क ने दाभाड़े को अपनी ओर मिलाकर बाजीराव से युद्ध करने का विचार किया। त्रिम्बकराव युद्ध की तैयारी करने लगा और उसने लोगों में यह कहना शुरू किया कि ब्राह्मणों ने हमारे स्वामी शाहू महाराज का राज्य अपने हाथ में कर लिया है, इसलिए उन्हें दबाने के विचार से हम तैयारी कर रहे हैं। दाभाड़े की इस युक्ति के कारण उदाजी और आनन्दराव पँवार, कंठाजी कदमबाँडे, चिमणाजी दामोदर जैसे बड़े-बड़े मराठे * सरदार दाभाड़े की

दाभाड़े और बाजीराव में झगड़ा

* यहाँ पर इस शब्द का वह सामान्य अर्थ नहीं है, जो इस पुस्तक में बहुधा आया है। यहाँ पर इस शब्द का अर्थ वर्ण-व्यवस्था के अनुसार मराठा-जाति-विशेष है। हम यह बतला ही चुके हैं कि शिवाजी इसी जाति का था। पेशवा महाराष्ट्र ब्राह्मण थे। इसीलिए दाभाड़े ने ऊपरी

ओर से लड़ने को तैयार हुए और उससे जा मिले । त्रिम्बकराव की फ़ौज इस प्रकार क़रीब ३५ हज़ार हो गई । ऐसी भारी फ़ौज लेकर वह निजाम से मिलने के लिए दक्षिण की ओर रवाना हुआ । उधर निजाम भी शीघ्रता से बड़ी भारी फ़ौज जमा कर रहा था ।

निजाम और दाभाड़े के षडयंत्र का पता बाजीराव को लग गया । बाजीराव तुरन्त फ़ौज लेकर गुजरात की ओर रवाना हुआ । उसने लोगों पर यह प्रकट किया कि। हमारा शत्रु त्रिम्बकराव दाभाड़े हम-पर चढ़ाई कर रहा है, इसलिए उसकी खबर हमें लेनी ही होगी । तथापि पूना से निकलने के बाद उसने दाभाड़े से कई बार कहला भेजा कि निजाम से मिलकर गृह-कलह बढ़ाना ठीक नहीं । पर दाभाड़े ने उसकी एक न सुनी । इसलिए दोनों एक दूसरे की ओर बढ़ते चले आ रहे थे। बाजीराव का एक सरदार आवाजी कवड़े नर्मदा पारकर उत्तर की ओर बढ़ा । पिलाजी गायकवाड़ के लड़के दमाजी गायकवाड़ से उसकी मुठ-भेड़ हुई । इसमें आवाजी कवड़े हार गया । पर बाजीराव हिम्मत हारनेवाला पुरुष न था । उसकी फ़ौज दाभाड़े की फ़ौज से आधी थी, तथापि उसने लड़ाई का निश्चय किया। दोनों फ़ौजों की मुठभेड़ १७३१ की पहली अप्रैल को उभई नामक स्थान में हुई । बाजीराव के हमला करते ही दाभाड़े की फ़ौज में गड़बड़ मच गई और उसमें जो नये सैनिक भर्ती हुए थे वे भाग गये ।

उभई की लड़ाई और दाभाड़े का पतन

तौर से शाहू महाराज का पक्ष लेकर ब्राह्मणों से लड़ने का अपना विचार लोगों पर प्रकट किया ।

यही बात कई सरदारों की भी हुई। अन्त में केवल दाभाड़े की फौज रण में बच गई। परन्तु त्रिम्बकराव मारा गया और उसकी सेना भाग गई। उदाजी पवार और चिमनाजी दामोदर क़ैद में पड़े।

शाहू को यह गृह-कलह ठीक न लगी, इसलिए उसने दाभाड़े और बाजीराव का मेल कराने का प्रयत्न किया। त्रिम्बकराव दाभाड़े के छोटे भाई यशवन्तराव दाभाड़े को सेनापति-पद दिया, पिलाजी गायकवाड़ के हाथ में दाभाड़े की मुतालिकी और शमशेरबहादुर का उसका खिताब बनाये रक्खा और सेनाखासखेल का नया खिताब दिया। गुजरात की आमदनी के विषय में यह निश्चित हुआ कि आधी आमदनी सेनापति ले और आधी पेशवा की ओर से सरकार में जमा हो।

बाजीराव और दाभाड़े में मेल

बुलन्दखाँ ने गुजरात में मराठों का चौथ और सरदेशमुखी की वसूली का हक़ मान लिया, यह बात मुहम्मदशाह को ठीक न लगी। इसलिए सन १७३० में बादशाह ने जोधपुर के राणा अभयसिंह को गुजरात का सूबेदार नियत किया। इस राणा की दिल्ली के तख्त के प्रति बड़ी श्रद्धा थी और मराठों की बढ़ती इसे असह्य थी। इसलिए उसने मराठों को गुजरात से निकाल बाहर करने का विचार किया। दाभाड़े की ओर से गुजरात का कारबार पिलाजी गायकवाड़ देखा करता था और उसने वहाँ मराठों की अच्छी धाक जमादी थी। अभयसिंह ने सोचा कि पिलाजी को नष्ट करने से मराठों की धाक भी साथ ही

गुजरात में गायकवाड़ का अधिकार

नष्ट हो जायगी। यह सोचकर उसने पिलाजी को सन्धि की बात-चीत करने के लिए डाकोर नामक स्थान में बुलाया और वहाँ विश्वासघात करके दुष्टता-पूर्वक उसे मार डाला। इस कृत्य का परिणाम बिलकुल विपरीत ही हुआ। पिलाजी का लड़का दमा-जी गायकवाड़ बाप से बढ़कर था। उसने अच्छी तरह गुजरात पर अपना अधिकार जमाया और अभयसिंह के मूल स्थान जोधपुर पर हमले किये। तब गुजरात को छोड़कर सन् १७३५ में अभयसिंह जोधपुर भाग गया। इसके बाद गुजरात में जो सूबेदार आये, वे दमाजी से मिल-जुलकर काम किया करते थे। यशवन्तराव दाभाड़े कर्मशील पुरुष न था; पर वह व्यसनों के अधीन हो गया था और कारबार बिलकुल न देखता था। इस-लिए वह पीछे पड़ गया और उसका मुतालिक दमाजी गायक-वाड़ स्वतंत्र रीति से अपना काम करने लगा।

उभई की लड़ाई का बाजीराव के लिए एक अच्छा परि-णाम और हुआ। निजामुलमुल्क ने देखा कि बाजीराव को दबाने के मेरे सब प्रयत्न विफल हुए और आगे-पीछे यह डर है कि वह दक्षिण का सूबेदार न नियत हो जाय। इसलिए उसने बाजीराव से मिलकर मेल-जोल की बातें कीं। उसने दक्षिण के छः सूबों में चौथ वगैरा वसूल करने का मराठों का हक़ मान लिया और गुजरात व मालवा में भी यह हक़ करा देने का वचन दिया। इसका यह परिणाम हुआ कि मराठों का लक्ष्य सदैव उत्तर की ओर बना रहा और निज़ाम के राज्य को हस्तगत करने की ओर उनका ध्यान ही न गया।

निजाम और बाजीराव की सन्धि

उपर्युक्त युद्धों के सिवाय बाजीराव को कोंकण में भी युद्ध करने पड़े । कोंकण के इन युद्धों का सम्बन्ध बहुतांश में जंजीरा के सिद्दी से रहा ।

बाजीराव के प्रारम्भिक काल में कोंकण की स्थिति

बालाजी विश्वनाथ ने सन् १७१३ में कान्होजी आँग्रे से जो सन्धि की उसमें जंजीरा का कुछ भाग आँग्रे को मिला, इसलिए सिद्दी ने आँग्रे से लड़ाई शुरू की। बालाजी विश्वनाथ आँग्रे की मदद को गया। सन् १७१४ में मराठों की विजय हुई और सिद्दी ने आँग्रे को दिया हुआ प्रदेश उसीके पास रहने देने का वचन दिया । तबसे कोंकण में मराठों का अधिकार कान्होजी आँग्रे ही चलाता रहा । आँग्रे के सिवाय कोंकण में पोर्त्तगीज, अंग्रेज और सिद्दी के भी प्रदेश थे। सिद्दी का प्रदेश कोलाबा के पास था और आँग्रे के प्रदेश से लगा हुआ था। पोर्त्तगीजों का प्रदेश उत्तर कोंकण में था । अंग्रेजों के अधीन बम्बई के सिवा और कुछ न था । पर सिद्दी और मराठों के बीच जो झगड़े होते, उनमें अंग्रेज और पोर्त्तगीज कभी एक पक्ष से तो कभी दूसरे पक्ष से मिला करते थे। सन् १७२६ के प्रारम्भ में जंजीरा के सिद्दी याकूबखाँ ने निजामुलमुल्क के भड़काने से मराठों के प्रदेश पर हमला कर दिया। कान्होजी आँग्रे ने शाहू से मदद माँगी । अंग्रेजों ने सोचा कि कोंकण में मराठों की सत्ता न बढ़नी चाहिए, इसलिए वे सिद्दी से मिल गये । सिद्दी और आँग्रे की चौकियाँ स्थान-स्थान पर थीं । दोनों ने एक दूसरे के गाँवों को लूटना शुरू किया ।

इस झगड़े के बढ़ने का एक कारण और हुआ । कोंकण

के परशुराम-क्षेत्र में बाजीराव का गुरु ब्रह्मेन्द्र स्वामी रहता था। ~~स्वामी रहता था~~। सिद्दी ने सन् १७२७ के फ़रवरी महीने में, महाशिवरात्रि के दिन, ब्रह्मेन्द्र स्वामी का परशुराम-क्षेत्र का देवालय नष्ट कर डाला। स्वामी की सब सामग्री नष्ट करदी, उसके नौकरों को बुरी तरह पीटा और उसका बड़ा अपमान किया। तब ब्रह्मेन्द्र स्वामी कोंकण छोड़कर देश में चला गया और शाहू से धावड़शी नामक गाँव इनाम पाकर वहीं रहने लगा। वह सिद्दी से बहुत चिढ़ गया था, इसलिए उसे नष्ट करने के लिए शाहू को बार-बार उकसाया करता था। शाहू ने अवकाश पाते ही सिद्दी की ख़बर लेने का इरादा किया।

सिद्दी से मराठों के झगड़े का एक और कारण

कान्होजी आँग्रे जैसे-तैसे सिद्दी से लड़ रहा था। इसी बीच में, सन् १७२९ में, उसकी मृत्यु हो गई। उसके सेखोजी, सम्भाजी, मालाजी, येसाजी और तुलाजी नामक पाँच लड़के थे। इनमें सेखोजी को पिता का पद तथा मुल्क मिला, इसलिए सेखोजी और सम्भाजी आपस में लड़ने लगे। इससे सिद्दी की बन आई और उसने मराठों के मुल्क में और भी अधिक उपद्रव मचाना शुरू किया। आँग्रे-बन्धुओं के इन आपसी झगड़ों को शाहू ने शान्त करने का प्रयत्न किया और श्रीपतराव प्रतिनिधि को कोंकण भेजा। प्रतिनिधि कोंकण गया, परन्तु दो साल में भी उससे कुछ हो न सका। शाहू ने सेखोजी और सम्भाजी को अपनी मुलाक़ात के लिए बुलाया और सेखोजी

सिद्दियों पर बाजीराव की विजय

को प्रतिनिधि की सहायता करने के लिए कहा। लेकिन तब भी प्रतिनिधि से कुछ भी न हो सका। इसलिए अब शाहू ने बाजीराव और फ़तेसिंह भोंसले को कोंकण भेजा। इस समय याकूबख़ाँ की मृत्यु हो चुकी थी और सिद्दियों में आपसी झगड़े पैदा हो गये थे। उनमें से कुछ लोग मराठों से आ मिले। अब मराठों ने एक के बाद एक सब स्थान जीतने शुरू किये और अन्त में जंजीरा को भी घेर लिया, यह क़िला भी बाजीराव के हाथ लगा। बाजीराव ने याकूबख़ाँ के एक लड़के रहमानख़ाँ को गद्दी पर बिठलाया। इस समय भी कुछ क़िले मराठों को मिले।

मराठों को यह विजय प्राप्त हुई, पर कुछ सिद्दी सरदार अब भी न दबे थे। यदि मराठों ने उनसे अच्छी तरह युद्ध किया होता, तो इनके स्थान भी हस्तगत हो जाते; पर मराठों ने वैसा न किया। सेखोजी अंग्रेजों से लड़ते-लड़ते, सन् १७३३ में, मारा गया। इस कारण सम्भाजी और मानाजी के बीच झगड़े शुरू हुए। अन्त में सन् १७३३ के आरम्भ में, बाजीराव फिर से कोंकण गया। आंग्रे-बन्धुओं के झगड़ों में उसने मानाजी का पक्ष लिया, इसलिए मानाजी ने कई स्थान जीत लिये। आख़िर सम्भाजी बाजीराव की शरण आया। बाजीराव ने सम्भाजी को सरखेल-पद देकर विजय-दुर्ग में नियत किया और मानाजी को वज़ारतमाब का ख़िताब देकर कोलाबा का कारबार दिया। इस प्रकार इन भाइयों के आपसी झगड़े मिटाकर बाजीराव वापस गया। उसके वापस जाते ही सिद्दी सात नामक सिद्दी सरदार ने मराठों को सताना शुरू किया। इसलिए बाजीराव का भाई चिमणाजी अप्पा कोंकण

सिद्दी मराठों के माण्डलिक

गया। उसकी और सिद्दीसात की सन् १७२६ के अप्रैल में, रेवसे के पास चरई नामक स्थान में, लड़ाई हुई। उसमें सिद्दी सात तथा अन्धेरी का क़िलेदार सिद्दी याकूब दोनों मारे गये। इस प्रकार सब उपद्रवी सिद्दी सरदार मारे गये और मराठों की सहायता से गद्दी पर बैठे हुए अब्दुलरहमान का शासन सब सिद्दियों पर ठीक-ठीक चलने लगा। शिवाजी ने सिद्दियों को दबाने के लिए अनेक प्रयत्न किये थे, पर उसे इसमें पूरी सफलता कभी प्राप्त नहीं हुई। अब कहीं मराठे उन्हें दबाकर अपने माण्ड-लिक बना सके।

बाजीराव की दिल्ली पर चढ़ाई

हम यह देख चुके हैं कि दयाबहादुर के बाद जयपुर का राजा सवाई जयसिंह मालवा का सूबेदार नियत हुआ था। साथ ही यह भी बता चुके हैं कि यह हिन्दू सूबेदार हिन्दू-धर्माभिमानी था और इसलिए मराठों की सहायता करना चाहता था। मालवा में शिन्दे, होलकर और पँवार सदा के लिए जम गये थे और हर साल चौथ व सरदेशमुखी वसूल किया करते थे। मगर इन करों की सनद बादशाह से न मिली थी, जिससे नियमानुसार उनके ये हक़ मान्य न थे। सन् १७२७ में बाजीराव ने मालवा की सनद प्राप्त करने के विचार से उत्तर की ओर कूच किया और सवाई जयसिंह के ज़रिये यह सनद प्राप्त करने की कोशिश की। तब बादशाह ने अपने एक वकील के ज़रिये बाजीराव को कहला भेजा कि मालवा की आमदनी में से हम १३ लाख देने को राज़ी हैं और यह भी वचन देते हैं कि यदि मराठे राजपूत राजाओं से कर वसूल करेंगे तो हम उनके बीच

रुकावट न डालेंगे। साथ ही इसके वकील के साथ गुप्त रीति से मालवा की सनदें भी दे रक्खी थीं और यह बता रक्खा था कि यदि इन बातों से मराठे सन्धि करने के लिए तैयार न हों तभी ये सनदें उन्हें दी जायँ। यह गुप्त बात बाजीराव को मालूम हो गई और उसने अपनी माँगें बहुत अधिक बढ़ा दीं। पूरे मालवा की जागीर, धार, माण्डू और रेसीन के क़िले तथा चम्बल नदी के दक्षिण का सब मुल्क, बंगाल में चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का हक़ अथवा उसके बदले ५० लाख रुपये, इलाहाबाद, गया और मथुरा नामक तीर्थ-क्षेत्र तथा दक्षिण के छः सूबों की सरदेशपाण्डेगिरी बाजीराव ने बादशाह से माँगी। बादशाह ने अन्तिम माँगों को छोड़ शेष माँगों को अस्वीकार किया और दिल्ली के पास फ़ौज जमा करने लगा। वज़ीर खानडौरान और कमरुद्दीनखाँ सेना लेकर मथुरा की ओर आने लगे। यह खबर बाजीराव को मिली, तो वह भी शीघ्रता से उत्तर की ओर बढ़ा। मल्हारराव होलकर दोआब में कर वसूल कर रहा था, उसे अयोध्या के नवाब सआदतखाँ ने वहाँ से भगा दिया। इसके बाद उपर्युक्त तीनों मुसलमान सरदार आगरा आये। बाजीराव इन सबको बचाकर अचानक दिल्ली के पास आ पहुँचा। वह अपना उद्देश्य शान्ति से सिद्ध करना चाहता था, पर मुसलमान सरदारों ने मराठों पर हमला कर दिया। दोनों में घमासान युद्ध हुआ और मुग़ल हार गये। सआदतखाँ, बंगश और खानडौरान को जब बाजीराव के दिल्ली पहुँचने की खबर मिली, तो वे भी बड़ी शीघ्रता से वहाँ पहुँचे। इन सबसे दिल्ली के पास लड़ना बाजीराव को ठीक न लगा। इसलिए वह वहाँ से दोआब में

चला आया और अपने भाई चिमणाजी को लिख भेजा कि निजामुलमुल्क नर्मदा पार कर इधर न आने पावे। पर बाजीराव का उद्देश्य सिद्ध न हुआ। उसे अचानक दक्षिण आना पड़ा। मगर जाने से पहले उसने, मौखिक संदेश के अनुसार, १२ लाख रुपये सालाना मिलने की स्वीकृति बादशाह से ले ली।

उसके जाने पर बादशाह ने सोचा कि इस समय यद्यपि बाजीराव सनद लिये बिना चला गया है, मगर वह शीघ्र ही अवश्य लौटेगा और तब हमारे सरदार उसे हरा न सकेंगे। इसलिए उसने मालवा की रक्षा के लिए एक नई युक्ति सोची। बादशाह ने निजामुलमुल्क को दिल्ली बुलाया और उसके लड़के गाज़ीउद्दीन के नाम से मालवा और गुजरात के भाग उसके अधीन कर दिये। साथ ही उससे यह वचन लिया कि मैं स्वयं मराठों को इन दोनों प्रान्तों से निकाल भगाऊँगा।

बाजीराव और निजामुलमुल्क की भोपाल के पास लड़ाई

निजामुलमुल्क ने पहले राजपूत और बुन्देले राजाओं को अपने क़ब्ज़े में किया। फिर अपनी तथा उनकी फ़ौजें मिलाकर वह मराठों से लड़ने के लिए रवाना हुआ। निजामुलमुल्क अपनी यह बड़ी भारी सेना तथा सबसे अच्छा तोपखाना लेकर सिरोंज आया। इसी समय बाजीराव नर्मदा पार कर उत्तर में पहुँचा। मराठों को नज़दीक आया देख निज़ाम पीछे हटकर भोपाल के पास गया। यहाँ मराठों ने तुरन्त ही उसपर हमला कर दिया। इसपर निज़ाम अपनी सब सेना लेकर भोपाल के क़िले में घुस पड़ा। मराठों ने क़िले को घेर लिया और निज़ाम की रसद

बन्द कर दी। इसलिए वह बड़ी आपत्ति में पड़ा—न तो उसे बादशाह से कोई मदद मिली, और न दक्षिण से ही चिमणाजी अप्पा के कारण कोई मदद पहुँच सकी। अन्त में उसने अपना सब भारी सामान भोपाल तथा इसलामगढ़ के क़िले में छोड़ दिया और तोपख़ाने के आश्रय में पीछे हटने लगा। पर मराठों ने अपने हमलों से उसके नाकों दम कर दिया। अन्त में उसे संधि करने को तैयार होना पड़ा। निजाम ने स्वयं अपने हाथ से बाजीराव को लिख दिया कि मैं तुम्हें मालवा-प्रान्त की सनद, नर्मदा और चम्बल नदियों के बीच का सब मुल्क तथा फ़ौज के खर्च के लिए ५० लाख रुपये बादशाह से दिलवा देने की ज़िम्मेदारी लेता हूँ। यह संधि १७३८ के जनवरी महीने की ७वीं तारीख़ को सिरोंज के पास दराई-सराई नामक स्थान में हुई। पर इतिहास में इसे बहुधा सिरोंज की संधि कहते हैं।

पोर्त्तगीज़ों से वसई लिया

बाजीराव को न केवल मुसलमानों से बल्कि पोर्त्तगीज़ों से भी लड़ना पड़ा। ये लोग पन्द्रहवीं सदी के अन्त में पहले-पहल हिन्दुस्थान में आये। इन लोगों ने बड़ी शीघ्रता में पश्चिमी किनारे पर अपना राज्य स्थापित करना प्रारम्भ किया। साथ ही बिलकुल मुसलमानों के समान ये भी अपने धर्म का प्रसार करने लगे। इस काम में ये चाहे जैसा अत्याचार करते थे। इनके इन अत्याचारों से लोग बिलकुल ऊब उठे। लोगों ने सब बातें पेशवों के कानों तक पहुँचाईं और रक्षा की और प्रार्थना की। बाजीराव और चिमणाजी अप्पा ने सन १७३० में यह उत्तर भेजा कि समय मिलते ही हम उनकी खबर लेंगे। परन्तु पेशवे

बहुत समय तक सिद्दियों से उलझे हुए थे, इस कारण उन्हें समय न मिला। पोर्त्तगीज़ों का अत्याचार दिनोंदिन बढ़ता ही गया। अन्त में सन् १७३७ में चिमणाजी अप्पा कोंकण में पहुँचा। उसने साष्टी अथवा सालसर्चा द्वीप के स्थान तथा थाना, बेलापुर, वेसावी आदि स्थान भी जीत लिये और शंकराजी केशव फड़के तथा खण्डोजी मानकर को उस प्रान्त की रक्षा का भार सौंपा। फिर पूना को वापस चला गया। उसके वापस जाते ही पोर्त्तगीज़ों ने मराठों को फिर से सताना शुरू किया। तब बाजीराव ने रामचन्द्र हरि पटवर्धन को केलवे और माही जीतने के लिए भेजा, परन्तु उससे कोई विशेष कार्य न हो सका। तब १७३८ में बाजीराव ने शिंदे-होलकर को कोंकण भेजा। इसी समय लिस्बन से पोर्त्तगीज़ों को सहायता पहुँची। दोनों पक्षों के बीच जो युद्ध हुआ, उसमें गोवा का पोर्त्तगीज़ गवर्नर मारा गया और उन लोगों का बड़ा नुक़सान हुआ।

थोड़े ही दिनों के बाद स्वयं चिमणाजी अप्पा कोंकण आया। उसने वसई-भाग से पोर्त्तगीज़ों को मार भगाने का निश्चय किया। मराठे सरदारों ने पोर्त्तगीज़ों के भिन्न-भिन्न स्थान लेना शुरू किया और अन्त में सन १७३९ के फ़रवरी महीने में बसई का भी घेरा डाला। यह स्थान बहुत मज़बूत था, पर ३ महीने के कड़े परिश्रम के बाद मराठों ने उसे जीत ही लिया। इस विजय से मराठों का बड़ा नाम हुआ।

जिस समय बाजीराव ने निज़ामुलमुल्क को भोपाल में घेरा

था, उस समय नागपुर के भोंसले ने इलाहाबाद पर चढ़ाई की और वहाँ के सूबेदार को मारकर बहुत-सा धन वसूल किया। फिर मराठे जब पोर्तगीज़ों से लड़ रहे थे तब रघुजी ने पूर्व की ओर चढ़ाई करके कटक को लूटकर साफ़ कर दिया। इन दोनों चढ़ाइयों के लिए रघुजी ने पेशवा से इजाज़त नहीं ली थी। इसलिए बाजीराव को भोंसले पर क्रोध आया; और भोंसले को दबाने के लिए उसने आवजी कवड़े को भेजा। रघुजी और आवजी के बीच लड़ाई हुई। उसमें आवजी हार गया। तब स्वयं बाजीराव ने रघुजी पर चढ़ाई करने का इरादा किया। उसी समय उत्तर से यह ख़बर आई कि ईरान के बादशाह नादिरशाह ने दिल्ली पर चढ़ाई करके राजधानी को लूट डाला है और वह दक्षिण में आनेवाला है। इसलिए बाजीराव ने दक्षिण के सब सरदारों तथा हिन्दू-मुसलमानों को एक करने का प्रयत्न किया और नादिरशाह का सामना करने के लिए फ़ौज की तैयारी शुरू कर दी। परन्तु नादिरशाह दक्षिण में न आया। वह दिल्ली से ही अपने देश को वापस चला गया।

आपसी झगड़े तथा मेल

निज़ामुलमुल्क ने भोपाल में घिर जाने पर मालवा की सनद दिला देने का इक़रार बाजीराव से किया था। पर एक बार बाजीराव के हाथ से बचकर दिल्ली जाने पर सनद की बात ही वह न उठाता था। नादिरशाह के चले जाने पर भी जब वह इस बारे में चुप रहा, तब बाजीराव को ग़ुस्सा आया और उसने उसे नुक़सान पहुँचाने का विचार किया। रघुजी भोंसले और

निज़ाम से लड़ाई तथा सन्धि

पेशवा के बीच वैमनस्य हो गया था, यह पहले बता ही चुके हैं। पर निजाम को दबाने के विचार से बाजीराव ने रघुजी से मेल कर लिया और उसे निजामुलमुल्क के राज्य में चढ़ाई करने को कहा। रघुजी को फुसलाने के विचार से बाजीराव ने रघुजी को महाराष्ट्र में कई गाँव इनाम दिये और बंगाल व उत्तर-हिन्दुस्थान की लूट में भी हिस्सा देने का वचन दिया। इसपर रघुजी पेशवा से खुश हो गया और उसने कर्नाटक पर चढ़ाई करने की तैयारी की। इस समय निजाम दिल्ली में था और उसके दक्षिण के मुल्क का कारबार उसका दूसरा लड़का नासिरजंग देख रहा था। उसपर बाजीराव ने चिमणाजी अप्पा को भेजा और स्वयं बाजीराव ने उत्तर-हिन्दुस्थान में निजाम की खबर लेने का विचार किया।

इस निश्चय के अनुसार रघुजी ने कर्नाटक पर चढ़ाई की। सन्ताजी घोरपड़े का एक वंशज मुराररराव घोरपड़े भी उसके साथ था। इधर नासिरजंग दस हज़ार फ़ौज लेकर औरंगाबाद में था। वह एकदम हाथ आ जावेगा, इस विचार से बाजीराव ने उसे घेर लिया। पर इसी बीच बड़ी भारी फ़ौज नासिरजंग की मदद को आ पहुँची। इससे नासिरजंग का जोर बहुत बढ़ गया और वह गोदावरी पार कर अहमदनगर के रास्ते में लूट-मार करने लगा। इतने में चिमनाजी अप्पा फ़ौज लेकर आ पहुँचा। फिर दोनों भाइयों ने मिलकर नासिरजंग को पीछे हटाया। तब कहीं वह सन्धि करने के लिए तैयार हुआ। सन १७४० के फ़रवरी महीने में मुंगी पैठन नामक स्थान में दोनों पक्षों में सन्धि हुई। दोनों पक्षों ने शान्ति बनाये रखने तथा प्रजा को कष्ट न देने का इक़रार किया। नासिरजंग ने नर्मदा के किनारे हण्डिया

और खरगोन नाम के जिले पेशवा को दिये। इसके बाद बाजीराव उत्तर-हिन्दुस्थान की ओर चला गया।

इसी समय सम्भाजी आँग्रे ने मानाजी आँग्रे पर चढ़ाई की। उसने आस-पास के सब स्थान ले लिये और कोलाबा को घेर लिया। मानाजी ने तुरन्त मदद के लिए पेशवा को चिट्ठी लिखी। इसपर चिमणाजी अप्पा ने बाजीराव के बड़े लड़के बालाजी को आगे भेजा और फिर वह स्वयं आया। बालाजी ने वहाँ पहुँचते ही सम्भाजी से उसके सब जीते हुए स्थान वापस लेना शुरू किया। चिमनाजी अप्पा के कहने से अंग्रेज़ों ने भी मानाजी को मदद पहुँचाई। इसलिए सम्भाजी शीघ्र ही रास्ते पर आया और सुवर्णदुर्ग को भाग गया। एक दिन चिमनाजी अप्पा और बालाजी उर्फ़ नाना रेवदण्डा लेने का विचार कर रहे थे, उसी समय बाजीराव की मृत्यु का दुःखद संवाद उन्हें मिला। बाजीराव सन् १७४० के अप्रैल महीने की २५ वीं तारीख़ को नर्मदा के किनारे कलमड़े नामक मौज़े में मर गया।

आँग्रे-बन्धुओं का फिर से झगड़ा, उसकी शान्ति तथा बाजीराव की मृत्यु

बाजीराव अत्यन्त वीर और महत्वाकांक्षी पुरुष था। यह बता ही चुके हैं कि उसकी राजनीति का सार यह था कि मूल धड़ को गिराने से शाखायें अपने-आप गिर जावेंगी। वह जन्म भर चढ़ाइयाँ और लड़ाइयाँ करता रहा। उसे निज़ामुलमुल्क जैसे बड़े-बड़े सरदारों से सामना करना पड़ा, परन्तु सफलता सदैव उसके साथ रही। उसके समय में मराठों का राज्य बहुत अधिक बढ़

बाजीराव की योग्यता।

गया और रघुजी भोंसले, दमाजी गायकवाड़ आदि बहुत-कुछ स्वतंत्र बन बैठे थे। खेद की बात है कि बाजीराव ने समर में निजामुलमुल्क का सामना जितनी सफलता से किया, राजनीति में उसने उतनी बुद्धिमत्ता न दिखलाई। बरार और नागपुर के भाग तथा गुजरात और मालवा के सूबे जीतने की अपेक्षा उसने यदि मराठों का ध्यान निजाम के मुल्क को जीतने में लगाया होता, तो इसके बाद का महाराष्ट्र तथा हिन्दुस्थान का इतिहास कुछ भिन्न हो जाता। चढ़ाइयों और लड़ाइयों की ओर उसने जितना ध्यान दिया, उतना यदि उसने शासन-प्रबन्ध और नीत की ओर दिया होता, तो उसका नाम महाराष्ट्र के ही इतिहास में नहीं बल्कि सारे हिन्दुस्थान के इतिहास में अमर हो जाता। पर निजामुलमुल्क ने जो एक बार मालवा की सनद का लोभ दिखलाकर उसका ध्यान उत्तर की ओर फेरा, वह उस ओर सदैव बना रहा। इस समय से मराठों का ध्यान सदैव दिल्ली पर बना रहा। यह बात केवल उनके कार्यों और शब्दों से ही नहीं, किन्तु उनकी इमारतों से भी प्रकट होती है। मराठे सरदारों ने अपने लिए जो महल बनवाये, उनके मुख्य दरवाजे सदैव उत्तर की ओर रहते थे और उनका नाम वे दिल्ली-दरवाजा रखते थे। एक बार बाजीराव ने "मूले कुठारः" की राजनीति का जो बीज बोया, उसका अन्त सन् १७६१ में पानीपत के मैदान में कुछ अंश तक हुआ। परन्तु इसका वास्तविक अन्त लार्ड वेलेज़ली के ज़माने में द्वितीय मराठा-युद्ध के बाद ही हुआ।

———

२१

मराठा-राज्य का मुख्य शासक पेशवा

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि जब बाजीराव की नर्मदा के किनारे मृत्यु हुई, उस समय उसका लड़का बालाजी और भाई चिमणाजी कोंकण में थे। बाजीराव के दो औरस लड़के और थे। एक का नाम रघुनाथ और दूसरे का जनार्दन था। इसके सिवा उसकी रखेल मस्तानी से भी एक लड़का हुआ था। उसका नाम शमशेरबहादुर था। पिता की मृत्यु के समय बालाजी की उम्र क़रीब २१ वर्ष थी। हम देख चुके हैं कि वह चढ़ाइयों में भाग लेने लगा था। बाजीराव की मृत्यु के बाद चिमनाजी अप्पा बालाजी को लेकर सातारा गया और क़रीब दो महीने के बाद शाहू महाराज ने बालाजी को पेशवा का पद दिया। यह पद मिलने के पहले उसके मार्ग में एक भारी विघ्न उपस्थित हुआ था। अगले

कुछ विघ्न के बाद बाजीराव को पेशवा का पद मिला

इतिहास के लिए यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि यह विघ्न किसने पैदा किया और उसका स्वरूप क्या था।

रघुजी भोंसले का उदय

रघुजी भोंसले का नाम ऊपर आचुका है। हम यह बता चुके हैं कि राजाराम के समय परसोजी भोंसले नाम का एक सरदार बरार में चौथ वसूल किया करता था। शाहू के गद्दी पाने पर दो-तीन वर्ष बाद उसकी मृत्यु हुई। उसके बाद उसके लड़के कान्होजी भोंसले को शाहू ने सेनासाहेब सूबा का पद तथा बरार का अधिकार दिया। बहुत दिनों तक उसके कोई पुत्र न था। इसलिए उसने अपने भाई के लड़के रघुजी को अपने पास रख लिया और पुत्रवत् उसका पालन किया। पर आगे चलकर उसके लड़का हुआ। इस कारण उसने रघुजी पर प्रेम करना छोड़ दिया और उसे दूर कर दिया। इसके बाद रघुजी सातारा चला गया। वहाँ वह शाहू के पास आया-जाया करता था। एक बार शिकार के समय एक बाघ ने अचानक शाहू पर हमला कर दिया। उस समय रघुजी पास ही था। उसने तलवार से बाघ को मारकर शाहू की जान बचाई। शाहू इसपर बहुत प्रसन्न हुआ। इधर उसका चाचा कान्होजी बरार में अत्याचार करने लगा था और वह शाहू से ऐंठता था। इसलिए शाहू को उसपर बड़ा गुस्सा आया और उसने रघुजी को फ़ौज देकर कान्होजी को दबाने के लिए भेजा। रघुजी ने अपने चाचा पर हमला किया और उसे पकड़ लाया। शाहू ने कान्होजी को क़ैद में डाल दिया और रघुजी को सेना-साहेब सूबा का पद तथा बरार का अधिकार दिया। यह सब

१७३० की घटना है। रघुजी ने धीरे-धीरे अपना अधिकार पूर्व की ओर बढ़ाना शुरू किया और नागपुर-भाग पर भी उसने अपना अधिकार कर लिया।

रघुजी भोंसले की कर्नाटक पर चढ़ाई

रघुजी भोंसले स्वभाव से ही कर्तृत्ववान और महत्वाकांक्षी था। बाजीराव की चढ़ाई को देख कर उसे भी इच्छा हुई कि मैं भी ऐसी चढ़ाइयाँ करूँ। उसकी इलाहाबाद और कटक की ओर की चढ़ाइयों का वर्णन हम ऊपर कर ही चुके हैं और यह बता ही चुके हैं कि इसके लिए उसने शाहू अथवा बाजीराव से आज्ञा न माँगी थी। यह भी बता चुके हैं कि बाजीराव रघुजी को दण्ड देने का विचार कर रहा था, परन्तु बाद में उसने रघुजी से मेल कर उसे कर्नाटक पर हमला करने को कहा। रघुजी के साथ इस चढ़ाई के समय क़रीब ५० हज़ार फ़ौज थी। उसने कर्नाटक के नवाब दोस्तअली पर डमलचेरीघाट के पास अचानक हमला किया और उसे मार डाला (मई १७४०)। फिर मराठों मे सारे कर्नाटक में कर वसूल किया। अन्त में दोस्तअली के लड़के सफ़दरअली ने मराठों को बड़ा भारी कर देने का वचन दिया और त्रिचनापल्ली को घेरकर वहाँ के अधिकारी चन्दासाहब को पकड़ने के लिए उन्हें फ़ुसलाया। मराठों ने त्रिचनापल्ली लेने का निश्चय किया। पर बरसात शुरू होने के कारण रघुजी ने इस विचार को इस ऋतु के अन्त तक स्थगित कर दिया, और महाराष्ट्र की ओर २५० मील हटकर शिवगंगा के किनारे उसने छावनी डाली। इसी समय उसे बाजीराव की मृत्यु की ख़बर मिली।

रघुजी पेशवों से बड़ा चिढ़ता था। कर्नाटक पर चढ़ाई करवाने के विचार से बाजीराव ने उनसे मेल कर लिया था, मगर रघुजी का मन साफ नहीं हुआ था। वह यह जानता था कि बालाजी पराक्रमी पुरुष है। उसने सोचा कि यदि इसको पेशवा का पद मिला तो मैं भिन्न-भिन्न भागों पर चढ़ाइयाँ न कर सकूँगा, क्योंकि हर बार पेशवा मेरे आड़े आवेगा। इसलिए उसने विचार किया कि बालाजी को पेशवा का पद न मिलने पावे तो अच्छा है। उसके बदले अपने पक्ष के किसी साधारण पुरुष को पेशवा बनाना ठीक होगा। उसके साथ इस समय बाबूजी नायक बारामतीकर उर्फ़ महादेव सदाशिव जोशी था। यह बड़ा श्रीमान था। स्वयं पेशवे भी उसके क़र्ज़दार थे। इसलिए उसने बाबूजी नायक को ही पेशवा का पद दिलाने के विचार से उसे अपने साथ लेकर सातारा की ओर कूच किया। परन्तु उसे वहाँ इस काम में सफलता न मिली। इतने में चिमनाजी अप्पा बालाजी को लेकर सातारा में पहुँचा और उसने अपने प्रभाव से पेशवा का पद अपने भतीजे को दिला दिया। इस प्रकार रघुजी की आशा नष्ट हो गई।

रघुजी का बालाजी के मार्ग में विघ्न डालने का प्रयत्न

इसपर रघुजी सातारा से कर्नाटक को वापस चला गया। बरसात समाप्त होने पर उसने त्रिचनापल्ली को घेरकर जीत लिया और वहाँ के मुसलमान अधिकारी चन्दासाहब को क़ैद कर सातारा भेज दिया। चन्दासाहब इस समय से सात वर्ष तक सातारा में क़ैद रहा। त्रिचनापल्ली का अधिकार रघुजी ने गुत्ती के

कर्नाटक के कामों में निज़ामुलमुल्क का हस्तक्षेप

मुरारराव घोरपड़े को सौंपा। पर यह बहुत काल तक न टिका॥ त्रिचनापल्ली लेने के दोही वर्ष बाद निज़ामुलमुल्क बड़ी भारी फ़ौज लेकर कर्नाटक आया। उसने मुरारराव से त्रिचनापल्ली लेली और उसे गुत्ती भेज दिया। फिर निजामुलमुल्क ने अपने हस्तक अनवरुद्दीन को कर्नाटक का नवाब बनाया, तब वह हैदराबाद वापस गया।

सवाई जयसिंह से मालवा की सनद का वचन

हम यह देख चुके हैं कि मालवा की सनद बादशाह से लेने की बाजीराव की बड़ी इच्छा थी। पर वह यह कार्य पूरा न कर सका। बाजीराव के बाद बालाजी ने बादशाह को पत्र लिखकर तथा निज़ामुलमुल्क से भेंटकर मालवा की सनद प्राप्त करने का बहुतेरा प्रयत्न किया, पर फल कुछ न निकला। तब उसने मल्हारराव होलकर, राणोजी शिन्दे, पिलाजी जाधव इत्यादि सरदारों के द्वारा मालवा में अपना अधिकार जमाया। फिर उसने सवाई जयसिंह की भेंट लेकर १७४१ के जून में छः महीने के भीतर मालवा की सनद प्राप्त करा देने का वचन लिया और तब बरसात में बालाजी सातारा को वापस आया।

सब सरदारों पर बालाजी की सत्ता

यहाँ उसे शाहू ने पोर्त्तगीज़ों के पास से जीता हुआ सारा कोंकण-भाग दे दिया और नर्मदा के उत्तर भाग का कर वसूल करने की सनद भी लिखदी। फिर बरसात समाप्त होने पर, अर्थात् १७४१ के दिसम्बर में, बालाजी ने उत्तर की ओर चढ़ाई की और गढ़ा व मण्डला नामक स्थान जीत लिये। नाग-

पुरुके रघुजी भोंसले से नर्मदा के उत्तर का मुल्क सुरक्षित रखने के लिए पेशवा को इन स्थानों को अपने हाथ में रखना आवश्यक था। दूसरे साल बालाजी ने अहीरवाड़ा, खेचीवाड़ा, बुन्देलखण्ड आदि भागों में अपना अधिकार जमाया। इस समय नागपुर के भोंसले ने कई लोगों को उसके विरुद्ध भड़काया, पर उसके सामने किसी की कुछ न चली! उसने यशवन्तराव पँवार से मेल करके उसे धार का अधिकार दिया और इस प्रकार गड़बड़ करने वाले गायकवाड़, भोंसले आदि सरदारों को क़ाबू में रखने की योजना की।

बुन्देलखण्ड में मराठों का अधिकार जमाने के कार्य में उसे अधिक कष्ट उठाने पड़े। उसने ओरछा को जीतकर झाँसी के पास मराठों का अधिकार जमाया। इसका उसने अलग सूबा बनाया और उसका अधिकार नारोशंकर दानी को दिया। सन् १७५६ तक यह सूबा उसके हाथ में था। उसने वहाँ के क़िले के पास झाँसी शहर बसाया और वह शीघ्र ही धनवान स्थान बन गया। सन् १७५६ के बाद झाँसी में कई सूबेदार हुए। अन्त में सन् १७७० में झाँसी की सूबेदारी रघुनाथ हरि नेवालकर को मिली और फिर वह उसीके वंश में चलती रही। झाँसी की प्रसिद्ध रानी लक्ष्मीबाई इसी घराने के गंगाधरराव की पत्नी थी।

झाँसी का उदय

बालाजी ने कई स्थानों में मराठों का अधिकार जमाया, पर

मालवा की सनद उसे अब भी न मिली थी। यह मिलने का सुअवसर एक दूसरे मार्ग से प्राप्त हुआ। अलीवर्दीख़ाँ नाम का एक साधारण पुरुष किसी प्रकार बंगाल का सूबेदार बन बैठा था और जब रघुजी भोंसले कर्नाटक में गया तब अलीवर्दीख़ाँ ने कटक को भी जीत लिया। मीर हबीब नाम का कटक का दीवान अलीवर्दीख़ाँ की नौकरी में था, पर वह अब भी अलीवर्दीख़ाँ का नाश करना चाहता था। इसलिए उसने रघुजी के सरदार भास्कर पन्त को अपनी मदद के लिए बुलाया। भास्कर पन्त ने बंगाल तथा बिहार में कर वसूल किया तथा कटवा और हुगली नामक स्थानों में अपनी छावनियाँ रक्खीं। इसी समय दिल्ली के बादशाह से अलीवर्दीख़ाँ को बंगाल का कर भेज देने का संदेश आया। पर अलीवर्दीख़ाँ ने कहला भेजा कि पहले मराठों से मेरी रक्षा करो, फिर मैं कर भेजूँगा। इसके बाद उसने भास्कर पन्त पर अचानक हमला किया। मराठे इस समय दुर्गा के उत्सव में मग्न थे। अचानक हमले के कारण उनकी हार हुई और वे नागपुर को वापस आये। इस समय तक रघुजी कर्नाटक से वापस आ गया था। इस पराभव से रघुजी को अलीवर्दीख़ाँ पर बड़ा गुस्सा आया और बिहार पर हमला करने के विचार से वह रवाना हो गया। इतने में दिल्ली के बादशाह ने अलीवर्दीख़ाँ को मदद पहुँचाने के विचार से अवध के नवाब सफ़दरजंग को लिखा और बालाजी को भी इस कार्य के लिए लिखा। इसके बदले में उसने मालवा की सनद देने का वचन दिया। बालाजी अलीवर्दीख़ाँ की मदद करने के विचार से बड़ी

पेशवा को मालवा की सनद मिली

शीघ्रता से आया और उसने लड़ाई में रघुजी को हरा दिया। रघुजी वहाँ से भागकर नागपुर चला आया और बालाजी मालवा की सनद प्राप्त करने के विचार से मालवा में आया। ७ जुलाई सन् १७४३ को, पेशवा को, मालवा की सनद मिल गई।

यह सनद प्राप्त करने पर बालाजी शाहू के पास सातारा को गया। इस समय रघुजी ने उसके पास अपने एक वकील के साथ यह सन्देश भेजा कि आपने जो कुछ किया वह मराठों के राज्य-प्रसार के लिए अत्यन्त लाभदायक है और इसलिए अब मेरे मन में आपके प्रति कोई दुर्भाव नहीं है। यह सन्देश पाकर बालाजी को सन्तोष हो गया, पर शीघ्र ही उसे यह समाचार मिला कि रघुजी सेना लेकर सातारा की ओर आ रहा है। सातारा में रघुजी के पक्ष में कई लोग थे। बालाजी ने सोचा कि इन सबके मिलने से कुछ न कुछ गड़बड़ ज़रूर होगी। इसलिए उसने रघुजी को दूर ही रखने की एक युक्ति सोची। बालाजी को शाहू से नर्मदा के उत्तर भाग का कर वसूल करने का अधिकार मिल चुका था। उसमें से उसने लखनऊ पटना, दक्षिण बंगाल, बिहार और कटक का कर वसूल करने का अधिकार शाहू से रघुजी को दिलवा दिया। इसी समय शाहू ने बालाजी को एक सनद लिख दी। उसमें उसने आज तक के मोकासा और जागीर, कोंकण और मालवा का अधिकार, इलाहाबाद, आगरा और अजमेर के कर का हिस्सा, पटना जिले के तीन परगने, अर्काट की वसूली में से २० हज़ार रुपया और रघुजी के मुल्क के कुछ गाँव बालाजी को दिये।

पेशवा और रघुजी का मेल तथा उनकी सनदें

इस प्रकार बालाजी ने रघुजी को खुश कर लिया और रघु-जी का सन्तोष हो गया। इससे मराठों के आपसी झगड़े बन्द हुए और उन लोगों ने फिर से चढ़ाइयाँ शुरू कीं। सन १७४४ के वर्षा-काल के समाप्त होते ही बालाजी मालवा में गया।

उत्तर में बालाजी की विजय

शीघ्र ही उसने भेलसा जीत लिया और भोपाल के फ़ौजदार मुहम्मदखाँ का आधा मुल्क हस्तगत कर लिया। इसके बाद वह बुन्देलखण्ड गया। वहाँ बहुत-सा मुल्क जीतकर तथा कर वसूल कर उसने नये मुल्क की व्यवस्था की और सन १७४५ की बर-सात में वह अपने देश को वापस गया। इसी समय राणोजी शिन्दे की मृत्यु हुई।

शाहू पर बहुत-सा क़र्ज़ हो गया था। यह क़र्ज़ चुकाने के लिए उसने पेशवा से कहा। पेशवा ने शिन्दे-होल्कर से धन माँगा। सन १७४६ में धन प्राप्त करने का एक अच्छा अवसर मराठों को मिला। जयपुर का राजा सवाई जयसिंह सन १७४३ में मरा। उसके ईश्वरसिंह

जयपुर के राजकीय झगड़ों में मराठों का हस्तक्षेप

और माधवसिंह नाम के दो लड़के थे। ईश्वरसिंह बड़ा था, पर माधवसिंह उदयपुर की राज-कन्या का पुत्र था और सन १७१० के इक़रार के मुताबिक वही गद्दी का मालिक था। जब जयसिंह ज़िन्दा था, तभी उदयपुर के राणा जगतसिंह ने माधवसिंह को अपने राज्य का रामपुरा नामक परगना जागीर में दे दिया था; और यह इक़रार हुआ था कि इसके बदले माधवसिंह उदयपुर के राणा की नौकरी करे। जयसिंह की मृत्यु के बाद भी माधव-

सिंह जगतसिंह के पास ही बना रहा और इस कारण ईश्वरसिंह को जयपुर की गद्दी मिली। परन्तु तीन वर्ष बीत जाने पर माधवसिंह ने जगतसिंह की सहायता से जयपुर की गद्दी के लिए झगड़ा शुरू किया। ईश्वरसिंह ने शिन्दे-होलकर की मदद लेकर जगतसिंह को हराया और माधवसिंह को तीन लाख की जागीर देकर चुप कर दिया। परन्तु बून्दी और कोटा के राजपूत राजा माधवसिंह के पक्ष में लड़े। उन्हें दबाने के विचार से जयपा शिन्दे ने उनपर हमला किया और उनसे बहुत-सा धन वसूल किया। यह देख होलकर के मुँह में भी पानी भर आया। अब माधवसिंह ने होलकर की मदद ली और उसने धन के लोभ से सहायता देना स्वीकार किया। इस प्रकार शिन्दे और होलकर के बीच आपसी झगड़े पैदा हो गये। दोनों ने पेशवा के पास शिकायत की। इस कारण बालाजी सन १७४३ के दिसम्बर में उत्तर-हिन्दुस्थान में गया और जयपुर-राज्य में उसने अपना पड़ाव किया। यहाँ उसने शिन्दे-होलकर का मेल कर दिया और ईश्वरसिंह को माधवसिंह से २४ लाख रुपये का प्रदेश दिलाया। इस कार्य के बदले पेशवा को १० लाख रुपये नज़राना देना निश्चित हुआ। परन्तु कुछ काल के बाद ईश्वरसिंह इक़रार के मुताबिक चलने में टालमटोल करने लगा। तब मल्हारराव होलकर ने उसपर चढ़ाई की और उसे इक़रार पूरा करने के लिए बाध्य किया। सन १७५१ में ईश्वरसिंह ने विष खाकर आत्म-हत्या करली, और जयपुर की गद्दी माधवसिंह को मिली। माधवसिंह ने उदयपुर-राज्य में रामपुरा नाम की मिली हुई जागीर मल्हारराव होलकर को देदी, जो अब तक होलकर के ही पास है।

इस प्रकार जयपुर के इस झगड़े में मराठों की विजय तो हुई, पर शिन्दे और होलकर के बीच सदा के लिए वैमनस्य हो गया और राजपूताना में मराठों की बड़ी बदनामी हुई। सवाई जयसिंह और बाजीराव के बीच बड़ा मेल था। हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिए मराठे और राजपूत मिल-जुलकर काम करते थे। मालवा को जीतने में राजपूतों की सहायता का बड़ा उपयोग हुआ; पर जयपुर के इस झगड़े में मराठों ने जैसा आचरण किया, उससे राजपूतों का यह खयाल हो गया कि मराठे धन के लिए चाहे जब वचन-भंग कर सकते हैं। इसके बाद मराठों के साथ उनकी कोई सहानुभूति न रही। यह परिणाम ध्यान रखने लायक है, क्योंकि सन् १७६१ में जब पानीपत के मैदान में मराठों और मुसलमानों के बीच घमासान युद्ध हुआ तब राजपूत राजा उदासीन ही रहे!

हस्तक्षेप का एक भारी दुष्परिणाम

पेशवा और रघुजी भोंसले के बीच मेल होने पर रघुजी ने पूर्व की ओर अपने राज्य का विस्तार बढ़ाना शुरू किया। उसने भास्कर पन्त कोल्हटकर को १७४४ के वर्षा-काल के बाद बीस-हजार फौज देकर पूर्व की ओर रवाना किया। भास्कर पन्त उड़ीसा में कर वसूल करके विहार में घुसा। मराठा फ़ौज का आक्रमण देख बंगाल का सूबेदार अलीवर्दीख़ाँ घबरा गया। रण में विजय की सम्भावना न देख, उसने छल-कपट करने का विचार किया। मराठा फ़ौज की छावनी कटवा में गंगा के किनारे थी। वहाँ अलीवर्दीख़ाँ ने सुलह की बात-चीत के बहाने भास्कर

भास्कर पन्त का धोखे से वध

पन्त तथा अन्य मराठे-सरदारों को बुलाकर क़त्ल कर डाला। मराठा फ़ौज किसी प्रकार नागपुर को वापस आई।

इस वध का रघुजी ने पूरा-पूरा बदला लेने का विचार किया। इसी समय अलीवर्दीख़ाँ पर चढ़ाई करने का अच्छा अवसर भी प्राप्त हुआ। अलीवर्दीख़ाँ के सेनापति मुस्तफ़ाख़ाँ ने अपने मालिक के विरुद्ध बग़ावत मचा रक्खी थी। रघुजी ने अपने साथ अपने लड़के जानोजा तथा उड़ीसा के पुराने दीवान मीरहबीब को लेकर उड़ीसा पर चढ़ाई करदी। कटक में डेरा डालकर उसने भास्कर पन्त तथा अपने सरदारों के वध के बदले अलीवर्दीख़ाँ से दण्ड-स्वरूप ३ करोड़ रुपये माँगे। इसके बाद रघुजी ने उड़ीसा, मिदनापुर, वर्दवान और हुगली के ज़िले जीत लिये। पहले तो अलीवर्दीख़ाँ ने माँगी हुई रक़म देने की रज़ामन्दी दिखलाई, क्योंकि इस समय वह मुस्तफ़ाखाँ की बग़ावत दबाने में लगा हुआ था, पर इस कार्य के समाप्त होने पर उसने अपना बर्ताव बदल दिया। यह देख रघुजी ने बिहार पर बरसात में ही हमला किया। इस कारण मराठों और अलीवर्दीख़ाँ की कटवा में लड़ाई हुई। परन्तु इसी समय नागपुर की तरफ़ गोंड राजाओं ने विद्रोह कर दिया। इस कारण रघुजी सन् १७४५ के वर्षा-काल में नागपुर वापस चला गया। इसके बाद ३ वर्ष तक वह उस विद्रोह को दबाने में लगा रहा; तब तक उसे बंगाल की ओर ध्यान देने का अवकाश ही न मिला। इस समय में उसने देवगढ़ और चान्दा जीत कर मराठा-राज्य में शामिल कर लिये।

वध का बदला लेने के प्रयत्न में गोंडों के बलवे का विघ्न

आगे सन् १७४८ के वर्षा-काल के बाद रघुजी ने मीरहबीब को मदद पहुँचाने के विचार से अपने लड़के जानोजी तथा सरदार तुलजाराम को फ़ौज देकर बंगाल की ओर रवाना किया। जानोजी ने उड़ीसा सरलता से जीत लिया और उसे मीरहबीब के अधीन कर दिया। इस समय अलवर्दीखाँ उड़ीसा छोड़ने को तैयार हुआ और बंगाल-बिहार की पहले की चौथ के बदले उसने भोंसले को ३२ लाख रुपये दिये। आगे जब वह दो साल तक चौथ देने में टालमटोल करने लगा, तब जानोजी ने बंगाल पर फिर हमला किया और अलीवर्दीखाँ को भागते-भागते मुश्किल पड़ गई। तब कहीं अलीवर्दीखाँ सन्धि करने को तैयार हुआ। जो सन्धि हुई, उसकी शर्त्तें ये थीं—(१) बंगाल, बिहार और उड़ीसा की चौथ नवाब भोंसले को नियम से दे। (२) मीरहबीब को नवाब उड़ीसा का सूबेदार नियत करे, परन्तु मीरहबीब भोंसले की आज्ञानुसार चले और वहाँ की वसूली उसीके पास जमा करे। (३) बंगाल की चौथ के बदले सूबेदार १२ लाख रुपये हरसाल भोंसले को दे। फिर मराठे बंगाल पर चढ़ाई न करें। (४) उड़ीसा की सुवर्णरेखा नदी तक का भाग मराठा-राज्य में शामिल कर लिया जाय, उसके उसपार मराठे पैर न रक्खें। (५) गत दो वर्षों के कर के बदले नवाब रघुजी को २५ लाख रुपये नक़द दे। इस सन्धि के बाद रघुजी ने बंगाल से अपनी सेना वापस बुलाली और सन्धि की शर्त्तों का उसने अक्षरशः पालन किया। मीरहबीब और जानोजी के बीच शीघ्र ही वैमनस्य हो गया। जानोजी ने मीरहबीब

रघुजी से अलीवर्दीखाँ की सन्धि और पूर्व की ओर मराठा-राज्य का विस्तार

को क़ैद कर डाला। इस समय से समस्त उड़ीसा मराठा-राज्य में शामिल हुआ। रघुजी भोंसले ने शिवराम भटसाठे को वहाँ का सूवेदार नियत किया, जिसने वहाँ का काम कई सालों तक बड़ी अच्छी तरह से किया।

उपर्युक्त सन्धि के चार वर्ष बाद, यानी सन् १७५५ में, रघुजी की मृत्यु हुई। उसके चार लड़के थे। मुधोजी और बिम्बाजी पहली स्त्री से और जानोजी और सामाजी दूसरी स्त्री से हुए थे। जानोजी इन सबमें बड़ा था। इसलिए सेनासाहेब-सूबा का पद रघुजी के बाद उसीको मिला। परन्तु इसके बाद दो वर्ष तक इसके और मुधोजी के बीच झगड़ा चलता रहा। अन्त में सन् १७५७ में किसी प्रकार उसका निर्णय हुआ। सेनासाहेब सूबा का पद जानोजी के पास ही बना रहा, पर मुधोजी को सेना-धुरन्धर का पद दिया गया और यह निश्चित हुआ कि वह जानोजी का कारबार देखे। सामाजी और बिम्बाजी को छोटी-छोटी जागीरें दी गईं और अनुक्रम से दारवा और छत्तीसगढ़ में उनका निवास निश्चित हुआ। परन्तु इससे इन भोंसले-बन्धुओं में मेल न हुआ, इससे राज्य का विस्तार न हो सका।

रघुजी की मृत्यु के बाद उसके लड़कों में झगड़े

सन् १७४९ के दिसम्बर महीने की १५ वीं तारीख को शाहू की मृत्यु हुई। शाहू ने कुल क़रीब ४२ साल राज्य किया। प्रारम्भ में तो उसने राज्य की ओर काफ़ी ध्यान दिया; पर जबसे बालाजी विश्वनाथ ने राज्य की व्यवस्था अच्छी तरह कर दी, तबसे राज्य-व्यवस्था का बहुतेरा कार्य अपने पेशवा पर छोड़

शाहू की मृत्यु और उसके बाद के लिए मराठा-राज्य का प्रबन्ध

दिया और स्वयं आराम या शिकार में अपना समय बिताया करता था। ज्यों-ज्यों वह बूढ़ा होता गया यों-त्यों वह शासन-कार्य की ओर बहुत ही कम ध्यान देने लगा और उदास रहने लगा था। मृत्यु के एक वर्ष पहले उसकी प्रिय पत्नी सगुनाबाई की मृत्यु हो जाने से वह बहुत अधिक उदास हो गया था और कभी-कभी उसका दिमाग़ भी ठिकाने न रहता था। उसकी उदासीनता का एक कारण यह भी था कि उसकी दो पत्नियाँ होने पर भी उसके कोई लड़का न था। मृत्यु के पहले उसने सब सरदारों को बुलाकर यह निश्चित किया कि मेरे बाद ताराबाई के लड़के का लड़का रामराजा गद्दी पर बिठलाया जाय; तथा बालाजी बाजीराव को उसने यह लिख दिया कि कोल्हापुर का राज्य इसमें शामिल न किया जाय और राज्य का कारबार पेशवा चलावे। शाहू के साथ उसकी स्त्री सकवारबाई सती हुई।

शाहू की मृत्यु के कुछ दिन बाद रामराजा सातारा में लाया गया और सन १७५० में उसका राज्याभिषेक हुआ। ताराबाई इस समय ७५ वर्ष की थी, पर अब भी उसे अधिकार की इच्छा वैसी ही बनी हुई थी। पेशवा को सारे अधिकार मिलना उसे ठीक न लगा और उसने पुराने मराठे सरदारों को अपनी ओर करके पेशवा को गिराने का विचार किया। पर पेशवा उसकी चाल समझ गया। उसने ताराबाई के पक्ष के चिमणाजी नारायण सचिव को क़ैद कर लिया और किसी प्रकार ताराबाई को समझाकर वह पूना ले आया। इतने में रामराजा भी वहाँ आ पहुँचा। दोनों की सम्मति से

रामराजा का राज्याभिषेक तथा आपसी झगड़े की शान्ति

बालाजी ने राज्य की व्यवस्था की। उसने बरार-गोण्डवन और बंगाल-प्रान्त की नई सनदें रघुजी को लिख दीं और आधे गुजरात की सनद यशवन्तराव दाभाड़े को दी। अष्ट-प्रधानों के काम पहले जैसे चलते न थे, पर उनकी जागीरें उनके पास रहने दी गईं। रघुजी भोंसले वगैरा सरदारों की प्रार्थना से जगजीवन परशुराम प्रतिनिधि और उसके मुतालिक यमाजी शिवदेव को पेशवा ने बन्धन-मुक्त किया।

प्रतिनिधि के मुतालिक यमाजी शिवदेव को बन्धन-मुक्त करने से एक बड़ा झगड़ा पैदा हो गया। इसने सांगोला के क़िले को हस्तगत करके पेशवा के विरुद्ध बग़ावत मचा दी। बालाजी ने चिमणाजी अप्पा के लड़के सदाशिवराव भाऊ को रामराजा के साथ उसकी यह बग़ावत दबाने को भेजा। सदाशिवराव भाऊ ने सांगोला को बहुत शीघ्र जीत लिया।

यमाजी शिवदेव के विद्रोह का दमन

रामराजा ने सांगोला में ही यह लिख दिया कि राज्य का सब कारबार पेशवा चलावे। हम उसमें बिलकुल न पड़ेंगे। हमें पेशवा सातारे के पास हमारे ख़र्चे के लिए कुछ मुल्क दे दे। रामराजा बिलकुल ही निकम्मा पुरुष था। इस कारण राज्य का समस्त कारबार पेशवा को करना पड़ा। इस प्रकार बालाजी विश्वनाथ की व्यवस्था के समय से पेशवा का महत्व और अधिकार बढ़ते-बढ़ते शाहू की मृत्यु के बाद रामराजा के गद्दी पर बैठने पर पेशवा मराठा-राज्य के मुख्य शासक हो गये। तबसे राजधानी सातारा न होकर पूना ही समझी

मराठा-राज्य के समस्त अधिकार पेशवा के हाथ में

जाने लगी। बालाजी बाजीराव इस बड़ी भारी ज़िम्मेदारी को निबाहने के सर्वथा योग्य था। इसलिए उसके समय में मराठा-राज्य का उत्कर्ष चरम सीमा को पहुँच गया। यह कैसे हुआ, यह आगामी अध्याय में देखा जायगा।

२२

उत्कर्ष की सीमा

साँगोला के झगड़े के बाद रामराजा और ताराबाई दोनों को समझा-बुझाकर बालाजी ने सातारा भेज दिया। पर ताराबाई की अधिकारेच्छा किसी प्रकार नष्ट न होती थी। शीघ्र ही उसने सातारा के क़िले पर अपना कब्ज़ा कर लिया। रामराजा कुछ लोग साथ लेकर उसे समझाने गया, पर ताराबाई ने उसे ही पेशवा के हाथ में कठपुतली होने की अपेक्षा स्वतंत्र-रीति से राज्य चलाने का उपदेश दिया। रामराजा ने उसके इस उपदेश पर कुछ भी ध्यान न दिया और शहर वापस चला आया। इस समय पेशवा निज़ाम के राज्य की ओर गया था। ताराबाई ने दमाजी गायकवाड़ को संदेश भेजा कि पेशवा इस समय राज्य में नहीं है; ब्राह्मणों के अत्याचार से राज्य की रक्षा करने का यह बहुत अच्छा मौक़ा है; इसलिए शीघ्र सातारा आओ। दमाजी ने उसका कहना मान लिया और वह फ़ौज लेकर चल पड़ा। ताराबाई को जब यह पक्की

ताराबाई की अधिकारेच्छा

ख़बर लगी कि दमाजी आ रहा है, तब उसने एक दिन रामराजा को भोजन के लिए बुलाकर क़ैद कर लिया और क़िले में रख दिया।

इस बात की ख़बर जब पेशवा को मिली तो वह ताराबाई का सच्चा स्वरूप स्पष्ट जान गया। पेशवा की सेना ने दमाजी गायकवाड़ को रोकने का प्रयत्न किया, पर उसे सफलता न मिली। दमाजी ताराबाई से मिला और सातारा के आस-पास के क़िले उसके अधीन कर दिये। यह बता ही चुके हैं कि बालाजी इस समय निज़ाम के राज्य की ओर गया था। ताराबाई और दमाजी की हलचलों की ख़बर पाते ही निज़ाम से केवल दो लाख रुपये लेकर शीघ्रता से वह सातारा को रवाना हो गया। पेशवा के आने के पहले ही नाना पुरन्दरे ने दमाजी पर हमला करके उसे सातारा से भगा दिया। उसके पक्ष की ओर कुछ फ़ौज आनेवाली थी, पर पेशवा के आने की ख़बर पाकर दमाजी डर गया और उसने सन्धि की बातचीत की। पर उसका व्यवहार ठीक न रहा, इसलिए बालाजी ने उसे क़ैद कर लिया। इसके बाद यशवन्तराव दाभाड़े को भी क़ैद किया, तब कहीं कई महीनों के बाद दमाजी ने पेशवा से मेल कर अपनी मुक्ति करवा ली। उनके बीच यह निश्चय हुआ कि गुजरात के बक़ाये के बदले दमाजी १५ लाख रुपये पेशवा को दे। गुजरात का आधा हिस्सा दमाजी पेशवा के अधीन करे, और पेशवा की चौकियाँ बिठलाने में वह मदद करे। सरकारी चढ़ाइयों के समय दस हज़ार फ़ौज लेकर वह सरकार की नौकरी करे, दाभाड़े की

दमाजी गायकवाड़ की पेशवा से सन्धि

मुतालिकी के बदले ५ लाख २५ हज़ार रुपये हर साल दे और सातारा के राजा को हरसाल कुछ खर्च भी दिया करे।

इस प्रकार पेशवा के विरुद्ध विद्रोह करने का दण्ड दमाजी को भोगना पड़ा। पर बालाजी ने ताराबाई को प्रत्यक्ष कष्ट न पहुँचाते हुए उसकी कार्रवाइयाँ सफल न होने देने का प्रयत्न किया और इसमें उसे सफलता मिली। दमाजी के पराभव के बाद ताराबाई ने निज़ाम के दीवान रामदास पन्त को पेशवा का पद देना स्वीकार किया और उससे बातचीत शुरू की; पर रामदास पन्त सन् १७५२ में मारा गया, इसलिए यह उपाय सिद्ध न हो सका। तब उसने जगजीवनराव प्रतिनिधि को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया, पर इसमें भी सफलता न मिलते देख प्रतिनिधि को उस पद से ही दूर करने का उसने विचार किया और यह पद पेशवा के आजीवन-शत्रु बाबूजी नाइक बारामतीकर को देने का निश्चय किया। नाइक फ़ौज लेकर सातारा आया और प्रतिनिधि का प्रदेश लेने लगा। दोनों के बीच जो लड़ाई हुई, उसमें नाइक ज़ख्मी हुआ और बारामती भाग गया। अन्त में ताराबाई की कार्रवाइयाँ सदैव के लिए बन्द करने के विचार से दादोपन्त बाघ को १० हज़ार फ़ौज देकर हमेशा के लिए चन्दन-वन्दन के पास रख दिया। आगे जब १४ सितम्बर सन् १७५२ को बालाजी और ताराबाई की जेजुरी में भेंट हुई, तो ताराबाई ने शपथ-पूर्वक यह कहा कि रामराजा असली नहीं है। तब रामराजा को दूर कर और सम्भाजी को गद्दी पर बिठलाकर सातारा व कोल्हापुर का राज्य एक करने का बालाजी

बालाजी ने ताराबाई की कुछ न चलने दी

ने प्रयत्न किया। पर वह इस कार्य में सफल न हुआ और रामराजा १३ वर्ष तक सातारा के क़िले में क़ैद रहा। आगे चलकर जब १७६१ की ९ नवम्बर को ताराबाई ८५ वर्ष की अवस्था में मरी, तब माधवराव पेशवा ने रामराजा को क़ैद से मुक्त कर गद्दी पर बिठलाया।

जिस समय बालाजी ताराबाई और निज़ाम के दीवान रामदास पन्त के षड्यन्त्र नष्ट करने में लगा हुआ था, उस समय

उत्तर के मुसलमानों की राजकीय स्थिति

मल्हारराव होलकर और जयप्पा शिन्दे दिल्ली के वज़ीर को सहायता देकर उत्तर-भारत में मराठों की धाक जमा रहे थे। सन् १७४८ में दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह की मृत्यु के बाद उसका लड़का अहमदशाह गद्दी पर बैठा। उसने अयोध्या के नवाब सफ़दरजंग को अपना वज़ीर नियत किया। अयोध्या-सूबे के पश्चिम की ओर गंगा के उत्तर में रुहेलों का मुल्क था और हाफ़िज़ रहमतख़ाँ वहाँ शासन करता था। इसी प्रकार गंगा-यमुना के दोआब में पठानों का शासन था और क़ायमख़ाँ बंगश उनका मुखिया था। सफ़दरजंग को वज़ीरी मिलते ही धीरे-धीरे उसने पठान और रुहेले दोनों का नाश करने का निश्चय किया। पहले उसने रुहेलखण्ड में बादशाही सल्तनत जमाने के लिए नये फ़ौजदार भेजे, पर रुहेलों के सेनापति पुन्देख़ाँ ने इन फ़ौजदारों की दाल न गलने दी। तब सफ़दर ने पठान और रुहेलों को आपस में लड़वाकर दोनों का नाश करने का विचार किया। सफ़दरजंग के फुसलाने से पठान सरदार क़ायमख़ाँ बंगश ने रुहेलखण्ड पर चढ़ाई की, पर वह युद्ध में मारा गया। इस प्रकार एक शत्रु नष्ट

हुआ देखकर सफ़दरजंग को बड़ा सन्तोष हुआ। उसने पठानों का मुल्क अपने राज्य में शामिल कर लिया। फिर अपने दीवान नवलराय को वहाँ का शासन सौंपकर वह दिल्ली चला गया।

परन्तु इस व्यवस्था से वहाँ शान्ति न हुई। क़ायमख़ाँ के लड़के अहमदख़ाँ बंगश को युद्ध के लिए भड़काते थे। अन्त में उसने दोआब की राजधानी फ़र्रुख़ाबाद को फिर से लेने का निश्चय किया और निश्चय के अनुसार यह शहर उसने ले भी लिया। फिर उसने नवलराय से युद्ध कर उसे मार डाला। तब रुहेले और अहमदख़ाँ पठान मिलकर अयोध्या पर चढ़ाई करने लगे। वज़ीर घबरा गया और उसने भरतपुर के सूरजमल जाट की सेना की सहायता लेकर अहमदख़ाँ पर चढ़ाई की। पर स्वयं सफ़दरजंग की हार हुई और उसे भाग जाना पड़ा। उधर दिल्ली में उसके विरोधी उसे वज़ीरी से भी दूर करने का प्रयत्न करने लगे। इस प्रकार सफ़दरजंग बड़ी कठिनाई में पड़ गया। तब उसे मराठों की सहायता लेने की बात सूझी।

सफ़दरजंग को मराठों की सहायता की आवश्यकता

मल्हारराव होलकर और जयप्पा शिन्दे यमुना पार कर दोआब में घुसे और क़ादरगंज के पास दस हज़ार फ़ौज सहित एक पठान सरदार को उन्होंने साफ़ कर दिया। फिर उन्होंने फ़र्रुख़ाबाद को लेना चाहा। २५ दिन तक युद्ध चलता रहा, पर रुहेलों की मदद होने के कारण कोई नतीजा न निकला। तब उन्होंने नौकाओं का पुल बनाकर सेना गंगा-पार की और रुहेले व

मराठों द्वारा सफ़दरजंग के शत्रुओं का नाश

पठानों की ३० हज़ार फ़ौज से युद्ध करके उसे साफ़ कर दिया। इस प्रकार मराठों ने सफ़दरजंग के शत्रुओं का नाश किया।

बहुत-से धन के सिवा दोआब में कुछ प्रदेश भी मराठों के हाथ लगा। परन्तु इससे भी भारी बात यह रही कि शिन्दे-होलकर ने बादशाह से पेशवा के नाम एक फ़रमान लिखवा लिया, जिससे मुलतान, पंजाब, राजपूताना और रुहेलखण्ड में चौथ वसूल करने का हक़ मराठों को मिला। इसके बदले शिन्दे होलकर ने यह वचन दिया कि इन भागों में हम शान्ति बनाये रक्खेंगे और इनकी रक्षा करेंगे।

पंजाब, राजपूताना, रुहेलखण्ड आदि में मराठों को चौथ-सरदेशमुखी का अधिकार

इसी समय दक्षिण की राजनीति में मराठों को हस्तक्षेप करना पड़ा। सन् १७४८ में दक्षिण के सूबेदार निजामुलमुल्क की मृत्यु होने पर सूबेदारी के लिए उसके लड़के नासिरजंग और नाती मुज़फ़्फ़रजंग के बीच झगड़े पैदा हुए। फ्रेंच और अंग्रेज़ लोग जबसे यहाँ आये थे तबसे अबतक व्यापार करते-करते यहाँ के आपसी झगड़ों में भाग लेने लगे थे और राज्य भी कमाने लगे थे। दक्षिण की सूबेदारी के लिए जो झगड़ा हुआ, उसमें फ्रेंचों ने मुज़फ़्फ़रजंग का और अंग्रेज़ों ने नासिरजंग का पक्ष लिया। पहले-पहल फ्रेंच लोगों की जीत हुई और बूसी के अधीन फ्रेंच सेना हैदराबाद में जम गई। मुज़फ़्फ़रजंग और नासिरजंग दोनों के मारे जाने पर निजामुलमुल्क का लड़का सलावतजंग हैदराबाद का सूबेदार हुआ।

निज़ाम के मुल्क में आपसी झगड़े

बालाजी बाजीराव का इस झगड़े की ओर पूरा ध्यान था। हैदराबाद में फ्रेंचों का महत्व स्थापित हुआ देखकर उसने उसे नष्ट करने की तरकीब सोची। निज़ामुलमुल्क के बड़े लड़के ग़ाज़ीउद्दीन को दिल्ली से दक्षिण में लाकर हैदराबाद की गद्दी पर बैठाने का उसने विचार किया। उसने शिन्दे-होलकर को चिट्ठियाँ लिखीं और सलाबतजंग को रास्ते में ही रोकना चाहा, पर इतने ही में दमाजी के विद्रोह की ख़बर उसको मिली। इसलिए केवल दो लाख रुपये लेकर उसे चला जाना पड़ा। उसके विरुद्ध जितने षड्यन्त्र रचे गये। उन सबको उसने नष्ट किया; फिर सन् १७५१ के वर्षाकाल के समाप्त होने पर बालाजी अपनी युक्ति सफल करने के विचार से औरंगाबाद की ओर रवाना हुआ।

निज़ाम हैदराबाद के झगड़ों में हस्तक्षेप करने का बालाजी का विचार

बूसी और रामदास पन्त ने पेशवा के मुल्क पर चढ़ाई कर दी। मराठे इसके लिए तैयार न थे, इसलिए शुरुआत में उनकी पराजय हुई। इस विजय से निज़ाम फूल उठा और वह पूना की ओर बढ़ने लगा। पर एक दिन घोड़ नदी के पास महादजी पन्त पुरन्दरे और दत्ताजी तथा महादजी शिन्दे ने मिलकर निज़ाम की सेना पर बड़े ज़ोरों का हमला किया और उसे हरा दिया। अब निज़ाम सन्धि के लिए तैयार हुआ। पर इसी समय एक मराठे सरदार ने त्रिम्बक नामक क़िला जीत लिया। उसे वापस लेने के विचार से निज़ाम उधर जाने लगा, पर रास्ते में मराठों ने उसे इतने कष्ट दिये कि उसे तुरन्त सन्धि

निज़ाम से बालाजी की तात्कालिक सन्धि

करने के लिए तैयार होना पड़ा । फलतः दोनों पक्षों के बीच तात्कालिक सन्धि हो गई । पर इस सन्धि से किसी का सन्तोष न हुआ । रामदास पन्त अपनी पुरानी चालें चलता ही रहा । निरुपाय होकर बालाजी बाजीराव ने यह सन्धि की थी । उसने शिन्दे और होलकर को ग़ाज़ीउद्दीन के बारे में फिर से चिट्ठी लिखी।

निज़ाम और पेशवा के बीच भालकी की संधि

सन् १७५२ में रामदास पन्त मारा गया । शिन्दे और होलकर ग़ाज़ीउद्दीन को साथ लेकर दक्षिण की ओर चले । बुरहानपुर के पास बालाजी अपनी सेना लेकर उनसे आ मिला । अब ये मराठे सरदार डेढ़ लाख फ़ौज लेकर ग़ाज़ीउद्दीन के साथ औरंगाबाद की ओर चले, पर रास्ते में एक दिन ग़ाज़ीउद्दीन को दावत के समय किसी ने विष खिला दिया और वह मर गया। इस कारण सलावतजंग हैदराबाद की गद्दी पर बना रहा, पर ग़ाज़ीउद्दीन ने मराठों से जो शर्तें की थीं उन्हीं शर्तों पर उस साल के दिसम्बर के महीने में भालकी नामक स्थान में सन्धि हुई । उसके अनुसार ताप्ती और गोदावरी के बीच का मुल्क पेशवा को दिया गया और पैनगंगा के दक्षिण की ओर रघुजी भोंसले ने जो अपनी चौकियाँ बिठाली थीं वे उठा ली गईं ।

अहमदशाह अब्दाली की चढ़ाई और दिल्ली दरबार की बातों में मराठों का हस्तक्षेप

इसके बाद मराठों को फिर से उत्तर की ओर ध्यान देना पड़ा । सन् १७५१ के प्रारम्भ में अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह अहमदशाह अब्दाली ने हिन्दुस्थान पर चढ़ाई की, तब दिल्ली के बादशाह अहमदशाह ने लाहौर और मुलतान के सूबे उसे देकर किसी प्रकार अपनी रक्षा की ।

बादशाह का वज़ीर सफ़दरजंग इस समय रुहेलों से युद्ध करने में लगा हुआ था। वहाँ से दिल्ली वापस आने पर उसे लाहौर और मुलतान के सूबे जाने की बात मालूम हुई और उसे यह बात बड़ी बुरी लगी। इस कारण बादशाह से उसकी अनबन हो गई। जो ग़ाज़ीउद्दीन दक्षिण का सूबेदार होने जा रहा था, उसका लड़का मीर शहाबुद्दीन दिल्ली ही में था। उसे ग़ाज़ीउद्दीन का ख़िताब देकर बादशाह ने अपना बख़्शी नियत किया और सफ़दरजंग को वज़ीरी से हटाकर ख़ानख़ाना नाम के एक दूसरे सरदार को यह पद दिया। इससे सफ़दरजंग चिढ़ गया और उसने भरतपुर के सूरजमल जाट की सहायता से दिल्ली पर घेरा डाला। छः महीने तक प्रयत्न करने के बाद वह ऊब गया और लखनऊ चला गया। ग़ाज़ीउद्दीन ने मल्हारराव होलकर और जयप्पा शिन्दे को अपनी सहायता के लिए बुलाया। मराठों ने सूरजमल जाट को दबाने के विचार से उसके क़िले कुम्हेर को घेरा। इसी घेरे के समय मल्हारराव का इकलौता लड़का और प्रसिद्ध अहल्याबाई का पति खण्डेराव मारा गया।

शिन्दे और होलकर में आपसी झगड़े

मल्हारराव को लड़के की मृत्यु से अत्यन्त दुःख हुआ। उसने प्रतिज्ञा की कि सूरजमल जाट का सिर काटूँगा और कुम्हेर की मिट्टी यमुना में फेंकूँगा, तभी मेरे जीवन की सफलता होगी। उसकी यह प्रतिज्ञा सुनकर जाट घबराया और रक्षा का एक उपाय सोचा। उसने शिन्दे की शरण जाने का निश्चय किया। उसने अपने दीवान के लड़के तेजराम के हाथ शिन्दे को यह संदेश भेजा कि इस समय आप बड़े भाई हैं और

में छोटा भाई हूँ; जैसे भी हो आप मेरी रक्षा कीजिए। उसके साथ सूरजमल ने अपनी पगड़ी भेज दी थी। तेजराम ने अपने मालिक का संदेश जयप्पा को वतलाया और साथ में लाई हुई पगड़ी उसके सिर पर रखकर उसकी पगड़ी ले ली। अब शिन्दे बड़े सोच में पड़ा। अन्त में उसने शरणागत की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझकर जाट को अभय-पत्र लिखा।

शिन्दे अब जान बचाकर काम करने लगा। इस कारण घेरे का काम ठीक न होता था। इसलिये अन्त में ३० लाख रुपये लेकर मल्हारराव ने सूरजमल से संधि करली। इसके बाद होलकर और राघोबा उत्तर में दिल्ली की ओर गये और शिन्दे मारवाड़ को गया। इस बीच में यह बात खुली कि सूरजमल जाट को अहमदशाह की भीतरी मदद थी। इसलिए ग़ाज़ीउद्दीन ने उसे पदच्युत कर होलकर की मदद से क़ैद में डाला और मुग़ल-राजवंश के एक दूसरे पुरुष को आलमगीर नाम से राजा बनाया (जुलाई सन् १७५४)। इस नये बादशाह ने तुरंत ग़ाज़ीउद्दीन को वज़ीर बनाया। यह स्पष्ट है कि राज्यक्रांति मराठों की सहायता से हुई। इसके बाद राघोबा आठ-नौ महीने रुहेलखण्ड और दोआब के मराठा-प्रदेश में अधिकार जमाने में बिताता रहा। रुहेलखण्ड में वह कुमायूँ के पर्वतों तक गया और मथुरा-वृन्दाबन आदि हिन्दुओं के तीर्थक्षेत्र मुसलमानों के हाथ से छुड़ाये। फिर १७५५ के वर्षा-काल के आरम्भ में वह पूना आया।

उत्तर में राघोबा की कार्रवाई

हम यह बता चुके हैं कि सूरजमल जाट से सन्धि होने पर शिन्दे मारवाड़ गया था। मारवाड़ उर्फ़ जोधपुर के राजा अभय-

जोधपुर के झगड़े में शिन्दे का हस्तक्षेप

सिंह की मृत्यु सन् १७५४ में हुई। उसके पश्चात् गद्दी पर उसके लड़के रामसिंह का हक़ था पर उसमें योग्यता बहुत कम होने के कारण उसके चचेरे भाई विजयसिंह ने गद्दी छीन ली। अन्त में रामसिंह ने शिन्दे की मदद से गद्दी प्राप्त करने का विचार किया। इसीकी मदद के लिए शिन्दे मारवाड़ में आया। अजमेर में रामसिंह से मदद का इक़रार होने पर उसने अपनी सेना के दो दल किये। एक दल का मुखिया वह स्वयं हुआ और दूसरे दल का सेनापति अपने छोटे भाई दत्ताजी को नियत किया। इसके बाद वह अजमेर से रवाना हुआ। उधर विजयसिंह ने बड़ी भारी फ़ौज इकट्ठी की और मेड़ते गाँव में छावनी डाली। इसीके पास दोनों की लड़ाई हुई। इसमें मराठों की विजय रही। विजयसिंह किसी प्रकार बचकर नागोर भाग गया। जयप्पा ने इसे घेरकर विजयसिंह को रास्ते पर लाने की बात सोची। पर यह घेरा सात-आठ महीने चलने पर भी शहर क़ब्ज़े में न आया। विजयसिंह ने कई स्थानों से मदद पाने का प्रयत्न किया, पर वह इसमें सफल न हुआ। अन्त में उसने तीन आदमी भेजकर जयप्पा का ख़ून करवाया। इसके बाद उसके भाई दत्ताजी ने उससे घमासान युद्ध किया। विजयसिंह गाँव में भाग गया। अन्त में अठारह महीने के बाद उसने मराठों से सन्धि की। उससे नागोर, मेड़ते वग़ैरा भाग रामसिंह को मिले और मराठों को लड़ाई का ख़र्च, अजमेर शहर तथा उसके आसपास का कुछ मुल्क मिला।

मराठों ने कर्नाटक में जो राज्य-विस्तार किया, अब हम संक्षेप में उसका वर्णन करेंगे। कर्नाटक में रघुजी भोंसले की जो चढ़ाई सन् १७४१ में हुई, उसका वर्णन ऊपर आ चुका है। इसके बाद सदाशिवराव भाऊ ने कर्नाटक पर चढ़ाई की और बहादुर-भेण्डा नाम का क़िला लिया। फिर सावनूर के नवाब से उसने २५ लाख का मुल्क सन् १७४५ में प्राप्त किया। सन् १७५३ से हर साल यहाँ मराठों की चढ़ाइयाँ होने लगीं। इसके पहले करनूल और कड़प्पा के नवाब तथा मैसूर का राजा सिरज़ोर हो गये थे। सन् १७५३ से पेशवा ने श्रीरंगपट्टम, होली हुन्नूर और बेदनूर नामक स्थानों पर तीन साल तक लगातार चढ़ाइयाँ की। सन् १७५६ में बालाजी ने सावनूर पर चढ़ाई की। उससे कुछ मुल्क और ११ लाख रुपये देने का वचन मिला। साथ ही सोंधे और बेदनूर नामक राज्यों से कर लेने का अपना हक़ उसने मराठों को दे दिया। इस प्रकार दस वर्ष पहले मराठों की स्वराज्य-सीमा जो कृष्णा नदी तक थी वह अब तुंगभद्रा तक हो गई।

दक्षिण में मराठों के राज्य की सीमा तुंगभद्रा तक

सन् १७५७ के जनवरी महीने में बालाजी और सदाशिवराव भाऊ ६० हज़ार फ़ौज लेकर कर्नाटक में आये। रास्ते में मुरारराव घोरपड़े ६ हज़ार फ़ौज लेकर उनसे मिला। मराठों ने मैसूर की राजधानी श्रीरंगपट्टम को घेरा। अन्त में ३२ लाख रुपये की शर्त पर मराठों ने घेरा उठा लिया। मैसूर के दीवान ने ५ लाख रुपये तो नक़द दिये, पर शेष रक़म के बदले उसने १४

कर्नाटक में मराठों का अधिकार

महाल मराठों के ज़िम्मे किये। इन महालों के बन्दोबस्त के लिए पेशवा ने अपने कमावीसदार नियत किये। फिर उसने स्वराज्य के पाँच परगने जीतने का काम लिया। पहले उसने शिरे को हस्तगत किया, पर वर्षा-काल प्रारम्भ होने के कारण शेष भाग को जीतने का काम बलवन्तराव मेंढ़ले को सौंपकर बालाजी पूना चला आया। कर्नाटक में मराठों का जो स्वराज्य का मुल्क था, उसमें से बहुतेरा कड़पा के नवाब ने अपने क़ब्ज़े में कर लिया था। उसने कईयों को मराठों से लड़वाना चाहा, पर बलवन्तराव ने उसको दूसरों से मिलने के पहले ही युद्ध में हराकर मार डाला; उसमें आधा राज्य प्राप्त हुआ। फिर बलवन्तराव ने अर्काट के नवाब से साढ़े चार लाख रुपये और वसूल किये।

इसी समय बेदनूर के राज्य में बड़ी गड़बड़ मची थी। स्वराज्य का मुल्क प्राप्त कर लेने पर बेदनूर को जीतने की बलवन्तराव को पेशवा की आज्ञा थी। मैसूर के दीवान नन्दराय ने हैदरअली नामक एक सरदार के कहने से मराठों

मैसूर से घाटे की सन्धि

को दिया हुआ मुल्क वापस ले लिया।। इसलिए मैसूर पर चढ़ाई करना आवश्यक हुआ। पर यह चढ़ाई सन् १७५८ तक न हो सकी। इस साल गोपालराव पटवर्धन और आनन्दराव रास्ते फ़ौज लेकर कर्नाटक गये और उन्होंने चौदह परगने वापस लेकर वहाँ अपनी चौकियाँ बिठला दीं। फिर उन्होंने बंगलोर शहर को घेरा। उसमें से एक दल ने पश्चिम की ओर चेनापट्टम को जीत लिया। इतने में मैसूरवालों ने हैदर को फ़ौज देकर मराठों से लड़ने के लिए भेजा। हैदरअली ने युक्ति से

चेनापट्टम वापस ले लिया। फिर दोनों पक्षों के बीच तीन महीने तक लड़ाई होती रही। अन्त में दोनों पक्ष लड़ाई से ऊब उठे और सन्धि करली। उसमें यह निश्चित हुआ कि चौदह महाल के बदले मैसूर मराठों को ३२ लाख रुपये दे। इसमें से १६ लाख रुपये हैदरअली ने नक़द दिये, पर शेष १६ लाख रुपयों के लिए उसने मराठा फ़ौज के साहूकारों की जमानत दी। इस प्रकार समय पर भरपूर फ़ौज कर्नाटक में न भेजने के कारण मराठों को घाटे की सन्धि करनी पड़ी और वहाँ मराठों का अधिकार पूरा कभी न जम सका।

हैदराबाद में फ्रेंचों का महत्व कम करने का मराठों का प्रयत्न

यह बतला चुके हैं कि हैदराबाद की गद्दी पर सलाबतजंग के फ्रेंच लोगों की मदद से बैठने पर फ्रेंच लोगों का महत्व वहाँ बहुत बढ़ गया था। यह बात वहां के दीवान शाहनवाज़ख़ाँ को ठीक न लगती थी। सावनूर की चढ़ाई के समय मराठों की मदद के कारण वह फ्रेंच सेनापति बूसी को नौकरी से दूर कर सका, पर शीघ्र ही उसने अपना पहला महत्व फिर से प्राप्त कर लिया। अन्त में शाहनवाज़ख़ाँ ने बालाजी बाजीराव से मिलकर बूसी को दूर करने का षड्यंत्र रचा। सलाबतजंग किसी काम का आदमी न था। इसलिए उसके भाइयों में से बसालतजंग अथवा निजामअली को गद्दी पर बिठला कर फ्रेंचों को निकाल बाहर करने का विचार उसने किया। शाहनवाज़ख़ाँ ने दौलताबाद का क़िला अपने हाथ में ले लिया, पर उपर्युक्त षड्यंत्र सफल न हुआ। सलाबतजंग ने क़िला वापस लेने के लिए अपने भाई निजामअली को बुरहानपुर से

बुलवाया। शिन्दखेड़ के पास निज़ाम और मराठों का घमासान युद्ध हुआ। उसमें मराठों ने विजय पाई, इसलिए सलावतजंग को मराठों से संधि करनी पड़ी। उसमें उन्होंने २५ लाख का मुल्क पाया। इस प्रकार उनका तो फ़ायदा हुआ, पर फ्रेंचों का महत्व तत्काल न घट सका। आगे सन् १७५८ में लाली ने जब ब्रूसी को अंग्रेज़ों से लड़ने के लिए हैदराबाद से वापस बुला लिया, और वान्देवाश की लड़ाई में फ्रेंचों की हार हुई, तब कहीं हैदराबाद में उनका महत्व नष्ट हुआ।

अब्दाली की हिन्दुस्थान पर दूसरी चढ़ाई

ग़ाज़ीउद्दीन के वज़ीर होने पर दिल्ली में उसका महत्व बहुत बढ़ गया और दूसरा आलमगीर नाममात्र को बादशाह रह गया। मराठों की मदद से ग़ाज़ीउद्दीन ने अपना अधिकार स्थापित किया, यह कई मुसलमानों को ठीक न लगा। इन्हींमें से नजीबखाँ रुहेला एक मुख्य था। वह अपने मालिक के विरुद्ध ही षड्यंत्र रचने लगा। उसने अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह अहमदशाह अब्दाली को ग़ाज़ीउद्दीन को दबाने के लिए बुलाया। पहली चढ़ाइयों में अब्दाली ने लाहौर और मुलतान के जो सूबे लिये थे उन्हें वजीर ग़ाज़ीउद्दीन ने वापस ले लिया था। इसलिए अब्दाली आनेवाला ही था। वह सन् १७५६ के वर्षाकाल के समाप्त होते ही हिन्दुस्थान में आया। उसने लाहौर और मुलतान फिर से ले लिये, सतलज नदी पार कर दिल्ली पर चढ़ाई की और बादशाह और ग़ाज़ीउद्दीन को क़ैद में डालकर शहर लूटा।

अहमदशाह अब्दाली के हिन्दुस्थान में आने की खबर पाकर

बालाजी बाजीराव ने राघोबा को गुजरात से उत्तर में जाकर अब्दाली को हराने के लिए लिखा। राघोबा उत्तर की ओर रवाना हुआ।

अब्दाली की विजय

रास्ते में मल्हारराव होलकर उससे मिला। उसने दत्ताजी शिन्दे को भी दक्षिण से बुलवाया। जिस समय राघोबा उत्तर को आ रहा था, उस समय अब्दाली दिल्ली से मथुरा को आया और उसने शहर को लूटा। फिर उसने आगरे को घेर कर क़िला ले लिया। पर इसके बाद अपने देश को वापस चला गया। जाने से पहले उसने आलमगीर को गद्दी पर मुस्तक़िल करके ग़ाज़ीउद्दीन को वज़ीर और नजीबख़ाँ को बख़्शी बनाया। सरहिन्द में उसने समदख़ाँ के अधीन १० हज़ार फ़ौज रक्खी। लाहौर और मुलतान का प्रबन्ध अपने लड़के तैमूरशाह को सौंपा और उसकी मदद के लिए जहानख़ाँ को नियत किया। फिर १७५७ के अप्रैल में अब्दाली अफ़ग़ानिस्तान को वापस गया।

इधर वज़ीर ग़ाज़ीउद्दीन की वज़ीरख़ाँ से बिलकुल न पटती थी। इस कारण ग़ाज़ीउद्दीन ने राघोबा तथा मल्हारराव होलकर को शीघ्र दिल्ली आने को लिखा। इस प्रकार राघोबा सन् १७५७ के जून में दिल्ली में दाखिल हुआ। अब्दाली इस

राघोबा ने पंजाब में मराठों की धाक जमाई

समय अफ़ग़ानिस्तान को चला ही गया था, इसलिए राघोबा के सामने अब दिल्ली-दरबार में मराठों का ज़ोर जमाने का काम ही बचा था। दिल्ली शहर नजीबख़ाँ के क़ब्ज़े में था और बादशाह आलमगीर उसके कहे अनुसार चलता था। राघोबा ने दिल्ली लेने का काम विट्ठल शिवदेव विंचूरकर को सौंपा। विंचूर-

कर ने १५ दिन में दिल्ली ले ली। इस समय नजीबखाँ मराठों के हाथ पड़ा। राघोबा उसकी अच्छी खबर लेना चाहता था; पर मल्हारराव होलकर उसे अपना धर्म पुत्र मानता था, इसलिए वह बच गया। इस प्रकार ग़ाज़ीउद्दीन की सत्ता दिल्ली में स्थापित हुई और बादशाह उसके हाथ आया। राघोबा स्वयं बरसात लगते समय दिल्ली में पहुँचा। यहाँ उसने पूरा वर्षाकाल ग़ाज़ीउद्दीन की मदद से बन्दोबस्त करने में बिताया। फिर राघोबा लाहौर की ओर गया। रास्ते में सरहिन्द के अब्दाली के अधिकारी समदख़ाँ को हराकर क़ैद किया। इसलिए लाहौर को लेने में मराठों को श्रम न करना पड़ा, क्योंकि तैमूरशाह और जहानख़ाँ पहले ही अफ़ग़ानिस्तान भाग गये। इसी बीच अब्दाली और ईरान के शाह के बीच युद्ध हुआ और उसमें अब्दाली का पूर्ण पराभव हुआ। तब ईरान के बादशाह ने राघोबा से सन्धि की बातचीत शुरू की। उसने लिखा कि ईरानी सत्ता और मराठी सत्ता के बीच अटक नदी की हद रहे। इस समय मराठों की धाक पंजाब में चारों ओर जम गई थी और वहाँ के राजे-रजवाड़ों ने राघोबा से सन्धि की बात शुरू की। इससे राघोबा की महत्वाकांक्षा बहुत अधिक बढ़ गई और उसने पहले की मुग़लशाही के काबुल, कन्दहार आदि सूबे हस्तगत करने का विचार किया। पर पेशवा ने उसे दक्षिण में बुला लिया, इसलिए उसके विचार जहाँ के तहाँ रह गये। वापस जाते समय पंजाब प्रान्त के पुराने जानकार अदीनाबेग को कारबारी नियत किया और उसकी मदद के लिए कुछ मराठा फ़ौज रख दी।

लाहौर की यह चढ़ाई मराठा-राज्य-विस्तार का चरम-उत्कर्ष कहा जा सकता है। इस समय मराठों का "भगवा झण्डा" हिन्दुस्तान की वायव्य सीमा पर फहराने लगा। इस चढ़ाई से मराठा फ़ौज की खूब बन आई। उन लोगों ने खूब धन बटोरा, पर राघोबा के भोलेपन के कारण पेशवा को एक कौड़ी का भी फ़ायदा न हुआ। उलटा उसे एक करोड़ रुपया क़र्ज़ करना पड़ा। जाते समय जनकोजी शिन्दे को राघोबा ने चुपचाप यह बतलाया था कि नजीबखाँ को जीता न छोड़ो। जनकोजी ने उसका कहना स्वीकार किया। यही बात राघोबा ने दत्ताजी शिन्दे से भी कही।

मराठा सत्ता का चरम-उत्कर्ष

मराठा राज्य का चरम-उत्कर्ष होने के लिए दक्षिण में एक और अनुकूल घटना हुई। हैदराबाद में निजामअली दीवान बन बैठा था और राज्य का सब कारबार वही देखता था। उसने शिन्दखेड़ की लड़ाई के बाद मराठों को दस लाख का मुल्क तथा नगर और परिन्दा के क़िले देने को कहा था, पर अब वह उन्हें देने से इन्कार करने लगा। इसलिए मराठों को फिर से निज़ाम से लड़ाई करनी पड़ी। बालाजी ने इस समय निज़ाम की खूब खबर लेने का निश्चय किया। सदाशिवराव भाऊ सेना जमा करने लगा। इतने में विशाजीकृष्ण विनीवाले ने अहमदनगर का क़िला वहाँ के क़िलेदार कविजंग से ले लिया। इससे मराठों की हिम्मत बढ़ गई। फिर बालाजी नगर की ओर गया और सदाशिवराव भाऊ राक्षसभवन की ओर रवाना

निज़ाम से लड़ाई की तैयारी

हुआ। अब निजामअली इक़रार के मुताबिक जागीर और क़िले देने को तैयार हुआ, पर पेशवा अब उसकी एक भी सुनने को तैयार न था। इसलिए निज़ाम को लड़ाई लड़नी ही पड़ी। इस समय बूसी हैदराबाद से पांडुचेरी चला गया था और इब्राहीमखाँ गारदी लड़-झगड़कर उसके पास से चला आया था। इसे सदाशिवराव ने अपनी नौकरी में रख लिया।

निज़ाम की बहुत-सी सेना धारूर में जमा थी और स्वयं सलावतजंग और निज़ामअली तोपखाना और सात-आठ हज़ार सेना सहित उदगीर में पहुँचे। यहाँ उनकी तथा मराठा सेना की छोटी-मोटी लड़ाइयाँ होती रहीं। फिर ये दोनों भाई धारूर की अपनी सेना से मिलने के लिए आगे बढ़े। इब्राहीमखाँ गारदी के तोपखाने की मार से इनकी सेना त्रस्त हो गई थी। अन्त में बड़ी हिम्मत कर उन्होंने इब्राहीमखाँ की पलटन पर बड़े ज़ोरों का हमला किया, इसलिए इब्राहीमखाँ के आदमियों में कुछ हलचल मच गई। इतने में मराठे घुड़सवारों ने निज़ाम की दाहिनी बाज़ू पर हमला किया और तीन हज़ार लोगों को छाँट डाला। इस लड़ाई में निज़ाम के ११ हाथी, १५ तोपें आदि मराठों के हाथ लगे। अब निजामअली बिलकुल घबरा गया। उसने सदाशिवराव के पास सिक्के-मोहर भेजकर यह कहलाया कि जैसी तुम्हारी इच्छा हो उस शर्त पर सन्धि करो। दोनों पक्षों में जो सन्धि हुई उससे असीरगढ़, बुरहानपुर दौलताबाद, सालेर, मुलेर और नगर नाम के छः क़िले मराठों को मिले तथा अमदेड़, कुलम्बरी, नादेड़ और बीजापुर के प्रदेश मराठों के हाथ आये। इस प्रकार

उदगीर की लड़ाई

इस विजय से निज़ाम का बहुतेरा मुल्क मराठा राज्य में शामिल हुआ और पेशवा का तेज चारों ओर फैल गया।

इस समय श्रीरंगपट्टम में भी मराठों का अधिकार जमने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ था। मैसूर का राजा चिकदेव कृष्ण-राज ओदेयार बिलकुल अयोग्य था और राज्य का कारबार उसका दीवान नन्दराय ही देखा करता था। नन्दराय को दूर कर राज्य को हस्तगत करने का विचार स्वयं सेनापति हैदरअली बहुत काल से कर रहा था। इस समय नन्दराय मैसूर में था और हैदरअली ने उस शहर को घेर लिया था, इसलिए नन्दराय ने मराठों से सहायता माँगी। इसपर सदाशिवराव भाऊ उसकी मदद को जाने की तैयारी कर ही रहा था कि यह खबर मिली कि अब्दाली ने शिन्दे को हरा दिया है और इसलिए दक्षिण-विजय का काम पूर्ण करना अभी स्थगित करना होगा। इसपर सदाशिवराव भाऊ उत्तर हिंदुस्थान में जाने के लिए पूना को वापस चला गया। इसके बाद पानीपत की भयंकर लड़ाई हुई और उससे मराठा-राज्य का विस्तार बहुत कुछ रुक गया। यह लड़ाई क्यों हुई, कैसे हुई और उसके क्या परिणाम हुए, यह अगले अध्याय में देखेंगे।

मैसूर-विजय का अवसर खोकर मराठों ने अब्दाली से भिड़ने की तैयारी की

२३

पानीपत की भयंकर लड़ाई

जनकोजी और दत्ताजी शिन्दे के आगे बढ़ने पर मल्हारराव होलकर उनसे मिला। उसने उन्हें राघोबा के ख़िलाफ़ भड़काया।

होलकर का घरभेदी उपदेश

उसने कहा कि अटक से रामेश्वर तक एकछत्र-राज्य हो गया है। अब सिर्फ़ नजीबख़ाँ ही कंटक बच रहा है। उसका पराभव करने पर पेशवे अटक से भी वसूली करेंगे। फिर हमें-तुम्हें कौन पूछेगा ? इसलिए जो कुछ करना हो वह इस कण्टक को बचाकर करो। जनकोजी शिन्दे को मल्हारराव की बात न जँची, पर दत्ताजी के मन में यह बात जम गई। इसलिए उसने नजीबख़ाँ की रक्षा करने का निश्चय किया।

दत्ताजी जब उत्तर-हिन्दुस्थान को रवाना हुआ, तब बालाजी बाजीराव ने उसे तीन काम बतलाये थे—(१) लाहोर-सूबे का

दत्ताजी शिन्दे को नजीबख़ाँ का धोखा

बन्दोबस्त करना, (२) नजीबख़ाँ रुहेले को दबाना, और (३) शुजाउद्दौला की मदद से बंगाल पर चढ़ाई करना। इसमें से पहला काम दत्ताजी ने सन् १६५९ में शुरू किया। वह सतलज नदी

तक गया और वहाँ से साबाजी शिन्दे और त्रिम्बक बापूजी को पंजाब के बन्दोबस्त के लिए लाहौर भेजकर वह स्वयं बंगाल पर चढ़ाई करने के लिए वापस आया। शुजाउद्दौला ने उससे कहा कि यदि तुम मुझे वज़ीरी दिला दोगे, तो मैं तुम्हें ५० लाख रुपये दूँगा। इसी प्रकार नजीबख़ाँ ने कहा कि यदि मुझे तुम बख़्शीगिरी दिला दोगे, तो मैं तुम्हें ३० लाख रुपये दूँगा। दत्ताजी ने उन दोनों का कहना बालाजी को लिखा। बालाजी को दोनों की बात पसन्द न थी। नजीबख़ाँ के सम्बन्ध में तो शिन्दे को अच्छी डाट मिली। परन्तु उसके मन में तो मल्हारराव का राष्ट्र-घातक उपदेश अच्छी तरह जम गया था। इसलिए उसने नजीबख़ाँ से मेल कर लिया और उसीकी मदद से शुजाउद्दौला पर चढ़ाई करके फिर बंगाल पर चढ़ाई करने का विचार किया। नजीबख़ाँ ने अपनी मीठी बातों से दत्ताजी को ख़ुश किया और अयोध्या पर चढ़ाई करने के लिए एक महीने के भीतर शुक्रताल के पास गंगा पर पुल बाँध देने का वचन देकर वापस गया। दत्ताजी नजीबख़ाँ से बहुत ख़ुश हुआ, पर उसे उसके हृदय का क्या पता था? नजीबख़ाँ ने भीतर ही भीतर शुजाउद्दौला से बात-चीत की और मराठों को मार भगाने के लिए उसे शीघ्र आने को लिखा। फिर उसने ख़ुद दिल्ली के बादशाह से हिन्दुस्थान पर चढ़ाई करने के लिए अब्दाली को लिखवाया। एक महीना पूरा होने पर भी जब नजीबख़ाँ के पास से कोई ख़बर न मिली, तब दत्ताजी ने उसे वह काम जल्द समाप्त करने के लिए लिखा; परन्तु इस समय तक शुजाउद्दौला से उसकी बातचीत पक्की हो गई थी, इसलिए उसने सन्देश भेजा कि बरसात समाप्त होने पर यह काम देखेंगे।

अब कहीं दत्ताजी की आँखें खुलीं और उसे नजीबखाँ की नीचता का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। उसने अब उसीकी खबर लेने का निश्चय किया। कुंजपुरा के पास यमुना को लाँघकर वह दोआब में आया। इटावा की ओर से नजीबखाँ को शह देने के लिए उसने गोविन्द पन्त बुन्देले को लिखा। फिर वह स्वयं नजीबखाँ के दोआब के मुल्क को जीत कर, शुक्रताल के पास गंगा नदी को पार करके, रुहेलखण्ड आया। इतने में गोविन्द पन्त गंगा पार कर जलालाबाद पहुँचा। अब वे दोनों मिलकर नजीबखाँ को दबा डालने का विचार कर ही रहे थे, इतने में उन्हें खबर मिली कि शुजाउद्दौला की फ़ौज नजीबखाँ की सहायता के लिए आ रही है। दत्ताजी ने गोविन्द पन्त को लिखा कि शुजाउद्दौला की फ़ौज को नजीबखाँ से न मिलने दो। पर गोविन्द पन्त से यह काम न हो सका। शुजाउद्दौला और उमरावगीर गोसाईं दस हज़ार फ़ौज लेकर जलालाबाद पहुँचे। संख्या में बहुत कम होने के कारण मराठा फ़ौज गंगा के इस पार चली आई (नवम्बर सन १७५९)। इतने में खबर मिली कि अब्दाली लाहौर आ पहुँचा है।

नजीबखाँ को दबाने का व्यर्थ प्रयत्न

अब दत्ताजी नजीबखाँ को दबाने का काम वैसा ही छोड़ कर अब्दाली का सामना करने की तैयारी में लगा। कुंजपुरा के पास यमुना को पारकर उसने यह काम उठाया। उधर साबाजी शिन्दे और त्रिम्बक बापूजी की सेना अब्दाली के आने के कारण पीछे हटते-हटते दत्ताजी की सेना से आ मिली। इसी समय कोई-न-कोई बहाना करके गोविन्द पन्त दत्ताजी से

अब्दाली से युद्ध और दत्ताजी की मृत्यु

छुट्टी माँगने लगा। गुस्से के मारे दत्ताजी ने गोविन्द पन्त को वापस जाने की इजाज़त दे दी और स्वयं अकेला अब्दाली को पीछे हटाने के लिए आगे बढ़ा। इसी समय अब्दाली-रूपी संकट हिन्दुस्थान पर लाने के कारण ग़ाज़ीउद्दीन वज़ीर ने आलमगीर बादशाह को मार डाला और वह गोविन्द पन्त की सेना के साथ पीछे बना रहा। दत्ताजी ने मल्हारराव होलकर को जल्द आने के लिए लिखा था, पर वह नहीं आया। इस कारण इस तमाम झगड़े का बोझ अकेले दत्ताजी को उठाना पड़ा। पहले तो अब्दाली से दो-चार छोटी-मोटी लड़ाइयाँ हुईं; फिर उनके बीच एक अच्छा युद्ध हुआ, जिसमें मराठों की विजय हुई। अब अब्दाली ने देखा कि अकेले मुझसे शिन्दे का पराभाव न होगा, इसलिए वह दोआब में घुसा और वहाँ नजीबखाँ रुहले को साथ लेकर दिल्ली की तरफ़ रवाना हुआ। उधर दत्ताजी भी यमुना के दक्षिण किनारे से दिल्ली आ पहुँचा। वहाँ १७६० के जनवरी महीने की १०वीं तारीख़ को दोनों के बीच घनघोर युद्ध हुआ। उसमें दत्ताजी मारा गया और जनकोजी ज़ख्मी हुआ। जनकोजी कोठपूतली में लाया गया। वहाँ शिन्दे की मदद के लिए होलकर आ रहा था, वह उसे मिला। होलकर ने अब्दाली का सामना करने का प्रयत्न किया, पर वह हार गया।

अपमान का बदला लेने के लिए दक्षिण से सेना चढ़ी

शिन्दे के पराभव की ख़बर जब पूना पहुँची, तो सरदारों की इज़्ज़त की रक्षा के लिए तथा अब्दाली की अच्छी तरह से ख़बर लेने के लिए पूना से फ़ौज भेजने का निश्चय हुआ। हम यह देख चुके हैं कि इस समय मराठों ने उदगीर की लड़ाई में भारी विजय पाई थी और निज़ाम का आधा मुल्क ले लिया था। इसके

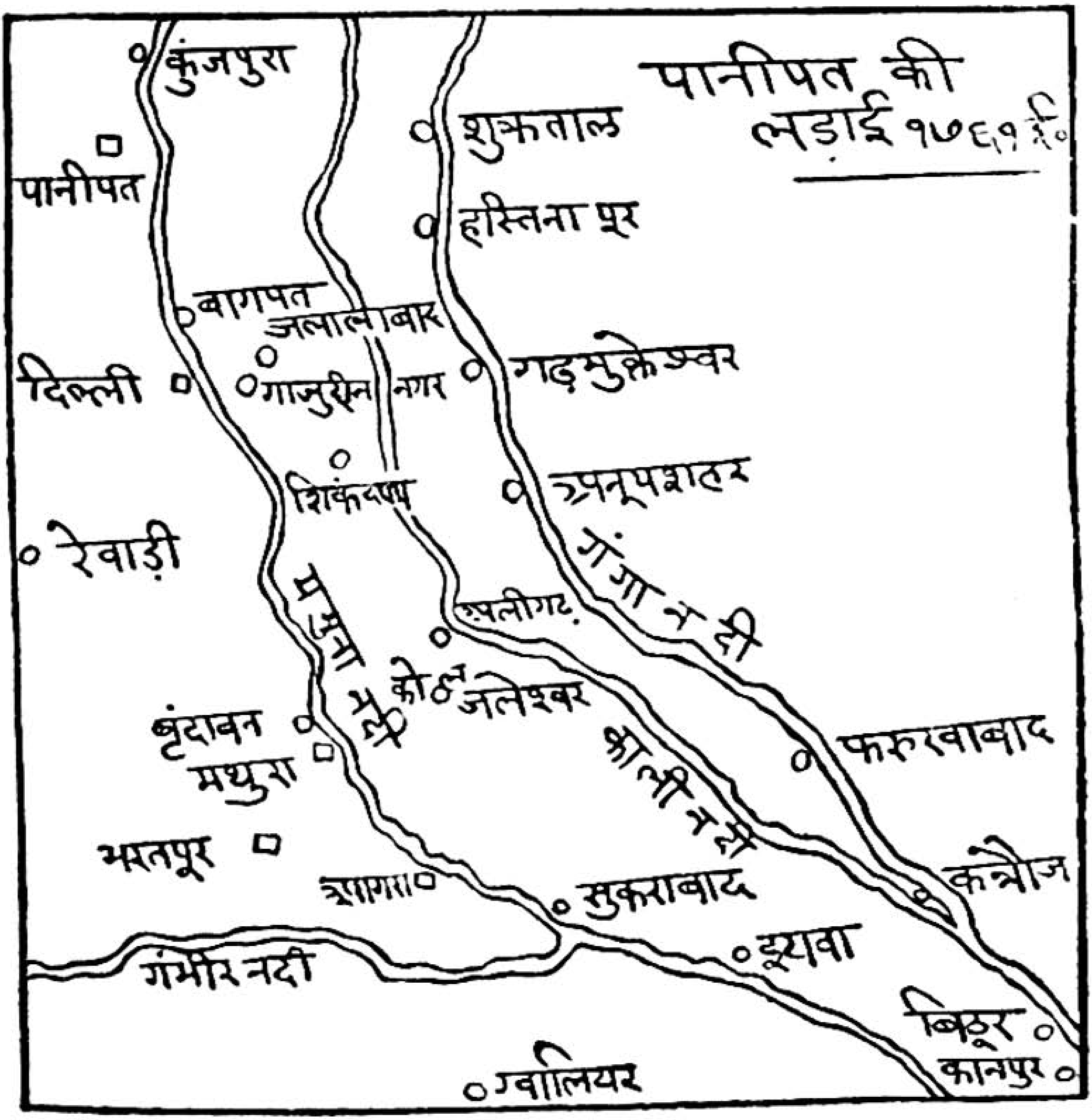
बाद सदाशिवराव भाऊ सारे दक्षिण को जीतने का विचार कर रहा था। पर शिन्दे के पराभव की खबर मिलने पर उसे पूना को वापस जाना पड़ा। बालाजी बाजीराव दक्षिण में सेना भेजने की तैयारी में लगा था, पर पहला प्रश्न यह उठा कि सेनापति कौन बनाया जाय ? इसके पहले दिल्ली की ओर जो सेना भेजी गई थी, उसका भार राघोवा को दिया गया था और उसे पंजाब को जीतने के काम के साथ और भी कई काम सौंपे गये थे। पर उससे कुछ भी न हो सका। वह बहुत सीधा पुरुष था और किसी के भी धोखे में शीघ्र आ जाता था। उसने पंजाब में जो कुछ विजय की वह अब्दाली की ग़ैरहाज़िरी में हुई। खुद अब्दाली से लड़ने का मौक़ा उसे न आया था। इसलिए इस समय सेनापतित्व का काम सदाशिवराव भाऊ को सौंपने का निश्चय हुआ। सदाशिवराव की बुद्धिमत्ता बालाजी ने कई बातों में देखी थी, इसलिए पेशवा का पूर्ण विश्वास था कि वह किसी के चकमे में न आवेगा। इसके सिवा सदाशिवराव ने अबतक की लड़ाइयों में भाग लिया था और अच्छा पराक्रम दिखलाया था। उदगीर की लड़ाई में उसने जो कार्य किया, वह बिलकुल ताजा था। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि इस नई चढ़ाई का सेनापतित्व सदाशिवराव भाऊ को दिया गया।

अब्दाली, नजीबखाँ और शुजा का सम्मिलन

नाना पुरन्दरे, बलवन्तराव मेंहदले, महिपतराव चिटनीस आदि सरदारों को तथा बालाजी के बड़े लड़के विश्वासराव को साथ लेकर सदाशिवराव भाऊ सन १७६० के अप्रैल महीने की चौथी तारीख़ को बुरहानपुर पहुँचा। इन सरदारों के सिवाय शमशेरबहादुर, विट्ठल शिवदेव विंचूरकर, माना-

जी धायगुड़े, अन्ताजी मानकेश्वर, माने, निम्बालकर आदि अन्य सरदार भी थे। दमाजी गायकवाड़, इब्राहीमखाँ गारदी और सन्ताजी वाघ उसे रास्ते में मिले। जबसे वह निकला, तबसे वह गोविन्द पन्त को लिखता रहा कि शुजाउद्दौला से मेल करके किसी भी तरह उसे अपनी ओर खींचलो। इसके सिवाय गोविन्द पन्त से जो २५ लाख रुपये वसूली के बक़ाया के आने थे उनके लिए भी उसने तक़ाज़ा किया। मालवा में आने पर उसने राजपूत राजाओं को अपने से मिलने के लिए पत्र और दूत भेजे, पर वे तटस्थ बने रहे। शुजाउद्दौला को अब्दाली भी अपनी ओर खींचने का प्रयत्न कर रहा था और इसके लिए वह स्वयं दोआब के अनूपशहर में आकर रहा था। उसने शुजा से मेल करने के लिए नजीबखाँ को भेजा; पर गोविन्द पन्त का मुल्क बीच में होने के कारण, उसे लिये बग़ैर, नजीबखाँ की शुजा से भेंट न हो सकती थी। जबतक नजीबखाँ की भेंट नहीं हुई थी, तबतक शुजा यही कहता रहा कि मैं मराठों के पक्ष का हूँ। उनकी यह भेंट न होने देने का भार गोविन्द पन्त पर था, पर उससे यह काम न हो सका। नजीबखाँ ने इटावा का घेरा डाला। फिर अफ़वाह उड़ी कि वह आगे बढ़नेवाला है। इसके कारण गोविन्द पन्त के थानेदार भाग गये। तब नजीबखा ने बिठूर में शुजा से भेंट की और उसको अब्दाली की ओर खींच लिया।

इतने में सदाशिवराव भाऊ चम्बल नदी को पार कर शिन्दे-होलकर से मिला। गोविन्द पन्त ने उसे लिखा कि तुम जल्द


पानीपत की लड़ाई १७६१ ई०
कुंजपुरा
पानीपत
शुक्रताल
हस्तिना पुर
बागपत
जलालाबाद
दिल्ली
गाजुद्दीन नगर
गढ़मुक्तेश्वर
शिकंदरा
अनूपशहर
रेवाड़ी
गंगा नदी
अलीगढ़
यमुना नदी
कोल
जलेश्वर
वृंदावन
मथुरा
फरुखाबाद
काली नदी
भरतपुर
आगरा
सुकराबाद
कन्नौज
इटावा
गंभीर नदी
बिठूर
कानपुर
ग्वालियर

आओगे तो शुजा अपने पक्ष में शामिल होगा। इसलिए

सदाशिवराव का पहला दाव गोविन्द पन्त के कारण व्यर्थ

भाऊ ने आगरा पहुँचने की जल्दी की, पर गम्भीर नदी में बाढ़ होने के कारण उसके दस-पन्द्रह दिन व्यर्थ गये। इतने में उसे खबर मिली कि शुजाउद्दौला अब्दाली के पक्ष में शामिल हो गया, इसलिए भाऊ ने विचार किया कि सूरजमल जाट को साथ लेकर आगरा के पास यमुना को लाँघना चाहिए और नजीबखाँ व अब्दाली के बीच घुसकर दोनों को अलग-अलग हराना चाहिए। अब्दाली इस समय अनूपशहर में था, नजीबखाँ और शुजाउद्दौला बिठूर में थे और गोविन्द पन्त इन दोनों के बीच इटावा में था। अब्दाली के पास ३० हज़ार फ़ौज, नजीब और शुजा के पास २० हज़ार फ़ौज और गोविन्द पन्त के पास क़रीब आठ-दस हज़ार फ़ौज थी। भाऊ ने विचार किया कि आगरे के पास यमुना को लाँघकर पश्चिम की ओर से गोविन्द पन्त को मिलना चाहिए और फिर शुजा और नजीब को पहले हरा कर फिर अब्दाली की खबर लेनी चाहिए। इसलिए भाऊ ने गोविन्द पन्त को लिखा कि अपने प्रान्त की सब नावें यमुना के दक्षिणी किनारे पर लाओ। मानाजी धायगुड़े और तीन हज़ार जाट भाऊ ने यमुना के पार शकूराबाद में पहले ही भेज दिये थे। इतने में यह खबर मिली कि शुजा और नजीब अब्दाली की ओर जा रहे हैं, इसलिए भाऊ सब सरदारों और जाटों के साथ आगरा आया। पर गोविन्द पन्त ने नावें जमा न की थीं, नदी में पानी भी बहुत था; अतएव अब्दाली के पक्ष की दो सेनाओं को अलग-अलग हराने का विचार भाऊ को छोड़ देना पड़ा।

नजीब और शुजाउद्दौला अब्दाली से सिकन्दरा में आकर मिले, तब भाऊ ने अब्दाली को हराने की नई योजना की। उसने विचार किया कि मथुरा, दिल्ली, कुंजपुरा आदि यमुना के दक्षिणी किनारे के स्थान लेकर उत्तर की ओर से यमुना पार कर अब्दाली को पीछे हटाना चाहिए। इस योजना के अनुसार भाऊ उत्तर की ओर रवाना हो गया। अलीगढ़ तक मराठों की चौकियाँ बिठलाने का, अब्दाली के आस-पास का मुल्क जलाकर साफ़ कर देने का, रुहेलों के मुल्क में घुसने की अफ़वाह उड़ाने का और शुजाउद्दौला के मुल्क में दंगे-फ़िसाद मचाने का काम उसने गोविन्द पन्त को सौंपा। भाऊ १६ जुलाई १७६० को मथुरा में आया और वहाँ से उसने बलवन्तराव मेंहदले तथा शिन्दे-होलकर को दिल्ली लेने के लिए आगे भेजा। बलवन्तराव ने दिल्ली शहर बहुत शीघ्र ले लिया और भाऊ के जाने पर क़िला भी हाथ आ गया।

भाऊ का दूसरा दाव और दिल्ली पर क़ब्ज़ा

दिल्ली का शहर और क़िला मराठों के हाथ आते ही मराठों की धाक चारों ओर जम गई। अब्दाली के पक्ष के कई सरदार भाऊ से मिलने के लिए बातचीत करने लगे। शुजाउद्दौला भी अब्दाली से मिलने के कारण पछताने लगा। अब्दाली ने शुजा की घात करनी चाही और उससे द्रव्य माँगने लगा। इसलिए उसने भाऊ से मेल की बातचीत शुरू की। इस प्रकार जब अब्दाली के साथी उसे छोड़कर जाने का विचार करने लगे, तब उसे भी इस बात का पछतावा हुआ कि नजीबख़ाँ के कहने में आकर मैं व्यर्थ ही संकट में पड़ गया। उस समय बरसात होने के कारण मराठों ने क़रीब

मराठों का आतंक

दो महीने दिल्ली में डेरा जमाया था। इसलिए अब अब्दाली यही चाहता था कि किसी प्रकार सन्धि हो जाय और मैं सुरक्षित स्वदेश पहुँचूँ। पर इस समय भाऊ के पास अच्छी सेना थी, जंगी तोपखाना था और वह दत्ताजी शिन्दे का पूरा-पूरा बदला लेना चाहता था। इसलिए भाऊ ने निश्चय किया कि अपने मन के मुताबिक संधि होगी तभी मैं अब्दाली को सुरक्षित स्वदेश जाने दूँगा, नहीं तो उसकी खासी खबर लूँगा।

बरसात के तीन महीने भाऊ ने दिल्ली में काटे। पिछले वर्ष ग़ाजीउद्दीन वज़ीर ने आलमगीर बादशाह को मार डाला था, तबसे गद्दी खाली थी। भाऊ ने आलमगीर के लड़के अलीगौहर को गद्दी पर बिठलाने के लिए दिल्ली बुलवाया, पर अलीगौहर स्वयं न आया—उसने अपने लड़के जवानबख्त को भेज दिया। भाऊ ने नाना पुरन्दरे और अप्पाजी जाधवराव के हाथों जवानबख्त को वलीअहद बनाया और अलीगौहर को शाहआलम का पद देकर उसके नाम का शाही सिक्का जारी किया। भाऊ का विचार वज़ीरी ख़ुद करने का था, इसलिए शुजाउद्दौला की वज़ीरी मिलने की आशा नष्ट हो गई और वह फिरसे अब्दाली के कहे मुताबिक़ चलने लगा। भाऊ ने दिल्ली के दीवान-ए-आम की छत निकाल डाली। उसके जो तीन लाख रुपये आये, वे सेना का वेतन देने में ख़र्च किये। सूरजमल जाट छत निकालने के कारण भाऊ से नाराज़ हो गया, और अपनी सेना लेकर वापस चला गया।

दिल्ली में भाऊ की कारवाई और उसके अनिष्ट परिणाम

नारोशंकर दानी को राजाबहादुर की पदवी देकर पाँच

हज़ार सेना उसके अधीन रक्खी और दिल्ली नगर तथा क़िले का बन्दोबस्त उसे सौंपा। इसके बाद

अब्दाली पर चढ़ाई करने के लिए भाऊ उत्तर को गया

बरसात समाप्त होते ही वह कुंजपुरा गया और अब्दाली को हराने की तैयारी में लगा। उसने गोविन्द पन्त को पहले बतलाये हुए काम करने की ताकीद की और स्वयं कुंजपुरा लेने की कोशिश में लगा। यह स्थान शीघ्र ही मराठों के हाथ आ गया। अब अब्दाली पर चढ़ाई करने के लिए भाऊ को यमुना पार करना आवश्यक था, इसलिए वह सारंगपुरा की ओर गया।

इतने में भाऊ को खबर मिली कि अब्दाली बागपत के पास यमुना पार कर पानीपत की ओर जा रहा है। इस समय अब्दाली भाऊ के पंजे में अच्छी तरह फंसा था।

अब्दाली संकट में

सामने उसकी सेना खड़ी थी, पीछे की ओर दिल्ली में नारोशंकर उसे रोकने के लिए तैयार था। इसलिए यमुना के दाहिने किनारे की ओर अब्दाली के बचने का कोई उपाय न था। दोआब और रुहेलखण्ड से उसे कुछ मदद मिलने की आशा थी, पर उसे भी नष्ट करने की तजवीज़ भाऊ ने की थी और यह काम उसने गोविन्द पन्त को सौंपा था। इस समय अब्दाली बहुत डर गया था। मराठा-सेना और अब्दाली की सेना के बीच मुश्किल से दो-चार कोस का अन्तर था। अब्दाली की सेना में महँगाई बहुत बढ़ गई थी। इस समय दोनों पक्षों के बीच जो एक छोटी-सी लड़ाई हुई, उसमें मराठों की विजय रही। अब्दाली को हराने का उत्साह सब मराठा सेना में था

और मराठों को ऐसा जान पड़ता था कि हम अब्दाली को निगल डालेंगे। पर विधि-विधान कुछ भिन्न ही था !

अबतक गोविन्द पन्त बुन्देले पर बड़ी-बड़ी ज़िम्मेदारियाँ सौंपी गईं, पर उनमें से उसने एक भी पूरी न की। भाऊ का विचार था कि अब्दाली की रसद बन्द करके उसकी सेना को भूखों मार डालना चाहिए। पर गोविन्द पन्त से यह काम न हो सका। अब्दाली की रसद बन्द होना तो दूर रहा, दिल्ली से मराठों को मिलने वाली रसद ही वह बन्द करने लगा और इस प्रकार मराठों को ही भूखों मरने की नौबत आई। अब्दाली ने विचार किया कि मराठों को बहुत दिनों तक भूखों रखकर फिर उनसे लड़ना चाहिए। परन्तु इस समय अब्दाली से लड़कर उसकी हार दूर करने में ही मराठों का फ़ायदा था। इसलिए मराठों ने पहले २२ नवम्बर १७६० को और फिर ७ दिसम्बर १७६० को इस प्रकार दो युद्ध किये। दोनों में मराठों की विजय रही, पर बलवन्तराव मेंहदले दूसरे युद्ध में मारा गया। इन युद्धों से मराठों का कोई विशेष फ़ायदा न हुआ। अब्दाली अपने निश्चय पर अटल था और उसकी हिम्मत किसी प्रकार कम न हुई थी।

अब्दाली ने मराठों की रसद बन्द की

अब बालाजी को इस बात की खबर मिली कि भाऊ अब्दाली के क़ब्ज़े में फँस गया है, इसलिए वह २५-३० हज़ार फ़ौज लेकर भाऊ की मदद के लिए रवाना हुआ। उसके बुरहानपुर के पास आने पर गोविन्द पन्त को यह खबर मिली कि स्वयं पेशवा उत्तर की ओर आ रहा है। तब गोविन्द पन्त अपनी इज़्ज़त

अब्दाली का घेरा तोड़ कर दिल्ली की ओर जाने का निश्चय

बचाने के लिए ४ लाख रुपये लेकर दिल्ली आया। रुपये नारो-शंकर के अधीन कर गोविन्द पन्त स्वयं पानीपत की दिशा में, ग़ाज़ीउद्दीन नगर की ओर, रवाना हुआ। पर इस शहर के पास आने पर अब्दाली के सरदार आतईख़ाँ ने उसपर हमला किया। गोविन्द पन्त इस लड़ाई में मारा गया, इस कारण अब्दाली की रसद बन्द करने का उपाय नष्ट हो गया। इसके बाद पाराशर दादाजी वाघ ने कुछ थोड़ी-सी मदद मराठों को पहुँचाने का प्रयत्न किया, पर वह प्रयत्न भी विफल हुआ। इसलिए मराठा-सेना के मनुष्य और जानवर दोनों भूखों मरने लगे। अन्त में लोगों ने विचार किया कि भूखों मरने की अपेक्षा रण में मरना अच्छा है, इसलिए भाऊ ने अब्दाली का घेरा तोड़कर दिल्ली की ओर जाने का निश्चय किया।

लड़ाई की शुरुआत

१४ जनवरी सन् १७६१ को बड़े सवेरे मराठा-सेना शत्रु पर हमला करने के लिए व्यवस्थित खड़ी हुई। दाहिनी ओर जनकोजी शिन्दे और मल्हारराव होलकर अपनी सेना-सहित थे। बाईं ओर दमाजी गायकवाड़, यशवंतराव पँवार, संताजी मानकेश्वर, विट्ठल शिवदेव विंचूरकर और शमशेरबहादुर थे। बीच में स्वयं सदा-शिवराव भाऊ और विश्वासराव थे। सबके सामने तोपख़ाना था और उसका मुखिया इब्राहीम गार्दी था। पीछे की ओर नौकर-चाकर तथा छोटी-मोटी पलटनें थीं। मराठा फ़ौज अपनी छावनी से डेढ़ कोस आगे बढ़ी। भाऊ ने विचार किया था कि यदि अब्दाली रास्ता छोड़कर एक ओर हो जावेगा तो लड़ाई न करके वैसे ही दिल्ली चले जावेंगे। पर मराठा-सेना को इतने दिनों तक भूखों

मारकर अब अब्दाली उसे चुपचाप क्यों जाने देने लगा था ? मराठों के कूच की ख़बर पाते ही उसने अपनी सेना को युद्ध के लिए तैयार किया। बीच में अपने वज़ीर शाहवलीख़ाँ को रक्खा, दाहिनी ओर रुहेले सरदार और बाईं ओर नजीबख़ाँ व शुजाउद्दौला थे। सबके सामने उसका तोपख़ाना था। पर स्वयं अब्दाली पीछे रह गया था।

अब दोनों ओर से तोपें दागी जाने लगीं। दोनों फ़ौजों के पास पहुँचते ही मराठों की बाईं ओर के यशवन्तराव पँवार और विट्ठल शिवदेव आगे बढ़कर लड़ाई करने लगे, परन्तु हटते-हटते वे फिरसे अपनी जगह पर आये। तब इब्राहीमख़ाँ गार्दी

शुरुआत में मराठों की विजय

ने तोपों की मार ज़ोरों से शुरू की और अपनी पलटनें आगे बढ़ाईं। उसने ज़ोरों का एक हमला करके आठ हज़ार रुहेलों को साफ़ कर डाला। इधर भाऊ और विश्वासराव ने वज़ीर शाहअली की फ़ौज पर हमला किया और तीन हज़ार लोग मार डाले। स्वयं वज़ीर का लड़का भी मारा गया। लड़के के गिरते ही वज़ीर घबरा गया और उसके आदमी भागने लगे। यह देख नजीबख़ाँ भाऊ से लड़ने आया। इसपर जनकोजी शिन्दे भाऊ की मदद को पहुँचा। रुहेलों की तोपों की मार से शिन्दे के बहुत-से लोग मरने लगे, तथापि मराठों के पैर बढ़ते ही जाते थे। बाईं ओर पँवार, गायकवाड़ और इब्राहीमख़ाँ ने मुसलमानों को आगे न बढ़ने दिया। लड़ाई में मराठों की विजय होती दिखाई दी और मुसलमान फ़ौज में भगदड़ मच गई। यह देख अब्दाली ने अपने पास की चार हज़ार सेना भेजकर इन भागनेवाले लोगों को रोका।

इस प्रकार भीड़ को उस नई सेना का सामना करना पड़ा।

मराठों की पूर्ण पराजय

अब क़रीब दो बज गये थे। मराठे शक्ति भर लड़ रहे थे। इतने में दुर्दैव से बन्दूक़ की एक गोली अचानक विश्वासराव के लगी और वह मरणासन्न होकर गिर पड़ा। इसी समय वाईं ओर विट्ठल शिवदेव की फ़ौज के हज़ार पठानों ने अपने भगवे झण्डे फाड़ डाले और मराठों की हार होने की पुकार मचा दी। इस कारण मराठा सेना के नौकर-चाकर भागने लगे। विश्वासराव के गोली लगने की ख़बर पाकर सदाशिवराव भाऊ उसके पास पहुँचा। उसकी दशा देखकर भाऊ ने मरने-मारने का निश्चय कर लिया। हाथी से उतरकर वह घोड़े पर सवार हुआ और भीड़ में घुसकर ज़ोरों से लड़ने लगा। पर मराठों की पिछली सेना भागने लगी थी। मराठों को भागते देख अब्दाली की सेना ने उन्हें घेर लिया और मारकाट शुरू की। केवल भाऊ, शिन्दे, शमशेर-बहादुर और इब्राहीमख़ाँ आख़िर तक लड़ते रहे। शेष सारे सरदार या तो भाग गये, या मारे गये। भाऊ ने भगदड़ रोकने के विचार से जयवाद्य भी बजाये, पर भागनेवाले न रुके। जब बहुतेरी सेना नष्ट हो गई, तो भाऊ भीड़ में घुस पड़ा। जनकोजी शिन्दे भी उसके पीछे-पीछे आया, पर वह शत्रु के हाथ में पड़कर मारा गया। इस प्रकार सायंकाल तक लड़ाई समाप्त होकर मराठों का पूर्ण पराभव हुआ। जो लोग यहाँ-वहाँ छिपे थे, वे शत्रु के हाथ पड़े और दूसरे दिन मारे गये।

भागने वालों में से पाँच-सात हज़ार लोग दिल्ली की ओर आये।

उनमें शमशेरबहादुर, मल्हारराव होलकर और भाऊ की पत्नी पार्वतीबाई आदि थे। इनके सिवाय विट्ठल शिवदेव, दमाजी गायकवाड़, महादजी शिन्दे, नाना फड़नवीस आदि जिधर रास्ता मिला उधर से बच आये। इधर बालाजी बाजीराव भाऊ की मदद के लिए नर्मदा पार कर सिरोंज तक आ पहुँचा था। वहाँ उसे पानीपत की लड़ाई का हाल मालूम हुआ। एक व्यापारी का नौकर एक चिट्ठी लिये जा रहा था। उसमें लिखा था कि दो मोती गल गये, २७ मोहरें खो गईं और रुपये-चिल्लर आदि का कुछ कहना ही नहीं है। चिट्ठी का अर्थ स्पष्ट था। शीघ्र ही भागने वाले लोग भी यहाँ आ पहुँचे। लड़ाई की खबर से बालाजी के दिल को भारी धक्का पहुँचा। उसका सिर घूम गया और वह पागल-सा बन गया। उसका विचार आगे बढ़कर चढ़ाई करने का था, पर सरदारों ने समझा-बुझाकर किसी प्रकार उसे दक्षिण की ओर लौटाया। अन्त में इस मानसिक दुःख से, सन् १७६१ के २३ जून को, उसकी मृत्यु हो गई!

पराजय के दुःख से बालाजी की मृत्यु

२४

मराठा जहाज़ी बेड़े का विनाश

बालाजी बाजीराव के समय में पानीपत की लड़ाई से मराठी सत्ता को जैसा धक्का पहुँचा, उसी प्रकार मराठों के जहाजी बेड़े का विनाश होकर मराठों की सामुद्रिक शक्ति को भी धक्का पहुँचा; और जिस प्रकार पानीपत की लड़ाई के लिए यह पेशवा ज़िम्मेदार रहा, उसी प्रकार अथवा उससे कुछ अधिक ही यह मराठों की सामुद्रिक शक्ति के लिए भी ज़िम्मेदार रहा। मराठों की सामुद्रिक शक्ति के कार्यों का वर्णन हम बाजीराव के अन्त तक दे चुके हैं। कान्होजी आँग्रे की मृत्यु के बाद सन् १७३५ में बाजीराव ने उसके लड़के सम्भाजी और मानाजी का मेल करा दिया था, परन्तु फिर भी उनके झगड़े बन्द न हुए। सन् १७४१ में सम्भाजी की मृत्यु हुई। उसके बाद विजय-दुर्ग की व्यवस्था और सरखेल नाम का पद उसके दासी-पुत्र तुलाजी आँग्रे को मिला। तुलाजी शरीर का भव्य, सुन्दर, वीर और

पश्चिमी किनारे पर बालाजी की धाक

कट्टर था। सामुद्रिक कार्यों में वह प्रवीण था और बानकोट से सावन्तवाड़ी तक कोंकण-तट के जंजीरों को उसने मज़बूत बना दिया था। उसका जहाजी बेड़ा दृढ़ था और समुद्र-संचार के लिए सदैव तैयार रहता था। तीस हज़ार फ़ौज हमेशा उसके पास तैयार रहती थी। उसके तोपखाने में कई यूरोपियन फ़ौजी और जहाज़ी काम के लिए नौकर थे। उसके बेड़े में ६० जहाज़ थे और उसके पास हाथी, बारूद, गोला, शस्त्र आदि सामग्री भरपूर रहती थी। शत्रुओं के जहाज़ और बन्दरगाह लूटकर उसने बहुत-कुछ सम्पत्ति और अन्य सामग्री एकत्र की थी। उसके हाथों कोई भी जहाज़ मुश्किल से बचता था। अंग्रेज़ों से उसके कई झगड़े हुए। उनमें उसने अंग्रेज़ों के कई जहाज़ पकड़े और विजय-दुर्ग बन्दर में लाकर उन्हें रक्खा। यूरोपियन व्यापारियों पर उसकी बड़ी धाक जम गई थी। अंग्रेज़ तो यह समझने लगे थे कि जबतक तुलाजी है तबतक पश्चिमी किनारे पर बिना भय के संचार होना, अपने देश से निर्विघ्न व्यापार चलना अथवा अपने हाथ में बन्दरगाह बने रहना असम्भव है। इसलिए वे चाहते थे कि किसी प्रकार तुलाजी का जहाजी बेड़ा नष्ट हो जाय और इसके लिए वे प्रयत्नशील भी थे।

अंग्रेज़ों की सहायता से तुलाजी को दबाने का विचार

कान्होजी की मृत्यु के समय से ही आँग्रों की सामुद्रिक शक्ति को धक्का पहुँचाना शुरू हुआ था, क्योंकि उसके लड़के सदा आपस में लड़ा करते थे। अन्त में इन घरू झगड़ों से ही आँग्रों का विनाश हुआ। शाहू ने तुलाजी और मानाजी नामक सौतेले भाइयों में मेल कराने का प्रयत्न किया, पर वह

इसमें सफल न हुआ और इन आँग्रे-बन्धुओं में वैमनस्य बनाही रहा। तुलाजी वीर और कार्यशील पुरुष था, इस कारण उसके सामने मानाजी का टिक सकना सम्भव न था। मानाजी ने किसी प्रकार पेशवा की सहायता से इस प्रबल भाई से अपने प्रदेश की रक्षा की। तुलाजी बड़ा भारी सामुद्रिक वीर सरदार था और पश्चिमी किनारे पर उसकी अच्छी धाक हो गई थी, परन्तु दमाजी गायकवाड़ और रघुजी भोंसले के समान पेशवों की अपेक्षा वह कुछ उद्धत था। बालाजी बाजीराव से जब ताराबाई का झगड़ा चल रहा था। तब उसने ताराबाई का पक्ष लिया था। आगे जब ताराबाई को चुपचाप बैठना पड़ा और जब सब मराठा-राज्य का कारबारा पेशवा चलाने लगा, तब तुलाजी ने पेशवा की सत्ता ताक में रख दी और अपने मुल्क के ब्राह्मणों,को कष्ट देना शुरू किया। इस समय पेशवों का कोंकण का सरसूबेदार रामाजी महादेव बिवलकर था। उसके और तुलाजी के बीच झगड़े होने लगे। रामाजी बड़ा कार्यशील और दूरन्देश था। उसने अपने मन में सोचा कि जबतक तुलाजी की सत्ता पूर्णतया नष्ट न होगी तबतक मैं शान्ति से न रह सकूँगा। सन् १७४० में अँग्रेजों ने मानाजी आँग्रे की मदद की थी, तबसे मराठों के दरबार में उनके लिए अनुकूल मत था। आगे जब सन् १७५१ में कर्नाटक में फ्रेंचों पर उन्होंने विजय पाई, तब तो उनका नाम खूब बढ़ा। इस समय रामाजी ने अंग्रेजों की सहायता से तुलाजी की शक्ति नष्ट करने का विचार किया। बालाजी बाजीराव का रामाजी पर पूर्ण विश्वास था और उसे कोंकण के कारबार में प्रत्यक्ष ध्यान देने का अवकाश न था। अतएव कोंकण का सारा कारबार उसने

रामाजी को सौंप दिया और तुलाजी को दबाने की योजना को पेशवा ने मंज़ूर किया ।

यह ऊपर बता ही चुके हैं कि तुलाजी बड़ा साहसी था और अंग्रेज़ी जहाज़ों पर हमले करके उनकी सामग्री लूट ले जाता था । इसलिए अंग्रेज़ उसके विजय-दुर्ग के क़िले पर हमला करने की बहुत दिनों से सोच रहे थे । एक-दो बार उन्होंने इसके लिए प्रयत्न भी किया था, पर वे विफल हुए; क्योंकि तुलाजी की सावधानी और सामर्थ्य के सामने उनकी एक न चली । परन्तु जब पेशवा ने ही रामाजी महादेव के जरिये तुलाजी को दबाने के लिए अंग्रेज़ों से मदद माँगी, तब तो बम्बई के गवर्नर को बड़ा आनन्द हुआ और उसने तुरन्त सन् १७५५ के १९ मार्च को रामाजी महादेव से तुलाजी को दबाने का इक़रार किया। उस इक़रारनामे की मुख्य शर्तें ये थीं—(१) चढ़ाई के समय जहाज़ी बेड़ा अंग्रेज़ों के अधीन रहे, पर सब कारबार दोनों की सम्मति से हो। (२) तुलाजी आँग्रे के जो जहाज़ पकड़े जायँ, उन्हें अंग्रेज़ और मराठे आधे-आधे बाँट लें। (३) अंग्रेज़ों की सहायता के बदले बानकोट, हिम्मत-गढ़ और वहाँ की सावित्री नदी के दक्षिणी किनारे के पाँच गाँव उन्हें दिये जायँ। (४) आँग्रे के क़िलों में जो द्रव्य, सामान, बारूद, गोला, तोप इत्यादि वस्तुयें मिलें, वे मराठे लें।

सहायता की शर्तें

आँग्रे के मज़बूत क़िले सुवर्णदुर्ग और विजयदुर्ग थे। यह निश्चय हुआ कि पहले सुवर्णदुर्ग लिया जाय। अंग्रेज़ों का जहाज़ी

बेड़ा विलियम जेम्स के अधीन बम्बई से रवाना हुआ और चौल बन्दर से मराठों का जहाज़ी बेड़ा उससे मिला। फिर वे सुवर्णदुर्ग की ओर बढ़े। पर तुलाजी के जहाज़ पहले ही दक्षिण की ओर भाग गये थे। अंग्रेज़ों और मराठों के बेड़ों ने उनका पीछा किया, पर उन्हें न पा सके। तब वापस आकर अंग्रेज़ों ने समुद्र की ओर से और मराठों ने ज़मीन की ओर से तोपों की मार सुवर्णदुर्ग पर शुरू की और चार दिन में यानी ६ अप्रैल को क़िला उनके हाथ लगा। इधर शमशेर बहादुर और दिनकर पन्त के अधीन पूना से जो फ़ौज आई थी उसने आँग्रे का खुश्की मुल्क और क़िले लेना शुरू किया। फिर मराठा फ़ौज ने रत्नागिरी को घेरा, परन्तु बरसात शुरू होने के कारण अंग्रेज़ों का बेड़ा वापस चला गया और चढ़ाई का काम स्थागित हुआ। दूसरे साल एडमिरल वाटसन और कर्नल क्लाइव जंगी जहाज़ और फ़ौज लेकर बम्बई-बन्दर में आये। विजय-दुर्ग बहुत मज़बूत समझा जाता था, इसलिए यह क़िला लेने के लिए बम्बई के गवर्नर ने वाटसन और क्लाइव को रवाना किया। बरसात समाप्त होते ही मराठा फ़ौज ने खण्डोजी मानकर के अधीन विजयदुर्ग के पास छावनी की। अंग्रेज़ी बेड़े के आने की खबर पाकर तुलाजी ने मराठों से मेल की बातचीत शुरू की। इसलिए अब विजयदुर्ग पर हमला करने का कोई कारण न रह गया था। पर अँग्रेज़ कहाँ मानने वाले थे? उन्होंने यह चिल्लाना शुरू किया कि मराठों ने अकेले-अकेले तुलाजी से मेल की बातें करके इक़रारनामे की शर्तें तोड़ी हैं। इसलिए वाटसन ने समुद्र से और क्लाइव

तुलाजी का सर्वनाश और विजयदुर्ग पर अंग्रेज़ों का क़ब्ज़ा

ने ज़मीन से क़िले पर मार शुरू की। पास ही समुद्र में तुलाजी का जहाज़ी बेड़ा था; उसमें से एक पर अंग्रेज़ों ने गोले दागे, जिससे उसमें आग लग गई। शीघ्र ही यह आग चारों ओर फैली और उसने आगे के सब बेड़े को भस्म कर डाला। तब कोई उपाय न देख क़िले के लोग अंग्रेज़ों की शरण गये। अंग्रेज़ों ने सन् १७५६ की १३ फ़रवरी को क़िला अपने क़ब्ज़े में लिया। पर ऐसा करते समय उन्होंने इस बात की सावधानी रक्खी कि मराठों की ओर का कोई भी आदमी क़िले में न जाने पावें। अंग्रेज़ों ने इक़रारनामे की शर्तें तोड़कर लूट की और क़िले में मिला हुआ १० लाख का धन अंग्रेज़ अधिकारियों ने आपस में बाँट लिया। फिर अँग्रेज़ अधिकारी कहने लगे कि तुलाजी को हमारे आधीन करो, पर रामाजी ने ऐसा करने से साफ़ इन्कार किया। तुलाजी को मृत्यु तक कैद में रहना पड़ा। पहले तो उसे वन्दन क़िले में रक्खा; पर वहाँ पर उसने बग़ावत करने का प्रयत्न किया, इसलिए उसे वहाँ से ले जाकर शोलापुर के क़िले में रक्खा। वहीं सन् १७६९ में उसकी मृत्यु हुई। उसके दो लड़के भी क़ैद में थे। १४ वर्ष के बाद वे बम्बई भाग गये और अंग्रेज़ों ने उन्हें अपने आश्रय में रक्खा।

अब इक़रार के मुताबिक़ अँग्रेज़ मराठों से मुल्क लेते और विजयदुर्ग को पेशवा के हाथ सौंप देते, पर विजयदुर्ग को अँग्रेज़ लोग छोड़ने को तैयार न थे। सुवर्णदुर्ग को पाते ही पेशवा ने इक़रार के मुताबिक बानकोट और पाँच गाँव अंग्रेज़ों के अधीन कर दिये थे। अब बम्बई का गवर्नर कहने

अंग्रेज़ों और पेशवा के बीच सन्धि

लगा कि इस मुल्क को तुम वापस ले लो और उसके बदले विजय-दुर्ग को हमारे क़ब्ज़े में रहने दो। इसपर बालाजी बाजीराव ने उत्तर दिया कि विजयदुर्ग को लेने के लिए ही तो हमने तुम्हारी मदद ली थी, उसे यदि हम तुम्हारे हाथ में रहने देंगे तो लोग हमें क्या कहेंगे ! अंग्रेज़ यह भी कहने से न चूके कि यदि विजय-दुर्ग हमारे क़ब्ज़े में रहने दिया तो हम पोर्त्तगीज़ों से तुम्हारी रक्षा करेंगे। इस प्रकार यह झगड़ा दो महीने तक चलता रहा। अन्त में स्पेन्सर और बायफ़ील्ड नामक दो अंग्रेज़ वकील पूना आये, तब अँग्रेज़ और पेशवा के बीच सन्धि हुई और इस झगड़े का निर्णय हुआ। उसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि यहाँ से स्पेन्सर के निकलने के दिन से २४ दिन के भीतर अँग्रेज विजय-दुर्ग को छोड़ दें, पेशवा बानकोट और उसके पास के दस गाँव अँग्रेज़ों को दे, पेशवा अँग्रेज़ों से किसी भी पिछली बात के लिए कुछ न माँगे और तुलाजी को घाट के उस पार का मुल्क बिलकुल न दे, बानकोट की खाड़ी में सिद्दी जो चौथाई ज़कात वसूल करता है पेशवा उसका बन्दोबस्त और कहीं कर दे और मराठा-राज्य में अँग्रेज़ी माल पर पहले से अधिक ज़कात न लगाई जाय। इसके बाद गोविन्द शिवराम खासगी वाले को भेज-कर पेशवा ने विजय-दुर्ग पर अपना क़ब्ज़ा किया और तबसे वह पेशवा के जहाज़ी बेड़े का केन्द्र हुआ। जहाज़ी बेड़े का एक स्वतंत्र सूबा बनाया गया और जहाज़ी बेड़े का सूबा ही उसका नाम रक्खा गया। इस सूबे पर बहुधा ऐसे ही पुरुष की नियुक्ति होती थी, जो समुद्री कामों में निपुण होता। आनन्दराव धुलप नाम का पुरुष सन् १७६४ से १७९४ तक मराठा जहाज़ी

बेड़े का अधिकारी था। पेशवा ने मानाजी आँग्रे को कोलाबा में बना रहने दिया। मानाजी ने हरसाल दो लाख रुपये कर देने और आवश्यकता पड़ने पर पेशवा की नौकरी करने का वचन दिया। सन् १७५९ में, मानाजी की मृत्यु के बाद, उसके लड़के रघुजी को उसका मुल्क तथा खिताब मिले।

तुलाजी के सर्वनाश का दुष्परिणाम

विजयदुर्ग मराठों को देते समय अंग्रेज़ों ने बड़ी चिल्लाहट मचाई थी; और उस सारी चिल्लाहट में उन्होंने जो सिरज़ोरी दिखलाई, उससे उनका स्वार्थी हेतु बालाजी बाजीराव की समझ में आ गया था। आगे जब सिद्दी से जंजीरा लेने के काम में पेशवा ने उनसे मदद माँगी, तब उन्होंने मदद देने से इनकार किया; उलटे मराठों ने जब जंजीरा को घेरा, तब अंग्रेज़ों ने अनाज, बारूद, गोला आदि सामग्री सिद्दी को पहुँचाई। इससे जंजीरा मराठों के हाथ न आया। दूसरे साल यानी सन् १७६० में मराठों ने घेरा डाल कर अन्धेरी को ले लिया। पर यह स्पष्ट है कि तुलाजी आँग्रे का विनाश करके बालाजी पेशवा ने अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली। तुलाजी आँग्रे अंग्रेज़ी जहाज़ों पर हमला किया करता था, इसलिए उसका नाश होने से अंग्रेज़ों की भलाई थी; इसीलिए उन्होंने उसका विनाश करने में पेशवा को मदद दी। तुलाजी के विनाश के बाद कोंकण में अंग्रेज़ों पर धाक बैठाने वाला कोई सत्ताधारी न रहा। इस समय एक बार मराठों के जहाज़ी बेड़े की शक्ति जो नष्ट हुई वह फिर कभी वापस न आई। इसलिए पश्चिमी किनारा अंग्रेज़ों को खुला मिल गया। पानीपत की लड़ाई के बाद सारे हिन्दुस्थान

के राजकीय झगड़ों में हाथ डालने का अंग्रेज़ों को अच्छा मौक़ा मिला। तुलाजी के डर के मारे पश्चिमी किनारे पर अंग्रेज़ कुछ गड़बड़ न करते थे; पर उसका विनाश होने पर, पानीपत की लड़ाई के बाद, वे पश्चिमी किनारे के सुदृढ़ स्थानों को भी लेने का प्रयत्न करने लगे। सन् १७६५ में यशवन्तगढ़ और शिवाजी का बनाया हुआ सिंहदुर्ग ये दो जंजीरे अंग्रेज़ों ने अपने क़ब्ज़े में कर लिये। ये दोनों स्थान कोल्हापुर के राजा के अधीन थे, पर अंग्रेज़ों के विरुद्ध चिल्लाने और हाथ-पैर पटकने के सिवाय उसके पास कोई उपाय न था। इस प्रकार जहाज़ी बेड़े की ओर पूरा ध्यान न देने तथा तुलाजी आँग्रे के मज़बूत बेड़े को नष्ट करने के कारण अंग्रेज़ उस किनारे पर ज़ोरदार हो गये और उन्हें दबाने की ताक़त किसी में न रही। रामाजी बिवलकर ने तुलाजी का विनाश करवा कर अत्यन्त अदूरदृष्टि ही दिखलाई; क्योंकि उसके कारण तुलाजी आँग्रे के समान साहसी वीर निपुण और कर्मण्य सामुद्रिक वीर का राष्ट्र-हित के लिए कुछ उपयोग न हो सका।

२५

माधवराव पेशवा

वालाजी वाजीराव की मृत्यु के बाद उसका दूसरा लड़का माधवराव पेशवा हुआ। उस समय माधवराव की उम्र सत्रह वर्ष थी, इसलिए उसका चाचा रघुनाथराव उर्फ़ राघोबा राज्य का कारबार देखने लगा।

निज़ाम की मराठा-राज्य पर चढ़ाई और राघोबा से घाटे की सन्धि

पानीपत की लड़ाई के बाद मराठों की धाक नष्ट हो गई। दिल्ली-दरबार में रुहेलों का महत्व बढ़ा और दोआब में मराठों की सत्ता न रह गई। चम्बल नदी के पास के जाट और राजपूत राजा मराठों को अब कुछ न समझने लगे और दक्षिण के शत्रुओं ने भी सिर उठाना शुरू कर दिया। सलाबतजंग नाममात्र के लिए हैदराबाद का सूबेदार था, सारा कारबार उसका भाई निज़ामअली देखता था। निज़ामअली ने सोचा कि पानीपत की लड़ाई से मराठों का ज़ोर नष्ट हो गया है और पेशवा इस समय छोटा लड़का है, इसलिए उदगीर की लड़ाई में खोया हुआ

प्रदेश वापस लेने का यह अच्छा अवसर है। यह सोच कर निज़ाम-अली ने मराठों के प्रदेश पर ख़ास पूना तक चढ़ाई करने का विचार किया। औरंगाबाद के पास फ़ौज जमा करके वह आगे बढ़ा। जोश में आकर उसने गोदावरी के किनारे के टोके नामक देवस्थान को नष्ट कर डाला। राघोबा इस चढ़ाई के लिए ज़रा भी तैयार न था; निज़ाम की फ़ौज के कूच की ख़बर पाकर उसने तैयारी की। धीरे-धीरे फ़ौज जमा हुई। टोके के विध्वंस के कारण निज़ाम की ओर का हिन्दू सरदार रामचन्द्र जाधव मराठों से आ मिला और उसने निज़ामअली के छोटे भाई मीर मुग़ल को भी अपनी ओर खींच लिया। परन्तु इतने पर भी मराठे सरदारों में ऐक्य उत्पन्न करके शत्रु का सामना करने का काम राघोबा से जल्दी न हो सका। इसलिए निज़ाम पूना से १४ मील पर आ पहुँचा। अब कहीं मराठों ने उसपर हमले करना शुरू किया और उसे घेर लिया। तब कोई उपाय न देख निज़ाम ने सन्धि की बातचीत शुरू की। राघोबा को इस बात की चिन्ता थी की एक बार निज़ाम किसी प्रकार अपने मुल्क को वापस चला जाय। इसलिए उसने उद्‌गीर की लड़ाई के बाद पाये हुए प्रदेश में से औरंगाबाद और बेदर वापस दे दिये। निज़ाम वापस चला गया। इस प्रकार घाटे की सन्धि करने का एक कारण और था। राघोबा के हाथ में कारबार रहना पूना के कई सरदारों को पसन्द न था। इसलिए आवश्यकता पड़ने पर इन सरदारों को दबाने के लिए निज़ाम की सहायता लेने के विचार से भी राघोबा ने, सखाराम बापू के कहने से, इस प्रकार की सन्धि की थी।

बाबूजी नायक नामक एक सरदार ने इस बात पर ज़ोर दिया

कि सखाराम बापू दीवानगिरी से अलग कर दिया जाय। गोपाल-राव पटवर्धन ने इस बात का तक़ाज़ा किया कि मीरज नाम का स्थान जो मुझे मिलने वाला था, वह मुझे दे दिया जाय। इससे राघोबा गुस्से होकर घर बैठ गया

राघोबा-माधवराव के बीच युद्ध और राघोबा की विजय

और सखाराम बापू ने दीवानगिरी छोड़दी। तब माधवराव की माँ गोपिकाबाई ने बापूराव फड़नीस और त्रिम्बकराव मामापेठे को कारबारी नियत किया। यह बात राघोबा तथा सखाराम बापू को ठीक न लगी। उन्होंने पूना में गुप्त रीति से विट्ठल शिवदेव विंचूर-कर, नारोशंकर, आबा पुरन्दरे आदि सरदारों से सलाह की और खोया हुआ अधिकार फिर से प्राप्त करने का प्रयत्न किया। सखाराम बापू ने राघोबा के पक्ष के सरदारों को सेना जमा करने का इशारा किया और गोपिकाबाई के समझाने पर भी राघोबा निज़ाम से मदद माँगने के लिए औरंगाबाद चला गया। निज़ाम तो यह चाहता ही था। उसने अपने दीवान विट्ठल सुन्दर परशुरामी तथा मुरादख़ाँ को सेना देकर भेजा, और पीछे से स्वयं भी आने का वचन दिया। राघोबा ने रास्ते में पैठन नामक स्थान को लूटा और पूना की ओर बढ़ा। इधर पूना के सरदारों ने फ़ौज जमा की और वे भी आगे बढ़े। सन् १७६२ के ७ नवम्बर को इन दो सेनाओं की घोड़ नदी पर लड़ाई हुई। पहले तो माधवराव के पक्ष की विजय हुई, पर बाद में माधवराव को पीछे हटना पड़ा। आले-गाँव में फिरसे युद्ध हुआ। इसमें माधवराव का पराजय हुआ, क्योंकि सखाराम बापू ने उसके पक्ष के कई सरदारों को अपने पक्ष में मिला लिया था। अन्त में माधवराव ने राघोबा के हाथों

आत्म-समर्पण कर दिया। तब राज्य का कारबार फिर से राघोबा और सखाराम बापू के हाथ आया। अब निज़ाम की सहायता की आवश्यकता न रही, इसलिए उसको कुछ थोड़ा-सा प्रदेश देकर वापस भेज दिया।

विजय के बाद राघोबा का माधवराव के पक्ष के लोगों को दबाना

राघोबा और सखाराम बापू के हाथ में अधिकार आते ही, उन्होंने माधवराव के पक्ष के लोगों को दबाना शुरू किया। कई लोगों को उन्होंने हटाकर उनकी जगह अपने पक्ष के लोग नियत किये। स्वयं गोपिकाबाई और माधवराव पर पहरा बैठा दिया। गोपालराव पटवर्धन से मीरज वापस ले लिया। इसके बाद उसका विचार कर्नाटक पर चढ़ाई करने का था, परन्तु पहले उसे निज़ाम की ओर ध्यान देना पड़ा।

निज़ाम का राघोबा को अपमानजनक संदेश

राघोबा के हाथ में कारबार आने पर और उसके मीरज लेने पर उससे असन्तुष्ट सरदार भगवानराव प्रतिनिधि, उसका मुतालिक गमाजी, यमाजी और गोपालराव पटवर्धन निज़ाम के पास गये। निज़ाम का दीवान विट्ठलसुन्दर बड़ा कार्यपटु था। उसने देखा कि मराठों का प्रदेश जीतने का यह अच्छा अवसर है। गमाजी बाबा ने नागपुर के जानोजी भोंसले को सातारा की गद्दी का लोभ दिखाकर इस षड्यन्त्र में शामिल कर लिया। इसमें शामिल होने वाले सब सरदारों को निज़ाम ने बड़ी जागीरों का प्रलोभन दिया। इस प्रकार निज़ाम की बड़ी भारी सेना तैयार हुई। सन १७६३ के अन्त में उसने पेशवा को यह सन्देश भेजा कि प्रतिनिधि पटवर्धन आदि सरदारों की जो जागीरें तुमने जब्त की

हैं वे उन्हें लौटा दी जायँ। जानोजी भोंसले को और जागीर दी जाय। भीमा के दक्षिण का तुम्हारा सब राज्य हमें दे दिया जाय, और हम कहें उस कारबारी के हाथ में राज्य का कारबार रक्खा जाय। इतनी सब बातें करोगे तो तुम्हारा प्रदेश बना रहेगा; अन्यथा तुमपर चढ़ाई करके हम तुम्हें अपने कहे अनुसार करने को बाध्य करेंगे।

मराठों की जो सेना तैयार हुई, वह केवल ४५ हज़ार थी; पर निज़ाम की सेना एक लाख थी। इसलिए सखाराम बापू ने यह सूचना की कि आमने-सामने की लड़ाई लड़ने की अपेक्षा यहाँ-वहाँ हमले करना और निज़ाम व भोंसले के राज्य में गड़बड़ मचाना ठीक होगा। इस सूचना के अनुसार राघोबा ने लड़ाई शुरू की और भोंसले और निज़ाम के राज्य में लूटमार मचाई। इसपर निज़ाम ने भी लड़ाई की इसी रीति का पालन किया और उन्होंने मराठा-राज्य के कई स्थानों को खूब लूटा और पूना से भी कर वसूल किया। निज़ाम की इन विजयों का कारण उससे मिले हुए मराठे सरदार ही थे, इसलिए यह निश्चय हुआ कि जागीर अथवा अधिकार देकर या ज़ब्त की हुई जागीरें वापस देकर उन्हें निज़ाम से फोड़ लेना चाहिए। इस प्रकार कार्रवाई होने पर निज़ाम से मिले हुए मराठे सरदार उसे छोड़ कर चले आये। तब राघोबा ने राक्षसभुवन के पास निज़ाम की सेना को, सन् १७६३ के १० अगस्त को, काट कर साफ़ कर दिया। इस लड़ाई में माधवराव पेशवा ने बहुत पराक्रम दिखलाया था। आखिर

राक्षसभुवन की लड़ाई में मराठों की विजय

निज़ाम ने सन्धि कर ली और उदगीर की लड़ाई में लिया हुआ प्रदेश उसने पुनः मराठों को दे दिया ।

इस युद्ध के समाप्त होने पर राघोबा ने राज्य का सारा कार-बार माधवराव को सौंप दिया और अपना समय धर्म-कार्य में बिताने के विचार से नासिक चला गया ।

हैदरअली की गड़बड़

माधवराव के हाथ में कारबार आते ही उसे जो पहली बात करनी पड़ी, वह हैदरअली से युद्ध करने की थी । इस हैदरअली का नाम पहले एक-दो बार आ ही चुका है । यह मैसूर-राज्य के एक छोटे-से नाइक का लड़का था, पर बढ़ते-बढ़ते मैसूर का सेनापति और फिर मैसूर का शासक बन बैठा । पानीपत की लड़ाई की खबर पाकर उसने भी अपने पैर उत्तर की ओर फैलाने की सोची। तुंगभद्रा के दक्षिण का सब प्रदेश उसने जीत लिया; चित्रदुर्ग, रायदुर्ग, हरपनहल्ली आदि रजवाड़ों से उसने कर वसूल किया और बिदनूर पर हमला करके उसका भी प्रदेश ले लिया । इसके बाद उसने सोन्धे नामक राज्य पर क़ब्ज़ा जमाया और फिर वह तुंगभद्रा के उत्तर की ओर गड़बड़ मचाने लगा । सावनूर के नवाब को दबाकर उससे दो लाख रुपये वसूल किये । फ़ैजुल्ला नामक सरदार को बेलगाँव, धारवाड़ और बीजापुर के क़िले जीतने का काम दिया और इनमेंके कई स्थान अपने क़ब्ज़े में कर लिये । जिस समय हैदरअली की यह हलचल हो रही थी उस समय माधवराव निज़ाम से लड़ने लगा था । निज़ाम से सन्धि होने पर उसने हैदरअली की ओर ध्यान दिया ।

माधवराव सन १७६४ के प्रारम्भ में हैदरअली पर चढ़ाई

करने के लिए रवाना हुआ। स्वयं पेशवा की १५ हज़ार और जागीरदारों की ४० हज़ार फ़ौज इस चढ़ाई के लिए निकली। सावनूर का नवाब और गुत्ती का मुरारराव घोरपड़े भी माधवराव से आ मिले। मराठों की चढ़ाई की खबर पाकर हैदरअली ने भी चढ़ाई की तैयारी की। मराठों के सामने मैदान में रुकना सम्भव न देख हैदर ने पहाड़ और जंगलों से मराठों की सेना पर गुप्त हमले करके उसे जर्जर करने का विचार किया। उसने भी फ़ैजुल्ला को १० हज़ार फ़ौज देकर धारवाड़ में रक्खा और ३० हज़ार गारदी, १२ हज़ार सवार, ५० तोपें तथा ७० हज़ार कानड़ी पैदल सेना लेकर तुगंभद्रा के पास अनाड़ी में उसने छावनी डाली।

हैदरअली से युद्ध का प्रारम्भ

तुंगभद्रा के उत्तर की ओर जो स्थान हैदर ने जीत लिये थे माधवराव ने पहले उन्हें वापस लिया। फिर तुंगभद्रा के दक्षिण की ओर के रजवाड़ों से कर वसूल किया।

हैदर का हार

इसके बाद उसने वापस जाने का बहाना करके हैदर को आगे बढ़ने के लिए प्रलोभन दिखलाया। हैदर-अली इस प्रलोभन में फँस गया और रटेहल्ली के पास मराठा सेना ने उसपर ज़ोरों का हमला किया। यदि लड़ाई के बाद शीघ्र ही रात न होती तो हैदर की सेना का बचना मुश्किल होता। वह यहाँ से बचकर अपनी छावनी को चला गया। अब बरसात शुरू हो गई, पर माधवराव ने इस चढ़ाई का काम पूरा होने पर ही वापस जाने का निश्चय किया। माधवराव ने धारवाड़ लेने पर हैदर की अनवड़ी की छावनी पर हमला किया और उसकी सेना को हरा दिया। हैदर भागकर जंगल में घुस गया। इसके बाद मराठों की

सेना अनवड़ी में आई और उसने हैदर को घेरकर उसकी रसद बन्द की। बिदनूर के रास्ते में एक लड़ाई हुई, उसमें हैदर हारकर बिदनूर को भाग गया। इसके बाद हैदर ने सन्धि की बातचीत शुरू की, पर शर्तें ठीक न होने के कारण लड़ाई जारी रही।

पेशवा और हैदर के बीच सन्धि

ऊपर बता चुके हैं कि राक्षसभुवन की लड़ाई के बाद राज्य-कारबार माधवराव को सौंपकर धर्म-कार्य में समय बिताने के विचार से राघोबा नासिक चला गया था। इस समय कुछ नीच लोगों के कहने में आकर उसने अपने भतीजे के विरुद्ध षड्यंत्र रचना शुरू किया। माधवराव को जब इस बात की खबर मिली, तब उसने राघोबा को अपने पास बुलाया। सन् १७६५ के प्रारम्भ में राघोबा माधवराव से आ मिला। मराठों का विचार पहले तो श्रीरंगपट्टम पर हमला करने का था, पर उन्होंने बिदनूर पर हमला किया। कोई उपाय न देख हैदर सन्धि के लिए तैयार हुआ। सन्धि में यह निश्चय हुआ कि उत्तर-कर्नाटक में हैदर ने जो मराठों का प्रदेश जीता था वह उन्हें वापस दे दे, मैसूर के कर के बदले मराठों को ३२ लाख रुपये दे और सावनूर के नवाब तथा मुरारराव घोरपड़े को किसी प्रकार की तकलीफ़ न पहुँचावे।

इस चढ़ाई से वापस आने पर राघोबा ने राज्य के आधे हिस्से के लिए माधवराव से झगड़ा किया। माधवराव ने देखा

निज़ाम से मेल करके पेशवा का जानोजी भोंसले को दबाना

कि यदि भोंसले और निज़ाम उससे मिलें तो वह शायद अपनी बग़ावत में सफल हो जाय। इसलिए माधवराव ने निज़ाम से मेल करने का निश्चय किया। दोनों में यह निश्चित

हुआ कि हम परस्पर सहायता करेंगे, जो एक का शत्रु होगा वह दूसरे का भी शत्रु समझा जायगा, और कर्नाटक की चढ़ाई दोनों मिलकर करेंगे। जानोजी भोंसले पहले जब निज़ाम से जा मिला था, तब माधवराव ने निज़ाम से फोड़ने के लिए ३२ लाख का प्रदेश उसे दिया था। समय की आवश्यकता देख माधवराव ने यह किया था सही, पर अपने मन में वह जानोजी से नाराज़ ही था। निज़ाम भी उससे नाराज़ था, क्योंकि ऐन वक्त पर वह पेशवा से जा मिला था। सन् १७६५ के जाड़े के प्रारम्भ में माधवराव पूना से बरार की ओर रवाना हुआ। रास्ते में निज़ाम की सेना उससे मिली। इतनी बड़ी फ़ौजसे लड़ने के लिए जानोजी भोंसले तैयार न था, इसलिए उसने मेल की बातचीत शुरू की। पहले उसने जो ३२ लाख का प्रदेश पाया था, उसमें से २४ लाख का वापस दे दिया। उसमें से एक-तिहाई माधवराव ने अपने पास रक्खा और दो-तिहाई सन्धि क़ायम रखने के लिए निज़ाम को दे दिया।

पानीपत की लड़ाई के बाद उत्तर-हिन्दुस्थान में रुहेले पठान, अयोध्या का नवाब आदि सभी मराठों का वर्चस्व कम करने और उनका प्रदेश जीतने का प्रयत्न कर रहे थे। पर सन १७६४ के २३ नवम्बर को अयोध्या के नवाब और मुग़ल बादशाह शाह-आलम ने मिलकर बंगाल के सूबेदार मीरक़ासिम से जो युद्ध किया और उसमें अंग्रेज़ों की जो विजय हुई, उसके बाद शुजाउद्दौला ने मराठों की मदद से अंग्रेज़ों को हराना चाहा। शुजाउद्दौला ने मल्हारराव होलकर की मदद ली,

उत्तर-हिन्दुस्थान पर मराठों की चढ़ाई

पर मल्हारराव से अंग्रेज़ों के विरुद्ध कुछ न बन पड़ा। तब शुजा-उद्दौला और मुग़ल बादशाह को अंग्रेज़ों से इलाहाबाद की सन्धि करनी पड़ी। उत्तर-हिन्दुस्थान में मराठों की यह स्थिति देख माधवराव ने राघोबा को उत्तर-हिन्दुस्थान में भेजने का विचार किया और राघोबा ने भी यह भार अपने ऊपर लेना स्वीकार किया। जानोजी भोंसले पर माधवराव ने सन् १७६५ में जो चढ़ाई की थी, उसमें राघोबा को भी अपने साथ लिया था। भोंसले से सन्धि होते ही राघोबा ने इस नई चढ़ाई की तैयारी की और उत्तर की ओर रवाना हुआ। उसके साथ जानोजी भोंसले ने अपने भाई मुधोजी को पाँच-सात हज़ार फ़ौज देकर भेजा और माधवराव ने नारोशंकर तथा विट्ठल शिवदेव विंचूर-कर को रवाना किया। मालवा में जाने पर राणोजी शिन्दे का लड़का महादजी शिन्दे, पँवार और मल्हारराव होलकर भी शामिल हुए। इस प्रकार क़रीब ४० हज़ार फ़ौज इस चढ़ाई के लिए तैयार हुई।

राघोबा की गोहद से सन्धि

राघोबा के ज़िम्मे दो काम किये गये थे। रुहेलों और अयोध्या के नवाब से मिलकर दिल्ली की बादशाही का बन्दोबस्त करना पहला काम था, और दूसरा काम जाट और राजपूत राजाओं को रास्ते पर लाने का था। इनमें से कोई भी काम प्रारम्भ न होने पाया था कि सन् १७६७ की २० मई को मल्हारराव होलकर की मृत्यु हो गई। इसलिए राघोबा कोई निश्चय न कर सका और कालपी में छावनी डालकर उसने बरसात काटी। बरसात समाप्त होते ही पहले जाटों की ख़बर लेने का राघोबा ने निश्चय किया।

इन जाटों में ग्वालियर के पास का गोहद का राणा बड़ा प्रबल हो गया था। मराठों को मदद देने के बदले उसे बाजीराव ने गोहद का परगना और क़िला जागीर दिया था, पर पानीपत की लड़ाई के बाद वह स्वतंत्र बन बैठा और मराठों के कुछ प्रदेश पर भी उसने क़ब्ज़ा कर लिया। इसलिए उसे दण्ड देने के विचार से राघोबा ने गोहद पर घेरा डाला। घेरे का काम अच्छी तरह न हो सका और अन्त में १५ लाख रुपये लेकर राघोबा ने घेरा उठा लिया। इस समय अन्य कई शत्रु राघोबा से लड़ने के लिए तैयार थे, पर उसकी इतनी तैयारी न थी, इसलिए कुछ सेना बुन्देलखण्ड में छोड़कर राघोबा उज्जैन को चला गया।

अहिल्याबाई के विरुद्ध कार्रवाई करने का राघोबा का व्यर्थ प्रयत्न

राघोबा ने उज्जैन में एक नये काम में हाथ डाला। मल्हार-राव की मृत्यु के बाद उसका पद उसके नाती मालीराव को दिया गया था, पर शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई। इसलिए होलकर के दीवान गंगा-धर यशवन्त चन्द्रचूड़ ने राघोबा से मिल-कर यह निश्चय किया कि मालीराव की माँ अहिल्याबाई को कोई छोटा लड़का दत्तक देकर मैं स्वयं राज्य का कारबार चलाऊँ और अहिल्याबाई के हाथ नाममात्र की भी सत्ता न रहे। अहिल्याबाई को यह बात बिलकुल पसन्द न आई। उसने राघोबा को संदेश भेजा कि मैं अपने राज्य में अपनी व्यवस्था आप करूँगी, गंगाधर पन्त को उसमें दख़ल देने की कोई ज़रूरत नहीं है। तुम बीच में पड़ो तो मैं तुमसे भी लड़ाई के लिए तैयार हूँ। मेरी हार भी हुई तो उसमें शर्म की कोई बात नहीं, क्योंकि आख़िर में स्त्री ही हूँ; पर यदि तुम हारे, तो तुम्हारी

बदनामी की कोई हद न रहेगी। माधवराव को भी अहिल्याबाई का कहना मान्य था। इसलिए राघोबा को अपना हट छोड़ना पड़ा। मल्हारराव के रिश्तेदारों में से तुकोजी नाम का एक सरदार था, उसे अहिल्याबाई ने अपनी सेना का सेनापति नियत किया; और गंगाधर पन्त को उसके पद से हटाकर सारा राज्य-कारबार उसने अपने हाथ में लिया। इस प्रकार अपने सारे विचार विफल हुए देख राघोबा को बड़ा खेद हुआ और वह आनन्दवल्ली को वापस चला आया।

माधवराव की हैदर पर दूसरी चढ़ाई और फिर से सन्धि

हैदरअली से जो सन्धि हुई थी, उसमें एक शर्त यह थी कि हैदर हर साल ३२ लाख रुपये मराठों को कर दे; पर उसने इस शर्त का पालन न किया। इसलिए माधवराव को उसपर दूसरी चढ़ाई करनी पड़ी। इस चढ़ाई का एक दूसरा कारण भी था। अब निज़ाम और अंग्रेज़ों में मेल होगया था और सन् १७६६ में दोनों ने यह निश्चय किया था कि हम दोनों मिलकर पहले हैदर पर और फिर मराठों पर चढ़ाई करें। उनका यह विचार विफल करने के लिए माधवराव ने हैदर पर सन् १७६७ में चढ़ाई करदी। उसने हैदर के राज्य का पूर्व-भाग उद्ध्वस्त कर डाला और शिरे नामक स्थान ले लिया। तब हैदर सन्धि के लिए तैयार हुआ। बालाजी बाजीराव के समय जितना प्रदेश मराठों के क़ब्ज़े में था उतना उसने मराठों को वापस देना स्वीकार किया। इसके सिवाय उसके पास से मराठों को ३३ लाख रुपये मिले। हैदर ने यह भी मंज़ूर किया कि मैं रजवाड़ों को तथा मुरारराव को न सताऊँगा। इसके बाद माधवराव शीघ्र पूना आया, क्योंकि राघोबा ने

राज्य के आधे हिस्से का झगड़ा फिर से उठा दिया था।

राघोबा की किसी वात में एक भी न चली, इसलिए वह पेशवा से बड़ा नाराज़ हुआ। उसने पुराना झगड़ा फिरसे उठाया।

राघोबा ने फिरसे झगड़ा उठाया और किसी प्रकार माधवराव ने उसे मनाया

माधवराव ने सखाराम बापू को मेल की बातचीत करने के लिए राघोबा के पास आनन्दवल्ली भेजना चाहा, पर सखाराम बापू ने इस झगड़े में पड़ने से इनकार कर दिया। अन्त में बड़ी मुश्किल से राघोबा और माधवराव की भेंट हुई। इस समय माधवराव ने उससे साफ़ कह दिया कि या तो राज्य का कारबार करो या मिली हुई जागीर से सन्तुष्ट रहो। राघोबा ने यह कहा कि मैं अपना समय पूजा-अर्चा में बिताना चाहता हूँ, पर २५ लाख रुपये का मेरा क़र्ज़ दिवाली के पहले तुम्हें अदा करना होगा। माधवराव ने राघोबा की शर्त मानली और उसके अधिकार के सातारा, शिवनेरी, नगर तथा असीरगढ़ नाम के चार क़िले अपने क़ब्ज़े में कर लिये। अब माधवराव को यह आशा हो गई कि मराठा-राज्य अन्तःकलह से नष्ट होने से बच जायगा। पर भविष्य का ज़िम्मा कौन ले सकता है!

सन् १७६८ के अप्रैल का महीना समाप्त भी न हुआ था कि राघोबा ने फिर सिर उठाया। राघोबा ने फ़ौज जमा की और आनन्दवल्ली से आगे बढ़ा। गंगाधर यशवंत चन्द्रचूड़ उससे जा मिला। दमाजी गायकवाड़ ने भी कुछ फ़ौज उसकी मदद के लिए भेजी। जानोजी भोंसले भी इसके लिए फ़ौज जमा कर रहा था। यही नहीं बल्कि आगे-पीछे अंग्रेज़ों

राज्य के आधे हिस्से के लिए राघोबा का फिर से झगड़ा

से भी मदद मिलने की उसे आशा थी; और निज़ाम से भी उसने बातचीत की थी। कोई यह न कहने पावे कि 'तुम्हारे तो लड़का है नहीं, फिर तुम राज्य लेकर क्या करोगे ?' इसलिए भुसकुटे उपनाम के एक ब्राह्मण लड़के को उसने गोद लिया और उसका नाम अमृतराव रक्खा। इस प्रकार राज्य का आधा हिस्सा लेने की राघोबा ने पूरी तैयारी की।

माधवराव ने यह विचार किया कि भोंसले और निज़ाम के राघोबा से मिलने के पहले ही राघोबा को दबा डालना चाहिए।

राघोबा की हार और क़ैद

इसलिए उसने अपने सब सरदारों को सेना लेकर बुलाया। उसके पास क़रीब ४० हज़ार फ़ौज जमा हुई। इस बात की ख़बर पाकर राघोबा ने धोड़प क़िले का आश्रय लिया। यहाँ पर दोनों फ़ौजों के बीच जो भयंकर युद्ध हुआ, उसमें राघोबा का दीवान मोरो विट्ठल रायरीकर मारा गया। अब माधवराव ने क़िले को घेर लिया और मोर्चेबन्दी की। तब राघोबा पत्नी सहित माधवराव के अधीन हुआ। फिर राघोबा की जागीर क़ब्ज़े में लेने के लिए फ़ौज भेजी और माधवराव पूना वापस आया (२३ जून सन १७६८)। उसने राघोबा को शनिवार-वाड़े में बन्दी कर दिया।

इसके बाद माधवराव पेशवा ने राघोबा को मदद करने वाले सरदारों को दण्ड देने का काम हाथ में लिया। गंगाधर यशवंत

चन्द्रचूड़ और गायकवाड़ का दमन

चन्द्रचूड़ को क़ैद कर उससे बहुत-सा रुपया माँगा। इसी प्रकार दमाजी गायकवाड़ के लड़के गोविन्दराव को माधवराव ने क़ैद किया और दमाजी की मृत्यु के बाद ५० लाख से भी कुछ

अधिक रुपये लेकर तथा अपनी चाकरी का इक़रार करवा कर उसे उसके पिता का पद दिया। राघोबा को मदद करने वालों में से तीसरा बड़ा सरदार जानोजी भोंसले था; पर इस समय बरसात प्रारम्भ हो चुकी थी, इसलिए उसपर चढ़ाई करने का काम स्थगित करना पड़ा।

जानोजी के प्रदेश पर क़ब्ज़ा

परन्तु इस समय माधवराव चुपचाप नहीं बैठा था। उसने निज़ाम और हैदर से यह बातचीत शुरू की कि हम-तुम मिलकर अंग्रेज़ों की ख़बर लें। पर यह केवल दिखाऊ बात थी। वास्तव में उसका रुख़ जानोजी की ओर था। सन १७६९ के जाड़े में निज़ाम से मिलकर माधवराव ने जानोजी पर चढ़ाई की। उसका बहुत-सा प्रदेश उसने ज़ब्त कर लिया। उसके देशमुखी और घास-दाने के हक़ भी निकाल लिये और नागपुर लेकर उसकी सेना ने उसे ख़ूब लूटा। फिर भण्डारा का क़िला लेकर माधवराव चान्दा लेने गया। इस क़िले का घेरा डालना पड़ा। घेरे की ख़बर पाकर जानोजी चान्दा की सहायता के लिए पहुँचा। दोनों पक्षों में जो लड़ाई हुई, उसमें भोंसले की हार हुई। चाँदा लेने के बाद सेना ने भोंसले के राज्य का बहुत-सा प्रदेश जीत लिया और कई क़िले ले लिये। पेशवा की बड़ी भारी सेना से लड़ने की शक्ति न होने के कारण जानोजी इधर-उधर भटकता रहा।

इतने में जानोजी को अपनी रक्षा का एक उपाय सूझा। उसने सोचा कि जिस प्रकार पेशवा और निज़ाम मेरे प्रदेश में

लूटमार कर रहे हैं उसी प्रकार यदि मैं उनके प्रदेश में लूटमार मचाऊँ, तो वे अपने प्रदेश की रक्षा के लिए मेरे पीछे आवेंगे और इस प्रकार मेरे प्रदेश की रक्षा हो जायगी। यह उपाय बहुत ठीक निकला। उसने अपनी छावनी में कुछ फ़ौज, डेरे वग़ैरा रहने दिये और स्वयं १५ हज़ार घुड़सवार लेकर शीघ्रता से पूना की ओर चला। माधवराव को जब यह खबर मिली तो उसने अपनी आधी सेना तुरन्त भोंसले के पीछे भेजी और फिर स्वयं उसे वापस आना पड़ा, क्योंकि इस चढ़ाई में सैनिकों का मन नहीं लगता था। माधवराव की सेना जानोजी के पीछे पड़ गई और अन्त में जानोजी को घेरकर शरण आने के लिए बाध्य किया। तब १७६९ के २३ मार्च को दोनों में मेल हुआ। जानोजी को राक्षसभुवन की लड़ाई के बाद जो जागीर मिली थी, उसमें से २४ लाख की जागीर पेशवा ने पहले ही वापस ले ली थी। अब बची हुई ८ लाख की जागीर भी वापस ले ली। इसके सिवाय निम्नलिखित मुख्य शर्तें भोंसले ने मान लीं—(१) दिल्ली के बादशाह, अयोध्या के नवाब, रुहेले, अंग्रेज़ और निज़ाम में से किसी से भी पेशवा की इजाज़त के बिना मैं बातचीत न करूँगा; (२) हरसाल पाँच लाख रुपये पाँच किश्तों में पटाऊँगा; (३) अपनी फ़ौज पेशवा की सलाह के बग़ैर कम-अधिक न करूँगा और सरकारी काम के लिए सदैव हाज़िर रहूँगा; (४) अब आगे पेशवा के प्रदेश में में घास-दाना वसूल न करूँगा और निज़ाम के प्रदेश के घास-दाने के बदले निश्चित रक़म निज़ाम से लूँगा। पेशवा ने यह स्वीकार

जानोजी माधवराव की शरण और दोनों में सन्धि

किया कि उत्तर की ओर सेना ले जाते समय मैं भोंसले के प्रदेश में किसी प्रकार की तकलीफ न होने दूँगा और शत्रु से उसकी रक्षा करूँगा। इस तरह भोंसले को माधवराव ने अच्छी तरह दबा डाला।

जानोजी के झगड़े के समय राघोबा ने क़ैद से छूट कर भागने का प्रयत्न किया था; पर नाना फड़नवीस को समय पर उसकी ख़बर मिल गई, इससे राघोबा का प्रयत्न निष्फल हुआ। इसके बाद राघोबा ने अनशन शुरू किया; पर माधवराव ने जब धर्मादे के लिए दो लाख रुपये देना स्वीकार किया, तब उसने अपना अनशन बन्द कर दिया।

राघोबा का अनशन

जिस समय माधवराव पेशवा भोंसले को दबाने में लगा था, ठीक उसी समय हैदर का अंग्रेज़ों से होनेवाला युद्ध समाप्त हुआ। हैदर ने देखा कि पेशवा इस समय दूसरे काम में व्यस्त है, इसलिए उसने मराठों के कुछ प्रदेश जीतने का विचार किया। पहले उसने चित्रदुर्ग और हरपनहल्ली नामक दो रजवाड़ों से बहुत-सा कर वसूल किया और फिर सावनूर के नवाब के प्रदेश में घुसा। यह देख माधवराव ने उसपर चढ़ाई करने का निश्चय किया।

हैदरअली की मराठों से फिर छेड़छाड़

गोपालराव पटवर्धन ने हैदरअली पर अनवड़ी के पास देख-रेख रक्खी और माधवराव श्रीरंगपट्टम पर चढ़ाई करने के विचार से आगे बढ़ा। हैदर ने इस समय मराठों को फँसाने का बहुतेरा प्रयत्न किया, परन्तु सफलता न मिली। माधवराव क़िले और स्थान जीतते-जीतते बंगलोर तक पहुँचा। पर बंगलोर लेने का काम शीघ्र न हो

हैदर के बहुत से क़िले और स्थान माधवराव पेशवा के क़ब्ज़े में

सकने के कारण खुद हैदर की सेना पर माधवराव ने हमला करने का विचार किया। हैदर माधवराव की चाल को समझकर श्रीरंगपट्टम भाग गया। सन् १७७० के ३० अप्रैल को मराठों ने निजगल का क़िला जीत लिया। इस समय तक मराठों ने कई क़िले और बहुत-सा प्रदेश जीत लिया था। पर हैदर अब भी उनकी शर्तें मानने को तैयार न था, इसलिए अन्त में माधवराव ने त्रिम्बकराव मामापेठे के अधीन फ़ौज रखदी और स्वयं पूना को वापस चला गया।

मोतीतलाव की लड़ाई

बरसात में त्रिम्बकराव ने गुरमकुण्डा का प्रदेश जीता। बरसात के बाद माधवराव फिर आया, पर स्वास्थ्य दिनोंदिन बिगड़ने के कारण वह पूना को वापस चला गया। सन् १७७१ के प्रारम्भ में गोपालराव पटवर्धन की मृत्यु हुई। बरसात समाप्त होने पर त्रिम्बकराव मामा ने बिदनूर-प्रान्त पर चढ़ाई करने की सोची। इसपर हैदर ने उसपर अचानक रास्ते में हमला करने का विचार किया। पर त्रिम्बकराव ने उसकी सब बातों का पता लगाकर मेलकोट के पास उसे घेर लिया। यहाँ पर दोनों पक्षों में बड़ी भारी लड़ाई हुई। हैदर की हार हुई और वह वहाँ से भाग गया। यह लड़ाई सन् १७७१ के मार्च महीने की ८ तारीख को हुई। इसे मोतीतलाव की लड़ाई कहते हैं।

हैदर से सन्धि

इसके बाद त्रिम्बकराव ने श्रीरंगपट्टम को घेरा, पर जीतने की सम्भावना न देख उसे छोड़ देना पड़ा। इसके बाद वह कावेरी के आस-पास दंगा-फ़िसाद मचाता रहा और बेलोर में छावनी डाली। इस बीच में

उसने तंजोर के राजा को मुहम्मदअली के विरुद्ध मदद दी और दोनों से उसने रुपया वसूल किया था। आगे उसका विचार बिदनूर पर चढ़ाई करने का था, पर पेशवा की चिट्ठी मिली कि मेरे बचने की आशा बहुत कम है, इसलिए हैदर से किसी प्रकार की सन्धि कर सेना-सहित वापस चले आओ। तब त्रिम्बकराव ने हैदरअली से सन्धि करली। इसके अनुसार कर्नाटक का जो प्रदेश शिवाजी के स्वराज्य में शामिल था, बंगलोर को छोड़कर, वह सब मराठों के हाथ लगा। बंगलोर के बदले उन्हें मधुगिरी मिली। इसके सिवाय ब्रह्मकुण्डा का जो प्रदेश उन्होंने जीता था वह भी उनके पास रहा। हैदर ने पिछले बक़ाये के तथा लड़ाई के खर्च के एवज़ में पेशवा को ५० लाख रुपये दिये और हरसाल १४ लाख रुपये देना स्वीकार किया। तब मराठा फ़ौज महाराष्ट्र को वापस चली गई।

मराठों की उत्तरहिन्दुस्थान पर चढ़ाई

सन् १७६६ में राघोबा ने उत्तर-हिन्दुस्थान पर जो चढ़ाई की थी, उसका वर्णन किया जा चुका है। हम यह देख चुके हैं कि राघोबा से उस समय कुछ न हो सका। इसलिए उसके वापस आने पर मराठों के शत्रुओं ने फिर से सिर उठाना शुरू किया। तब उत्तर-हिन्दुस्थान पर पुनः चढ़ाई करने की आवश्यकता माधवराव को जान पड़ी। अतः जानोजी भोंसले के विरुद्ध दूसरी चढ़ाई के बाद रामचन्द्र गनेश कानड़े को १५ हज़ार फ़ौज देकर उसे उत्तर-हिन्दुस्थान में भेजा और विसाजी कृष्ण बिनीवाले को उसका कारबारी नियत किया।

तुकोजी होलकर और महादजी शिन्दे, भी पंद्रह-पंद्रह हज़ार फ़ौज लेकर इस चढ़ाई में शामिल हुए। सन् १७६९ की बरसात मराठा सेना ने बुन्देलखण्ड के बाग़ियों को दबाने में काटी। इसके बाद मराठों ने भरतपुर पर चढ़ाई की। इस समय यहाँ का राजा केसरी नाम का लड़का था, इसलिए राज्य का कारबार उसका चाचा नवलसिंह देखता था। जाटों और मराठों के बीच जो लड़ाई हुई, उसमें जाट हार गये। तब नवलसिंह मराठों की शरण आया और उसने मराठों का जो आगरा प्रान्त और क़िला ले लिया था वह वापस दे दिया; साथ ही ६५ लाख रुपये भी दिये। इसके बाद मराठों ने अपना मोर्चा दिल्ली की ओर फेरा और पानीपत की लड़ाई के शत्रुओं की खबर लेनी चाही, पर परस्थिति देखकर मराठों ने नजीबखाँ से मेल किया और दोआब में मराठों का जो प्रदेश था उसकी सनदें नजीबखाँ ने जमानबख्त से उनके नाम लिखवा दीं। इसके बाद सन् १७७० में मराठे नजीबखाँ को लेकर दोआब में घुसे। यहाँ पर नजीबखाँ फिर से उन्हें धोखा देना चाहता था, पर अक्तूबर में अचानक उसकी मृत्यु हो जाने से पहले जैसा मौक़ा न आया। दोआब में घुसने पर मराठों ने एक के बाद दूसरा स्थान लेना शुरू किया और सारे प्रदेश को जीतकर साफ़ कर डाला। हाफ़िज रहमतखाँ रुहेलखण्ड को भाग गया और अहमदखाँ बंगश को मेल करना पड़ा। उसने पानीपत की लड़ाई के बाद जीता हुआ सब प्रदेश मराठों को दे दिया।

हम यह देख चुके हैं कि सन १७६५ की सन्धि के बाद बादशाह शाहआलम अंग्रेजों का मातहत बन चुका था और

इलाहाबाद में रहता था। उसकी बड़ी इच्छा थी कि मैं अपने पूर्वजों की राजधानी दिल्ली में रहूँ, पर अंग्रेज उसकी यह इच्छा पूरी न करते थे। इसलिए वह मराठों के आश्रय में गया। महादजी शिन्दे और विसाजी कृष्ण विनोवाले ने यह काम अपने जिम्मे लिया और उसे सन् १७७१ के दिसम्बर महीने की २५ वीं तारीख को दिल्ली ले गये। इस प्रकार पानीपत की लड़ाई के केवल १० वर्ष बाद दिल्ली-दरबार में मराठों का महत्व फिरसे प्रस्थापित हुआ। इस समय बादशाह और मराठों में यह इक़रार हुआ कि पानीपत की लड़ाई के पहले मराठों के हाथ में जो-जो जागीरें थीं--वे उन्हें दे दी जायँ और मुहम्मदशाह के समय से चौथ का जो बक़ाया रह गया था वह पटा दिया जाय। इसके बदले मराठे बादशाह के शत्रु को हरावें। शत्रुओं पर दोनों मिलकर चढ़ाई करें और जो कुछ लाभ हो उसे आधा-आधा बाँट लें।

बादशाह शाहआलम मराठों के आश्रय में

इसके बाद मराठों ने रुहेलों को दबाने का विचार किया। इसी समय पेशवा ने रामचन्द्र गणेश कानड़े को वापस बुला लिया और फ़ौज का अधिकार विसाजी कृष्ण विनोवाले को दिया। नजीबख़ाँ का लड़का जबेताख़ाँ शुक्रताल में रहता था, इसलिए मराठों ने शुक्रताल का घेरा डाला और उसपर तोपों की मार शुरू की। इसपर जबेताख़ाँ बिजनौर जिले को भाग गया। तब मराठे भी वहाँ घुसे। अब जबेताख़ाँ नजीबगढ़ से भाग गया, इसलिए मराठों ने तुरन्त उसपर अधि-

मराठों का जबेताख़ाँ को तंग करना और वापसी

कार जमा लिया। इसके बाद उन्होंने पत्थरगढ़ जीता। यहाँ नजीबुद्दौला द्वारा पानीपत की लड़ाई के बाद लूटी गई अपार सम्पत्ति भरी हुई थी, वह सब फिर से मराठों के हाथ लगी। जबेता के बाल-बच्चे भी उनके हाथ पड़े। इसके बाद मराठा फ़ौज सारे रुहेलखण्ड में फैल गई और उसका विध्वंस करने लगी। इस समय मराठों का डर रुहेलों के मन में इतना समा गया था कि किसी भी मराठा सवार को देखते ही रुहेले भाग जाते थे। बरसात प्रारम्भ होने पर कुछ मराठा फ़ौज दोआब को लौट आई और कुछ दिल्ली चली गई। बरसात के बाद वे रुहेलखण्ड पर फिर से चढ़ाई करने वाले थे, पर माधवराव की बढ़ती हुई बीमारी के कारण उन्हें दक्षिण में वापस आना पड़ा।

माधवराव की मृत्यु और पेशवा के पद पर उसका भाई नारायणराव

माधवराव को बहुत दिनों से क्षय-रोग होगया था। इसीके कारण हैदर के विरुद्ध दूसरी चढ़ाई के समय, दूसरी बार आने पर भी, उसे पूना को लौट जाना पड़ा था। उसकी बीमारी के कारण त्रिम्बकराव को हैदर से शीघ्र सन्धि करनी पड़ी और उत्तर-हिन्दुस्थान की उसके समय की आखरी चढ़ाई भी अधूरी रही। सन १७७२ के १८ नवम्बर को माधवराव की मृत्यु हुई। उसके साथ उसकी स्त्री रमाबाई सती हुई। उसके कोई लड़का न होने के कारण उसने अपने छोटे भाई नारायणराव को राज्य का उत्तराधिकारी नियत किया और राज्य का काम राघोबा को करने के लिए कहा।

माधवराव को जिस समय राज्याधिकार प्राप्त हुआ, उस समय

वह १७ वर्ष का लड़का था; और उसने केवल ११ वर्ष राज्य किया।

माधवराव की योग्यता

उसका शरीर रोगग्रस्त होने पर भी वह बड़ा मिहनती था। दंगे-फ़िसाद के समय भी वह न्यायपूर्ण व्यवहार करता था। थोड़े-से समय के भीतर उसने निज़ाम को झुकाया, हैदर को दबाया और उत्तर के रुहेले पठान आदि शत्रुओं को हराया। पानीपत की लड़ाई के बाद मराठों के शत्रुओं को ऐसा जान पड़ता था कि अब मराठे किसी काम के न रहे, पर थोड़े ही समय के भीतर बालाजी के समय के समान ही माधवराव ने भी मराठों की धाक उत्तर और दक्षिण में फिर से जमा दी। माधवराव बहुत थोड़ी आयु में मर गया। यदि वह दीर्घायुषी होता तो उसने हिन्दूपदपादशाही की स्थापना की कल्पना अवश्य परिपूर्ण की होती। माधवराव केवल परिश्रमी ही न था, बल्कि बुद्धिमान भी था। अवकाश के समय वह राज्य-कारबार की छोटी-छोटी बातों पर भी ध्यान दिया करता था। सरकारी रुपये खाने वाले कई लोगों को उसने पकड़ा और दण्ड दिया, इससे कामचोर और रुपये खानेवाले लोगों की उसके सामने कुछ न चलती थी। रुवाबदार भी वह खूब था, जिससे छोटे-बड़े सभी अपना-अपना काम ठीक तौर से किया करते थे और अपना दर्जा देखकर चलते थे। वास्तव में माधवराव पेशवों में बड़ा तेजस्वी पुरुष हो गया है।

२६

बारहभाई की खेती

माधवराव की मृत्यु के बाद, पूर्व-निश्चय के अनुसार, उसका छोटा भाई नारायणराव पेशवा हुआ। नारायणराव की आयु इस समय क़रीब १७ वर्ष थी। माधवराव भी पेशवा होते समय इतनी ही आयु का था, पर माधवराव के गुण नारायणराव में नाम-मात्र को भी न थे। माधवराव स्वभाव से अत्यन्त शान्त और विचार-पूर्वक कार्य करने वाला पुरुष था। नारायणराव में बहुत अधिक जल्दबाज़ी थी, इस कारण वह मातहत लोगों को ठीक तौर पर न चला सका। अपनी जल्दबाज़ी के कारण सखाराम बापू जैसे अनुभवी और वृद्ध पुरुष का भी उसने अपमान किया, इसलिए राज्य-कार्य से सखाराम बापू ने अपना हाथ खींच लिया। नारायणराव में एक दोष और था। वह किसी पर भी बहुत जल्द विश्वास कर लेता था। इसलिए नीच लोग राज्य-कार्य में दखल देने लगे

नारायणराव के स्वभाव के दोष

और पुराने पुरुषों का कोई मान न रह गया। नारायणराव के स्वभाव के इन दोषों का बहुत बुरा परिणाम हुआ।

नारायणराव की जल्दबाज़ी के कुछ उदाहरण

राघोवा, उसकी पत्नी आनन्दीबाई और उसके नौकर-चाकरों ने विद्रोह का प्रयत्न किया। नारायणराव को जब इस बात की खबर लगी, तो उसने काफ़ी पूछ-ताछ किये बिना ही राघोवा को क़ैद में डाल दिया। इसके बाद जब नारायणराव गंगापुर में अपनी माता से मिलने गया, तब राघोवा ने फिरसे विद्रोह का प्रयत्न किया; परन्तु इस बार भी उसका प्रयत्न विफल हुआ। नारायणराव की जल्दबाज़ी का एक उदाहरण और है। सन् १७७२ में जानोजी भोंसले की मृत्यु हुई। उसके कोई लड़का न था, इसलिए उसने अपने भाई मुधोजी के लड़के रघुजी को दत्तक लिया और अपने बाद अपना पद उसे दिलवाने की कोशिश की। परन्तु मुधोजी राघोवा का पक्षपाती, था इसलिए नारायणराव ने जानोजी का पद तथा जागीर मुधोजी के भाई साबाजी को दे डाली। इसपर दोनों भाइयों में झगड़ा शुरू हुआ। इसी प्रकार एक और दूसरा झगड़ा उस समय उपस्थित हुआ। ब्राह्मणों ने परभु जाति के विरुद्ध शिकायत की और नारायणराव ने यह फ़ैसला दे दिया कि परभु क्षत्रिय नहीं हैं, इसलिए वेदोक्त कर्म करने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है; वे शूद्रों के समान रहें। उसके इस फ़ैसले के कारण परभु जाति बिगड़ उठी और उन्होंने राघोवा का पक्ष लिया।

माधवराव की मृत्यु के बाद हैदर के मन में मराठों का डर

पहले-जैसा न रहा। उसने सोचा कि मराठों ने जो मेरा मुल्क जीता है उसे वापस लेने का यह अच्छा मौक़ा है। हैदर का यह विचार जब नारायणराव को मालूम हुआ, तो उसने युद्ध की तैयारी की। उसने बिसाजी कृष्ण बिनीवाले तथा तुकोजी होलकर को बहुत जल्द दक्षिण में आने के लिए लिखा। पर पूना में कुछ दूसरा ही नाटक खेला जाने वाला था।

नारायणराव की हैदर से युद्ध की तैयारी

ऊपर बतला ही चुके हैं कि मुधोजी भोंसले राघोबा का पक्षपाती था, इसलिए नारायणराव ने जानोजी का पद तथा जागीर साबाजी को दे डाली। साबाजी ने मुधोजी को दबाने का प्रयत्न किया, पर उसमें वह विफल हुआ। इसलिए नारायणराव ने स्वयं उसकी सहायता के लिए जाने का विचार किया। तब राघोबा के पक्षपातियों ने इस बात का षड्यंत्र रचना शुरू किया कि मुधोजी पर पेशवा की यह चढ़ाई न होने पावे। इसके लिए उन्होंने राघोबा को क़ैद से छुड़ाने का भी प्रयत्न किया। पर ज्यों-ज्यों बड़े लोग उस षड्यंत्र में शामिल होने लगे त्यों-त्यों उनका उद्देश केवल राघोबा को छुड़ाने का न होकर नारायणराव को क़ैद करने और राघोबा को छुड़ाकर उसे ही पेशवा बनाने का होने लगा। इस षड्यंत्र में सखाराम बापू भी शामिल था। यह ऊपर बतला ही चुके हैं कि जल्दबाज़ी के कारण नारायणराव ने इस कारस्थानी पुरुष का अपमान किया था। यह पहले से ही राघोबा का पक्षपाती था, अपमान होने पर वह भी राघोबा के षड्यंत्र में शामिल हो गया

पूना में नारायणराव को क़ैद कर राघोबा को पेशवा बनाने का षड्यन्त्र

और अपने साथ भवानराव प्रतिनिधि, रामचन्द्र बाबा के लड़के सदाशिव रामचन्द्र, चिन्तो विट्ठल रायरीकर आदि लोगों को भी शामिल कर लिया। इन षड्यंत्रकारियों ने नारायणराव को पकड़ने का काम पेशवा के मातहत गारदी * लोगों से करवाने का निश्चय किया। इन गारदियों में खड़गसिंह, सुमेरसिंह और मुहम्मद यूसुफ़ मुख्य थे। पाँच लाख रुपये पाने के बदले वे नारायणराव को क़ैद करने को तैयार हुए।

पड्यंत्र में पड्यंत्र

नारायणराव को क़ैद करने के इस षड्यंत्र के भीतर एक और षड्यंत्र रचा गया। इसके संचालन का काम राघोबा की दुष्ट स्त्री आनन्दीबाई ने अपने ऊपर लिया। राघोबा से नारायणराव को क़ैद करने का हुक्म आनन्दीबाई ने अपने हाथ में लिया और जहाँ उसमें नारायणराव को धरने की बात लिखी थी वहाँ 'ध' की जगह 'मा' करके उस हुक्म को बदल दिया और इस प्रकार नारायणराव के खून की तैयारी की।

गारदियों के हाथों नारायणराव का वध

यह षडयंत्र सिद्ध होने के लिए पूना में कुछ अनुकूल स्थिति भी थी। बरसात के कारण सैनिक लोग घर चले गये थे, इसलिए पूना में केवल तीन-चार हज़ार फ़ौज बची थी। नरायणराव को इस बात का ख़याल भी न था कि मेरे विरुद्ध कोई षड्यंत्र रचा जा चुका है। सन १७७३ के ३० अगस्त

---

* यहाँ यह शब्द 'गार्डस' नामक अंग्रेज़ी शब्द से बना है। इसका अर्थ था क़वायद सीखे हुए सिपाही।

को नारायणराव अपनी ससुराल में भोजन के लिए गया था। भोजन करने पर वहाँ उसे खबर लगी कि गारदी लोग दंगा-फ़िसाद मचा रहे हैं। उस दिन सवेरे भी उसे इस बात की खबर लग चुकी थी कि गारदी लोग कुछ दंगा-फ़िसाद करनेवाले हैं, पर उसके सेनापति हरिपंत फड़के ने उसे दबाने का प्रबन्ध न किया। नारायणराव को जब ससुराल में गारदियों के दंगा-फ़िसाद की सूचना मिली, तब उससे यह भी कहा गया कि आप अपने वाड़े में अब न जाइए; पर विधि-लेख नहीं मिट सकता! थोड़ी ही देर के बाद वह शनिवारवाड़े में वापस चला गया। उसके पीछे सुमरेसिंह, खड़गसिंह और मुहम्मद यूसुफ आये। वेतन के बहाने उन्होंने नारायणराव से कुछ कड़ी बातें कहीं और अपनी तलवारें निकालीं। नारायणराव भागकर राघोबा की ओर जाने लगा। रास्ते में एक कुनबिन ने गारदियों को रोकना चाहा, पर उन्होंने उसे मार डाला। चौक में दो गायें बँधी थीं, तलवारें देखकर वे भड़क उठीं और गारदियों पर दौड़ीं। इसलिए उन्होंने गायों को भी मार डाला। नारायणराव भागकर राघोबा से जा लिपटा, पर राघोबा ने उसकी रक्षा नहीं की। आनन्दीबाई के खिदमतगार तुलाजी पँवार ने जब नारायणराव को ज़मीन पर गिराया तब चापाजी टिलेकर नाम के पेशवा के एक खिदमतगार ने पेशवा को बचाने का प्रयत्न किया, पर गारदियों ने दोनों को अपनी तलवारों से मार डाला। इसके बाद गारदियों ने राघोबा के नाम से घोषणा की और इस महल को उन्होंने अपने क़ब्ज़े में ले लिया। लोगों को जब इस खून की बात मालूम हुई तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ और गारदियों पर बड़ा गुस्सा आया, पर जहाँ-तहाँ गारदियों ने अपना अधिकार जमा लिया

था। खून की खबर पाकर सखाराम बापू, नाना फड़नवीस, त्रिम्बकराव पेठे, मोरोबा दादा वग़ैरा मुखिया लोगों ने सवार इकट्ठे कर शहर की नाकेबन्दी की; पर राघोबा ने इनमें से कुछ लोगों को अपना पहले का काम करने को कहा। भरपूर सबूत मिलने तक इन लोगों ने भी राघोबा का कहना मानना ही ठीक समझा। गारदियों से जो इक़रार किये थे उसके अनुसार ५ लाख रुपये और २ क़िले उन्हें देने थे, पर किसी प्रकार ८ लाख रुपये पाने पर गारदियों ने शनिवारवाड़ा छोड़ दिया।

राघोबा को पेशवा-पद मिलने पर उसके सहायक उसके पास जमा होने लगे। राघोबा ने सेनासाहेब सूबा नाम का पद रघुजी को फिर से दिया और मुधोजी को उसका पालक नियत किया। पुराने सरदारों की जागीरें कम करके अपने सहायकों को उसने जागीरें दीं। भवानराव प्रतिनिधि, गंगाधर यशवंत चन्द्रचूड़, चिन्तो विट्ठल रायरीकर आदि लोगों को बड़े-बड़े पद मिले। रायरीकर तो राघोबा का दीवान ही बन गया। पुराने सरदार भी, चाहे अप्रसन्नता से ही क्यों न करते हों, अपना पहले का काम किये जा रहे थे। पर उनका अन्तःकरण राघोबा के विरुद्ध था।

राघोबा के पक्षपातियों की बढ़ती

राज्य के बाहर भी परिस्थिति राघोबा के लिए विशेष अनुकूल न थी। बम्बई के अंग्रेज़ लोग नारायणराव के खून के समय से साष्टी पर हमला करने के लिए तैयार बैठे थे। पोर्तगीज़ और हब्शी भी गड़बड़ मचा रहे थे। साबाजी भोंसले, निज़ामअली और हैदरअली भी पेशवा के राज्य पर हमला करने

राघोबा के लिए प्रतिकूल परिस्थिति

को तैयार थे। निज़ामअली ने साबाजी की मदद की। माधवराव ने तुंगभद्रा के दक्षिण में जो देश जीता था उसे हैदरअली ने लूटना शुरू किया।

राघोबा ने पहले निज़ामअली और साबाजी को दबाने का प्रयत्न किया और इसलिए उसने क़रीब ४५ हज़ार सेना लेकर निज़ाम पर चढ़ाई की। निज़ाम बेदर में घिर गया, इसलिए उसने २० लाख की जागीर और औरंगाबाद देने की शर्त पर संधि कर ली। इतने में निज़ाम राघोबा की मुलाक़ात के लिए आया और उसने उससे ऐसी मीठी-मीठी बातें कीं कि राघोबा उसके भुलावे में आगया और इस संधि के अनुसार मिली हुई सब जागीर निज़ाम को वापस कर दी। शर्त यही रक्खी कि जब कभी काम पड़े तब निज़ाम सैनिकसहायता दे। निज़ाम ने यह शर्त स्वीकार कर ली। इसके बाद राघोबा ने हैदर-अली पर चढ़ाई की। हैदर ने मेल की बातचीत करके शर्तें निश्चित कर डालीं। इसके बाद वह कर्नाटक पर चढ़ाई करने वाला था, पर पूना से जो ख़बर मिली उसके कारण वह लौट आया। राघोबा की ग़ैरहाज़िरी में पूना में उसके विरुद्ध पुराने सरदारों ने एक षड्यंत्र रचा। उन्होंने निश्चय किया कि नारायणराव की पत्नी गंगाबाई गर्भवती है, इसलिए उसके लड़का हुआ तो ठीक ही है अन्यथा एक लड़का उसकी गोद देकर उसके नाम से राज्य का कार-बार चलायेंगे। इस षड्यंत्र में सखाराम बापू और नाना फड़न-वीस मुख्य थे। दस-बारह बड़े-बड़े लोग और भी शामिल थे। इसलिए उनके षड्यंत्र को "बारहभाई का कारस्थान" कहते हैं।

निज़ाम और हैदर पर राघोबा की चढ़ाई; पूना में उसके विरुद्ध 'बारह-भाई का कारस्थान'

राघोबा ने जब निज़ाम पर चढ़ाई की तब सखाराम बापू, नाना फड़नवीस, मोरोबा दादा, हरिपंत फड़के आदि लोग कुछ न कुछ बहाना करके पूना को वापस चले आये। उनका षड्यंत्र पूरा रचा जाने पर शहर को उन्होंने अपने क़ब्ज़े में किया।

षड्यंत्र का प्रारम्भ

गंगाबाई और पार्वतीबाई को पुरन्दर के क़िले में भेज दिया। राघोबा के पक्ष के लोगों की जायदाद ज़ब्त कर ली और उनके बाल-बच्चों को कैद में डाल दिया। सातारा के महाराजा राघोबा को पदच्युत करवाकर गंगाबाई के नाम पेशवाई का हुक्म मँगवाया। इतना करने पर उन्होंने शिन्दे, होलकर, फ़तेसिंह गायकवाड़ आदि सरदारों को अपने कार्य की सूचना दी। उन्होंने निज़ाम से मेल किया और फिर से साबाजी को सेनासाहेब सूबा का पद दिया। इस समय तक उनके पास क़रीब २० हज़ार फ़ौज जमा हो चुकी थी और हरिपंत फड़के और भी सेना जमा कर रहा था।

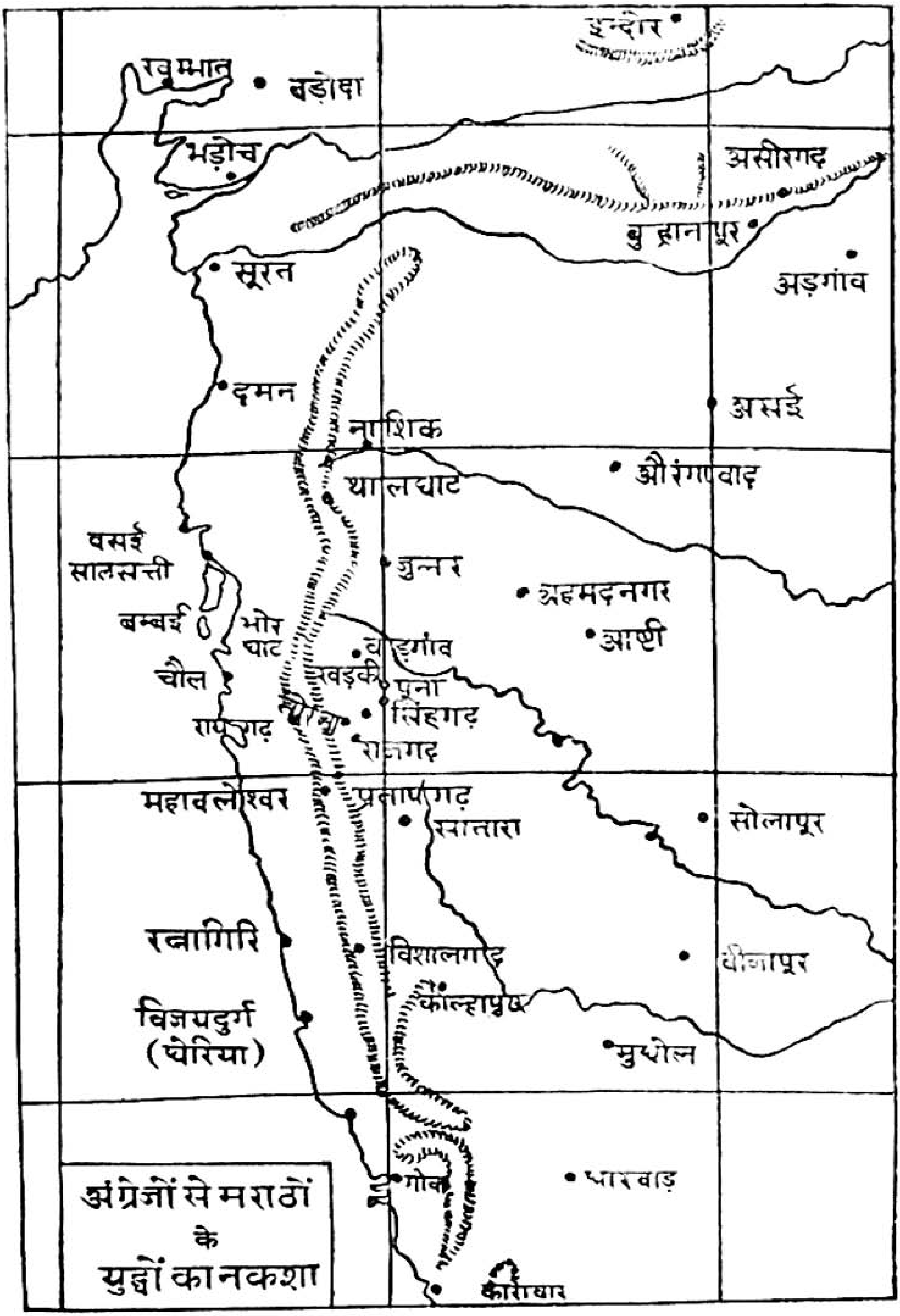
इन बातों की ख़बर जब राघोबा को लगी तब उसने कर्नाटक की चढ़ाई स्थगित की और वापस लौटा। पूना के कारबारियों के विरुद्ध सहायक प्राप्त करने के विचार से उसने हैदरअली से संधि की और तुंगभद्रा के दक्षिण का तथा कृष्णा और तुंगभद्रा के बीच का मुल्क उसे दे डाला। कृष्णा और तुंगभद्रा के बीच का मुल्क पटवर्धन और रास्ते की जागीरें थीं। पूना के कारबार में ये सरदार भी शामिल थे। इन्हें दबाने के विचार से ही उसने यह काम किया था। कृष्णा के इस पार आने पर राघोबा ने पटवर्धन और रास्ते की जागीर में लूट-मार शुरू की। इतने में

राघोबा उत्तर की ओर भागा

त्रिम्बकराव मामापेठे, सावाजी भोंसले आदि की ५० हज़ार फ़ौज पहुँचने पर राघोवा उत्तर की ओर भाग गया। त्रिम्बक-राव और हरिपंत फड़के ने उसका पीछा किया। सन् १७७४ के २६ मार्च को त्रिम्बकराव मामा और राघोबा के बीच कासेगाँव में युद्ध हुआ। इसमें त्रिम्बकराव मारा गया, पर हरिपंत फड़के ने राघोबा का पीछा जारी रक्खा। तब राघोबा बुरहानपुर भाग गया।

राघोबा का भाग कर अंग्रेज़ों के पास जाना

इधर उस साल के १८ अप्रैल को पुरन्दर क़िले में गंगाबाई के लड़का हुआ। कारबारियों ने उसका नाम माधवराव रक्खा और ४० दिन का होने पर उसे पेशवा घोषित किया। लोग उसे सवाई माधवराव कहा करते थे। इन बातों की ख़बर जब राघोबा को मिली तब उसने बाबूजी नाइक के ज़रिये मेल की बात-चीत शुरू की। पर मेल की शर्तें तय न हो सकीं, इसलिए झगड़ा जारी रहा। राघोवा भागकर नर्मदा पार गया। महादजी शिन्दे अपना महत्व बढ़ाना चाहता था, इसलिए उसने राघोवा को पकड़ने का प्रयत्न न किया। वह कभी इधर तो कभी उधर झुका करता था। इस कारण राघोवा को भागने का अवसर मिल गया। अपनी पत्नी आनन्दीबाई के गर्भवती होने के कारण उसने उसे धार में रख दिया और वह उज्जैन को भाग गया। हरिपंत ने यहाँ भी उसका पीछा किया, इसलिए वह अहमदाबाद भाग गया। यहाँ पर उसने संधि की बातचीत शुरू करके भीतर ही भीतर अंग्रेज़ों से बातचीत करने का समय पाया। अन्त में दोनों पक्षों में लड़ाई हुई और राघोबा भागकर सूरत को चला गया।



अंग्रेजों से मराठों के युद्धों का नकशा

बम्बई-किनारे के अंग्रेज साष्टी (सालीसट) और बसई लेने के लिए बहुत काल से तैयार-से बैठे थे। हरिपंत जब राघोबा का उत्तर की ओर पीछा कर रहा था तब हमला करके उन्होंने साष्टी को ले लिया। इसके बाद राघोबा सूरत में उनके आश्रय में पहुँचा। दोनों के बीच यह संधि हुई कि अंग्रेज राघोबा को पेशवा की गद्दी पर बैठाने के लिए तीन हज़ार फ़ौज की मदद दें। उस फ़ौज के ख़र्च के लिए राघोबा डेढ़ लाख रुपये महीना दे। यह रक़म अंग्रेज़ों को समय पर मिलती रहे, इसलिए अमोद, हसोट, वलसाड़ और अंकलेश्वर नाम के गुजरात के चार महाल वह फ़िलहाल अंग्रेज़ों के हवाले करे। इस संकट-काल में सहायता करने के बदले साष्टी अंग्रेज़ों के पास वह रहने दे। इसके सिवाय बसई, जम्बूसर, ओलपाड़ वग़ैरा प्रदेश भी राघोबा अंग्रेज़ों को सदैव के लिए दे। यह संधि सूरत में सन १७७५ के ६ मार्च को हुई। अंग्रेज़ों ने राघोबा से ६ लाख के ज़ेवर इस बात की ज़मानत के लिए रख लिये कि राघोबा अपने वचन का पालन करे।

सूरत की सन्धि

फिर कर्नल कीटिंग के साथ ढाई हज़ार फ़ौज राघोबा की मदद के लिए निकली। दोनों की संयुक्त फ़ौज का सामना करने का भार हरिपंत फड़के पर पड़ा, क्योंकि राघोबा के अंग्रेज़ों से मिलने की बात सुनकर शिन्दे और होलकर अपने-अपने मुल्क को वापस चले गये। हरिपंत की फ़ौज की स्थिति अच्छी न थी और राघोबा उसे अपनी ओर खींचने का प्रयत्न करता रहा। परन्तु ऐसी फ़ौज की सहायता से भी हरिपंत ने

अंग्रेज़ों से मराठों के युद्ध का प्रारम्भ

कर्नल कीटिंग को काफ़ी तकलीफ़ पहुँचाई। बरसात आनेपर अंग्रेज़ों ने भड़ोंच में छावनी की। हरिपंत ने थोड़ी-सी फ़ौज गुज़रात के इंतज़ाम के लिए रखकर खानदेश में अपना डेरा जमाया।

बरसात के वाद लड़ाई जारी होने वाली थी। पर इस बीच में कलकत्ते की सरकार ने यह युद्ध वन्द करने के लिए दूत भेजा। सन् १७७३ के रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के वाद बम्बई का गवर्नर कलकत्ते के गवर्नर-जनरल का मातहत वन चुका था, इसलिए उसे अपनी ज़िम्मेदारी पर युद्ध करने का कोई अधिकार न था। वम्बई के गवर्नर की इस अनधिकार चेष्टा को वन्द करने के विचार से ही कर्नल अप्टन नाम के दूत को संधि करने के लिए कलकत्ते की सरकार ने भेजा। उसने यह स्वीकार किया कि बम्बई वालों ने जो यह युद्ध शुरू किया वह अन्यायहै; पर बम्बईवालों ने साष्टी वग़ैरा स्थान जीत लिये थे, उन्हें छोड़ने को वह तैयार न था। इस समय हैदर और कोल्हापुर के राजा ने मराठा-राज्य में दंगा-फ़िसाद मचाये थे और पूना-दरबार पर बड़े भारी क़र्ज़ का बोझ इस समय तक लद चुका था। उधर हरिपंत की सेना भूखों मर रही थी। इसलिए सखाराम बापू और नाना ने विचार किया कि साष्टी भले ही जाय, परन्तु राज्य में किसी प्रकार शांति स्थापित हो जाय। इसलिए उन्होंने पुरन्दर में १७७६ की १७ फ़रवरी को निम्नलिखित शर्तों की सन्धि की—साष्टी, भड़ोंच शहर और उसके पास का ३ लाख का मुल्क अंग्रेज़ों को मिले। अंग्रेज़ अपनी फ़ौज वापस ले जावें, रावोवा अपनी फ़ौज को छुट्टी देकर

अंग्रेज़ों से पुरन्दर की सन्धि

कोपरगाँव में रहे, और उसे खर्च के लिए २५ हजार रुपये हर महीने मिलें। राघोवा अथवा कोई और बग़ावत करे तो अंग्रेज उसकी सहायता न करें। खुद पेशवा के घराने का राघोवा राज्य-लोभ से अन्धा होकर अंग्रेजों का आश्रित बना। उसने स्वजनों से द्रोह करके अंग्रेजों की सहायता से पेशवाई पाने की आशा की। तब कारबारियों ने देखा कि राज्य में शान्ति रखना आवश्यक है, इसलिए उन्होंने अंग्रेजों की अन्याय्य माँगें भी स्वीकार कीं। अब उन्हें यह आशा दीख पड़ी कि राज्य में शान्ति स्थापित होगी। पर राघोवा रूपी शनिश्चर जबतक था तबतक शान्ति की आशा व्यर्थ ही रही। इस प्रकार फिर से मराठों की अंग्रेजों से जो लड़ाई शुरू हुई उसके पहले शान्ति का कुछ समय बीता। इस अवधि में पूना के कारबारियों ने तीन झगड़े निपटाये।

मराठा-राज्य पर चारों ओर से आपत्तियाँ

निज़ामअली ने मराठों के इस आपत्ति-काल में उनके राज्य के प्रदेश जीतने का विचार किया। उसे कारबारियों ने १८ लाख का प्रदेश देकर किसी प्रकार शांत किया। हैदर ने कर्नाटक पर क़ब्जा कर लिया। कोल्हापुर का राजा पेशवा का प्रदेश निगलने लगा। कित्तूर के देसाई ने बग़ावत की। प्रतिनिधि ने दंगा-फ़िसाद उठाया। घाटबंधारी में कोलियों ने भी दंगा किया। इस प्रकार चारों ओर से आफ़तें आने लगीं और एक बनावटी भाऊसाहब ने इन सबकी हद करदी। पूछताछ करने पर वह झूठा सिद्ध हुआ। इसलिए उसे रत्नागिरी में ले जाकर रक्खा।

पर वहाँ के मामलेदार रामचन्द्र नाइक परांजपे ने यह घोषित कर दिया कि यह सच्चा सदाशिवराव भाऊ है, इसलिए सैकड़ों लोग आकर उससे मिले। शिन्दे से उसकी जो लड़ाई हुई, उसमें वह हार गया! भागते समय वह रघुजी आँग्रे के हाथ पड़ा। इसके बाद अच्छी तरह तहक़ीक़ात होने पर उसे सन् १७७६ के १८ दिसम्बर को मृत्यु-दंड दिया गया। इसके बाद परशुराम पटवर्धन और हरिपंत फड़के ने हैदरअली को दवाने का प्रयत्न किया। हैदर ने तुंगभद्रा के दक्षिण का ही नहीं किन्तु उसके उत्तर का भी कुछ मुल्क अपने क़ब्ज़े में कर लिया था। पर परशुराम पटवर्धन और हरिपंत फड़के से उसके विरुद्ध विशेष कुछ न बन सका, क्योंकि उनके पास द्रव्य की कमी थी। निज़ामअली की सेना की सहायता पाने पर वे हैदर पर अच्छा हमला करना चाहते थे, परन्तु नाना फड़नवीस ने उनको लिखा कि मोरोबा दादा औरर तुकोजी होलकर ने राज्य में गड़बड़ मचाई है, इसलिए वे वापस चले गये। तीसरा बड़ा भारी झगड़ा कोल्हापुर वालों का था। महादजी शिन्दे ने उन्हें दवाया। दोनों पक्षों के बीच यह सन्धि हुई कि कोल्हापुर वाले पेशवा को २० लाख रुपये दें; चिकोड़ी, मनोली वग़ैरा पेशवों के स्थान छोड़ दें और राघोबा से कोई सम्बन्ध न रक्खें। इतने में महादजी को नाना की चिट्ठी मिली कि कोल्हापुर वालों के बन्दोबस्त के लिए पाँच-छः हज़ार फ़ौज रखकर तुम पूना को शीघ्र वापस चले आओ। कलकत्ते की सरकार ने यद्यपि मराठों से पुरन्दर की सन्धि की थी, तथापि बम्बई के अंग्रेज़ अपने मन में उस सन्धि को मानने को तैयार न थे; इसलिए वे इस संधि

की शर्तें ठीक तौर से पालते न थे। अंग्रेज़ों को सीधे रास्ते पर लाने के विचार से नाना फड़नवीस ने सेंट ल्यूबीन नामक फ्रेंच वकील का महत्व पूना के दरबार में बहुत बढ़ाया। पर इसका परिणाम विपरीत हुआ। कलकत्ते और बम्बई के अंग्रेज यह कहने लगे कि मराठों ने सन्धि की शर्तें तोड़ीं। पर यह केवल एक बहाना था। ईस्ट इंडिया कम्पनी के डाइरेक्टरों की अनुमति बम्बई के गवर्नर के कार्य को मिल चुकी थी, इसलिए अंग्रेज लोग लड़ाई जारी रखना चाहते थे। कलकत्ते से कर्नल लेसली के अधीन एक फ़ौज बुन्देलखंड होती हुई सन् १७७८ के मई महीने में बम्बई की ओर रवाना हुई। मराठों से लड़ाई शुरू करने के लिए इस समय अंग्रेज़ों को अनुकूल अवसर भी मिला। पूना के कारबारियों में कुछ आपसी झगड़े पैदा हुए। नाना फड़नवीस का चचेरा भाई मोरोबा उससे अप्रसन्न था, क्योंकि उसे मुख्य अधिकार नहीं मिला था। इस मोरोबा ने सखाराम बापू और नाना फड़नवीस के बीच फूट पैदा की और बम्बई के अंग्रेज़ों को पूना पर आक्रमण करने के लिए निमंत्रित किया।

सन् १७७८ के वर्षाकाल के समाप्त होने पर कर्नल ईगरटन के अधीन ४ हज़ार फौज मराठों पर चढ़ाई करने के लिए रवाना हुई।। इस फ़ौज के साथ राघोबा और उसका दत्तक पुत्र अमृतराव भी थे। अंग्रेज़ों की चढ़ाई की खबर पाते ही नाना ने चार हज़ार मराठा फ़ौज बोरघाट की ओर भेजी। मराठों ने आमने-सामने की लड़ाई की

अंग्रेज़ों से लड़ाई का फिर से प्रारंभ, अंग्रेज़ों की दुर्दशा और बड़गाँव की सन्धि

अपेक्षा लुक-छुप कर ही हमले करना अच्छा समझा और इस प्रकार उन्होंने अंग्रेज़ी सेना को बहुत तंग किया। उधर कुछ मराठा फ़ौज कोंकण में पहुँची और उसने चढ़ाई करने वाली फ़ौज का बम्बई से सम्बन्ध रखने का मार्ग रोक दिया। इस प्रकार अंग्रेज़ों की रसद बन्द हो गई और वे कठिनाई में पड़े। अंग्रेज़ी सेना किसी प्रकार तलेगाँव तक आई, पर यह सारा गाँव मराठों ने जलाकर साफ़ कर दिया था, इसलिए अंग्रेज़ी सेना को मुट्ठी भर भी अनाज यहाँ न मिला। यहाँ उन्हें यह ख़बर लगी कि नाना फड़नवीस ने पूना को भी जलाने का प्रबन्ध कर रक्खा है। तब अंग्रेज़ी सेना को यह डर पैदा हुआ कि भूखों रहकर हमें मराठों के हाथ में क़ैद होना होगा। इसलिए सन् १७७९ की ११ जनवरी को अंग्रेज़ों ने वापस जाने का निश्चय किया। पर मराठा फ़ौज उनकी हलचलों को अच्छी तरह देख रही थी। अंग्रेज़ी फ़ौज के कूच करते ही मराठा फ़ौज भी उसके पीछे पड़ गई। लड़ते-झगड़ते किसी प्रकार अंग्रेज़ी फ़ौज वड़गाँव में पहुँची। यहाँ पर मराठों ने उसे घेर लिया। कोई उपाय न देख वह मराठों के शरण आई। यहाँ पर दोनों पक्षों में यह सन्धि हुई कि (१) अंग्रेज़ों ने गुजरात में जो मुल्क जीत लिया है वह वापस दे दिया जाय, (२) बालाजी बाजीराव और माधवराव के समय जो सन्धियाँ हुई थीं उनका पालन किया जाय, (३) अंग्रेज़ राघोबा को मराठों के हवाले कर दें, (४) बुन्देलखंड होते हुए बंगाल की जो फ़ौज आ रही है वह वापस करदी जाय, और (५) साष्टी वग़ैरा स्थान वापस करने के लिए फ़ारमर और स्टुअर्ट नामक अंग्रेज़ ज़मानत के बतौर मराठों के

हाथ में रहें। इसके बाद राघोबा अंग्रेज़ों के पास से शिन्दे के डेरे में चला आया और अंग्रेज़ बम्बई वापस चले गये।

वड़गाँव की सन्धि होने पर मराठा फ़ौज का मुक़ाम एक महीने तक तलेगाँव में रहा। कारबारियों ने राघोबा से यह लिखवा लिया कि पेशवाई के पद से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। उसके विषय में यह निश्चित हुआ कि बारह लाख की जागीर लेकर वह बुन्देलखंड में रहे। शिन्दे ने अपने ऊपर यह ज़िम्मा लिया कि ठीक बन्दोबस्त में रखकर मैं उसे वहाँ कोई गड़बड़ नहीं करने दूँगा। शिन्दे की दो हज़ार फ़ौज के साथ राघोबा को झाँसी की ओर रवाना किया गया। इससे अब नाना को ऐसा जान पड़ा कि राघोबा की साढ़ेसाती दूर हो गई, पर अब भी उसका असर बाक़ी था। चोली महेश्वर के पास नर्मदा को पार करते समय राघोबा ने शिन्दे की फ़ौज पर अकस्मात् हमला कर दिया और वहाँ से भागकर सन् १७७९ के मई महीने में वह भड़ोंच के अंग्रेज़ों के आश्रय में चला गया।

मराठों के हाथ आने पर राघोबा का फिर से अंग्रेज़ों के आश्रय में जाना

बुन्देलखंड होती हुई अंग्रेज़ों की जो फ़ौज आ रही थी उसका अधिकारी कर्नल लेसली रास्ते में मर गया। इसलिए कर्नल गोडार्ड उसके स्थान में नियत हुआ। होशंगाबाद में आने पर उसे वड़गाँव की संधि की खबर मिली। पर बम्बई के अंग्रेज़ उसे मानने के लिए तैयार न थे। इसलिए कर्नल गोडार्ड वापस जाने के बदले गुजरात में घुसा और बरसात के समाप्त

अहमदाबाद, ग्वालियर, उभई आदि स्थान अंग्रेज़ों के हाथ

होते ही उसने लड़ाई शुरू की। उसने फ़तेसिंह गायकवाड़ को अपनी ओर फोड़ लिया और डभई व अहमदाबाद के शहर ले लिये। महादजी शिन्दे सन् १७८० प्रारम्भ में गुजरात में घुसा और बरसात प्रारम्भ होने पर चारों ओर से घेरने के विचार से संधि की बातचीत शुरू की। गोडार्ड इस फन्दे में न फँसा। वह शिन्दे की फ़ौज से आमने-सामने लड़ना चाहता था, पर शिन्दे सदैव सावधान रहता और ऐसी लड़ाई बचाये रहता था। बरसात प्रारम्भ होने पर गोडार्ड बसई लेने के विचार से कोंकण में गया। शिन्दे को दक्षिण से उत्तर की ओर खींचने के विचार से अंग्रेज़ों ने गोहद के राणा की मदद लेकर शिन्दे के मुल्क पर चढ़ाई की और ग्वालियर का क़िला जीत लिया।

सन् १७८० के वर्षाकाल के समाप्त होते ही कोंकण में लड़ाई शुरू हुई। गोडार्ड ने बसई पर घेरा डाला। नाना ने रामचन्द्र गनेश कानड़े को वहाँ भेजा। कानड़े का मुक़ाबला करने के लिए गोडार्ड ने कर्नल हार्टली को रवाना किया। बसई के पूर्व की ओर ९ मील पर देवगढ़ के पास तीन दिन तक घमासान युद्ध हुआ। दोनों पक्षों की इसमें बहुत हानि हुई। कानड़े की हिम्मत और चतुराई से हार्टली की तमाम फ़ौज नष्ट हो जाती, पर उसीके मारे जाने से मराठा फ़ौज को वापस होना पड़ा। पहले ही दिन यानी सन् १७८० के ११ दिसम्बर को बसई का क़िला गोडार्ड के हाथ आ चुका था।

बसई का क़िला गोडार्ड के क़ब्ज़े में

दो बार संधि होने पर भी अंग्रेज़ लड़ाई बन्द न करते थे,

इसलिए नाना फड़नवीस उनसे बहुत चिढ़ गया। उसने इस समय सब हिन्दुस्थानी शासकों तथा फ्रेंचों का एका करके अंग्रेज़ों को हिन्दुस्थान से निकाल बाहर करने का विचार किया और इसके लिए एक योजना तैयार की, पर उसकी यह योजना, अमल में न आ सकी। शिन्दे के मुल्क पर अंग्रेज़ों ने चढ़ाई की थी, इसलिए वह उधर फँसा था। भोंसले को १६ लाख का मुल्क देकर वारन हेस्टिंग्ज़ ने चुप कर दिया। निज़ामअली की फ़ौज जल्द तैयार न हो सकी। केवल हैदर ने फ्रेंच लोगों की सहायता से मद्रास पर चढ़ाई की। मद्रास वालों की फ़ौज इस समय मराठों से लड़ने में लगी थी, इसलिए मद्रास वालों को उसने ख़ूब तंग किया। तब कलकत्ते की सरकार भोंसले के ज़रिये संधि की बातचीत करने लगी। इधर कर्नल गोडार्ड ने भी सन्धि की बात-चीत शुरू की। तब नानाने उत्तर भेजा कि हैदर की सलाह बग़ैर हम संधि नहीं कर सकते। इसपर गोडार्ड ने विचार किया कि यदि पूना पर चढ़ाई की धमकी दी जाय तो नाना घबरा कर संधि के लिए तैयार होगा। इस विचार से ७ हज़ार फ़ौज लेकर गोडार्ड बोरघाट पर चढ़ आया। उसके आने की ख़बर पाकर नाना ने उसका सामना करने की तैयारी की। परशुराम भाऊ पटवर्धन ने कोंकण में बम्बई और बोरघाट के बीच गोडार्ड की रसद बन्द करने के विचार से डेरा डाला। इधर से हरिपंत फड़के, तुकोजी होलकर और नाना पचीस-तीस हज़ार फ़ौज लेकर गोडार्ड का सामना करने को आगे बढ़े। इसलिए अब गोडार्ड की हिम्मत आगे बढ़ने की

पूना पर हमला करने का व्यर्थ डर

न हुई। अन्त में उसने वापस जाने का विचार किया। इस समय मराठों ने अंग्रेजी सेना को हमले करके खूब तंग किया। गोडार्ड बड़ी मुश्किल से सन् १७८१ के २३ अप्रैल को पनवल वापस गया।

शिन्दे और अंग्रेज़ों की स्वतंत्र संधि

उत्तर में भी अंग्रेज़ी फ़ौज की यही हालत रही। जिस कर्नल केमेक ने शिन्दे के मुल्क पर चढ़ाई की थी वह अब सिरोंज तक बढ़ आया। यहाँ पर महादजी शिन्दे ने अंग्रेजी फ़ौज को घेरकर उसकी रसद बन्द की। इसलिए अंग्रेज बहुत तंग हुए। अब कर्नल मूर केमेक की मदद को पहुँचा। दोनों ने सन् १७८१ के बरसात में शिन्दे के मुल्क में छावनी डाली। शिन्दे ने अपनी फ़ौज की छोटी-छोटी टोलियाँ बनाईं और अंग्रेज़ी फ़ौज को शान्ति न मिलने दी। तब कर्नल मूर और महादजी शिन्दे के बीच सन् १७८१ के १३ अक्तूबर को स्वतंत्र संधि हुई। उसमें शिन्दे ने यह स्वीकार किया कि पेशवा से मैं अंग्रेज़ों की संधि करा दूँगा। इसके बदले अंग्रेजों ने यह इक़रार किया कि शिन्दे का जीता हुआ सब मुल्क हम छोड़ देंगे और दिल्ली-दरबार की बातों में हस्तक्षेप करने के लिए शिन्दे स्वतंत्र रहेगा।

अंग्रेज़ों और पूना-दरबार की सन्धि

तब एण्डरसन नाम का अंग्रेज़ वकील शिन्दे के डेरे में आया और संधि की बातचीत शुरू की। नाना ने पहले राघोबा को अपने अधीन लेना चाहा और यह कहा कि हैदरअली को एक ओर रखकर हम यह संधि नहीं कर सकते। इसलिए बहुत दिनों तक संधि की बातचीत ठीक तौर से न हो सकी। तब

अंग्रेजों ने साष्टी छोड़कर शेष सब मुल्क वापस करना स्वीकार किया। इसी अवधि में हैदरअली की मृत्यु हो गई। इसलिए नाना सन्धि करने को तैयार हुआ और सन् १७८२ में सालबाई की संधि हुई। उसकी मुख्य शर्तें ये थीं—(१) साष्टी छोड़कर जीता हुआ शेष मुल्क अंग्रेज मराठों को वापस कर दें, (२) संधि होने के चार महीने के भीतर राघोबा पेशवा के मुल्क में चला जावे, (३) मराठे और किसी यूरोपियन जाति से मेल न करें और मराठों से द्वेष करने वालों से अंग्रेज दोस्ती न करें, (४) इस संधि के पालन के लिए महादजी शिन्दे जिम्मेदार रहे। यह संधि करवाने के लिए अंग्रेज़ों ने शिन्दे को भड़ोंच दिया।

राघोबा की मृत्यु और उसके लड़के

सालबाई की संधि के बाद राघोबा अपनी पत्नी आनन्दीबाई तथा पुत्र बाजीराव और अमृतराव को लेकर कोपरगाँव में आकर रहा। वहाँ संधि के ११ महीने बाद सन् १७८३ के ११ दिसम्बर को राघोबा की मृत्यु हुई। इस प्रकार राघोबा-रूपी ग्रह ने क़रीब २३ वर्ष तक मराठा-राज्य को संकट में डाला और उसे बहुत अधिक नुक़सान पहुँचाया। पिता ने एक बार जो मार्ग दिखला दिया था, उसी मार्ग का अनुसरण क़रीब ३० वर्ष बाद उसके लड़के बाजीराव ने किया। इस अनुसरण से उसने मराठा-राज्य को कितना नुक़सान पहुँचाया, यह यथास्थान बतलाया जायगा। जिस समय राघोबा की मृत्यु हुई, उस समय उसकी पत्नी आनन्दीबाई गर्भवती थी। आगे जब वह प्रसूत हुई, तब उसके लड़का हुआ और उसका नाम चिमाजी अप्पा रक्खा गया। सवाई

माधवराव की मृत्यु के बाद राघोबा के इन तीनों लड़कों का संबंध मराठा-इतिहास से है। इसलिए इन तीनों के नाम याद रखना आवश्यक है।

२७

सवाई माधवराव

केवल ४० दिन का होने के समय से ही सवाई माधवराव को पेशवा का पद मिला। पर उसे यह पद दिलाने के लिए पूना के कारबारियों को अत्यन्त श्रम करना पड़ा। राघोबा के विरुद्ध षड्यंत्र रचने में सखाराम बापू ने नेता का काम किया था, पर कई कारणों से शीघ्र ही राज्य-कारबार का सूत्र नाना फड़नवीस के हाथ आया। इसका एक कारण तो यह था कि दोनों में अधिकार-संचालन के लिए ईर्ष्या उत्पन्न हुई। पर एक और प्रधान कारण कदाचित् यह था कि नारायणराव को पदच्युत करने के सम्बन्ध में सखाराम बापू का सम्बन्ध था। यह बात तहक़ीक़ात से साबित हो चुकी थी। इसलिए बुद्धि-बल से नाना फड़नवीस ने मराठा-राज्य का शासन-सूत्र पेशवा के नाम से अपने हाथ में लिया और सवाई माधवराव की मृत्यु तक बहुत बुद्धिमानी के साथ उसने शासन का कार्य सम्पन्न किया।

मराठा-राज्य का शासन-सूत्र नाना फड़नवीस के हाथ

सवाई माधवराव के समय नाना को जो पहली लड़ाई लड़नी

पड़ी, वह हैदरअली के लड़के टीपू के साथ हुई। जिस समय मराठों और अंग्रेज़ों का युद्ध जारी था उस समय मराठों का मुल्क जीतकर अपना राज्य बढ़ाने का हैदरअली को अच्छा मौक़ा मिला। उसने केवल तुंगभद्रा के दक्षिण का ही नहीं किन्तु उत्तर की ओर कृष्णा तक बहुतेरा मुल्क जीत लिया, पर फ़ुरसत न होने के कारण मराठे उसकी ओर ध्यान न दे सके। सालवाई की संधि की बातचीत होने के समय हैदर की मृत्यु हो जाने पर उसका लड़का टीपू उसका उत्तराधिकारी हुआ। यह वड़ा महत्वाकांक्षी, घमंडी और कट्टर मुसलमान था। सालवाई की संधि के बाद मराठे एक वड़े भारी संकट से छूटे और टीपू की ओर ध्यान दे सके। पर अब उनमें पहले की ताक़त न रह गई थी। इसलिए निज़ामअली से मिलकर टीपू पर चढ़ाई करने का विचार उन्होंने किया। मराठों के साथ निज़ामअली के शामिल होने का कारण यह था कि टीपू ने निज़ाम को अपना मांडलिक कहकर उसका अपमान किया था।

मराठों और निज़ाम का टीपू पर चढ़ाई करने का विचार

लड़ाई प्रारम्भ होने का कारण यह था कि टीपू ने नरगुण्ड के जागीरदार से वहुत अधिक कर माँगा। इस जागीरदार ने टीपू से बचने के लिए नाना फड़नवीस से सहायता माँगी। नरगुण्ड की रक्षा के लिए नाना ने जो फ़ौज भेजी उसपर टीपू ने अचानक हमला कर दिया। पहले तो मराठा फ़ौज को कुछ विजय मिली, परन्तु फिर उन्हें पीछे हटना पड़ा। इसके वाद मदद पहुँचने पर मराठों ने टीपू को

संयुक्त आक्रमण के कारण टीपू का दबना

अच्छी तरह दबाया, इसलिए उसने संधि की बातचीत की। उसने स्वीकार किया कि २७ दिन में मैं दो वर्ष का कर पटा दूँगा और नरगुण्ड के जागीरदार को न सताऊँगा। निज़ामअली के कहने से नाना ने टीपू की बातें स्वीकार कर संधि कर ली।

पर टीपू के मन में संधि करना नहीं था। निश्चित समय के भीतर उसने कर न पटाया और मराठा फ़ौज के जाने पर धोखे से उसने नरगुण्ड का क़िला ले लिया और जागीरदार को क़ैद कर लड़कों-बच्चों समेत मार डाला। फिर उसने कृष्णा-पार के कई हिन्दुओं को ज़बरदस्ती मुसलमान बनाया। इसलिए क़रीब दो हज़ार ब्राह्मणों ने आत्म-हत्या कर ली। टीपू के यह अत्याचार देख नाना फड़नवीस ने उसे दबाने का विचार किया। सन् १७८५ की बरसात के बाद हरिपंत फड़के, तुकोजी होलकर, गणेशपंत बेहरे आदि बड़ी भारी फ़ौज लेकर पूना से रवाना हुए। रास्ते में पंढरपुर में नाना फड़नवीस उनसे मिला। यादगोर में पहुँचने पर मुधोजी भोंसले और निज़ामअली भी उनमें शामिल हुए। तब सबने यह निश्चय किया कि टीपू के राज्य को जीत कर उसके छः हिस्से किये जायँ। उनमें से दो हिस्से पेशवा, दो हिस्से निज़ाम, एक हिस्सा शिन्दे और एक हिस्सा होलकर ले; परन्तु इसके पहले कृष्णा और तुंगभद्रा के बीच के मराठों के मुल्क को जीता जाय। इसके बाद यह संयुक्त फ़ौज आगे बढ़ी।

टीपू का संधि का उल्लंघन करना और मराठों की उसपर फिर से चढ़ाई

किसूर में टीपू का जो सरदार था, उसे दबाने के लिए

तुकोजी और गणेशपंत भेजे गये। शेष फ़ौज बादामी की ओर बढ़ी। तीन हफ्ते के बाद यहाँ का क़िला मराठों के हाथ आया। उसके बाद नाना और भोंसले वापस चले गये। हरिपंत

टीपू की मराठों से फिर सन्धि

फड़के गजेन्द्रगढ़ लेने के लिए जा रहा था। इतने में टीपू ने अदोनी को घेर लिया। यहाँ पर निज़ामअली के भतीजे थे। उनकी मदद के लिए हरिपंत ने बड़ी भारी फ़ौज भेजी; तब घेरा उठ गया। होलकर ने कित्तूर के आस-पास के टीपू के लोगों को मार भगाया और सावनूर के नवाब से मेल करके टीपू के सरदार बुर-हानुद्दीन को हराया। हरिपंत ने गजेन्द्रगढ़ और बहादुरभेंडा नामक स्थान जीते और वह कोपल लेने ही वाला था कि इतने में टीपू तुंगभद्रा पार कर इस पार आया। हरिपंत उसकी ओर बढ़ा, परन्तु मौक़ा ठीक न होने के कारण उसने हमला न किया। इसके बाद हरिपंत ने शिरहट्टी ली, पर टीपू पहाड़ी मुल्क में चला गया और मैदान में मराठों का सामना न कियो। इतने में टीपू को ख़बर लगी कि अंग्रेज़ लोग लड़ाई की तैयारी कर रहे हैं। तब वह तुरन्त मराठों से सन्धि करने को तैयार हुआ। सन्धि में उसने यह स्वीकार किया कि बक़ाया कर के बदले में ४५ लाख रुपये दूँगा। उसमें से ३० लाख रुपये उसने नक़द दे दिये और शेष एक वर्ष के इक़रार से पटाने का वचन दिया। अदोनी शहर उसने निज़ाम को लौटा दिया और कित्तूर, बादामी और नरगुण्ड मराठों को दिये। यह संधि सन १७८७ के अप्रैल महीने में हुई।

सालबाई की संधि के बाद उत्तर-हिन्दुस्थान में महादजी

शिन्दे ने जो कार्य और पराक्रम किये, अब हम उनका वर्णन करेंगे। इसके लिए यह समझ लेना आवश्यक है कि इस समय वहाँ की क्या स्थिति थी। हम देख चुके हैं कि सन् १७७१ के दिसम्बर महीने में मराठों ने बादशाह शाहआलम को दिल्ली में लेजाकर उसके पूर्वजों की गद्दी पर बैठाया। इसके दो वर्ष बाद मराठा-फ़ौज दक्षिण में आई। यहाँ नारायणराव पेशवा के खून के बाद राघोबा ने जो गृह-युद्ध शुरू किया और उसके कारण अंग्रेजों से सात-आठ वर्ष तक जो लड़ाई लड़नी पड़ी, उसके कारण मराठा-राज्य-मंडल को व्यर्थ ही बहुत श्रम हुआ। इन नौ-दस वर्ष तक मराठों को दिल्ली की ओर ध्यान देने का अवसर न मिला। सन १७७३ में मराठा फ़ौज के दक्षिण में जाने पर अवध के नवाब वज़ीर शुजाउद्दौला ने मराठों को चम्बल नदी के दक्षिण में भगा दिया और दिल्ली-दरबार में मराठों का जो महत्व था उसे नष्ट करने के प्रयत्न में लगा। इटावा लेकर वहाँ से मराठों को मार भगाया। उसके एक सरदार मिर्ज़ा नजफ़खाँ ने आगरा को घेरा और शुजा की मदद मिलने पर उसे जीत लिया। इसके बाद शुजा ने मिर्ज़ा नजफ़खाँ को बादशाह का मुख़्त्यार नियत किया। यह नजफ़-खाँ बड़ा शूरवीर और चालबाज था। उसने बादशाह का कार-बार कई वर्ष तक बड़ी अच्छी तरह किया। उस समय दिल्ली के बादशाह के हाथ में दिल्ली और आगरा का प्रदेश ही बच रहा था। इस प्रदेश में दक्षिण की ओर से जाट और उत्तर की ओर से सिख छेड़छाड़ किया करते थे। परन्तु नजफ़खाँ ने इस

अंग्रेज़ों से पूर्व मराठों के युद्ध के समय दिल्ली की स्थिति

स्थिति में भी शाही बन्दोबस्त अच्छा रक्खा और राज्य में शांति स्थापित की। उसने दिल्ली में मुसलमानी सत्ता फिर से जारी की और बादशाह का महत्व स्थापित किया। सन् १७८२ की ४ अप्रैल को उसकी मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु के बाद मुसलमानों में ऐसा कोई योग्य और शूरवीर पुरुष न निकला, जो बादशाही को सम्हाल सके; इसलिए राज्य में टंटे-बखेड़े बहुत खड़े हुए।

सालबाई की संधि के बाद महादजी शिन्दे ने, लड़ाई के समय उसके विरुद्ध जो लोग हुए थे उन्हें अच्छी कड़ी सजा देने का विचार किया। शिन्दे को धोखा देन वाले लोगों में गोहद के जाट का नम्बर पहला था। इसलिए महादजी ने पहले ग्वालियर को घेरा और शीघ्र ही वह क़िला ले लिया। इसके बाद उसने गोहद के क़िले को घेरकर सन् १७८४ की २४ फ़रवरी को जीत लिया और वहाँ के राणा को ग्वालियर में क़ैद में रक्खा। खेचीवाड़ा के राघोगढ़ का जागीरदार बल्लभसिंह भी अंग्रेजों मे मिला था, इसलिए उसपर चढ़ाई करने के लिए रामजी पाटील जाधव और खंडूजी इंगले को भेजा। बुन्देलखण्ड की बग़ावत शांत करने का काम खंडेराव हरि भालेराव को दिया। इसी समय महादजी शिन्दे ने अपनी फ़ौज में बड़ा भारी परिवर्तन किया। अंग्रेजों के साथ की लड़ाई में उसने क़वायद और नये शस्त्रों की श्रेष्ठता देख ली थी, इसलिए उसने इस प्रकार की फ़ौज भी रखने का विचार किया। डी० बाएन नामक एक फ्रेंच सैनिक को इस प्रकार की दो पलटनें तैयार करने का काम दिया और इसके लिए उसने सब आवश्यक प्रबन्ध किया। डी०

शिन्दे का उत्तर के विरोधियों को दबाना और यूरोपीय ढंग की फ़ौज तैयार करना

बाएन के मित्र संग्स्टर नामक स्काच पुरुष को शिन्दे ने अपनी नौकरी में रक्खा। इस स्काच ने तोप, बन्दूक़ और बारूद-गोला बनाने का कारखाना आगरा के क़िले में शुरू किया। इस प्रकार यूरोपियन ढंग की फ़ौज शिन्दे ने तैयार की। डी०बाएन को शिन्दे ने खंडेराव की मदद के लिए बुन्देलखंड भेजा। दोनों ने मिल-कर वहाँ की बग़ावत बहुत शीघ्र शांत कर दी।

सन् १७८४ के अप्रैल में शाहज़ादा जवानबख़्त ने अंग्रेज़ों से मदद माँगी। वारेन हेस्टिंग्ज़ ने मदद देने से इनकार किया, क्यों-

शिन्दे का दिल्ली में फिर अधिकार

कि मराठों की लड़ाई ने उसे अच्छा सबक़ सिखा दिया था और इसीलिए उसने जवानबख़्त को मदद के लिए शिन्दे के पास जाने के लिए कहा। शिन्दे ने यह काम स्वीकार किया। तब बादशाह ने उसे अपनी वज़ीरी देनी चाही। महादजी बड़ा महत्वाकांक्षी पुरुष था और कोरे पद उसे प्रिय न थे। वह सच्ची सत्ता अपने हाथ में रखना चाहता था और पाटील बाबा जैसा सादा नाम उसे प्रिय था। बादशाह के बहुत आग्रह करने पर उसने यह सूचना की कि सवाई माधवराव पेशवा को बादशाह वकील-ई-मुतालिक (बादशाह का ख़ास प्रतिनिधि) नामक पद दें और मुझे उसका नायब नियत करें। इस प्रकार महादजी के हाथ में बड़ा भारी अधिकार आया। उसने बादशाही मुल्क में गोवध बंद करने का बादशाही हुक्म जारी करवाया। उसने कुछ फ़ौज दिल्ली में रख दी और स्वयं मथुरा में रहने लगा।

अब महादजी शिन्दे ने बादशाही मुल्क का बन्दोबस्त ज़ोरों

से शुरू किया। आगरे का क़िला मुहम्मदबेग खानदानी के हाथ में था और वह देता न था। सन् १७८५ के मार्च में महादजी की फ़ौज ने उसे घेर कर ले लिया। इसके बाद मुहम्मदबेग और उसके भतीजे इस्माइलबेग को महादजी ने बादशाही नौकरी में रक्खा और उन्हें राघोगढ़ लेने के लिए गई हुई फ़ौज की मदद के लिए भेज दिया। दोआब के अलीगढ़, कोल आदि स्थान शिन्दे के क़ब्ज़े में आये। डीग का क़िला भी शीघ्र ही मराठों के हाथ आया। सिखों को दबाने का काम उसने अम्बाजी इंगले के ज़िम्मे सौंपा। इसी समय जबेदाख़ाँ की मृत्यु हुई। दोआब की उसकी जागीर शिन्दे ने उसके लड़के ग़ुलाम क़ादर को दी। शिन्दे ने अब कर-वसूली का काम भी अच्छी तरह शुरू किया। सन १७६५ में इलाहबाद की जो सन्धि हुई थी, उसमें एक शर्त्त यह थी कि ईस्ट-इंडिया-कम्पनी शाहआलम को २६ लाख रुपया सालाना दिया करे। सन् १७७१ में जबसे शाहआलम मराठों की सहायता से दिल्ली आया था, तबसे अंग्रेज़ों ने यह रुपया नहीं पटाया था। अब महादजी शिन्दे ने उनसे पिछला सब बक़ाया माँगा, पर अंग्रेज़ों ने उसे देने से इनकार कर दिया। महादजी शिन्दे इस समय फिरसे अंग्रेज़ों से लड़ाई छेड़ने को तैयार न था, इसलिए अंग्रेज़ों के इनकार करने पर वह ख़ामोश रहा। तथापि इस समय भी महादजी का महत्व बहुत अधिक था और पूना-दरबार की अंग्रेज़ों से कोई भी बातचीत उसीके ज़रिये होती थी। सन् १७८६ में गवर्नर-जनरल मैक्फ़र्सन ने महादजी का

शिन्दे द्वारा बादशाही मुल्क का प्रबन्ध

महत्व कम करने के विचार से बम्बई के अंग्रेजों को पूना में अपना वकील रखने की इजाज़त दी। इससे यह देख पड़ता है कि महादजी ने दिल्ली की बादशाही के सूत्र अपने हाथ में लिये तब मराठों की धाक अंग्रेजों पर जमी थी। इस प्रकार मराठों के हिन्दू-पद-पादशाही के उद्देश्य की अंशतः सिद्धि हुई।

महादजी शिन्दे ने दिल्ली-दरबार में मराठों का महत्व स्थापित किया। यह बात पठान, रुहेले आदि कट्टर मुसलमानों को ठीक न लगी। इसी प्रकार उत्तर के जाट, राजपूत आदि हिन्दू राजाओं को भी यह बात पसन्द न हुई। वे यह न चाहते थे कि कोई एक प्रबल सत्ता स्थापित हो; क्योंकि एक सत्ता के स्थापित होने पर उनकी स्वतन्त्रता बनी न रह सकती थी। महादजी शिन्दे ने बादशाही कारबार हाथ में आते ही भिन्न-भिन्न सरदारों और रजवाड़ों को बादशाही चाकरी करने को कहा और उनसे कड़ी रीति से कर माँगा। इसलिए वे नाराज़ हुए और उसका नाश करने का अवसर ढूँढने लगे। इसी कारण जयपुर के राणा प्रतापसिंह से शिन्दे की लड़ाई हुई। दोनों के बीच जयपुर से ४३ मील पर लालसोट में २८ जुलाई सन् १७८७ को युद्ध हुआ। इस अवसर पर बादशाही सेना में से कुछ लोग राजपूतों से जा मिले, इसलिए शिन्दे को वापस डीग आना पड़ा। अलवर और भरतपुर के जाटों ने उसे इस अवसर पर अच्छी मदद दी, इसलिए उसकी सेना बच गई।

जयपुर से शिन्दे का युद्ध

लालसोट के पराभव से मराठों की धाक उत्तर-हिन्दुस्थान में एकदम कम होगई और उनके शत्रुओं को आनन्द हुआ।

इस्माइलबेग नामक एक सरदार राजपूतों से जा मिला था, वह अब वापस आया और उसने आगरे के क़िले को घेर लिया। गुलाम क़ादर ने भी इस समय सिर उठाया। दिल्ली के जो मुसलमान सरदार महादजी के विरुद्ध थे, उन्होंने गुलाम क़ादर को सहायता दी। शिन्दे की सेना दिल्ली से भाग आई, इसलिए बादशाह का कारबार गुलाम क़ादर के हाथ में चला गया। इसके बाद उसने दोआब को अपने क़ब्ज़े में करना शुरू किया। तब महादजी चम्बल नदी के दक्षिण की ओर चला आया और ग्वालियर के पास उसने अपनी छावनी डाली। उत्तर के सभी लोगों के मन में मराठों के प्रति द्वेष प्रदीप्त हो चुका था। आगरा और अलीगढ़ को छोड़ चम्बल नदी के उत्तर में मराठों के पास कोई स्थान न बचा था। ऐसे समय में शिन्दे ने नाना फड़नवीस से सहायता माँगी।

लालसोट के पराभव से उत्तर में शिन्दे का प्रभाव नष्ट

नाना फड़नवीस ने शमशेरबहादुर के लड़के अलीबहादुर और तुकोजी होलकर को सेना देकर रवाना किया। इधर अलीगढ़ मुसलमानों के हाथ चला गया, पर लक्ष्मण अनन्त लाड़ ने आगरा क़िले की अच्छी तरह रक्षा की और उसे इस्माइलबेग के हाथ न जाने दिया। तब महादजी शिन्दे ने घेरा डालने वाली मुसलमानी फ़ौज पर हमला करने के लिए अपनी फ़ौज भेजी। इस फ़ौज से इस्माइलबेग और गुलाम क़ादर ने भरतपुर के पास लड़ाई की। इसमें मराठा फ़ौज को पीछे हटना पड़ा, परन्तु सिखों की चढ़ाई के कारण गुलाम

शिन्दे का फिर थोड़ा-बहुत अपना प्रभाव जमाना

क़ादर को सहारनपुर की अपनी जागीर में जाना पड़ा। अब इस्माइलबेग आगरा में अकेला रह गया, इसलिए मराठा सेना ने उसपर चढ़ाई की और उसे अच्छी तरह हरा दिया। इस्माइलबेग भाग कर ग़ुलाम क़ादर से जा मिला। अब महादजी ने फिरसे मथुरा में छावनी की और दिल्ली के आस-पास वह अपना अधि-क़ार जमाने लगा।

इधर ग़ुलाम क़ादर और इस्माइलबेग ने दिल्ली में प्रवेश कर लूट-मार करने का विचार किया, इसलिए यह जोड़ी दिल्ली में घुमी। राजमहल की लूट का काम ग़ुलाम कादर ने अपने जिम्मे लिया और शहर को लूटने के काम में इस्माइलबेग लगा। इस समय ग़ुलाम क़ादर ने बादशाह शाहआलम और राजघराने के लोगों पर राक्षसी अत्याचार किये। उसने शाहआलम को बुरी तरह पीटा और उसकी आँखें फोड़ डालीं। फिर गद्दी से उतार कर उसके स्थान में बेदरबख्श नाम के नये बादशाह की स्थापना की। ग़ुलाम क़ादर के अत्याचारों से इस्माइलबेग सहमत न था और लूट का बहुतेरा धन ग़ुलाम क़ादर ने ही ले लिया था, इसलिए इस्माइलबेग ग़ुलाम क़ादर से नाराज़ होकर महादजी शिन्दे से जा मिला। तब ग़ुलाम क़ादर को दिल्ली से भागना पड़ा। अब दिल्ली का क़िला मराठों के हाथ में फिरसे आया। महादजी शिन्दे ने शाहआलम को फिरसे गद्दी पर बैठाया और ग़ुलाम क़ादर को पकड़ने के लिए फ़ौज भेजी। एक-दो जगह से भाग कर अन्त में वह मराठों के हाथ पड़ा। महा-दजी शिन्दे ने उसे अत्यन्त क्रूरतापूर्वक मरवा डाला (३ मार्च

ग़ुलाम क़ादर का दिल्ली में अत्याचार और शिन्दे के हाथ उसका अन्त

१९२

सन् १७७९)। फिर उसने दिल्ली, आगरा और दोआब के मुल्क को अपने क़ब्ज़े में किया।

महादजी शिन्दे और अलीबहादुर की बहुत दिनों तक न बनी। हिम्मतबहादुर गोंसाई को आश्रय देने के कारण अली-बहादुर से शिन्दे ने झगड़ा किया। सम्भवतः दोनों में लड़ाई भी ठन जाती, पर इसी समय महादजी ने राजपूतों पर चढ़ाई करने का विचार किया था, इसलिए उसने अलीबहादुर से ज्यादा बखेड़ा न किया। हिम्मतबहादुर की सहायता से अली-बहादुर ने बुन्देलखंड में बहुत-सा प्रदेश जीता और उसके प्रबन्ध के लिए बांदा में रहने लगा।

शिन्दे और अलीबहादुर का झगड़ा

सन् १७७९ में बादशाही कारबार हाथ में आने पर बड़ी भारी क़वायदी फ़ौज तैयार करने का उसने विचार किया। डी. बाएन उसकी नौकरी छोड़कर लखनऊ में व्यापार करने लगा था। शिन्दे ने उसे वापस बुलाया और क़वायदी फ़ौज तैयार करने का काम उसके ज़िम्मे किया। डी.बाएन ने यह फ़ौज अवध, बुन्देलखंड, हरिद्वार के लोगों को भरती कर तैयार की और उसे अंग्रेज़ी ढंग की क़वायद सिखलाई। प्रत्येक पलटन का अफ़सर यूरोपियन था। ऐसी दस पलटनों की एक फ़ौज तैयार होने पर उसने दो और फ़ौज तैयार करवाईं। फ़ौज को वेतन समय पर मिलने के लिए उसने दिल्ली से मथुरा तक का दोआब का मुल्क उसके अधीन कर दिया था और इस मुल्क का मुल्की और फ़ौजी प्रबन्ध उसीको सौंप दिया था।

शिन्दे का फिर डी०बाएन के हाथ यूरोपियन ढंग की फ़ौज तैयार करवाना

पहली क़वायदी फ़ौज तैयार होते ही महादजी ने राजपूतों की ख़बर लेने का विचार किया। इस्माइलबेग फिरसे राजपूतों से जा मिला था। महादजी ने सन् १७९० के १९ जून को मुहम्मदबेग तथा राठौड़ों की संयुक्त फ़ौज को जयपुर के पास पाटन में अच्छी तरह हरा दिया। फिर उसने जोधपुर के अभयसिंह से मेड़ते नामक स्थान में लड़ाई की और हज़ारों राठौड़ों का संहार कर डाला। तब अभयसिंह ने बड़ा भारी कर दिया और अजमेर का क़िला और प्रदेश वापस दिये। फिर वह उदयपुर गया। इस राज्य में जो अशान्ति मची थी उसे उसने नष्ट किया और अम्बाजी इंगले को वहाँ का कारबार सौंपा। इस प्रकार नये प्रकार की फ़ौज खड़ी कर महादजी शिन्दे ने मुसलमान व राजपूतों का विरोध नष्ट किया और मराठों की सत्ता उत्तर-हिन्दुस्थान में फिरसे स्थापित की। परन्तु दुर्दैव से मराठों में इसी समय भेद-भाव बहुत बढ़े। दक्षिण से उसकी मदद को आये हुए अलीबहादुर और तुकोजी होलकर से बुन्देलखंड और राजपूताना के प्रदेश के सम्बन्ध में उसके झगड़े शुरू हुए। महादजी ने विचार किया कि पूना जाकर इन झगड़ों का तसफ़िया कर डालना चाहिए। इसलिए सन १७९२ में उसने दक्षिण जाने का निश्चय किया।

शिन्दे का राजपूतों को दबाना, पर आपसी झगड़ों के कारण दक्षिण-गमन

इधर दक्षिण में निज़ाम और अंग्रेजों से मिलकर मराठों ने टीपू से दूसरी लड़ाई की। सन् १७८६ की चढ़ाई के समय

मराठे टीपू को अच्छी तरह न दबा सके थे, इसलिए मराठे और निज़ाम दोनों की इच्छा फिर से टीपू पर चढ़ाई करने की थी। इसी समय अंग्रेज़ों को भी उससे लड़ने का एक कारण मिल गया। उनके मित्र त्रावणकोर के राजा पर सन् १७७९ के दिसम्बर में टीपू ने चढ़ाई की। इसलिए अंग्रेज, मराठों और निज़ाम से मिलकर, टीपू से लड़ने को तैयार हुए। सन् १७९० के जून-जुलाई में तीनों पक्षों के बीच इक़रार हुआ और फिर चढ़ाई शुरू हुई।

दक्षिण में टीपू से मराठों, अंग्रेज़ों और निज़ाम की लड़ाई (सन् १७९०)

मराठों की फ़ौज का मुखिया परशुराम भाऊ पटवर्धन था। उसके अधीन २५ हज़ार फ़ौज और माधवराव कृष्ण पानसे के अधीन आवश्यक तोपें थीं। अंग्रेज़ों की फ़ौज बम्बई से केप्टन लिटिन के अधीन रवाना हुई।

बंगलोर को वापसी

टीपू ने धारवाड़ का प्रदेश ले लिया था, इसलिए परशुराम पटवर्धन ने पहले उसे जीतना चाहा। धारवाड़ के आसपास का प्रदेश तो उसने ले लिया, पर धारवाड़ के क़िले को लेने में उसे बड़ी कठिनाई पड़ी। बीच में अंग्रेज सेनापति ने केवल अपनी सेना के बल पर उसे लेने का प्रयत्न किया, पर उसका प्रयत्न विफल हुआ। अन्त में सन् १७९१ के ६ अप्रैल को मराठों ने ही उसे लिया। इससे तुंगभद्रा के उत्तर का सब मुल्क मराठों के हाथ आया। इसके बाद परशुरामभाऊ तुंगभद्रा पार कर रास्ते के स्थान लेता हुआ श्रीरंगपट्टम की ओर बढ़ा। रास्ते के स्थान लेने में उसे काफ़ी समय लगा। इसलिए हरिपंत फड़के भी श्रीरंगपट्टम की

ओर रवाना हुआ। अंग्रेज़ी सेना का अधिकारी इस समय स्वयं गवर्नर-जनरल लार्ड कार्नवालिस था। प्रारम्भ में उसकी सेना ने अच्छा काम किया, पर ज्यों-ज्यों वह श्रीरंगपट्टम के पास पहुँचा त्यों-त्यों उसकी सेना को बहुत कष्ट सहने पड़े। क्योंकि टीपू ने उसके आस-पास के मुल्क को नष्ट करडाला था और इस कारण अंग्रेज़ी सेना को रसद न मिल सकी, इसलिए अंग्रेज़ी फ़ौज को बँगलोर तक वापस जाना पड़ा। यहाँ पर मराठा फ़ौज उससे मिली और तब उसे खाने-पीने का सामान मिला। हरिपंत फड़के के पास रुपये की कमी हो गई थी, उसे अंग्रेज़ों ने दूर किया।

सन् १७९१ के वर्षाकाल के समाप्त होने पर तीनों की संयुक्त फ़ौजें बंगलोर से रवाना हुईं। दूसरे साल के फ़रवरी महीने में वे श्रीरंगपट्टम के पास पहुँचीं। यहाँ पर टीपू से लड़ाई हुई और वह हार कर क़िले में चला गया। अब अंग्रेज़ों ने श्रीरंगपट्टम का घेरा डाला। शीघ्र ही अम्बर कोनवी के अधीन और अंग्रेज़ी सेना आ पहुँची। परशुराम भाऊ कुछ पीछे रह गया था। टीपू ने एक-दो बार लड़ने का प्रयत्न किया, पर हार गया और अन्त में कोई उपाय न देख शरण आया। अंग्रेज़ उससे सन्धि न करना चाहते थे। पर मराठों और निज़ाम के बीच यह निश्चय पहले हो चुका था कि टीपू को समूल नष्ट नहीं करना चाहिए, अन्यथा अंग्रेज़ बहुत अधिक प्रबल हो जायँगे।

टीपू की पराजय तथा सन्धि

सन्धि की शर्तें ये थीं—तीन करोड़ रुपये और अपना आधा

राज्य टीपू मराठा, अंग्रेज़ और निज़ाम को दे। इन शर्तों के पालन के लिए उसने अपने दो लड़के अंग्रेज़ों के अधीन किये। तीन करोड़ रुपयों में से एक करोड़ रुपये और चालीस लाख का मुल्क मराठों को मिला। यह मुल्क कृष्णा और तुंगभद्रा के दोआब का था। इसमें सावनूर का राज्य, पटवर्धन की जागीर के लक्ष्मेश्वर, कुन्द-गोल वग़ैरा परगने और धारवाड़ का सूबा वग़ैरा थे। इस चढ़ाई के समाप्त होते ही मराठा फ़ौज पूना को चली आई, क्योंकि महा-दजी शिन्दे उत्तर से दक्षिण को आ रहा था।

सन्धि की शर्तें

महादजी शिन्दे ने अपने राज्य की व्यवस्था की और बड़ी भारी फ़ौज लेकर दक्षिण की ओर रवाना हुआ। उसके इस आने के सम्बन्ध में अनेक लोगों के अनेक मत रहे। नाना फड़नवीस ने डर कर अंग्रेज़ों की सहायता माँगी। यह सहायता मिली तो नहीं, पर शिन्दे ने इस बात की ख़बर पाकर अपनी बहुत-सी फ़ौज वापस कर दी। १७९२ के ११ जून को वह पूना पहुँचा।

शिन्दे के दक्षिण में आने पर खलबली

पूना में आने पर उसने बादशाह की दी हुई सनद, पोशाक और राज-चिन्ह पेशवा को देने के लिए बातचीत शुरू की। नाना ने इसे नापसन्द किया उसने कहा कि ऐसा करने से सातारा के महाराज का अपमान होगा। इसपर शिन्दे ने सातारा के राजा की अनुमति प्राप्त करली। तब नाना को अपना आक्षेप वापस लेना पड़ा। १२ जून को शिन्दे ने एक बड़ा भारी दरबार किया और सवाई माधवराव को

शिन्दे का वकील-ई मुता-लिक की शाही सनद पेशवा को अर्पण करना

वकील-ई-मुतालिक की सनद और पोशाक देने का कार्य सम्पन्न किया। इसके बाद उसने पेशवा के हाथ से वकील-ई-मुतालिक के नायक की सनद और पोशाक ली। इस अवसर पर उसने अपने भाषण और आचरण में बहुत विनय दिखलाई।

अब उसने पूना-दरबार के कारबार को अपने हाथ में लेने की खटपट शुरू की। महादजी बड़ा मृदुभाषी था, इसलिए अपने मीठे भाषण से उसने सवाई माधवराव का बाल-मन अपनी ओर खींच लिया और वह उसके साथ रहने लगा। अन्त में उसने अपनी इच्छा एक दिन पेशवा पर प्रकट की। इस अवसर पर सवाई माधवराव ने बहुत अच्छा उत्तर दिया, "नाना और तुम मेरे दो हाथ हो; नाना दाहिना हाथ है और तुम बायाँ। इन दोनों हाथों में से कोई भी एक न रहा तो मैं लूला हो जाऊँगा। इसलिए जो व्यवस्था चली है, वही ठीक है।" इस उत्तर से महादजी बड़ा लज्जित हुआ और उसने नाना का विरोध करना छोड़ दिया। सम्भव है कि नाना की बुद्धि और महादजी की शक्ति एकत्र होने से मराठा-राज्य का कोई बड़ा कार्य बन गया होता; पर दुर्दैव से इसके थोड़े ही दिनों बाद, सन् १७९४ की १२ फ़रवरी को, महादजी शिन्दे की मृत्यु हो गई। यह हम देख ही चुके हैं कि अपना महत्व बढ़ाने के विचार से अंग्रेज़ों के साथ मराठों की लड़ाई में उसने बहुत ढिलाई की, पर यह भी सत्य है कि उत्तर-हिन्दुस्थान में पानीपत की लड़ाई के बाद मराठों की धाक जमाने का काम महादजी शिन्दे ने ही किया। वह वास्तव में मराठा-राज्य का एक आधार-स्तम्भ था। महादजी

पूना का कारबार अपने हाथ में लेने का शिन्दे का प्रयत्न और उसकी मृत्यु

के कोई लड़का न था, इसलिए उसके भाई तुकोजी के पोते दौलतराव को पेशवा की सम्मति से उसका पद दिया गया।

सवाई माधवराव के समय का अन्तिम बड़ा भारी कार्य हुआ निज़ाम के साथ युद्ध था। इस युद्ध का कारण यह था कि निज़ाम ने चौथ कई सालों तक नहीं पटाई थी। नाना ने कई बार तक़ाज़ा किया, पर उससे कुछ लाभ न निकला।

निज़ाम से मराठों की लड़ाई (सन् १७९५)

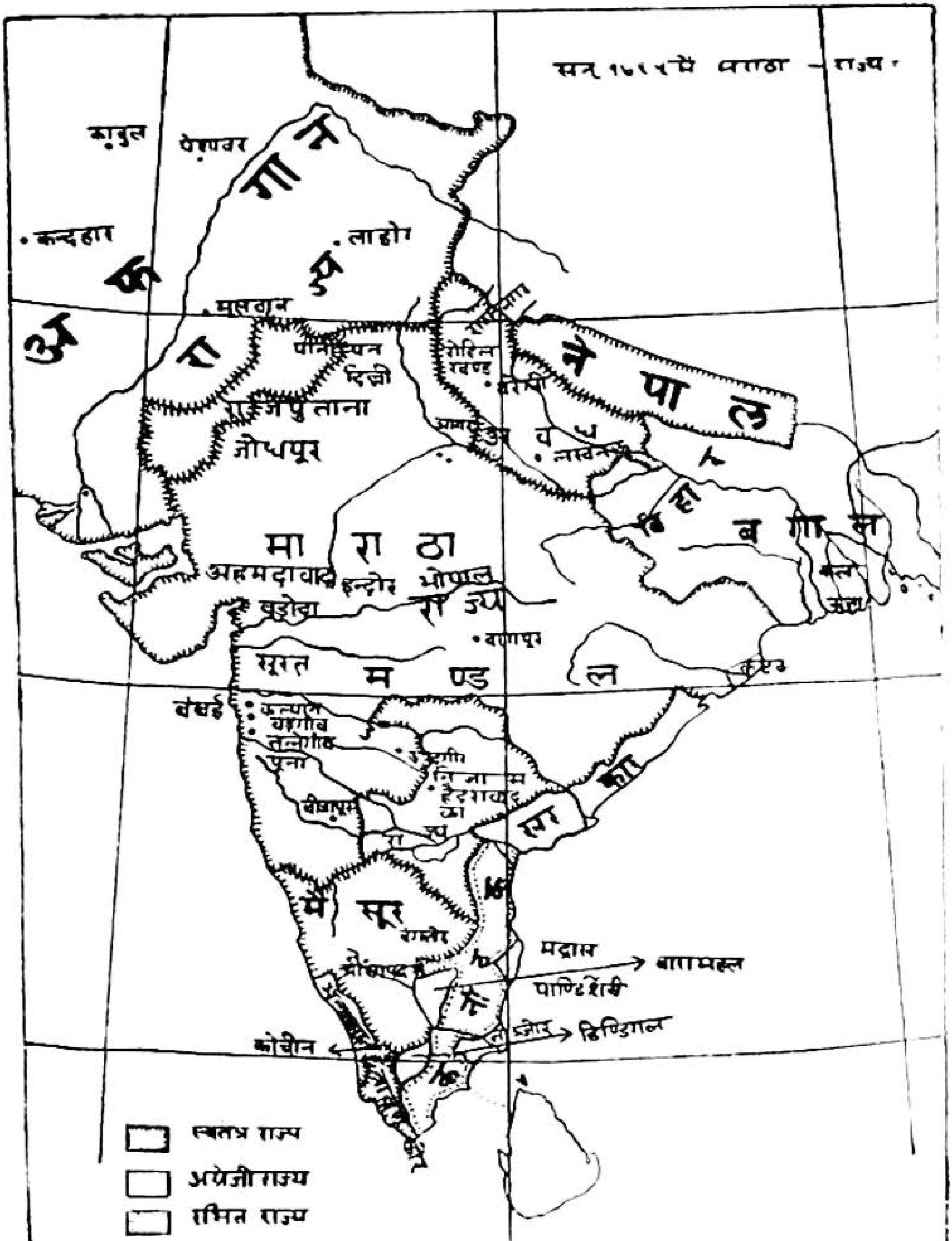
शिन्दे की मृत्यु के बाद शीघ्र ही हरिपंत फड़के की मृत्यु हुई। इसलिए निज़ाम को ऐसा जान पड़ा कि अब मराठों की कोई परवाह न करनी चाहिए। इसीलिए एक अवसर पर निज़ाम के दीवान मशीर-उल्-मुल्क ने पेशवा के वकील गोविन्दराव काले का बहुत अपमान किया और स्वयं पेशवा के विषय में भी बड़ी अपमानजनक बातें कहीं। मशीर-उल्-मुल्क की इन अपमान-जनक बातों की ख़बर पाकर नाना ने निज़ाम से लड़ाई करने का निश्चय किया।

नाना ने मराठा-राज्य के सब सरदारों को अपनी-अपनी फ़ौजें लेकर आने को लिखा। निज़ामअली से लड़ने के लिए क़रीब डेढ़ लाख फ़ौज जमा हुई। इतनी सारी सेना का अधिकारी परशुराम भाऊ पटवर्धन था। सन् १७९४ के दिसम्बर

खर्डा की लड़ाई; मराठों की विजय तथा सन्धि

में यह फ़ौज पूना से रवाना हुई। रास्ते में शिन्दे, होलकर, गायकवाड़, भोंसले, पटवर्धन आदि सरदारों की भी फ़ौजें शामिल हुईं। दो महीने में यह सेना निज़ाम की सरहद पर पहुँच गई। इस फ़ौज से लड़ने के लिए निज़ामअली १ लाख १० हज़ार

सन् १७६५ में मराठा—राज्य



फ़ौज लेकर आगे बढ़ा। दोनों फ़ौजों की मुठभेड़ सन् १७९५ के मार्च महीने में परिण्डा के पास हुई। परशुराम भाऊ ने सारी फ़ौज को लड़ाई की तैयारी से खड़ा किया और स्वयं कुछ फ़ौज लेकर शत्रु की हलचल देखने आगे बढ़ा। निज़ाम की फ़ौज से उसका जो सामना हुआ, उसमें वह स्वयं ज़ख्मी हुआ और उसे पीछे हटना पड़ा। इसके बाद हरिपंत फड़के के लड़के रामचन्द्र हरि फड़के को भी पीछे हटना पड़ा। ये दो पराभव देख नाना कुछ घबरा गया। पर इसके बाद परिस्थिति बदल गई। मराठों की सेना से सामना करने के लिए निज़ाम का सरदार असदअलीख़ाँ १७ हज़ार गारदी लेकर आगे बढ़ा। भोंसले और शिन्दे की सेना ने उसे मार भगाया और खुद निज़ामअली के मन में डर उत्पन्न कर दिया। इतने में निज़ामअली के हुक्म से गारदी भी पीछे हटे। इस समय सूर्यास्त हो चुका था। अन्धकार होने पर निज़ाम की यह घबराई हुई सेना खर्डा की गढ़ी के आसरे से ठहरी। इतने में यह गप्प फैली कि मराठे हमला करने आ रहे हैं। इसलिए निज़ाम की सेना अपना खज़ाना लूट कर मनमाने भागने लगी। इन भागने वाले लोगों की वस्तुयें मराठों ने लूट लीं। अपनी सेना की यह दुर्दशा देख निज़ाम-अली १० हज़ार फ़ौज लेकर खर्डा की गढ़ी में घुस पड़ा। दूसरे दिन मराठों ने उसे घेर कर गढ़ी पर तोपों की मार शुरू की। तब तीसरे दिन निज़ाम ने अत्यन्त कष्ट के कारण सन्धि की बात-चीत शुरू की। इसपर मराठों ने उत्तर दिया कि पहले मशीर को हमारे हवाले करो, फिर हम संधि की बातचीत सुनेंगे। अन्त में निज़ामअली ने मशीर को मराठों के हवाले कर दिया। तब

दोनों में सन्धि हुई। इस सन्धि से परिएडा के उत्तर की ओर तापी नदी तक उदगीर की लड़ाई के समय सदाशिवराव भाऊ का जीता हुआ सब मुल्क, लड़ाई का खर्च तथा पिछले बक़ाये के बदले तीन करोड़ रुपये निज़ाम ने पेशवा को दिये। रघुजी भोंसले के घास-दाने के हक़ के बदले ३ लाख १८ हज़ार का मुल्क भोंसले को मिला। इसके अलावा बरार की आमदनी के हिस्से के बक़ाये के बदले ३१ लाख रुपये और वहाँ की आमदनी का हिस्सा पहले-जैसा ही निज़ाम से रघुजी भोंसले को मिला। यह सन्धि होने पर मराठों ने निज़ाम को छोड़ दिया। मई के महीने में सेना पूना को वापस आई। पाये हुए मुल्क का बटवारा होने पर भिन्न-भिन्न सरदार अपने-अपने मुल्क को चले गये। इस लड़ाई से पेशवों की धाक दक्षिण में भी जम गई।

इस लड़ाई के कुछ ही महीनों बाद सवाई माधवराव की मृत्यु हुई। इस समय सवाई माधवराव केवल २२ वर्ष का था।

सवाई माधवराव की मृत्यु

नाना ने उसे सिखा-पढ़ा कर अच्छी तरह तैयार किया था और वह अब थोड़ा-बहुत राज्य-कारबार देखने लगा था। पर उसे ऐसा जान पड़ता था कि नाना मुझे स्वतंत्र नहीं रहने देता। उसके इस ख़याल को राघोबा के लड़के बाजी-राव ने अपनी चिट्ठियों से खूब भड़काया। नाना ने राघोबा के लड़कों को शिवनेरी में अच्छे बन्दोबस्त से रक्खा था। पर बाजी-राव ने वहाँ के अधिकारी को अपने वश में कर लिया और सवाई माधवराव से चिट्ठी-पत्री शुरू की। बाजीराव ने एक चिट्ठी में यह साफ़-साफ़ लिखा था कि हमारी-तुम्हारी स्थिति में कोई फ़र्क़ नहीं

है; तुम शनिवारबाड़े में क़ैद हो और मैं शिवनेरी में हूँ। इस चिट्ठी-पत्री की बात जब नाना को मालूम हुई, तब नाना ने बाजी-राव का पहरा सख़्त किया और पेशवा से भी कुछ कड़ी बातें कहीं। बरसात के बाद सवाई माधवराव को बुख़ार आने लगा और कभी-कभी वायु-विकार भी दीख पड़ने लगे। दशहरे के दिन तो उसने हाथी के हौदे में से नीचे कूदने का प्रयत्न किया। इस-लिए नाना ने उसकी रक्षा के लिए पहरा बैठा दिया। परन्तु एक दिन महल के ऊपर से वह नीचे कूद पड़ा। जहाँ वह गिरा वहाँ फव्वारा था, इसलिए उसे बहुत ज्यादा चोट पहुँची और तीन दिन के बाद उसकी मृत्यु हो गई।

२६

पेशवा द्वितीय बाजीराव और मराठाशाही का अन्त

सवाई माधवराव के कोई लड़का न था। इसलिए मरते समय उसने अपनी यह इच्छा प्रकट की कि मेरे बाद रघुनाथराव के लड़के बाजीराव को पेशवाई दी जाय। नाना फड़नवीस ने जन्म भर मेहनत करके राघोबा-रूपी ग्रह से पेशवाई की रक्षा की थी। सवाई माधवराव की अकाल मृत्यु से उसे अत्यन्त दुःख हुआ। वह नहीं चाहता था कि राघोबा के वंशजों को पेशवाई मिले। वह यह जानता था कि बाजीराव मुझसे अत्यन्त द्वेष करता है। इसलिए उसने रघुजी भोंसले और दौलतराव शिन्दे को पूना में बुलाया और उनके सामने यह प्रस्ताव रक्खा कि सवाई माधवराव की विधवा स्त्री यशोदाबाई को कोई लड़का गोद देकर उसे पेशवा बनाया जाय। शिन्दे के कारबारी बालोबा तात्या पागनीस को यह बात ठीक न लगी; पर अन्त में वह सहमत होगया और इस

नाना के पक्ष का चिमणाजी अप्पा को पेशवा बनाना।

योजना को अमल में लाने के लिए प्रयत्न किया। बाजीराव लोगों को अपने वश में करना बहुत अच्छी तरह जानता था। इसने अपनी आकर्षक बातों से बालोबा तात्या को अपनी ओर कर लिया और उसके ज़रिये दौलतराव शिन्दे के सामने ४ लाख के मुल्क का प्रलोभन रक्खा, जिससे दौलतराव शिन्दे उसकी ओर हो गया। अब यह निश्चय हुआ कि दौलतराव शिन्दे शिवनेरी में जाकर बाजीराव को क़ैद से छुड़ावे। इस बात की ख़बर नाना को लग गई। नाना ने सोचा कि दौलतराव शिन्दे के बाजीराव से मिलने पर बाजीराव के पेशवा होने में देर न लगेगी और शिन्दे ने बाजीराव को पेशवा बनाया तो अपनी कोई पूछ न रह जायगी और सदैव के लिए खटपट चलती रहेगी; इससे अच्छा यही है कि मैं ही बाजीराव को पेशवा-पद दिलाऊँ। इस विचार से उसने परशुराम भाऊ पटवर्धन से बाजीराव को मुक्त कर लाने को कहा। परशुराम भाऊ पटवर्धन के कथन का विश्वास शपथादि से कर लेने पर बाजीराव पटवर्धन के साथ पूना आया। नाना फड़नवीस ने उसकी भेंट ली। दोनों ने एक दूसरे को पूर्व-वैमनस्य भूल जाने का वचन दिया। यह निश्चय हुआ कि बाजीराव के पेशवा होने पर नाना फड़नवीस उसका कारबारी नियत हो। इन सब बातों की ख़बर पाने पर बालोबा तात्या पागनीस बाजीराव से बहुत नाराज़ हुआ। उसने शिन्दे से पूना पर चढ़ाई करवाई। नाना फड़नवीस पूना से पुरन्दर चला गया और शिन्दे की सेना ने पूना पर अधिकार जमा लिया। अब बालोबा तात्या पागनीस ने बाजीराव को दण्ड देने के विचार से उसके छोटे भाई चिमणाजी अप्पा को पेशवा बनाना चाहा। चिमणाजी अप्पा का अधिकार पक्का करने

के लिए उसने उसको यशोदाबाई के गोद दिलाने का प्रस्ताव किया। परशुराम भाऊ पटवर्धन नाना फड़नवीस से पूछ कर इस प्रस्ताव से सहमत हुआ। नाना फड़नवीस ने चिमणाजी अप्पा के नाम सातारा से पेशवाई की पोशाक प्राप्त की और पूना को भेज दी, पर पागनीस के डर के मारे वह स्वयं वहाँ न गया। बाजीराव को इन बातों की खबर न थी, इसलिए शिन्दे ने उसे चालाकी से क़ैद कर लिया। इसके बाद शिन्दे ने चिमणाजी अप्पा को यशोदाबाई का दत्तक पुत्र बनवाकर २६ मई सन् १७९६ को पेशवा बनाया।

वाजीराव पेशवा और नाना फड़नवीस कारबारी

अब बालोबा तात्या नाना फड़नवीस को पकड़ना चाहता था। पर नाना कुछ कम चालाक न था। वह सह्याद्रि लाँघकर पहाड़ में जा पहुँचा। अब बाजीराव और नाना फड़नवीस दोनों समान संकट में पड़े। इसलिए बाजीराव ने नाना फड़नवीस से बातचीत शुरू की। नाना को तुकोजी होलकर की सहायता मिलने की आशा थी और उसने कागल के सखाराम घाटगे के ज़रिये दौलतराव शिन्दे को अपनी ओर खींच लिया। सखाराम घाटगे के हाथ में शिन्दे को खींचने का एक बड़ा भारी शस्त्र था। बायजाबाई नाम की उसकी एक बहुत ही सुन्दर लड़की थी। बाजीराव के पक्ष में शामिल होने पर घाटगे ने अपनी लड़की शिन्दे को देने का वचन दिया। नाना फड़नवीस इतना ही प्रयत्न करके न रुका। निज़ाम का दीवान मशीर-उल्-मुल्क खर्डा की लड़ाई के बाद मराठों के पास क़ैद में था। नाना फड़नवीस ने उससे कहा कि यदि तुम निज़ाम की हमें सहायता दिलवा दो तो

हम तुम्हें स्वतंत्र कर देंगे और खर्डा की लड़ाई के बाद पाया हुआ मुल्क तुम्हें वापस दे देंगे। इस प्रकार नाना ने निज़ाम को भी अपनी ओर कर लिया। मानाजी फाकड़े पहले से ही बाजीराव के पक्ष में था। अब रघुजी भोंसले ने भी सहायता देने का वचन दिया। इस प्रकार सब तय होने पर दौलतराव शिन्दे ने बालोबा तात्या को चुपचाप क़ैद कर लिया और बाद में परशुराम भाऊ तात्या को भी क़ैद किया। इसके बाद बाजीराव को क़ैद से छुड़ा-कर पेशवा बनाया और चिमणाजी अप्पा का दत्तक-विधान नाजायज़ ठहराया गया। बाजीराव से अभय-वचन लेकर नाना फड़नवीस राज्य का कारबार देखने लगा।

संकट के समय में बाजीराव और नाना फड़नवीस में जो मेल हुआ, वह उसके दूर होने पर अधिक दिन न टिक सका।

नाना क़ैद में और उसका पक्ष निर्बल

नाना फड़नवीस ने मशीर-उल्-मुल्क को जो वचन दिये थे उन्हें बाजीराव ने मानने से इनकार किया। अगस्त सन् १७९७ में नाना फड़नवीस के सच्चे सहायक तुकोजी होलकर की मृत्यु हो गई। काशीराव, मल्हारराव, यशवंतराव और विठोजी नाम के उसके चार लड़के थे। इनमें से अन्तिम दो अनौरस थे। इनमें सरदारी के लिए आपस में झगड़े शुरू हुए। काशीराव के कहने से दौलतराव शिन्दे ने मल्हारराव होलकर को क़ैद करना चाहा, पर मल्हारराव होलकर इस प्रयत्न में मारा गया। उसका लड़का खंडेराव शिन्दे के हाथ पड़ा। यशवंतराव होलकर नागपुर को चला गया। इस प्रकार होलकर के राज्य के सूत्र शिन्दे के हाथ में आये। नाना फड़नवीस का पक्ष निर्बल होने पर शिन्दे की सहायता से सखाराम

घाटगे ने नाना को क़ैद कर लिया और अहमदनगर में ले जाकर रक्खा। घाटगे ने नाना फड़नवीस के घर को लूटा और बाजीराव ने नाना के सहायक बाबूराव फड़के और अप्पा बलवंत मेंहदले को क़ैद किया।

इस प्रकार बाजीराव ने अपने तथा अपने पिता के शत्रु से बदला लिया, पर इससे शिन्दे बहुत बली हो गया। बाजीराव ने शिन्दे को उसकी मदद के लिए दो करोड़ रुपये देने को कहा था, पर इतने रुपये देने की बाजीराव में ताक़त न थी; परन्तु शिन्दे उसकी कोई बात सुनने को कहाँ तैयार था? इसलिए अन्त में बाजीराव ने शिन्दे को पूना के लोगों को लूट कर अपना रुपया वसूल करने की बात सुझाई। शिन्दे ने यह काम सखाराम घाटगे के सुपुर्द किया। फिर घाटगे ने पूना में अपनी नादिरशाही शुरू की। भिन्न-भिन्न प्रकार के कष्ट देकर उसने लोगों से धन वसूल किया। बाजीराव के दत्तक-भाई अमृतराव ने यह सब अत्याचार देखकर बाजीराव से उसे बन्द करने को कहा और यह सुझाया कि शिन्दे को दरबार में बुलाकर क़ैद करना चाहिए। इस निश्चय के अनुसार शिन्दे को दरबार में बुलाया गया और वह आया भी। पर बाजीराव डरपोक था, शिन्दे को क़ैद करने का काम उससे न हो सका। इस प्रयत्न का फल इतना ही हुआ कि शिन्दे अब अधिक सावधान हो गया। उसे दबाने के विचार से बाजीराव ने नाना फड़नवीस को क़ैद से मुक्त किया; बाजीराव ने अपनी मीठी बातों से उसको यह विश्वास करा दिया कि नाना को क़ैद करने के काम में शिन्दे का ही हाथ था। नाना ने उसकी

शिन्दे का पूना को लूटना और नाना का फिरसे बाजीराव का कारबारी बनना

बातों पर विश्वास करके राज्य-कारबार फिर अपने हाथ में लिया।

इसके बाद कुछ ऐसी घटनायें हुईं कि जिनसे नाना फड़नवीस की स्थिति बुरी हो गई। पहले तो सातारा के राजा शाहू ने स्वतंत्र होकर राज्य-कारबार करने की इच्छा से कुछ प्रयत्न किया, पर उसका प्रयत्न विफल हुआ। एक दूसरा झगड़ा महादजी

नाना का पक्ष फिर निर्बल

शिन्दे की विधवाओं ने उत्पन्न किया। दौलतराव ने उन्हें क़ैद कर अहमदनगर में रखना चाहा, पर वे अमृतराव के आश्रय में चली गईं। सखाराम घाटगे ने उन्हें अमृतराव के आश्रय से छीनना चाहा और इस अवसर पर अमृतराव की छावनी को उसने लूटा। यह वास्तव में पेशवा का ही अपमान था, पर यह मामला किसी प्रकार तय किया गया। सन् १७९९ में टीपू और अंग्रेजों के बीच लड़ाई हुई। उसमें टीपू मारा गया और उसका राज्य नष्ट हो गया। इसीके एक साल पहले निज़ाम ने फ्रान्सीसी फ़ौज को दूर कर अंग्रेज़ी फ़ौज रखना स्वीकार कर लिया था और उसके खर्च के लिए उसने मैसूर से पाया हुआ सब मुल्क अंग्रेजों के अधीन कर दिया था। महादजी शिन्दे की विधवायें अमृतराव के पास से कोल्हापुर के राजा के आश्रय में चली गईं और उसने उनका पक्ष लिया, इसलिए उसके और पेशवा के बीच लड़ाई-झगड़े होने लगे। सातारा के राजा के भाई चतुरसिंह ने प्रतिनिधि और परशुराम पटवर्धन को हराया। पटवर्धन गहरे ज़ख्मों के कारण मर गया। उधर यशवंतराव होलकर नागपुर से भाग कर शिन्दे के मुल्क में गड़बड़ मचाने लगा, इसलिए दौलतराव को उत्तर में जाना पड़ा।

इन सब घटनाओं से भी बड़ी घटना यह हुई कि सन् १८०० के १३ मार्च को नाना फड़नवीस की मृत्यु हो गई। महाराष्ट्र ने जिन बड़े-बड़े पुरुषों को जन्म दिया, उनमें नाना फड़नवीस भी एक था।

नाना की मृत्यु

राघोवा की एक न चलने देने में नाना फड़नवीस का ही हाथ था। उसीके कारण मराठों ने अंग्रेजों के दाँत खट्टे किये। शिन्दे ने यदि ढिलाई न दिखाई होती तो अंग्रेजों को मराठों के काम में हस्तक्षेप करने का मौक़ा ही न मिलता और नाना ने साष्टी उर्फ़ सालीसट को उनके हाथ न जाने दिया होता। महाराष्ट्रियों का नाम उत्तर और दक्षिण दोनों ओर बढ़ाने के उसने बहुत प्रयत्न किये। एक बार विना मदद के और दूसरी बार अंग्रेजों और निज़ाम की मदद से उसने टीपू को दबाया। लार्ड कार्नवालिस की बड़ी इच्छा थी कि टीपू का राज्य नष्ट कर दिया जाय, पर इसके परिणाम को नाना अच्छी तरह समझता था। इस कारण उसे पूरी तौर से उसने नष्ट न होने दिया। खर्डा की लड़ाई में सब मराठे सरदारों की सहायता से उसने निज़ाम को बुरी तरह हराया। नाना फड़नवीस अत्यन्त परिश्रमी और बहुत बुद्धिमान पुरुष था। इसलिए छोटी-से-छोटी बात करने के लिए तैयार रहता था और बड़ी से बड़ी बात को भी वह समझता था। महाराष्ट्र में तबसे अबतक लोग यह मानते आये हैं कि बड़ी बुद्धिमत्ता से उसने मराठा-राज्य की रक्षा की। कर्नल पामर ने बहुत ठीक कहा है कि उसके साथ महाराष्ट्र की बुद्धिमत्ता और विचारशीलता चली गई!

नाना फड़नवीस की मृत्यु से बाजीराव स्वतंत्र तो न हुआ,

पर दौलतराव शिन्दे के दबाव में पड़ गया। इसलिए पेशवा ने यशवंतराव होलकर की ओर अपनी दृष्टि फेरी। यह बता ही चुके हैं कि यशवंतराव होलकर तुकोजी होलकर का

शिन्दे और होलकर की आपसी लड़ाई

अनौरस लड़का था तथा शिन्दे से बचने के लिए नागपुर के भोंसले के आश्रय में भाग गया था और यहाँ से उत्तर में जाकर शिन्दे के मुल्क में गड़बड़ मचा रहा था। उसने शिन्दे की सेना को उज्जैन के पास बुरी तरह हराया। तब शिन्दे बाजीराव से ४७ लाख रुपये वसूल कर उत्तर में गया। इस समय होलकर दक्षिण की ओर आरहा था। इन्दौर के पास दोनों की मुठभेड़ हुई। शिन्दे ने होलकर को हरा दिया (ता० १४ अक्तूबर १८०१)।

पर यशवंतराव होलकर ने शिन्दे की ओर ध्यान देने के बदले पेशवा पर ही चढ़ाई की। इसका कारण यह था कि शिन्दे के जाने के बाद बाजीराव ने अपने पिता के विरोधियों से भरपूर बदला लेना शुरू किया। तुकोजी होलकर का अनौरस लड़का विठोजी होलकर भी नाना फड़-

यशवंतराव होलकरकी पूना पर चढ़ाई और लूट; बाजीराव अंग्रेज़ों के आश्रय में

नवीस का पक्षपाती था। बाजीराव ने उसे क़ैद कर हाथी के पैर से बँधवाया और इस प्रकार सारे पूना शहर में मरते दम तक उसे घसीटा। यह वास्तव में बड़ी भारी भूल थी। यशवंतराव होलकर ने बाजीराव से बदला लेने की शपथ ली और पूना पर चढ़ाई की। शिन्दे ने सदाशिव भास्कर को उसपर भेजा, पर यशवंतराव उससे बच कर १८०२ के २३ अक्तूबर को पूना के पास आपहुँचा और सदाशिव भास्कर तथा पेशवा की संयुक्त फ़ौज को दो दिन के बाद

हरा दिया। लड़ाई का परिणाम देखते ही बाजीराव पूना से सिंहगढ़ को भाग गया। यशवंतराव ने उसे वापस बुलाया और अपनी फ़ौज को ताकीद दी कि शहर में लूटमार न की जाय। पर बाजीराव को यशवंतराव का विश्वास न था, इसलिए वह वापस न आया। सिंहगढ़ से वह महाड़ को गया। यहाँ से उसने अंग्रेज़ों को सहायता के लिए लिखा। अंग्रेज़ों से रक्षा का वचन पाकर वह रेवदंडा से बसई को चला गया। इधर यशवंतराव होलकर ने बाजीराव के दत्तक भाई अमृतराव को पेशवा बनाया। इसके बाद उसने पूना को इच्छानुसार लूटा। इस समय पूना के लोगों को सखाराम घाटगे का ख़याल आये बिना न रहा।

बसई की सन्धि से भारतवर्ष का साम्राज्य अंग्रेज़ों के हाथ

इधर बाजीराव ने पेशवा-पद फिरसे प्राप्त करने के लिए फिरसे सहायता माँगी और सन् १८०२ के अन्तिम दिन उसने अंग्रेज़ों से यह संधि की कि अंग्रेज़ बाजीराव को पूना में ले जाकर पेशवा-पद पर बिठलावें, इसके बाद अंग्रेज़ छः हज़ार फ़ौज और तोपख़ाना पेशवा के राज्य में रक्खें, इस फ़ौज के ख़र्च के लिए २६ लाख का मुल्क पेशवा अंग्रेज़ों के अधीन करे, पेशवा अंग्रेज़ों से द्वेष करने वाले किसी भी यूरोपियन राष्ट्र को आश्रय न दे, निज़ाम और गायकवाड़ से जो कुछ बातचीत करनी हो वह अंग्रेज़ों के ज़रिये की जाय, और किसी भी राजा से पेशवा अंग्रेज़ों के पूछे बग़ैर लड़ाई या संधि न करे। इस समय तक अंग्रेज़ों के पैर हिन्दुस्थान में पक्की तौर पर जम गये थे। टीपू का राज्य उन्होंने नष्ट कर डाला था और उसके स्थान में एक छोटा-सा आश्रित राज्य मैसूर के

पुराने राजवंश को दिया था। कर्नाटक का राज्य उन्होंने अपने राज्य में शामिल कर लिया था। तंजौर के राज्य को शामिल कर उन्होंने वर्तमान मद्रास इलाक़ा बना लिया था। बंगाल और बिहार सन् १७६५ से ही उनके हाथ में थे। यह बताही चुके हैं कि मैसूर की लड़ाई से निज़ाम ने जो कुछ पाया वह उसने अंग्रेज़ी सेना की सहायता के बदले अंग्रेज़ों के अधीन कर दिया था। सन् १८०१ में अंग्रेज़ों ने अवध के वज़ीर से जो संधि की, उसके अनुसार सैनिक सहायता के बदले उन्होंने गंगा-यमुना का दोआब और रुहेलखंड अपने हाथ में ले लिये थे। लार्ड वेलेज़ली इस समय भारतवर्ष में ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी का गवर्नर-जनरल था। उसने ईस्ट-इंडिया-कम्पनी को भारत में सर्वोच्च सत्ता बनाने का निश्चय किया था और इसके लिए उसने इतिहास-प्रसिद्ध सहायक-प्रथा की योजना तैयार की थी। इसी योजना के अनुसार उसने मैसूर, हैदराबाद और अवध को ईस्ट-इंडिया-कम्पनी का आश्रित बना डाला था। इस समय तक हिन्दुस्थान में यदि कोई बड़ी भारी सत्ता बच रही थी तो वह मराठों की ही थी। बसई की संधि के पहले लार्ड वेलेज़ली ने मराठे राजाओं से अपने आश्रय में आने को कई बार कहा था। मराठे आपस में लड़ते-झगड़ते तो थे, पर लार्ड वेलेज़ली के प्रस्ताव का अर्थ अच्छी तरह समझते थे। नाम-मात्र को ही क्यों न हो, पेशवा को वे अपना सर्वोच्च समझते थे। पर बसई की संधि करके ३१ दिसम्बर सन् १८०२ को बाजीराव ने मराठा राज्यों की स्वतंत्रता की माला अंग्रेज़ों के गले में डाल दी। जैसा आगे चलकर देखेंगे, इस संधि से केवल महाराष्ट्र की ही स्वतंत्रता का हरण न हुआ बल्कि क़रीब-क़रीब पूरे

भारतवर्ष का साम्राज्य अंग्रेज़ों के हाथ आ गया। मराठाशाही के रहते अंग्रेज़ अपने को हिन्दुस्थान में सर्वोच्च सत्ता न कह सकते थे। मराठाशाही के नष्ट होते ही ईस्ट-इंडिया-कम्पनी हिन्दुस्थान में सर्वोच्च सत्ता बन गई।

शिन्दे-भोंसले की अंग्रेज़ों से लड़ाई

बाजीराव का यह कार्य मराठे राजाओं को ठीक न लगा। जैसा ऊपर कह चुके हैं, मराठे सरदार कमसे कम सिद्धान्त में तो पेशवा को अपना मालिक मानते ही थे। पेशवा के परतंत्र बनने से सिद्धान्त के अनुसार वे भी परतंत्र बन गये और उन्हें यह देख पड़ा कि मराठाशाही नष्ट हो गई। कुछ समय तक तो वे कुछ निश्चय न कर सके कि क्या किया जाय। पर शासकों-शासकों के बीच के झगड़ों के फ़ैसले का अन्तिम उपाय युद्ध ही होता है। इस-लिए शिन्दे, होलकर, भोंसले आदि ने भी लड़ाई की तैयारी की। पर दुर्दैव से इस समय भी वे अपने आपसी झगड़े को दूर न कर सके। प्रथम शिन्दे और भोंसले ने तो लड़ाई का निश्चय किया, पर होलकर चुपचाप तमाशा देखता रहा। शिन्दे और भोंसले अपनी-अपनी सेनायें लेकर निज़ाम की सरहद के पास डटे रहे। इस-लिए गवर्नर-जनरल के भाई सेनापति वेलेज़ली ने उन्हें यह सन्देश भेजा कि अपनी-अपनी सेनायें लेकर अपने मुल्क को वापस चले जाओ, अन्यथा युद्ध के लिए तैयार होओ। अंग्रेज़ दूत से शिन्दे-भोंसले का झगड़ा हुआ और अंग्रेज़ दूत वापस चला गया, इस लिए दोनों पक्षों के बीच लड़ाई शुरू हुई।

जनरल वेलेज़ली ने अहमदनगर के क़िले पर १० अगस्त १८०३

को हमला किया और उसे ले लिया। इसके बाद २१ सितम्बर को जनरल वेलेज़ली ने असई के पास भोंसले और शिंदे की सेनाओं पर हमला किया। उस समय वेलेज़ली के पास केवल ८ हज़ार सैनिक थे। इनमें से केवल साढ़े चार हज़ार अंग्रेज़ थे। कर्नल स्टीवनसन ७ हज़ार सैनिक लेकर उसकी मदद को आ रहा था; पर उसके आने से पहले ही जनरल वेलेज़ली ने मराठा फ़ौजों पर हमला कर दिया। मराठों के सेनापति अनुभवी न थे, इसलिए लड़ाई शुरू होते ही भाग गये। यही हाल सवारों का रहा। केवल तोपख़ाने ने कुछ देर तक सामना किया, पर अन्त में अंग्रेज़ों की ही विजय रही। बहुत-सी तोपें और सैनिक अंग्रेज़ों के हाथ पड़े। इसके बाद बुरहानपुर और असीरगढ़ के क़िले भी अंग्रेज़ों के हाथ आये।

शिन्दे और भोंसले का पराभाव तथा अंग्रेज़ों से उनकी सन्धि

अड़गाँव में भोंसले ने अंग्रेज़ों का फिर से सामना किया, पर यहाँ भी उसकी हार हुई और असई से भी यहाँ उसका अधिक नुक़सान हुआ। इसके बाद गाविलगढ़ का मज़बूत क़िला अंग्रेज़ों के हाथ चला गया और ख़बर आई कि बंगाल की ओर का रघुजी भोंसले का सारा मुल्क उसके हाथ से निकल गया। अब उसको विश्वास हो गया कि लड़ाई जारी रखना व्यर्थ है, इसलिए १७ दिसम्बर को देवगाँव में अंग्रेज़ों से उसने संधि करली। इस संधि से उसने बंगाल की ओर कटक और वर्धा नदी के पश्चिम की ओर का सारा मुल्क अंग्रेज़ों को दे दिया। निज़ाम से चौथ और घास-दाना लेने का हक़ छोड़ दिया और अंग्रेज़ों से पूछे बिना उनके विरोधी यूरोपियन अथवा अमेरिकन देश के किसी

भी मनुष्य को अपनी नौकरी में न रखना स्वीकार किया। शिंदे की भी दशा कुछ अच्छी न थी। भड़ोंच तो पहले ही अंग्रेज़ों के हाथ चला गया था। सितम्बर में चम्पानेर और पावनगढ़ के क़िले भी चले गये। इसी समय उत्तर-हिन्दुस्थान में जनरल लेक ने शिन्दे की सेनाओं पर अच्छी विजय पाई। अलीगढ़, दिल्ली और आगरा क्रम से अंग्रेज़ों के हाथ चले गये। इसके बाद बची हुई सेना को जनरल लेक ने पहली नवम्बर को पूरी तरह हरा दिया। कर्नल पावेल ने बुंदेलखंड पर क़ब्ज़ा कर लिया। इस कारण ३० दिसम्बर को शिन्दे ने भी युद्ध बन्द किया और सुरजीअंजन गाँव में संधि करली। इस संधि के अनुसार उसने गंगा-यमुना के दोआब का अपना सारा मुल्क, राजपूताना का अपना सारा मुल्क और अहमदनगर व भड़ोंच के क़िले अंग्रेज़ों के अधीन कर दिये। दिल्ली के बादशाह और निज़ाम से चौथ और घास-दाना लेने का हक़ छोड़ दिया और पेशवा और गायकवाड़ से जो कुछ पाना था उसका अधिकार भी त्याग दिया। संधि के बाद १८०४ की २७ फ़रवरी को बुरहानपुर में शिन्दे और अंग्रेज़ों के बीच एक और संधि हुई। इस नई संधि से शिन्दे अंग्रेज़ों का मातहत बन गया।

होलकर की अंग्रेज़ों से लड़ाई और सन्धि

अब तक होलकर इस लड़ाई का तमाशा देखता रहा, पर अब उसने भी लड़ाई का निश्चय किया। जब उसने तीन अंग्रेज़ों को अपने ही जाति-भाइयों के विरुद्ध लड़ने से इनकार करने के कारण मार डाला, तब गवर्नर-जनरल वेलेज़ली ने उससे लड़ाई छेड़ दी। कर्नल मानसन ५ हज़ार पैदल और ३ हज़ार

सवार लेकर मालवा में घुसा। कोटा से क़रीब ३० मील के फ़ासले पर पहुँचने पर उसकी रसद बहुत कम रह गई, इसलिए जिस मार्ग से वह गया उसीसे वापस लौटने लगा। इस समय होलकर ने पीछे रक्खे हुए सवारों पर हमला किया और उन्हें नष्ट कर डाला। इसके बाद उसने कर्नल मोनसन की पैदल सेना पर भी हमला किया। यह सेना किसी प्रकार थोड़ी-बहुत आगरा वापस पहुँची। जनरल लेक ने आगरा की मदद भेजी। होलकर ने आगरा लेने का प्रयत्न किया, मर विफल हुआ। इसके बाद उसने बादशाह को क़ैद करने का प्रयत्न किया। इसमें भी असफल होने पर ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के राज्य में लूट-मार करना शुरू किया। अंग्रेज़ों ने उसका पीछा किया और डीग के पास घेर कर उसे पूरी तरह हराया। इसके बाद उसने भरतपुर के क़िले का आश्रय लिया। लेक ने उसे भी घेर लिया। वह उसे ले तो न सका, तथापि वहाँ के जाट राजा ने हिम्मत छोड़ दी और उससे सुलह करली। तब होलकर को वहाँ से भी भागना पड़ा। वह सिखों को अंग्रेज़ों के विरुद्ध उभाड़ने के लिए पंजाब गया, पर सिखों ने उसे कुछ भी मदद न दी। जनरल लेक उसका पीछा करता हुआ पंजाब पहुँचा। इस समय लार्ड वेलेज़ली ने अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया था, क्योंकि उसकी युद्ध-नीति ईस्ट-इण्डिया कम्पनी को पसन्द न हुई। नये गवर्नर-जनरल ने अच्छी शर्तों पर होलकर से सन्धि करली; परन्तु यह बात तो उसे स्वीकार करनी ही पड़ी कि कम्पनी की इजाज़त के बिना मैं किसी यूरोपियन को अपनी नौकरी में न रक्खूँगा। और, इस शर्त को मानने से, वह अंग्रेज़ों का मातहत हो ही गया। इस प्रकार मराठाशाही की स्वतंत्रता को क़ायम रखने का

होलकर का प्रयत्न भी विफल हुआ। होलकर ने अंग्रेज़ों से सन्धि तो की, पर उसे अपनी विफलता बड़ी अखरी; यहाँ तक कि इसी रंज में वह पागल बन गया, और सन् १८११ में उसकी मृत्यु हो गई।

यशवन्तराव होलकर बड़ा साहसी और अच्छा सेनापति था। वह साधारण सैनिकों के समान रहता और उनके साथ चाहे जो कष्ट सहता था। इसी कारण वह अपने सैनिकों को बड़ा प्रिय था। उसके बाद उसकी एक रखेल के चार वर्ष के लड़के मल्हारराव होलकर को उसकी स्त्री तुलसीबाई ने गोद लिया और उसके नाम से पिण्डारियों के सरदार अमीरख़ाँ ने होलकर का राज्य-कारबार चलाया।

होलकर के राज्य-कारबार की व्यवस्था

अंग्रेज़ इस समय हिन्दुस्थान में सर्वोच्च बन गये थे। उन्होंने बाजीराव को पेशवा की गद्दी पर बिठा कर अपना मातहत बना लिया था। शिन्दे-होलकर-भोंसले भी अपना ज़ोर आज़मा कर अंग्रेज़ों के मातहत बन चुके थे। इस समय बाजीराव को उचित तो यह था कि जो कुछ राज्य उसके हाथ में बचा था उसका वह अच्छी तरह से प्रबन्ध करता और अपने ही हाथों जिस मातहत हालत में वह पड़ चुका था उससे सन्तुष्ट रहता; पर बाजीराव जैसा डरपोक था वैसा ही मूर्ख भी था, इस कारण उसने पेशवा की गद्दी पर अंग्रेज़ों की मदद से पक्की तौर पर बैठने पर अपने ही विनाश के बीज बोना शुरू कर दिया। उसने पन्त-प्रतिनिधि की जागीर ज़ब्त की, इसके बाद सावन्त-

बाजीराव विनाश की ओर

वाड़ी को भी अपने अधीन करना चाहा, पर इसमें वह विफल हुआ। इसके बाद उसने प्रसिद्ध हरिपंत फड़के के लड़के बाबूराम फड़के को क़ैद कर वसई के क़िले में रक्खा और उसकी जायदाद ज़ब्त कर ली। फिर उसने आवश्यक सैनिक न रखने का अपराध लगा कर माधवराव रास्ते पर भी अपना हाथ फेरा।

अब गायकवाड़ की ओर उसकी दृष्टि गई। दमाजी गायकवाड़ की मृत्यु के बाद पहले उसके लड़के गोविन्दराव गायकवाड़ को उसका पद मिला। पर बाद में सबसे बड़े लड़के सयाजी को दमाजी का पद दिया गया और सयाजी काम के लायक़ न होने के कारण राज्य-कारबार फ़तेसिंह के हाथ में रहा। सन् १७८९ में फ़तेसिंह की मृत्यु होने पर गोविन्दराव को यह आशा हुई कि अब कमसे कम राज्य की कारबारी तो मुझे मिलेगी ही, पर उसे अब भी निराश होना पड़ा। चार किश्तों में ६० लाख रुपये देने की शर्त पर राज्य की कारबारी गोविन्दराव के भाई मानाजी को दी गई। सन् १७९२ में मानाजी की मृत्यु हुई; तब कहीं गोविन्दराव के भाग्य का उदय हुआ। नाना फड़नवीस ने बहुतसा धन लेकर गोविन्दराव को कारबारी का पद दिया। पर गोविन्दराव में कुछ भी योग्यता न थी। बाजीराव के समान उसका स्वभाव बदला लेने का बहुत था। फ़तेसिंह के नियत किये लोगों को उसने नौकरी से अलग किया और पूना से परभुओं को बुला कर उनकी जगह नियत किया। उसका नया दीवान रावजी आपाजी और उसका भाई बाबाजी आपाजी इन्हीं लोगों में से थे।

गायकवाड़ के राज्य की हालत

नाना फड़नवीस की मृत्यु के बाद बाजीराव ने नाना के नियत

किये हुए लोगों को दूर करना शुरू किया। गुजरात में पेशवा का जो कुछ मुल्क था, उसका अधिकारी नाना फड़नवीस का नियत किया हुआ आबा शेलूकर था। उसे इस पद से दूर कर गोविन्दराव गायकवाड़ को इस पद पर बाजीराव ने नियत किया। इससे गायकवाड़ की आमदनी तो बढ़ी, पर उससे झगड़ा करने के लिए पेशवा की गुंजाइश भी अधिक हुई। सन १८०० में गोविन्दराव की मृत्यु होने पर गायकवाड़ के राज्य में फिरसे गड़बड़ मची। उसके चार औरस और सात अनौरस लड़के थे। सबसे बड़ा लड़का आनन्दराव गोविन्दराव के बाद राज्य का हक़दार हुआ। आपाजी रावजी उसका दीवान था। गोविन्दराव के जीतेजी उसके एक अनौरस लड़के कान्होजी ने बड़ौदा में गड़बड़ मचाई थी, इसलिए गोविन्दराव ने उसे क़ैद कर लिया था। अब किसी प्रकार यह वहां से छूट गया और आनन्दराव को अपनी ओर करके उसने राज्याधिकार अपने हाथ में ले लिये। आपाजी रावजी ने अंग्रेजों से सहायता माँगी और सन १८०२ तक उन्होंने वहाँ शान्ति स्थापित करदी। परन्तु इस सब कार्य के बदले उन्होंने सूरत की चौथ का गायकवाड़ का हिस्सा, चौरासी परगना और अठविसी नाम के सूरत के ताल्लुके अपने क़ब्ज़े में ले लिये, और अरब सैनिकों के बदले २ हज़ार अंग्रेज़ा सिपाही व अरब तोपख़ाना रखने का गायकवाड़ से इक़रार कराया। इस सेना के ख़र्च के बदले उन्होंने गायकवाड़ से कोई आठ लाख का मुल्क लिया। अरब सैनिकों को उन्होंने छुट्टी देते समय जो वेतन दिया था उसकी अदाई के लिए बड़ौदा, अहमदाबाद आदि परगनों के

गायकवाड़ के राज्य में अंग्रेज़ों के पैर जमना

लगान की जमानत ली। इस प्रकार गायकवाड़ के राज्य में अंग्रेज़ों के पैर अच्छी तरह जम गये!

सन् १८०४ में पेशवा ने गुजरात के अपने मुल्क का ठेका फिरसे गायकवाड़ को दिया, पर १८०५ में कोलियों ने बग़ावत की, और तब अंग्रेज़ों की मदद के लिए बहुत खर्च करना पड़ा। इसलिए उसके पास बाजीराव को देने के लिए कुछ न रहा। इससे भी बुरी बात यह हुई कि आनन्दराव राज्य करने के लायक़ नहीं रह गया, इस कारण राज्य का कारबार उसके एक भाई फ़तेसिंह के हाथ में चला गया। पेशवा की माँगों पर उसने पेशवा से झूठ-मूठ उलटी माँगनी की, इसलिए पेशवा को गायकवाड़ के मुल्क पर क़ब्ज़ा करने का मौक़ा दिखाई पड़ा। पहले तो अंग्रेज़ों ने सालबाई की संधि के आधार पर पेशवा के कार्य पर आक्षेप किया; पर जब उन्होंने देखा कि गायकवाड़ का बहुत-सा मुल्क स्वयं हमने ही अपने क़ब्ज़े में कर लिया है, तब उन्होंने पेशवा की माँगों पर आक्षेप करना छोड़ दिया। अन्त में यह तय हुआ कि गायकवाड़ गंगाधर नामक अपने कर्मचारी को हिसाब करने के लिए पूना भेजे। अंग्रेज़ों ने उसकी रक्षा की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ली। पेशवा गंगाधर शास्त्री को अंग्रेज़ों का पक्षपाती समझता था और इस कारण उससे द्वेष करता था। इसलिए सन् १८१४ तक उसे पेशवा ने अपने यहाँ न आने दिया। फिर जब वह पूना आया तो पेशवा ने उसे अपनी ओर करने का बहुतेरा प्रयत्न किया। अन्त में उसने गंगाधर शास्त्री को कठिनाई में डालना चाहा। त्रिम्बकजी डेंगले नाम के एक पुरुष पर पेशवा की बड़ी कृपा

बाजीराव की अंग्रेज़ों से पूना की नई सन्धि

थी। त्रिम्बकजी को भय था कि गंगाधर शास्त्री मुझे कहीं उससे वंचित न करवा दे। अतएव त्रिम्बकजी डेंगले ने उसका पूर्ण विनाश करने का विचार किया। आषाढ़ी एकादशी के दिन उसने गंगाधर शास्त्री को मरवा डाला। अंग्रेज़ों ने उसकी रक्षा की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ली थी और उसके वध के विषय में डेंगले पर ही उनकी शंका थी, इसलिए उन्होंने पेशवा से उसे माँगा। बड़ी मुश्किल से पेशवा ने उसे उनके सुपुर्द किया। अंग्रेज़ों ने उसे थाना के क़िले में क़ैद किया। वहाँ अंग्रेज़ सैनिकों का अच्छा पहरा था, पर गुप्त रीति से पेशवा की सहायता पाकर डेंगले क़ैद से भाग गया (१२ सितम्बर सन १८१६)। बाजीराव इस समय अंग्रेज़ों की मित्रता से उकता चुका था, इसलिए उसने त्रिम्बक-जी डेङ्गले को चुपचाप सैनिक भर्ती करने के लिए कहा। रेज़ी-डेण्ट से तो बाजीराव मीठी-मीठी बातें करता, पर उधर नागपुर के राजा, शिन्दे और होलकर के कारबारी अमीरखाँ से चुपचाप पत्र-व्यवहार करता था। रेज़ीडेण्ट माउण्ट स्टुअर्ट एलफ़िंस्टन ने जब त्रिम्बकजी डेङ्गले के फ़ौज भरती करने की शिकायत की, तो पेशवा ने कहा कि मुझे तो कुछ भी मालूम नहीं। तब रेज़ीडेण्ट ने पेशवा से त्रिम्बकजी डेङ्गले को एक महीने के भीतर पकड़ने को कहा और इस कार्य की ज़मानत के बतौर सिंहगढ़, पुरन्दर और रायगढ़ के क़िले माँगे। अन्त में जब १८१७ की ८ मई को रेज़ीडेण्ट ने पूना को ब्रिटिश फ़ौजों से घेर लिया, तब विवश होकर बाजीराव ने अंग्रेज़ों से संधि की। इसे पूना की संधि कहते हैं। फिर उसने त्रिम्बकजी डेङ्गले को पकड़ने के लिए घोषणा की और माँगे हुए क़िले तथा डेङ्गले के कुटुम्ब के कई

लोग अंग्रेजों के सुपुर्द किये। यही नहीं बल्कि उसने यह भी स्वीकार किया कि मैं अन्य किसी बाहरी सत्ता से कुछ भी व्यवहार न रक्खूँगा। नर्मदा और तुंगभद्रा के उस पार के सारे मुल्क पर उसने अपना अधिकार छोड़ दिया और बसई की संधि के अनुसार जो फ़ौज रखना उसे आवश्यक था उसके बदले उसने ३४ लाख का मुल्क अंग्रेजों के सुपुर्द किया। इस प्रकार पाये हुए मुल्क में अहमदनगर, अहमदाबाद और उत्तरी कोंकण भी शामिल थे। साढ़े चार लाख रुपये लेकर उसने गायकवाड़ पर अपने सारे अधिकार छोड़ दिये।

विवशता की दशा में बाजीराव ने यह अपमानपूर्ण संधि की थी, पर मन ही मन वह अँग्रेजों से जल-भुन रहा था। जुलाई

बाजीराव की अंग्रेज़ों से लड़ाई

के महीने में माहुली जाकर गवर्नर-जनरल के पोलिटिकल एजेण्ट सर जॉन मालकम से वह मिला और अपनी मीठी बातों से उसे खुशकर सिंहगढ़, पुरन्दर और रायगढ़ के क़िले वापस ले लिये। इतना ही नहीं बल्कि पिण्डारियों से अंग्रेज जो लड़ाई छेड़ने का विचार कर रहे थे, उसमें शामिल होने के लिए फ़ौज तैयार करने की इजाज़त भी प्राप्त करली। इसके बाद उसने बापू गोखले को फ़ौज खड़ी करने के लिए कहा। साथ ही उसने अंग्रेजों के हिन्दुस्थानी सैनिकों को अपनी ओर फुसलाने का भी प्रयत्न किया। इत्तिफ़ाक से इस बात का पता एलफ़िंस्टन को लग गया। २९ अक्तूबर को पेशवा ने बड़ी धूमधाम से दसहरा मनाया और पूना में बहुत-सी फ़ौज जमा हुई। उनकी प्रवृत्ति तथा संख्या देखकर रेजीडेण्ट पेशवा के मन की बात ताड़ गया और उसने

अपनी सेना खिड़की हटाली, और दूसरे स्थानों से सहायता माँगी। पेशवा को ख़याल हुआ कि डर के मारे अंग्रेज़ी सेना हट गई। उसने निश्चय किया कि कहीं से मदद आने के पहले ही रेजीडेंट की सेना को साफ़ कर डालना चाहिए। इस विचार से उसने खिड़की में अंग्रेज़ों पर हमला करने का निश्चय किया। इस प्रकार अंग्रेज़ों से मराठों की अन्तिम लड़ाई शुरू हुई।

५ नवम्बर को बापू गोखले २६ हजार फ़ौज लेकर खिड़की पर चढ़ाई करने के लिए पूना से आगे बढ़ा। रेजीडेण्ट के पास इस समय कुल २८०० सैनिक थे। कर्नल बूर उन्हें लेकर मराठों का सामना करने को तैयार हुआ। बापू गोखले ने अपने मन में लड़ाई की जो योजना की थी, वह न चल सकी। दोनों सेनाओं के बीच एक जगह जो दल-दल थी, उसका पता किसी को न था। इस कारण बहुत-सी मराठा सेना उसमें फँस गई और उसे अंग्रेज़ों ने साफ़ कर डाला। तब मराठों को पूना की ओर लौटना पड़ा। कर्नल बूर भी खिड़की की ओर वापस चला गया और मदद की राह देखता रहा। शाम तक शिरूल से उनकी मदद के लिए कुछ फ़ौज आ पहुँची। १३ नवम्बर को जनरल स्मिथ भी कुछ सेना लेकर आ गया। तब बाजीराव पूना से सातारा को भागा। वहाँ उसने प्रतापसिंह तथा गोखले-वंश के कुछ अन्य लोगों को अपने कब्ज़े में किया। २२ नवम्बर को जनरल स्मिथ ने बाजीराव का पीछा करना शुरू किया। इस प्रकार पेशवा की वह भगदड़ शुरू हुई, जो बुरहानपुर के पास खैरी नामक स्थान में १८१८ के ३ जून को समाप्त हुई।

पेशवा की भगदड़

भगदड़ का वृत्तान्त विस्तार-पूर्वक बतलाने की आवश्यकता नहीं। सातारा से वह जुन्नर के उत्तर की ओर जा रहा था, पर रास्ते में कैप्टन स्टाउनटन ने भीमा नदी के पास कोरेगाँव पर उससे लड़ाई की। यहाँ भी बाजीराव की सेना से कुछ न बन पड़ा। कोरेगाँव से वह दक्षिण की ओर भागा। इधर अंग्रेजों ने ७ फ़रवरी १८१८ को सातारा का क़िला ले लिया। इसके बाद एक के बाद एक पूना के आसपास के सिंहगढ़, पुरन्दर लोहगढ़, वीसापुर आदि क़िले लिये। बाजीराव जनरल स्मिथ से बचते हुए मनमाना भागा जा रहा था, पर १९ फ़रवरी को जनरल स्मिथ ने बाजीराव को शोलापुर ज़िले के आष्टी नामक स्थान में पकड़ लिया। यहाँ जो लड़ाई हुई उसमें मराठों का सेनापति बापू गोखले मारा गया। बाजीराव यहाँ से भी भागा, पर सातारा के राजा प्रतापसिंह और कुटुम्बी-जनों को छोड़ दिया। सातारा के राजा का अंग्रेजों के हाथ में आना उन्हें लाभदायक हुआ, क्योंकि अब उन्होंने यह कहना शुरू किया कि हमारी लड़ाई मराठों से नहीं है, हम तो शिवाजी के वंशज के लिए उसके बाग़ी प्रधान से लड़ रहे हैं। अंग्रेजों के इस कहने में कई मराठे सरदार आ गये और उन्होंने बाजीराव का पक्ष छोड़ दिया। बाजीराव डर के मारे नागपुर की ओर भागा, पर उसके भाग्य में वहाँ भी आश्रय मिलना न बदा था। नागपुर में परसोजी राजा था, पर राज्य का कारबार मुधोजी उर्फ़ आपासाहब के हाथ में था। आपासाहब ने सन् १८१६ की २७ मई को अंग्रेजों से एक सन्धि की थी। इसके अनुसार उसने अंग्रेजों को सैनिक सहायता के बदले

बाजीराव की हार और अंग्रेजों की अधीनता

साढ़े सात लाख रुपया सालाना देना मंजूर किया था। आपा-साहब बड़ा कर्तव्यशील था। वह परसोजी को मारकर स्वयं राजा बन बैठा और फिर बाजीराव से मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध षड्यंत्र रचने लगा। अंग्रेजों और पेशवा के बीच लड़ाई छिड़ने पर उसने भी नागपुर की अंग्रेजी सेना पर हमला कर दिया। पर सीताबल्डी के पास जो लड़ाई हुई, उसमें मुधोजी की हार हुई और अन्त में उसे अंग्रेजों के अधीन होना पड़ा। इसलिए बाजीराव को नागपुर में भी आश्रय न मिल सका। बाजीराव भागकर कोपरगाँव गया और वहाँ से भागकर चाँदा पहुँचा; चान्दा में भी अंग्रेजी सेना के आने पर वह उत्तर की ओर भागा; और अन्त में सन् १८१८ के ३ जून को सर जॉन मालकम के अधीन हुआ।

अंग्रेजों ने यह निश्चय कर लिया था कि सातारा के पुराने वंश को सातारा के पास थोड़ा-सा राज्य दे दिया जाय और पेशवा का शेष राज्य अंग्रेजी राज्य में शामिल कर लिया जाय। इस निश्चय के अनुसार बाजीराव को आठ लाख की पेंशन देकर कानपुर के पास बिठूर में रख दिया गया। वहाँ ८० वर्ष की अवस्था में, सन् १८५१ में, उसकी मृत्यु हुई। इस प्रकार मराठाशाही का अन्त हुआ।

मराठाशाही का अन्त

२६

सन् १८१८ के बाद

पेशवा के राज्य को अपने राज्य में शामिल करके अंग्रेज़ों ने उसका कारबार पूना के रेसीडेन्ट माउण्ट स्टुअर्ट को सौंपा, परन्तु पेशवा के सारे राज्य को वे शामिल न कर सके। बाजीराव का पीछा करते समय अंग्रेज़ों ने घोषणा की थी कि हम मराठों से नहीं लड़ रहे हैं, हम तो केवल मराठों के राजा की ओर से उसके विद्रोही प्रधान से लड़ रहे हैं, इसलिए उन्हें मराठों का छोटा-सा राज्य बना रहने देना पड़ा। सातारा के पास का थोड़ा-सा प्रदेश सांगोला, मालसीरस और पंढरपुर नाम के परगने, बीजापुर का शहर और उसके आसपास का कुछ प्रदेश सातारा के राजा प्रतापसिंह को दे दिया और कैप्टन जेम्स ग्रैण्ट डफ़ वहाँ का पोलिटिकल एजेण्ट नियत हुआ। मराठों के इतिहास का प्रसिद्ध लेखक ग्रैण्ट डफ़ यही है। जबतक यह सातारा में रहा, तबतक सब कारबार ठीक चला। पर इसके बाद दोनों पक्षों में लड़ाई-झगड़े शुरू हुए। इसका प्रधान कारण यह था कि ग्रैण्ट

सातारा का राज्य अंग्रेज़ों के क़ब्ज़े में

डफ़ के बाद जो पोलिटिकल एजेण्ट हुए, उनमें भरपूर ज्ञान, धैर्य, विवेक आदि गुणों का अभाव था। अन्त में चापलूस और मुफ्त-खोरों के कहने से महाराजा ने अंग्रेजों के विरुद्ध षड्यंत्र रचना शुरू किया। इसलिए कम्पनी-सरकार ने प्रतापसिंह को गद्दी से उतारा और उसके भाई शाहजी को गद्दी पर बिठलाया। प्रताप-सिंह और शाहजी दोनों बहुत अच्छे शासक थे और शाहजी ने अंग्रेजों से जैसी मैत्री दिखलाई वैसी हिन्दुस्थान-भर में अन्य किसी महाराजा ने न दिखलाई होगी। प्रथम अफ़ग़ान युद्ध के समय शाहजी ने अपनी सेना अंग्रेजों के हवाले की और सन् १८४५ में कोल्हापुर में जो बग़ावत हुई, उसे दबाने के लिए उसने अपनी फ़ौज अंग्रेजों की सहायता के लिए भेजी। लोक-हित के कार्यों में उसने बहुत धन खर्च किया। कृष्णा और एना पर उसने जो पुल बनवाये, उनकी प्रशंसा आज भी होती है। सन् १८४८ के मार्च महीने में वह एकाएक बहुत बीमार हुआ। उसके कोई औरस लड़का न था, इसलिए उसने एक लड़का गोद लेने का निश्चय किया। इस समय गवर्नर-जनरल से पत्र-व्यवहार करने के लिए समय न था, इसलिए सिविल-सर्जन डाक्टर मेर की उपस्थिति में मृत्यु-शय्या पर पड़े महाराजा ने शेलगाँव के भोंसले-वंश के व्यंकोजी नामक लड़के को गोद लिया। इस वंश का सम्बन्ध शिवाजी महाराज के चाचा शरीफ़जी से था। रेज़ीडेण्ट फ्रीयर ने इस दत्तक-विधान को मंज़ूर करने के लिए बम्बई-सरकार पर ज़ोर डाला। बम्बई के गवर्नर सर जार्ज क्लार्क का मत रेज़ीडेण्ट से मिलता-जुलता था, पर डाइरेक्टरों का मत भिन्न था; इसलिए ईस्ट-इंडिया-कम्पनी ने ३० साल पहले जो

छोटा-सा राज्य सातारा के महाराज को दिया था, वह अब वापस ले लिया और उसे अंग्रेज़ी राज्य में शामिल कर लिया। इस प्रकार शिवाजी के राज्य का जो छोटा-सा चिन्ह सन् १८४८ तक किसी प्रकार बना था, वह सदैव के लिए नष्ट हो गया।

तथापि शिवाजी के वंश की एक शाखा अब भी बनी हुई है। हम यह देख चुके हैं कि शाहू महाराज के मुग़लों की क़ैद से छूट कर आने पर राजाराम की पत्नी ताराबाई और उसके भतीजे शाहू के बीच राज्य के लिए झगड़े शुरू हुए।

कोल्हापुर राज्य का संक्षिप्त इतिहास

शाहू जब मुग़लों की क़ैद में था, तब पहले राजाराम और फिर उसका लड़का शिवाजी गद्दी पर बैठा। ताराबाई राज्य का कारबार अपने हाथ में रखना चाहती थी और अपने लड़के शिवाजी को राज-पद पर बनाये रखना चाहती थी। पर शाहू का पक्ष सबल हुआ और ताराबाई के लड़के शिवाजी का पक्ष निर्बल हो गया, इसलिए सातारा की गद्दी पर शिवाजी का कोई अधिकार न रहा। अन्त में ताराबाई ने कोल्हापुर पर क़ब्ज़ा कर लिया और शिवाजी के नाम से वहाँ कारबार करना शुरू किया। शाहू ने ताराबाई को गिराने के लिए जो युक्ति की, उसका वर्णन हम पहले कर ही चुके हैं। शाहू की इस युक्ति से राजाराम की दूसरी पत्नी राजसबाई का लड़का सम्भाजी सन् १७१२ में राजा हुआ। इस सम्भाजी ने भी शाहू से कई झगड़े किये। हम यह देख चुके हैं कि उस समय के हैदराबाद के सूबेदार निज़ामुलमुल्क ने इनके इन झगड़ों से बहुत लाभ उठाया। कोल्हापुर का राजा निज़ाम से मिला रहता था और शाहू तथा पेशवा से लड़ा करता था। सातारा

और कोल्हापुर के सम्बन्धों का वर्णन एक लेखक ने एक वाक्य में इस प्रकार किया है—'उन दिनों पेशवा के शत्रु कोल्हापुर महाराज के मित्र और कोल्हापुर महाराज के शत्रु पेशवा के मित्र होते थे।' सन् १७३१ में दोनों के बीच वारणा की जो सन्धि हुई, उससे कुछ काल के लिए इनका झगड़ा थोड़ा-बहुत मिट गया, परन्तु माधवराव पेशवा के समय से यह झगड़ा फिरसे शुरू हुआ। कोल्हापुर महाराज बहुधा निज़ाम से मित्रता रखता था, इसलिए माधवराव ने अप्रसन्न होकर उसके राज्य का कुछ हिस्सा ले लिया और उसे जागीर के रूप में पटवर्धन को दे दिया; परन्तु राघोबा के समय कोल्हापुर वालों ने उसे वापस ले लिया। फिर माधवराव शिन्दे ने उसे फिरसे जीता। सवाई माधवराव के राज्य-काल में जो विद्रोह हुआ था, उसमें कोल्हापुर वालों का ही हाथ था। द्वितीय बाजीराव के समय नाना फड़नवीस की सूचना से कोल्हापुर वालों ने पटवर्धन की जागीर पर हमला किया और सातारा में चतुरसिंह ने जो विद्रोह किया उसमें पेशवा के विरुद्ध कोल्हापुर वालों ने मदद दी। पट्टनकुड़ी की लड़ाई में चतुरसिंह और कोल्हापुर की सेना ने परशुराम भाऊ पटवर्धन को हराकर मार डाला। तब नाना फड़नवीस ने विंचूरकर प्रतिनिधि और मेजर ब्राउन को शिन्दे की सेना देकर कोल्हापुर भेजा और शहर का घेरा डाला। यह घेरा बहुत दिनों तक रहा, पर अन्त में पेशवा को उसे उठा लेना पड़ा।

अंग्रेज़ों और कोल्हापुर महाराज का सम्बन्ध पहले-पहल सन् १७६५ में हुआ। मालवण का क़िला कोल्हापुर के राज्य में

था और खलासी लोग अंग्रेज़ों के जहाज़ों को बहुत सताते थे। सन् १७६५ में बम्बई के अंग्रेज़ी जहाज़ी बेड़े ने इस क़िले को जीता और अपने अधिकार में रखने के विचार से

अंग्रेज़ों और कोल्हापुर का सम्बन्ध

उसका नाम फ़ोर्ट आगस्टस रक्खा, पर अन्त में सवातीन लाख रुपये लेकर उसे कोल्हापुर वालों को लौटा दिया। सन् १८११ में अंग्रेज़ों ने कोल्हापुर वालों से स्वतंत्र सन्धि करने का प्रयत्न किया। तब बाजीराव ने इस सन्धि में बाधा डाली, पर अंग्रेज़ों ने उसपर कुछ ध्यान न देकर सन्धि करली। इस सन्धि के अनुसार पेशवा को चिकोड़ी और मनोली प्रान्त वापस मिले और अंग्रेज़ों को मालवण का क़िला और उसके नीचे का प्रान्त मिला। इसके अलावा सामुद्रिक लुटेरे लोगों को बन्दरगाह में आश्रय न देने, शत्रु के जहाज़ों को बन्दर में न आने देने, स्वयं लड़ाऊ जहाज़ न रखने, लड़ाऊ जहाज़ मिलने पर अंग्रेज़ों को लौटा देने, अंग्रेज़ों के फूटे हुए जहाज़ किनारे लगने पर अंग्रेज़ों को वापस देने और अंग्रेज़ों की सम्मति के सिवा किसी से युद्ध न करने आदि की शर्तें कोल्हापुर वालों ने स्वीकार कीं। अंग्रेज़ों ने कोल्हापुर के पुराने दावे स्वीकार किये और कोल्हापुर-राज्य की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया। सन १८१७-१८ में पेशवा और अंग्रेज़ों के बीच जो युद्ध हुआ, उसमें कोल्हापुर वालों ने अंग्रेज़ों का ही पक्ष लिया था। इस युद्ध के बाद कोल्हापुर वालों और अंग्रेज़ों के बीच जो सन्धि हुई, उससे चिकोड़ी और मनोली के परगने कोल्हापुर वालों को वापस मिले। सन १८२५ में कोल्हापुर के राजा ने कागल के जागीरदारों से शत्रुता कर कागल

छीन लिया और उन्हें लूटा। तब वेवर साहब ६ हज़ार सेना लेकर धारवाड़ से कोल्हापुर पर चढ़ आया। महाराज ने उसकी शरण ली और युद्ध के लिए जो तोपें गाँव के बाहर निकाली थीं उनको सलामी के बतौर दाग कर वेवर साहब का स्वागत किया। इस बार फिर सन्धि हुई। सन्धि के अनुसार अंग्रेज़ों की आज्ञा के बिना फ़ौज न रखने, अंग्रेज़ों की सम्मति के अनुसार राज्य चलाने और अंग्रेज़ों के कहे अनुसार जागीरदारों का हर्जाना देने की शर्तें कोल्हापुर के राज्य ने स्वीकार कीं। इसके लिए चिकोड़ी और मनोली के परगने अंग्रेज़ों के सुपुर्द किये गये। इसके पश्चात् मालवण के क़िले से तोपें मँगाकर महाराज ने अपनी प्रजा को ही कष्ट देना शुरू किया। तब सन् १८२७ में एक अंग्रेज़ी पलटन कोल्हापुर को भेजी गई। इस समय फिर से नई सन्धि हुई। इसके अनुसार सब मिलाकर १२०० से अधिक सेना न रखने, तोपों से काम न लेने और चिकोड़ी और मनोली ताल्लुक़े सदा के लिए अंग्रेज़ों को दे देने का इक़रार हुआ। इसके अलावा कोल्हापुर-नरेश ने अपने खर्च से पन्हालगढ़ पर अंग्रेज़ी सेना रखने और बिना अंग्रेज़ों की सम्मति के कोई दीवान न रखने की शर्तें मंजूर की। तबसे कोल्हापुर वाले अंग्रेज सरकार से मेल रखते आये हैं।

सन १८१८ के बाद कुछ साल तक जो तीसरा मराठा-राज्य बना रहा, वह नागपुर के भोंसले का था।

नागपुर के भोंसले का इतिहास

सन् १८१८ तक नागपुर के भोंसले का इतिहास हम बीच-बीच पर बतला चुके हैं। सन १८१७ में सीताबल्डी की जो लड़ाई

हुई, उसमें पराभव होने पर आपासाहब को अंग्रेजों के अधीन होना पड़ा। तब अंग्रेज़ोंने उसे फिरसे गद्दीपर बिठाया और २४ लाखकी आमदनी का प्रदेश लेकर उसकी सेना अपने अधिकार में लेली। दुर्दैव से अंग्रेजों को आपासाहब के विद्रोह का फिरसे सन्देह हुआ और नागपुर के रेजीडेण्ट जेनकिन्स ने उसे क़ैद कर लिया। बाजीराव जब भागते-भागते चाँदा की ओर मुड़ा, तो उसकी सहायता करने तथा गोण्ड लोगों का विद्रोह कराने का अभियोग आपासाहब पर लगाया गया और वह इलाहाबाद के क़िले में क़ैद किया गया। परन्तु वहाँ से वह किसी प्रकार भाग गया और महादेव-पर्वत पर एक सरदार से मिलकर उसने बहुत धूम मचाई। आपासाहब के बाद रघुजी की स्त्री ने एक लड़के को गोद लिया और उसके नाम से राज्य का कारबार चलाया। इधर अंग्रेज़ों ने आपासाहब को पकड़ने के लिए सेना भेजी, पर उस सेना को भी धोखा देकर वह असीर-गढ़ क़िले को चला गया और उस क़िले को उसने अपने अधिकार में ले लिया। इस क़िले का जनरल डवटन और मालकम साहब ने घेरा डाला। आपासाहब ने इस क़िले से २० दिन तक लड़ाई की। अन्त में १८१९ के ९ अप्रैल को अंग्रेज़ों ने क़िला ले लिया। आपासाहब यहाँ से भी भाग गया और सिख-दरबार के आश्रय में रहने लगा। अन्तिम राजा रघुजी पुत्र-हीन ही रहा, इसलिए लार्ड डलहौज़ी की नीति के अनुसार उसका भी राज्य अंग्रेज़ी राज्य में शामिल कर लिया गया।

मराठा-राज्य के महत्वपूर्ण सरदारों में शिन्दे-घराने का नाम काफ़ी ऊँचा है। अन्तिम पेशवा बाजीराव ने तत्कालीन शिन्दे

दौलतराव को अनेक प्रकार के ताने लिख कर अपने पक्ष में शामिल करने का प्रयत्न किया था, पर दौलतराव शिन्दे खामोश ही रहा।

शिन्दे और अंग्रेज़

सम्भवतः इसका कारण यह था कि कहीं वह पेशवा के शामिल न हो जाय, इस आशंका से अंग्रेज़ों ने शिन्दे के राज्य की ओर भी सेना भेजी थी, तब शिन्दे ने सन्धि करके अपनी सेना अंग्रेज़ों के बतलाये हुए स्थान पर छावनी डाल कर रखना और बिना उनकी आज्ञा के सेना को कहीं न भेजना स्वीकार कर लिया था। इसके सिवाय उसने यह भी स्वीकार किया था कि मराठों से युद्ध होते समय अंग्रेज़ी सेना या उसकी रसद को अपने राज्य में न रोकूँगा। इस बात की ज़मानत के लिए उसने असीरगढ़ का क़िला तथा राजपूत राजाओं से होने वाली ३ साल की आमदनी अंग्रेज़ों को देने का वचन दिया था।

सन् १८२७ में दौलतराव की मृत्यु हुई। उसके बाद उसकी स्त्री बायजाबाई ने एक छोटे-से लड़के को गोद लिया और ब्रिटिश रेज़ीडेण्ट राज्य का कारबार देखने लगा। इस लड़के का नाम जनकोजी रक्खा गया। सन १८३७ में शिन्दे की सेना का पुनर्सङ्गठन हुआ और उसपर अंग्रेज़ अधिकारी नियत किये गये। जनकोजी शिन्दे के शासन-काल में पहले तो नेपाल और अफ़ग़ानिस्तान से और फिर सन् १८५७ में नानासाहब पेशवा के पास से उसे अंग्रेज़ों के विरुद्ध उकसाने के लिए वकील आये थे, पर जनकोजी ने सिर न उठाया। सन १८४३ में जनकोजी की मृत्यु हुई। उसके बाद उसकी विधवा पत्नी ताराबाई ने भागीरथराव शिन्दे को जयाजीराव नाम देकर गोद लिया। सन् १८४४ में

शिन्दे की बिगड़ी हुई सेना ने महाराजपुर में अंग्रेजों का सामना किया, उससे अंग्रेजों का बहुत नुक़सान हुआ। पर अन्त में उसकी हार हुई। सेना के विद्रोह का दण्ड शिन्दे को भुगतना पड़ा। १८ लाख की आमदनी का प्रदेश अंग्रेजों को देकर उसे अपनी सेना कम करनी पड़ी। सन १८५७ में शिन्दे की कुछ सेना ने विद्रोह कर उससे अपना अगुवा बनने की प्रार्थना की थी। शिन्दे के शामिल होने से विद्रोहियों का बल बहुत अधिक बढ़ जाता, पर जयाजीराव ने अंग्रेजों का पक्ष नहीं छोड़ा। इस ईमानदारी के बदले अंग्रेजों ने उसे तीन लाख की आमदनी का प्रदेश लौटा दिया और ३ हज़ार के बदले ५ हज़ार सेना और २५ तोपों की जगह ३६ तोपें रखने की आज्ञा दी। शिन्दे की जिस सेना ने विद्रोह किया था, उसके स्थान पर अंग्रेज़ों ने अपने अधिकारियों की अधीनता वाली सेना रक्खी। सन १८८६ की २० जून को जयाजीराव की मृत्यु हुई। उसके बाद उसके पुत्र माधवराव ने बड़ी बुद्धिमानी से कई साल तक राज्य किया।

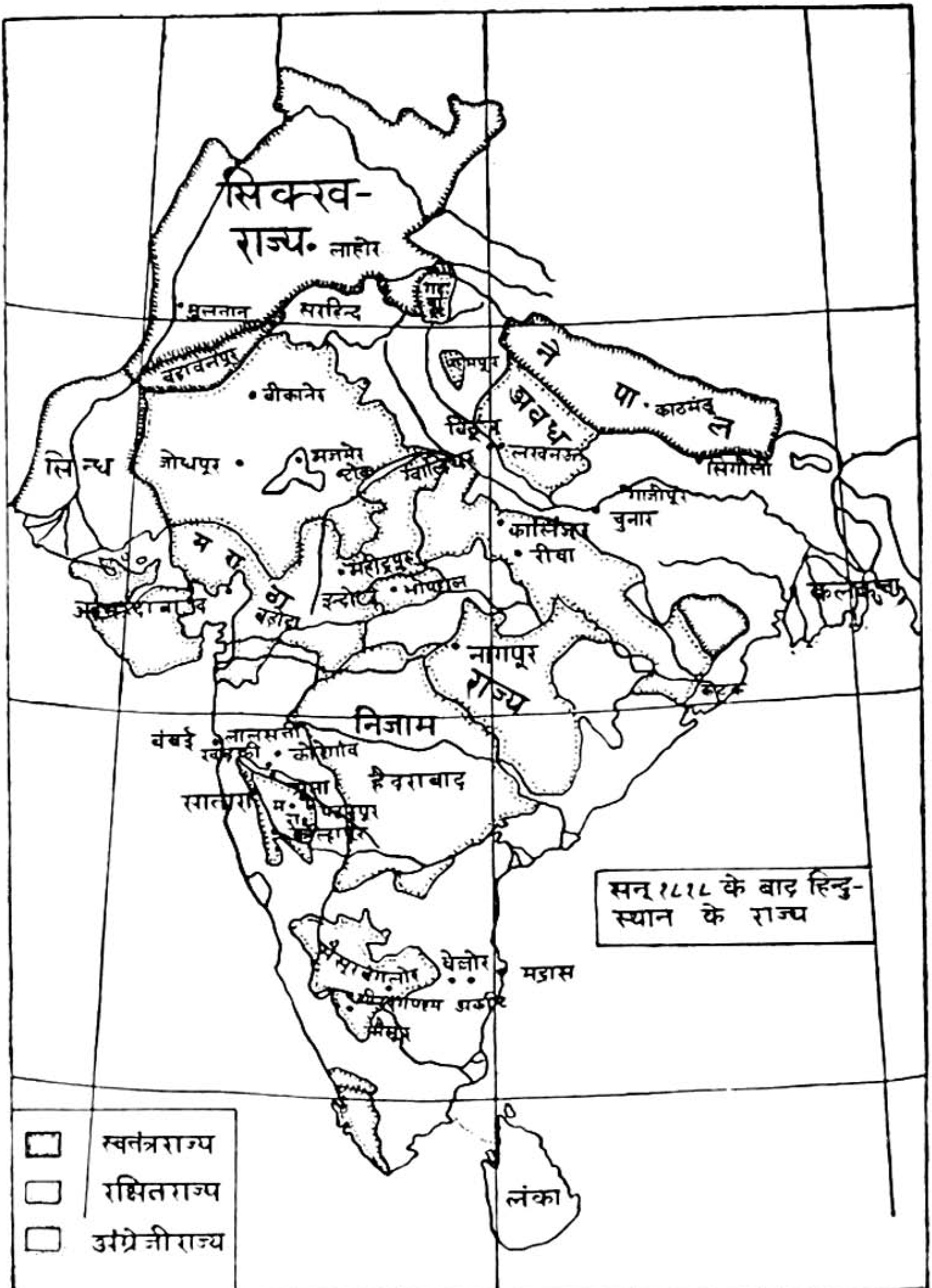
होलकर-घराने का इतिहास बाजीराव के समय से इतना अच्छा न रहा। यशवन्तराव होलकर के बाद उसकी रखेल तुलसीबाई का लड़का मल्हारराव होलकर सन १८११ में गद्दी पर बैठा। बाजीराव और अंग्रेजों के बीच जो अन्तिम लड़ाई हुई, उस

होलकर और अंग्रेज़

समय सन १८१७की २८ दिसम्बर को होलकर की सेना ने अंग्रेजों पर महिदपुर में चढ़ाई की, पर वह बुरी तरह हार गई। इसके बाद शीघ्र ही रामपुर में बुरी तरह उसे अंग्रेजों ने हराया। पर इसके पहले ही होलकर ने मन्दसौर में अंग्रेजों से सन्धि करके उनकी

अधीनता स्वीकार कर ली थी। इस सन्धि से उसने नर्मदा के दक्षिण के सब प्रदेश पर अपना अधिकार छोड़ दिया और राजपूत राजाओं पर भी किसी प्रकार का दावा न रक्खा। इसके बदले अंग्रेज़ों ने आवश्यक सेना रखकर उसकी रक्षा का भार अपने ऊपर लिया। महू की छावनी इसी शर्त की पूर्त्ति में बनी है। मल्हारराव होलकर की मृत्यु सन् १८३३ में हुई। उसके बाद हरिराव ने सन् १८४३ तक राज्य किया। उसके बाद द्वितीय तुकोजी होलकर गद्दी पर बैठा। यशवन्तराव की पत्नी केसरीबाई ने उसे गोद लिया था। सन् १८५७ के विद्रोह के समय तुकोजीराव अंग्रेज़ों के पक्ष में रहा और कई लोगों की रक्षा करके स्वयं अपनी जान उसने धोखे में डाली थी, क्योंकि उसकी सेना ने विद्रोह किया था। तुकोजीराव की मृत्यु सन् १८८६ में हुई। उसके बाद उसका बड़ा लड़का शिवाजीराव गद्दी पर बैठा। सन् १९०३ में उसे किसी कारण गद्दी छोड़नी पड़ी और उसका पद उसके लड़के सवाई तुकोजीराव को मिला। परन्तु उसे भी उस समय किसी कारण वश गद्दी छोड़नी पड़ी।

संक्षेप में यही सन् १८१८ के बाद के ख़ास-ख़ास मराठा-राज्यों का इतिहास है।



सन् १८१८ के बाद हिन्दुस्थान के राज्य

३०

पेशवों की शासन-व्यवस्था

पेशवों के समय शासन-व्यवस्था में जो बड़ा भारी परिवर्तन हुआ, वह यह कि सातारा के राजा के स्थान पर पेशवा ही सर्वसत्ताधीश बन बैठा। कारण यह

नाम-मात्र के राजा

कि गद्दी पर पूरा अधिकार होने तक तो शाहू ने राज्य-व्यवस्था की ओर खूब ध्यान दिया; पर जब वह अपनी गद्दी पर पक्की तौर से बैठ चुका, तब उसने राज्य का सारा कारबार अपने पेशवा बालाजी विश्वनाथ को सौंप दिया और स्वयं मृगया एवं विलास में समय बिताने लगा। पेशवा पर राज्य का सारा कारबार अवलम्बित होने के कारण उसे राज्य-कार्य की व्यवस्था के लिए लगान-वसूली का बन्दोबस्त करना पड़ा। इस व्यवस्था से पेशवा का अधिकार बढ़ा और राजा का अधिकार घटा। शाहू की मृत्यु के बाद रामराजा ने तो स्पष्ट कह दिया कि राज्य का सारा कारबार पेशवा ही चलावे, मुझे अपने निजी खर्च के लिए कुछ मुल्क सातारा के पास दे दिया जाय।

बालाजी बाजीराव ने पहले ही, शाहू की मृत्यु के समय, पेशवा के नाम राज-कार्य की सनद उससे लिखवा ली थी और फिर रामराजा ने जब अपनी उपर्युक्त इच्छा प्रकट की तब तो पेशवा मराठा-राज्य के कारबार का सर्वेसर्वा हो गया और सातारा का छत्रपति केवल नामधारी राजा रह गया। सातारा के राजा के नौकरों की नियुक्ति, वेतन-वृद्धि, इत्यादि सभी बातें पेशवा के हाथ में चली गईं। अब राजा और उसके कुटुम्बीजनों को पेशवा पर प्रत्येक बात के लिए अवलम्बित रहना पड़ता था और जब कभी नौकर-चाकर, धन-भूमि आदि किसी वस्तु की आवश्यकता पड़ती तब उन्हें पेशवा से कहना पड़ता था। राज्य की स्थिति इतनी नगण्य होने पर भी मराठा-राज्य में सातारा के राजा का मान-सम्मान आवश्यकतानुसार अवश्य होता था। राज्य के सब बड़े-बड़े सरदार अपनी सरदारी की सनद और उसकी पोशाक राजा से ही पाते थे। जब कभी नया पेशवा बनता तो वह भी अपनी पेशवाई के वस्त्र सातारा से ही मँगवाता था। हाँ, यह सत्य है कि जो कोई अधिकारारूढ़ पेशवा होता उसके नाम पेशवाई के वस्त्र भेजने में वे पूछताछ या विघ्न-बाधा न करते थे। जब कभी पेशवा या अन्य मराठे सरदार सातारा के राज्य की सीमा के भीतर पहुँचते तो अपने सब शाही चिन्ह दूर कर देते थे; पैदल चलकर राजा के पास जाते, उसके चरणों में अपना सिर नवाकर प्रणाम करते और हाथ जोड़ कर खड़े रहते थे। राजा के राज्य के भीतर किसी प्रकार की लूटमार न होने पाती थी। इसी प्रकार जब कभी राजा पेशवा की भेंट को आते तो पेशवा अपने को उसका नौकर समझकर उसका अच्छा स्वागत-

सन्मान करते थे। राजा के कुटुम्बी और नौकर सब प्रकार के करों से मुक्त थे; और नज़दीकी रिश्तेदारों को पोषण के लिए ज़मीन या नक़द द्रव्य मिला करता था।

पेशवा के सर्व-सत्ताधारी होने का कारण ऊपर बता चुके हैं। पेशवा वास्तव में अष्ट-प्रधानों में मुख्य प्रधान था। बालाजी विश्वनाथ के पहले छः पेशवा हो चुके हैं।

शाहू के बाद पेशवा का पद

बालाजी विश्वनाथ मराठा-राज्य का सातवाँ पेशवा था; और जिस समय बालाजी विश्वनाथ पेशवा हुआ उस समय उसका पद सिद्धान्त की दृष्टि से भी राजा के बाद सर्वोच्च न था, क्योंकि पंत-प्रतिनिधि का पद इस दृष्टि से पेशवा के पदसे ऊँचे दर्जे का था। पंत-प्रतिनिधि के पद की नियुक्ति राजाराम के महाराष्ट्र को छोड़ जिंजी जाने पर हुई थी। पंत-प्रतिनिधि का वेतन १५ हज़ार होण ❀ था, परन्तु पेशवा का वेतन केवल १३ हज़ार होण था। इसी बात से दोनों के पद का मीलान हो सकता है, और इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। पेशवा एक प्रधान यानी राजा का नौकर था, परन्तु पंत-प्रतिनिधि राजा का प्रतिनिधि था। सभी देशों में राजा के प्रतिनिधि यानी रीजेण्ट का पद प्रधान मंत्री के पद से भी ऊँचा ही रहता है, क्योंकि वह राजा के स्थान में ही काम करता है। परन्तु बालाजी बाजीराव ने अपनी योग्यता और कार्य के द्वारा अपना पद सर्वोच्च कर लिया और राजाके समान पंत-प्रतिनिधि का

❀ उस समय का एक सिक्का।

पद भी प्रतिनिधियों की अयोग्यता के कारण पीछे पड़ गया। भाग्य से बालाजी विश्वनाथ के बाद उसका लड़का बाजीराव बड़ा प्रतापी निकला और उसने मराठा-राज्य का विस्तार खूब बढ़ाया। इसलिए इसी समय से पेशवा का पद कुछ आनुवंशिक होता जान पड़ा था; और बाजीराव के बाद जब अनेक विघ्नों के होने पर भी पेशवा का पद उसके लड़के बालाजी उर्फ़ नाना-साहब को मिला, तब तो उसपर आनुवंशिकता की छाप पूरी तौर से लग गई। बालाजी बाजीराव के बाद फिर इस बात का प्रश्न भी न उठा कि पेशवा का पद उसके तरुण लड़के माधवराव को क्यों मिले! बालाजी बाजीराव के शासन-काल में ही यह बात-चीत हो रही थी कि दिल्ली की गद्दी पर उसका लड़का विश्वास-राव बिठलाया जाय। इसी बात से स्पष्ट है कि पेशवा के पद पर बालाजी विश्वनाथ के वंशजों का आनुवंशिक अधिकार राजा के पद के समान ही माना जाने लगा था। यदि बालाजी विश्वनाथ के वंशज योग्य पुरुष न निकलते, तो सम्भव था कि पेशवा का पद आनुवंशिक न माना जाता। पर सातारा के राजा अयोग्य निकले और बालाजी विश्वनाथ के पुत्र-पौत्र बहुत योग्य निकले। इस कारण राजा के क़रीब-क़रीब समस्त अधिकार पेशवा के हाथ में चले गये, केवल नाम को छोड़ कर पेशवा शाहू के बाद मराठा-राज्य का पूर्ण शासक बन गया। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि शिवाजी के समान पेशवा भी धार्मिक झगड़ों का निर्णय किया करते थे।

पेशवा के हाथ में राज्य-सत्ता ज्यों-ज्यों आने लगी त्यों-त्यों दूसरे प्रधानों का महत्व कम होता गया और उनका नाम मराठा-

राज्य में सुनाई न पड़ने लगा। नाम-मात्र के लिए तो पहले के अष्ट-प्रधान अब भी बने थे, पर पहले जैसे उनके हाथ राज्य के भिन्न-भिन्न विभागों के शासन की सत्ता थी उस प्रकार अब न रह गई। अन्य जागीरदारों के समान अष्ट-प्रधान भी छोटी-मोटी जागीरें पाये हुए थे, पर महत्व की दृष्टि से दूसरे सरदारों के सामने वे कुछ न थे।

अन्य प्रधानों की स्थिति

शिवाजी की शासन-व्यवस्था में एक और बड़ा भारी परिवर्त्तन हुआ। जिस समय औरंगज़ेब ने मराठा-राज्य को ग्रस डाला था उस समय मराठे सेनापतियों ने मुग़ल-राज्य में हमले करके अपने राज्य की रक्षा की थी। इसका परिणाम हम बता चुके हैं। कई इतिहास-लेखक शाहू पर इस बात का दोष मढ़ते हैं कि उसने जागीरदारी की प्रथा जारी की और जागीरों को आनुवंशिक करके मराठा-राज्य के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इस परिवर्तन का कितना दोष शाहू पर मढ़ा जा सकता है, इस बात का विचार हम आगे करेंगे। यहाँ पर इतना कह देना काफ़ी है कि कुछ अंश तक जागीरदारी की प्रथा शाहू के पहले ही अमल में आचुकी थी और वह उस समय महाराष्ट्र की रक्षा के लिए अनिवार्य थी। परन्तु इतना भी यहाँ पर मानना होगा कि जागीरदारी की इस प्रथा से मराठा-राज्य का स्वरूप सदैव के लिए बदल गया। शिवाजी के एकतंत्री राज्य के स्थान में पेशवा और मराठे सरदारों का कुलीनतंत्री राज्य स्थापित हो गया। इसीका विकास पहले दाभाड़े, आंग्रे, भोंसले और फिर

जागीरदारी की अनिवार्य प्रथा और उसके परिणाम

होलकर, शिन्दे, पँवार आदि ने किया। इन सरदारों में भी दो दर्जें थे। आंग्रे, भोंसले, दाभाड़े और उनके बाद गायकवाड़ अपने को पेशवा की वरावरी का समझते थे और इसी नाते वे उससे सारा व्यवहार किया करते थे; पर शिन्दे, होलकर आदि अपने को पेशवा का नौकर समझते थे और प्रारम्भ में तो पूरी तौर से उसकी आज्ञा मानते थे पर बाद में ये भी सिरज़ोर हो गये और अपनी जागीरों में स्वतंत्रता दिखलाने लगे। लेकिन सिद्धान्त में वे अन्त तक अपने को पेशवा का नौकर समझते थे। महादजी शिन्दे जब पूना को आया तो उसने पेशवा के नौकर के नाते ही सवाई माधवराव से अपना वर्ताव किया—यहाँ तक कि पेशवा की जूतियाँ भी उसने उठाईं, क्योंकि उसका पूर्वज राणोजी शिन्दे बाजीराव के पास इसी काम के लिए नौकर था। सरदारों में दो भेद होने के कारण पुराने सरदार अपने को नये सरदारों से ऊँचे दर्जे का समझते थे और बहुधा चढ़ाइयों के समय सेनापतित्व के काम पर अपना अधिकार दिखाते थे। सरकारी वातों में नये सरदार पेशवा की आज्ञा जिस तत्परता से मानते थे वह तत्परता पुराने सरदारों ने कभी न दिखलाई। तथापि यह कहना ही होगा कि सरकारी कामों में उन्हें भी पेशवा का हुक्म मानना पड़ता था और बहुधा सब चढ़ाइयों के समय वे अपनी फ़ौज लेकर उपस्थित रहते थे, क्योंकि पेशवा ही सारे मराठा-राज्य का प्रतिनिधि-रूप शासक बन गया था।

पेशवा के सर्व-सत्ताधारी बनने का एक परिणाम हम ऊपर बताही चुके हैं। वह यह है कि पहले के प्रधान लोग अब नाम-

मात्र के प्रधान रह गये थे और उनकी सत्ता पेशवा के हाथ में चली गई थी। इसलिए पेशवा ने राज्य-कार्य के लिए अपने निजी कारबारी नियत किये। पहले का फड़नवीस अब

मुख्य दफ्तर और उसकी व्यवस्था

केवल फड़नवीस न रह गया था—वह सारे दफ्तर का अधिकारी तो था ही, पर पेशवा का प्रधान कारबारी भी हो गया था। आजकल सर्वोच्च सरकारी दफ्तर को "सेक्रेटेरियट" कहते हैं, मराठे लोग उसे हुजूर-दफ्तर कहते थे। आजकल का चीफ़ सेक्रेटरी उस समय हुजूर-फड़नवीस कहलाता था। दफ्तर के कई भाग थे। यहाँ पर प्रत्येक प्रकार के क़ाग़ज़ों की नक़ल रक्खी जाती थी. इसलिए सब प्रकार की बातें दफ्तर से मालूम हो सकती थीं। नाना फड़नवीस ने दफ्तर के कामों में बहुत-से सुधार किये। इस दफ्तर में क़रीब २०० कारकुन यानी क्लर्क नौकर थे। द्वितीय बाजीराव के समय तक इस दफ्तर का काम बहुत अच्छी तरह से चला और प्रत्येक क़ाग़ज़-पत्र बहुत अच्छी तरह से रक्खा गया था। इस बाजीराव के समय में ही इस दफ्तर के कामों में और क़ाग़ज़-पत्रों को ठीक-ठाक रखने में गड़बड़-सड़बड़ हुई।

अब हम पेशवों की मुल्की व्यवस्था का वर्णन करेंगे। पेशवों की मुल्की व्यवस्था का मुख्य आधार लगान पटाने वाले की बढ़ती था। मराठे शासक इस बात को कभी न भूले कि लोगों की समृद्धि से ही राज्य की समृद्धि होती है, इसलिए वे सहसा लगान

आय के मार्ग और लगान की दर

बहुत अधिक न बढ़ाते थे। जब कभी नई ज़मीन काश्त में लाई जाती तो छः-सात सालों तक काश्तकार से कुछ न लिया जाता

था। इसके बाद पाँच-छः साल तक कुछ हलका-सा लगान वसूल किया जाता था। इसके बाद कहीं भरपूर लगान की वसूली होती थी। यही बात आमदनी के अन्य ज़रियों की थी। पेशवा के समय में राज्य की आमदनी के ये मार्ग थे—(१) लगान और राज्य की निजी ज़मीन, (२) ज़कात और एक प्रकार का आय-कर, (३) जंगल, (४) टकसाल, और (५) न्याय-विभाग। हिन्दुस्थान में सदा से खेती का लगान ही राज्य की आमदनी का मुख्य ज़रिया रहा है। जमाबन्दी का प्रबन्ध शिवाजी ने जो कुछ कर दिया था वही बहुत कुछ अब भी चला आता था। पेशवा की जागीर की ज़मीन के शेरी यानी काश्त की ज़मीन, कुरण यानी चरोतर, बाग़ और अमराई नामक चार भाग थे। काश्त की ज़मीन के दो भेद थे—पाटस्थल और मोटस्थल। बाग़ की ज़मीन बागायत कहलाती थी। नहरों से सींची हुई ज़मीन को पाटस्थल कहते थे और मोटों से सींची हुई ज़मीन को मोटस्थल कहते थे। सारी ज़मीन की नपाई होती थी और अमीन नामक अधिकारी लगान की दर निश्चित किया करता था। बहुधा ज़मीन की पैदावार को देखकर यह दर निश्चित की जाती थी। इस काम के लिए कई पाहणीदार यानी देख-रेख करने वाले, अथवा आजकल की भाषा में रेवेन्यु-इन्सपेक्टर, नियत थे। उस समय के लगान की कुछ कल्पना बाजीराव के समय के एक क़ाग़ज़ से हो सकती है। तर्फ़ हवेली पाल के लिए निम्न-लिखित दर बतलाये हैं—(१) चावल की ज़मीन के लिए बीघे पीछे बावती मिलाकर १० मन लिया जाय, परन्तु इसमें हक़दारों का अधिकार शामिल न रहेगा; (२) गन्ना पैदा करने वाली ज़मीन पर प्रत्येक बीघे पीछे ५ रुपये

लिये जायँ; (३) तरकारी-भाजी पैदा करने वाली ज़मीन पर बीघे पीछे २) रुपये लिये जायँ; (४) गरमी के दिनों में फ़सल देने वाली ज़मीन पर १॥) रुपया बीघा लिया जाय।

ऊपर लगान के जो दर बतलाये हैं वे सम्भवतः सबसे ऊँचे थे। अन्य दर बहुधा इससे कम देख पड़ते हैं। पेशवों की जमा-बन्दी के सम्बन्ध में एक तत्त्व यह बताया जा सकता है कि पैदा-वार की घटी-बढ़ी के अनुसार जमाबन्दी में भी कमी-बेशी हुआ करती थी। इस कारण किसी को भी लगान देते समय कष्ट न होता था।

यह हम ऊपर एक स्थान पर बताही चुके हैं कि पड़ती ज़मीन को काश्त में लाने के लिए पेशवे बहुत रिआयत दिया करते थे।

पड़ती ज़मीन और प्रजा को राज्य की ओर से रिआयतें

बहुधा वे अपने अधिकारियों को इस बात की सूचना समय-समय पर लिखा करते थे कि पड़ती ज़मीन को काश्त में लाने के लिए लोगों को रिआयतें देकर उत्तेजना दी जाय। यह भी ऊपर बता चुके हैं कि बहुधा पहले पाँच-सात साल कुछ नहीं लिया जाता था। इसके बाद पाँच-सात साल तक क्रमशः बढ़ने वाली दर से लगान वसूल किया जाता था। तब कहीं उससे भरपूर लगान लिया जाता था। पड़ती ज़मीन को काश्त में लाने के लिए कभी-कभी इनाम के रूप में उत्तेजना दी जाती थी। बहुधा नियम यह था कि आधी ज़मीन इनाम में दी जाती थी और आधी ज़मीन पर उपर्युक्त नियम के अनुसार क्रमशः लगान लगता था। बहुधा यही नियम बागायत के संबंध में भी लागू किये जाते थे। नारियल के वृक्ष लगाने की ओर पेशवों

की दृष्टि विशेष थी, तथापि अन्य वृक्षों की बाग़ायत पर भी वे ध्यान देते थे। बाग़ायत से भी ख़ासी आमदनी होती थी। दुष्काल पड़ने पर अथवा लूट-मार के कारण फ़सल नष्ट होने पर काश्त-कारों को लगान की माफ़ी मिलती थी और बोनी के समय भी तगाई अर्थात् तक़ावी पाते थे। कभी-कभी अन्य कारणों से आपत्ति आ पड़ने पर भी माफ़ी और तगाई का लाभ रैयत को मिलता था। सारांश यह है कि पेशवे रैयत की भलाई में अपनी भलाई और रैयत की बुराई में अपनी बुराई समझते थे। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि उन्होंने सिंचाई के लिए नदियों और नालों पर बाँध बाँधे या बँधवाये, अथवा तालाब बनाये या बनवाये। उस समय कुँओं से भी सिंचाई होती थी। बहुधा जमाबन्दी रुपयों के रूप में जमा करने की प्रथा थी, तथापि कभी-कभी वस्तु के रूप में भी वह पटाई जाती थी; और कभी-कभी तो पेशवे उसे वस्तु के रूप में ही माँगते थे।

दूसरे प्रकार की आयों में कर मुख्य हैं। ये कर कई प्रकार के थे, इनमें से मुख्य प्रकार चौबीस-पच्चीस देख पड़ते हैं। इसी प्रकार

राज्य के कर

कई धन्धों पर भी कर होता था, जिसे मोहतर्फ़ा कहते थे। इनके नाम गिनाने की अपेक्षा हम संक्षेप में यह कह सकते हैं कि ज़मीन, उसपर की वस्तु अथवा सरकारी सुविधा या धन्धों के लिए कर देना होता था। इसी प्रकार ज़कात की भी रीति थी। यह स्मरण रखना चाहिए कि इनमें से प्रायः सब कर कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी बताये हैं और इनमें से बहुतेरे आज भी प्रत्यक्ष

या अप्रत्यक्ष वसूल होते हैं। जमावन्दी के समान जकात-वसूली के लिए भी कमावीसदार वग़ैरा अधिकारी नियत थे। जमावन्दी के समान लोगों के आपत्काल में जकात भी माफ़ होती थी। बहुत आवश्यकता पड़ने पर आजकल के इनकमटैक्स के समान उस समय भी 'ज्यास्ती पट्टी' नाम का एक कर धन-सम्पन्न लोगों से लिया जाता था। ऐसा जान पड़ता है कि सरकारी नौकर जकात वग़ैरा से माफ़ थे। इसी प्रकार कोंकण के परभु और ब्राह्मण घर पट्टी (कर) से माफ़ थे।

आजकल के समान उस समय भी जंगल-विभाग से कुछ आमदनी होती थी। बहुधा चरोतर इसी विभाग में शामिल थे।

जंगल की आय

आपत्काल को छोड़ कर अन्य समय लोगों को लकड़ी वग़ैरा काटने के लिए कर देना होता था। इसी प्रकार शहद तथा वृक्षों की अन्य वस्तुओं से भी आमदनी होती थी।

टकसालों से भी कुछ आमदनी हो जाती थी। आजकल के समान टकसालें उस समय सरकारी न थीं। सिक्के बनाने का इजारा

टकसालों की आमदनी

कुछ लोगों को सरकार से दिया जाता था। ये लोग उसके बदले सरकार को कुछ दिया करते थे। सिक्कों की सचाई पर पेशवों का भरपूर खयाल रहता था; परन्तु अमुक ही प्रकार के सिक्के चलें और अमुक प्रकार के न चलें, ऐसा कोई नियम न था। सभी प्रकार के देशी और विदेशी सिक्के मराठा-राज्य में चलते थे, पर उनकी क़ीमत उनमें की धातु के अनुसार होती थी। बहुधा मराठा टकसालों में होण, मोहर और रुपये बनाये जाते थे। होण

सोने के होकर वज़न में बहुधा साढ़े तीन माशे रहते थे। रुपया और मोहर अनुक्रम से अर्काट का रुपया और दिल्ली की मोहर के बराबर होते थे। इनके सिवाय तांबे के पैसे १० माशे वज़न के और २२ माशे के ढबू भी होते थे।

आज के समान उस समय भी सारे शासन का लघुतम विभाग गाँव था। हम यह देख चुके हैं कि शिवाजी ने अपने पहले के गाँवों के अधिकारी देशमुख और देशपांडे को एक ओर रखकर अपने अधिकारी पटेल और कुलकर्णी नियत किये थे।

ग्राम्य-व्यवस्था : पटेल

जमाबन्दी का काम पटेल का मुख्य काम था, तथापि उसे कई प्रकार के अन्य काम भी गाँव में करने पड़ते थे। बहुधा छोटे-छोटे मुक़दमे उसीके सामने निपटाये जाते थे। शान्ति बनाये रखने का और चोर-लुटेरों को दण्ड देने का काम भी उसे करना पड़ता था। पेशवों के समय में पटेली आनुवंशिक हो गई थी और आज-कल के मालगुज़ारी के समान बेची-ख़रीदी जा सकती थी। बहुधा एक गाँव में एक ही पटेल होता था; परन्तु कभी-कभी एक ही कुटुम्ब के कई लोग भी एक गाँव में यह अधिकार चलाते थे, उस समय इनमें से जो सबसे बड़ा होता उसे कुछ विशेष अधिकार होते थे। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि पटेल कुछ अंश में आनुवंशिक राजा जैसे होगये थे। तथापि जमाबन्दी के लिए वह पूरी तौर से ज़िम्मेदार था और उसके न पटने पर उसे क़ैद भी हो सकती थी। लूट करने वाले लूट के समय उसे ही माँगा हुआ धन देने के लिए ज़िम्मेदार रखते थे और पूरा-पूरा धन मिलने तक उसे अपनी क़ैद में रखते थे।

गाँव का दूसरा अधिकारी कुलकर्णी था। संक्षेप में इसे आज-कल का पटवारी कह सकते हैं। आजकल के पटवारी का काम तो वह करता ही था; पर वह पटेल के समान जमाबन्दी, लूट आदि के लिए भी ज़िम्मेदार समझा जाता था। परन्तु जिस प्रकार पटेल को गाँव में बड़े-बड़े लोगों के आने पर उनकी सुविधाओं की व्यवस्था करनी पड़ती थी, उस प्रकार की ज़िम्मेदारी कुलकर्णी पर न थी। ऐसा जान पड़ता है कि कुलकर्णीपरन ही एक प्रकार का हक़ हो गया था और पटेली के समान वह भी जायदाद के समान समझा जाने लगा था। तथापि यह स्पष्ट है कि पटेल से कुलकर्णी का दर्जा काफ़ी नीचा था और उसके अधिकार पटेल से बहुत कम थे। बहुधा पटेल की आवश्यकतायें पूर्ण होने पर कुलकर्णी की आवश्यकतायें पूर्ण की जाती थीं।

कुलकर्णी

प्रत्येक गाँव में बहुधा एक महार होता था। उसकी जाति आज के समान उस समय भी नीच समझी जाती थी, परन्तु आजकल के गाँवों के कोतवालों के समान महार भी बड़ा उपयोगी था। बहुधा वह गाँव के लोगों को पटेल की चावड़ी में बुलाकर जमाबन्दी के काम में पटेल की सहायता और गाँव की सामान्य देख-भाल किया करता था। गाँव की सफ़ाई का काम भी बहुधा उसीके ज़िम्मे रहता था। गाँवके १२ बलूतों में महार की भी गणना थी।

महार

गाँव के बारह बलूते ये थे—बढ़ई, लोहार, चमार, महार, माँग, कुम्हार, नाई, धोबी, गुरब, जोशी (ज्योतिषी), भाट और

मुलाणा। इनके अलावा चौगुला नाम का एक पुरुष होता था। कईयों के काम उनके नामों से ही स्पष्ट हो

बलूते

सकते हैं। हिन्दी-भाषी भागों में माँग के काम का ज्ञान कदाचित् लोगों को न हो, इसलिए यह बतला देना आवश्यक है कि माँगों का काम महाराष्ट्र में बहुधा बाजे बजाने का है। महार के समय माँग भी नीच जाति के समझे जाते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि माँगों और महारों के बीच हक़ों के लिए बहुत काल तक झगड़े चलते रहे। गुरव का काम बहुधा गाँव के देवी-देवताओं की पूजा करना था। जोशी गाँव के ज्योतिषी का काम करता था। कहीं-कहीं 'मुलाणा' के स्थान में 'कुलकर्णी' का नाम आया है। शेष बलूतों के कार्यों का पता हमें नहीं मिल सका, इस कारण हम नहीं बता सकते कि वे कौनसा काम करते थे और उनके क्या अधिकार थे।

बहुधा प्रत्येक गाँव में, या दो-तीन गाँव पीछे, एक पोतदार भी होता था। यह जाति से सुनार होता और सुनार का काम करता था। परन्तु इससे भी एक महत्वपूर्ण

सुनार या पोतदार

काम उसके ज़िम्मे यह था कि वह सिक्कों की सचाई की जाँच करता था। इस काम के लिए उसे सरकार की ओर से कुछ वेतन मिलता था। सब बलूतों को गाँववालों की ओर से सालभर में कुछ निश्चित आमदनी होती थी। इसके अलावा कुछ विशेष प्रसंगों पर कुछ विशेष आमदनी हो जाती थी। इस प्रकार प्रत्येक गाँव अपनी आवश्यकताओं की दृष्टि से एक छोटा-सा राज्य ही था। वास्तविक बात यह है कि ग्राम-व्यवस्था की यह प्रथा बहुत प्राचीन काल से चली आती थी।

इस समय तक गाँव के भिन्न-भिन्न अधिकारी और बलूते अपने भिन्न-भिन्न हक़ों को वेतन समझने लगे थे। इस कारण कभी-कभी वेतन के सम्बन्ध में झगड़े उठ खड़े होते थे। यदि किसी की ग़ैर-हाजिरी में कोई दूसरा उसका काम करता तो पहला पुरुष वापस आने पर दूसरे को बेदख़ल कर देता था।

गाँव की ज़मीन हक़ की दृष्टि से दो वर्गों में बँटी थी। जो लोग गाँव में सदा से रहते आये थे, वे मिरासदार कहलाते थे। जबतक वे लगान पटाते तबतक कोई उन्हें बेदख़ल न कर सकता था। संक्षेप में कह सकते हैं कि उस समय के मिरासदार आजकल के मौरूसी काश्तकार के समान ही थे। कभी-कभी तो तीस-चालीस वर्ष के बाद भी ये मिरासदार अपनी ज़मीन वापस ले लेते थे। गाँव के दूसरे प्रकार के काश्तकार 'ऊपरी' कहलाते थे। इनको आजकल की भाषा में "मामूली" ज़मीन के काश्तकार कह सकते हैं। ये बहुधा बाहर से आये हुए होते थे; इसीलिए मराठी भाषा में इन्हें 'ऊपरी' कहते थे। ये चाहे जब बेद-ख़ल किये जा सकते थे और मिरासदारों के समान इनके हक़ न थे।

काश्तकारों के भेद

प्रत्येक गाँव के चारों ओर उसकी रक्षा के लिए एक दीवाल होती थी और भील या रामोशी जैसे लुटेरे डाकुओं के सिवाय सब लोग गाँव में रहते थे। ये भील और रामोशी बहुधा बाहर रहते और गाँव की देख-भाल करते थे। गाँव में चोरी-डकैती होने पर उसे पकड़ने का काम इनके ज़िम्मे था। यदि ये उसे न पकड़ सकते तो इन्हें

रक्षा का प्रबन्ध

ही हानि की पूर्त्ति करनी पड़ती थी। अतएव ये अपने ही गाँव में चोरी-डकैती न करते थे।

इस प्रकार पेशवों के समय में प्रत्येक गाँव एक छोटा-सा प्रजातंत्र ही था। पेशवों ने कभी उनके काम में अनावश्यक हस्त-क्षेप नहीं किया। गाँव के अधिकारी और कर्मचारी आनुवंशिक थे। उन्हें लगान तथा अन्य कुछ बातों में पेशवों का हुक्म मानना पड़ता था, पर शेष बातों में वे पूर्ण स्वतंत्र थे। गाँव के भीतर परस्परावलम्बी होने के कारण वे बहुधा एक-दूसरे के दबाव में रहते थे। पेशवा के अधिकारी केवल ऊपरी देख-भाल रखते और उन्हें केवल ऊपरी कामों में सहायता देते थे, पर बहुतेरी बातों में उनके स्वतंत्र होने के कारण हम यह कह सकते हैं कि मराठा-शाही में ग्रामीण स्वराज्य प्रचलित था।

छोटा सा प्रजातंत्र

अब हम यह देखेंगे कि इन गाँवों के ऊपर कौन-कौन से अधिकारी थे। ऊपर बता चुके हैं कि शिवाजी के पहले देशमुख और देशपाण्डे नाम के अधिकारी होते थे। बहुधा ये परगनों के अधिकारी होते थे। इन्हें जमीनदार भी कहते थे। इन्होंने गाँवों पर जो अत्याचार किये उनके कारण शिवाजी ने इनसे इनके कार्य छीन लिये परन्तु इनके हक़ बने रहने दिये, ताकि ये गड़बड़ न मचावें। इसीलिए आगे चलकर ये सामान्य-प्रजा के हितैषी हो गये और कई बार इन्होंने प्रजा की भलाई के लिए पेशवों के पास लोगों के कष्ट कहे। ये कर्मचारी तो न थे, तथापि ये बिलकुल ही नामधारी न थे। पेशवा के अधिकारियों पर इनकी एक प्रकार की देख-रेख

देशमुख और देशपाण्डे

हुआ करती थी। पुराने क़ाग़ज़-पत्र और सब वेतन, दान, इनाम आदि का लेखा देशमुख के यहाँ रहता था और जब कभी कोई झगड़ा उपस्थित होता तो वे काग़ज़-पत्र उसके यहाँ से माँगे जाते थे। ज़मीन के लेन-देन के नये काग़ज़-पत्र भी उसीके यहाँ रहते थे और ऐसा जान पड़ता है कि इन क़ाग़ज़-पत्रों के पक्केपन के लिए उसकी मुहर की आवश्यकता पड़ती थी। देशमुख और देशपाण्डे के लिए कमाई के कई ज़रिये थे। श्री राजवाड़े ने मराठों के इतिहास के साधनों के १० वें खंड में जो एक बख़्शीशनामा छापा है, उससे इन लोगों की आमदनी के ज़रियों का पूरा-पूरा पता चलता है। उसमें लिखा है कि (१) प्रत्येक गाँव पीछे ३) रुपये * देने की रीति है; उसमें से देशपाण्डे १) रुपया और तुम (देशमुख) शेष दो रुपये लो। (२) सरकार से सिरोपाव पहले तुम लो और फिर देशपाण्डे ले। (३) वेतन इत्यादि के क़ाग़ज़-पत्रों पर पहले तुम्हारे हस्ताक्षर रहें और फिर तुम्हारे हस्ताक्षर के पास देशपाण्डे हस्ताक्षर करे। (४) सरकारी अफ़सरों को पहले तुम नज़राना पेश करो और फिर देशपाण्डे पेश करे। इसी प्रकार अन्य सोलह धाराओं में देशपांडे और देशमुख के अधिकार और कर्तव्य गिनाये हैं। गाँव से पटेल और कुलकर्णी को जो आमदनी होती थी वह देशमुख और देशपाण्डे को भी होती थी। सारांश में कह सकते हैं कि देशमुख और देशपाण्डे पहले के पटेल और कुलकर्णी थे और उनके भरण-पोषण का भार सरकार पर न होकर गाँव के लोगों पर ही होता था। इसलिए यह कहना ही पड़ता है

---

* यह तीन रुपया सैकड़ा है।

कि इनका गाँव में बनाही रहना गाँववालों की दृष्टि से अनावश्यक था। शिवाजी के प्रारम्भ-काल में इन्हें निकाल बाहर करना कदाचित् सम्भव न था। पर बाद में इन्हें यदि निकाल बाहर किया होता तो गाँववालों के ऊपर से इनके भरण-पोषण का भार दूर हो जाता।

कमावीसदार, मामलतदार, सूबेदार आदि

गाँव के ऊपर के अधिकारी कमावीसदार, मामलतदार, सूबेदार अथवा सर-सूबेदार थे। शिवाजी के समय में स्वराज्य के हिस्से सूबे, सूबे के हिस्से तर्फ, और तर्फ के हिस्से गाँव थे। पर पेशवों के समय में तर्फ, परगना, सरकार और सूबा शब्दों का उपयोग मनमाने ढंग से होने लगा था। इसके अलावा सूबा के लिए प्रान्त शब्द का और तर्फ या परगना के लिए महाल शब्द का भी उपयोग होता था। छोटे-छोटे हिस्सों के अधिकारी कमावीसदार कहलाते थे और बड़े-बड़े हिस्सों के अधिकारी मामलतदार होते थे। ये मामलतदार सीधे पेशवा के अधिन होते थे; पर खानदेश, गुजरात और कर्नाटक में ये सरसूबेदार के मातहत रहते थे और इन प्रांतों में ये सरसूबेदार ही जमाबन्दी के लिए ज़िम्मेदार होते थे। इन कमावीसदारों और मामलतदारों के वेतन भिन्न-भिन्न प्रांतों में भिन्न-भिन्न थे। निश्चय-पूर्वक तो नहीं कहा जा सकता, पर कुछ क़ाग़ज़-पत्रों से ऐसा जान पड़ता है कि जमाबन्दी का चार सैकड़ा इन्हें वेतन के रूप में मिलता था। जमाबन्दी के काम के सिवा इन्हें आजकल के तहसीलदार और डिप्टीकमिश्नर या कलेक्टर के समान कई प्रकार के काम करने होते थे। दीवानी और फ़ौजदारी मुकद्दमे भी इन्हें निपटाने पड़ते थे और इस काम के लिए

पंचायतें नियत करनी पड़ती थीं। अपने भाग के शिबन्दी अर्थात् फ़ौज और पुलीस के अधिकारी भी यही होते थे। धार्मिक और सामाजिक प्रश्न भी, निर्णय के लिए, इनके सामने आते थे। शिवाजी के समय में तो ये अधिकारी बहुत थोड़े समय के लिए नियत होते थे और एक स्थान से दूसरे स्थान को बदले जाते थे, परन्तु पेशवों के समय में वही कमाविसदार या मामलतदार उसी हिस्से में कई बार नियत होता था। इस प्रकार धीरे-धीरे उसी पद पर ये लोग आजन्म रहने लगे और फिर अपने बाद अपने लड़कों को भी उनपर नियत करवाना शुरू किया। होते-होते अन्य नौकरियों के समान यह नौकरी भी अन्तिम पेशवों के समय आनुवंशिक हो चली थी।

वेतन के सिवा इन अधिकारियों की आमदनी के कई अन्य ज़रिये भी थे। नज़राना लेना एक बहुत सामान्य बात थी। जमाबन्दी से अधिक लगान भी ये कभी-कभी वसूल किया करते थे। यदि सरकार की ओर से किसी प्रकार का मान-सम्मान इन्हें मिलता तो उसके लिए भी सरकार की ओर से इन्हें खर्च मिलता था। ये कभी-कभी भिन्न-भिन्न हिकमतों से जमाबन्दी कम दिखलाया करते थे। परन्तु इनके इन कार्यों पर एक तरह का दबाव रखने के लिए दरखदार नाम के अधिकारी होते थे। इन दरखदारों की नियुक्ति वग़ैरा मुख्य सरकार से ही होती थी। प्रत्येक मामलतदार के अधीन बारह कारकून यानी क्लर्क होते थे। इनके सिवाय एक दीवान, एक मुजुमदार, एक फड़नवीस, एक दफ्तरदार, एक पोतनीस, एक पोतदार, एक सभासद और एक चिटनीस

कारकून वग़ैरा

होते थे। इनकी भी नियुक्ति वग़ैरा मुख्य सरकार से होती थी। प्रायः ये मामलतदार की मर्ज़ी पर विशेष अवलम्बित न थे; उलटे मामलतदार के कामों पर इनकी भी एक तरह की देख-रेख होती थी और इनके कारण मामलतदार विशेष ख़यानत वग़ैरा न कर सकता था। सब चिट्ठियों और हुक्मों पर मामलतदार के हस्ताक्षर के नीचे दीवान के हस्ताक्षर होते थे। फड़नवीस के पास हिसाब-किताब के क़ाग़ज़ जाने के पहले मुजुमदार उन्हें देखता था। फड़-नवीस सब प्रकार के क़ाग़ज़-पत्रों पर मिति वग़ैरा लिखता, रोज़ के क़ाग़ज़-पत्रों का हिसाब रखता, जमाबन्दी के क़ाग़ज़-पत्रों को सिलसिलेवार लगाता और फिर सब क़ाग़ज़ों को मुख्य दफ्तर में लाता था। दफ्तरदार हर महीने सब क़ाग़ज़-पत्रों का सारांश मुख्य दफ्तर को भेजता था। कोटनीस आजकल के ख़ज़ानची का काम करता था। पोतदार सिक्कों की जाँच करता था। सभासद छोटे-छोटे झगड़ों के क़ाग़ज-पत्र रखता और उन्हें मामलतदारों के सामने पेश करता था। चिटनीस के ज़िम्मे चिट्ठी-पत्री लिखने का काम था। इन आठ अधिकारियों के सिवा कहीं-कहीं जामे-नीस नाम का एक अधिकारी होता। इसके ज़िम्मे जमाबन्दी के हिसाब-किताब का काम होता था। इस प्रकार प्रत्येक प्रान्त, सूबे या सरकार में सरकारी काम के लिए अलग-अलग अधिकारी नियत थे। इससे यह देख पड़ता है कि शासन-व्यवस्था की प्रत्येक बारीक बात पर मराठे शासक ध्यान देते थे। प्रत्येक सूबे या प्रान्त का जिस प्रकार शासन होता था क़रीब-क़रीब उसी प्रकार का शासन महाल, तर्फ़ या परगने का होता था; परन्तु उसमें सर-कारी कर्मचारी प्रान्त या सूबे से कम होते थे। शिवाजी के

समय में तो महाल, तर्फ या परगने का अधिकारी हवलदार कहलाता था। सम्भवतः उसका यह नाम पेशवों के समय में भी प्रचलित था। परन्तु बाद में कदाचित् इस नाम के बदले कमा-वीसदार नाम का उपयोग अधिक होने लगा। कारकून तथा अन्य कर्मचारी मामलतदार की अपेक्षा हवलदार के पास कम थे और उनके नाम भी भिन्न थे, परन्तु काम बहुत-कुछ दोनों के दफ्तरों के कम-अधिक प्रमाण में एकसे थे।

यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि गाँव की भीतरी व्यवस्था में कमावीसदार, मामलतदार या हवलदार हस्तक्षेप न करते थे।

अधिकारियों का गाँवों से सम्बन्ध

पटेल की अनुमति से वे प्रत्येक गाँव की जमाबंदी ठहराते और पटेल के जरिये उसे वसूल करते थे। यदि आवश्यकता होती तो पटेल की सहायता के लिए फ़ौज भेजते थे। यदि पटेल गाँव के झगड़ों के निपटारे के लिए पंचायतें नियत न करता तो वे स्वयं यह काम करते थे। गाँवों के कर्मचारियों के विरुद्ध शिकायतें उन्हींके पास पेश होती थीं। इस प्रकार गाँव और मुख्य सरकार के बीच की कड़ी का काम वे किया करते थे।

पेशवाई में आबकारी-विभाग नाममात्र ही था। सरकार को शराब से प्रायः कुछ भी आमदनी नहीं थी। सवाई माधवराव

आबकारी-विभाग।

के समय में आबकारी की प्रवृत्ति शराब न बनने देने की ओर थी। जो गोरे ईसाई सरकारी नौकरी में रक्खे गये थे, उनका काम शराब के बग़ैर न चलता था, उन्हें ही केवल शराब बनाने की आज्ञा दी गई थी। बन्दूक़ों की बारूद के लिए जो कलाली शराब की

आवश्यकता पड़ती थी, उसे सरकार अपने कारखाने में ही तैयार कराती थी। द्वितीय बाजीराव के रोज़नामचे से मालूम होता है कि उसके समय में महुए के फूल पर कुछ थोड़ा-सा कर था। आबकारी का ठेका प्रायः पारसी लोग लिया करते थे।

मराठों के तमाम मुल्क की आमदनी क़रीब १० करोड़ रुपये कूती जाती थी, परन्तु प्रत्यक्ष में वह ७॥ करोड़ ही होती थी।

आर्थिक-स्थिति

खुद पेशवा के शासन में जो मुल्क था, उसकी आमदनी २॥ करोड़ होती थी। पेशवे सदा चढ़ाइयाँ किया करते थे, इस कारण वे सदैव क़र्ज़दार बने रहते थे। प्रथम बाजीराव तो क़र्ज़ के कारण सदैव दुःखी बना रहता था। प्रथम माधवराव की मृत्यु के समय पेशवा के नाम २४ लाख रुपये क़र्ज़ था। उनके इस क़र्ज़ के कारण शासन में कई बुराइयाँ घुसीं। उनमें से एक यह है कि कर्ज पटाने की ज़मानत के बतौर वे कुछ साल तक कई गाँवों की आमदनी साहूकार के नाम कर देते थे। इसीसे सम्भवतः आगे चलकर गाँवों की जमाबन्दी की वसूली देने की प्रथा जारी हुई। नाना फड़नवीस ने अपने सुप्रबन्ध से बहुत-सा क़र्ज़ पटा डाला; पर अन्तिम बाजीराव के समय ख़ज़ाने में कुछ न रहा और लगान की वसूली आम तौर पर ठेके की रीति से होने लगी। उसके राज्य के विनाश के कारणों में यह भी एक कारण है।

राज्य-व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग उसकी सैनिक व्यवस्था है।

सैनिक व्यवस्था

पेशवा की तैयार फ़ौज बहुत थोड़ी होती थी। सरंजामी और तैनाती फ़ौज ही अधिक रहती थी। तैयार फ़ौज कभी दस-पाँच हज़ार से

अधिक नहीं रही। पेशवा की मुख्य फ़ौज हुजरात और ख़ास-पायगा नामक दो वर्गों में बँटी हुई थी। उसका प्रबन्ध पेशवा सरदारों-द्वारा किया करते थे। शिवाजी के काल के समान घुड़-सवार दो भागों में विभक्त थे और उन्हें बारगीर और शिलेदार कहते थे। इनके सिवा कुछ सरदार अपनी सेना के साथ पिंडारी लोगों को रखते थे। इन लोगों का काम बहुधा लूट-मार करने का था और अपनी लूट में से कुछ हिस्सा ठहराव के अनुसार सरकार में जमा किया करते थे। सरंजामी सेना रखने की ज़िम्मे-दारी सरंजामदार यानी जागीरदार सरदारों पर होती थी। कौन सरदार कितनी सेना रक्खे, यह उससे सरंजाम के अनुसार निश्चित होता था। मराठे लोग आमने-सामने की लड़ाई की अपेक्षा शत्रु पर लुक-छिपकर हमला करते और उसे नुक़सान पहुँचाया करते थे। इस कारण पैदल सेना की अपेक्षा घुड़सवारों की क़ीमत उस समय अधिक होती थी। प्रायः प्रत्येक मराठा सिपाही घोड़े पर बैठना अच्छी तरह जानता था और इसलिए बहुधा प्रत्येक मराठे के घर में घोड़ा बँधा रहता था। शिवाजी और सम्भाजी तो रण में भी स्वयं ही सेनापति का काम करते थे। पर उनके बाद यह प्रथा बंद हुई और चढ़ाई के मुखिया का काम पेशवा ही करने लगे। परन्तु अन्तिम बाजीराव के समय में यह प्रथा भी न रही। यह काम उसने अपने सेनापतियों पर ही सौंप दिया और वह दूर से ही लड़ाई देखा करता था।

पेशवों के समय में धीरे-धीरे पैदल सेना का भी उपयोग होने लगा था, पर पैदल सेना में मराठों की अपेक्षा इतर लोग

ही अधिक होते थे। मुसलमानों को भी बिना किसी रोकटोक के भरती करके ऊँचे पद दिये जाते थे। मराठों का सारा तोपखाना मुसलमानों के ही अधीन था। मुसलमानों के सिवा पैदल सेना में अरब और पुरबिये लोग भी बहुत थे और उत्तर-भारत की मराठा सेनाओं में तो मराठे दाल में नमक के बराबर भी न थे। दोनों की नौकरी और बर्ताव में बड़ा अन्तर था। मराठे लोग साधारणतः ईमानदार होते थे, पर अन्य लोग क्रोधी और अविचारी हुआ करते थे। खड़ी पहरेदारी का काम उस समय आज के समान ही अरबी अथवा पुरबियों से लिया जाता था। मराठाशाही के अन्तिम काल में तो मराठा सेना में अरबों की संख्या बहुत अधिक हो गई थी। इन अरबों और पुरबियों ने धन के लिए उस समय चाहे जो काम किया है, और कई बार अपने स्वामी पर ही उलट पड़े हैं। गारदी सिपाहियों में पुरबिये ही अधिक थे। नारायणराव पेशवा का खून करने वाले सुमेरसिंह, खड़कसिंह आदि ऐसे ही गारदी सिपाहियों में से थे। जितने मराठे सैनिक मिलते उतने भरती कर लेने के बाद, अथवा उनसे जो काम नहीं हो सकता था उसके लिए, अरबी और पुरबिये ही भरती किये जाते थे। पर मराठाशाही में इतने अधिक महाराष्ट्रेतरों को भरती करना बुद्धिमानी का काम न हुआ।

पैदल-सेना व तोपखाना और महाराष्ट्रेतरों की भरती

पैदल सेना और तोपखाने का उपयोग पहले-पहल सदाशिवराव भाऊ ने किया। दक्ष पैदल सेना और तोपखाने का

उपयोग करने से लड़ाई की पद्धति में परिवर्तन हुआ।

नई सैनिक व्यवस्था के दोष

मराठों की लड़ाई की पुरानी पद्धति पैदल सेना से न चल सकी और आमने-सामने की लड़ाई की पद्धति जारी हुई। पानीपत की लड़ाई में मल्हारराव होल्कर ने पुरानी पद्धति ही अमल में लाने पर जोर दिया था। पर तोपखाने का अधिकारी इब्राहीम गारदी नई पद्धति का समर्थक था। कुछ लोगों का मत है कि इब्राहीम गारदो का मत सुनने से ही पानीपत की लड़ाई में हार हुई। यह मत कहाँ तक ठीक है, इसका विचार हम आगे करेंगे। परन्तु इतना कह देना आवश्यक है कि समयानुसार पुरानी पद्धति में परिवर्तन करना उस समय उचित और आवश्यक था। काल के प्रवाह को रोकना किसीके लिए सम्भव नहीं। पहले मुसलमानों से सामना करना होता था, पर पेशवों के समय में मराठों को यूरोपियनों से सामना करना पड़ा। यूरोपियनों की दक्ष सेना और तोपखानों ने जो काम कर दिखाये, उसे देखकर महादजी शिन्दे जैसे विज्ञ पुरुष ने नये प्रकार की सेना तैयार करने का निश्चय किया। महादजी शिन्दे की दक्ष सेना और तोपखाने ने अपूर्व काम कर दिखाया। परन्तु इस परिवर्तन के साथ अन्य जिन बातों की आवश्यकता थी, उनकी पूर्ति मराठों ने न की। पहले तो बन्दूक, तोपें और बारूद-गोला उन्हें स्वयं बनाना था; पर बहुधा ये इन वस्तुओं के लिए विदेशियों पर अवलम्बित रहा करते थे। यह नीति बहुत घातक रही। जब कभी यूरोपियनों और मराठों में लड़ाई छिड़ जाती, तब इन्हें यह सामान मिलना बन्द हो जाता था; और साधारण समय में यह

सामग्री मिलती भी, तो वह बहुत निकम्मी और अपर्याप्त होती थी। महादजी शिन्दे ने बंदूक़, तोप और बारूद-गोले के कारखाने बनवाये थे और वहाँ यह सामान तैयार करवाता था। पर इस व्यवस्था में भी दो-तीन दोष थे। पहले तो काफ़ी सामग्री तैयार न होती थी, इसलिए शिन्दे की सेना को छोड़ कर अन्य किसी सेना को यह सामग्री न मिल सकती थी। दूसरे, यह सामग्री हलके दर्जे की होती थी। परन्तु इन दोनों से भी भारी दोष यह था कि इन कारख़ानों को चलाने का काम यूरोपियन लोगों के जिम्मे था और इसलिए शिन्दे वग़ैरा सरदारों को सदैव इन यूरोपियनों पर अवलम्वित रहना पड़ता था। इसलिए इनके यूरोपियन अधिकारी अपने स्वामी के स्वामी बन जाते थे और जब कभी मराठों और अंग्रेज़ों के बीच लड़ाई छिड़ती तो वे लड़ने से इनकार कर देते थे। इसी कारण द्वितीय मराठा-युद्ध के समय होलकर ने तीन अंग्रेज़ों को मार डाला था। यूरोपियनों पर अवलम्वित रहने का यह दोष केवल कारख़ानों तक ही परिमित न था, किन्तु वह उनकी सारी सेना में देख पड़ता था। मराठे सरदारों की दक्ष सेना को यूरोपियनों ने तैयार किया और वही उसके अधिकारी बने हैं। इसलिए इस बात में भी मराठे सरदार यूरोपियनों पर अवलम्वित रहे। कोई भी यह देख सकता है कि यह नीति बहुत घातक रही। आवश्यक तो यह था कि यूरोपियनों की सहायता से केवल दक्ष सेना ही नहीं किन्तु तोप, बंदूक़, बारूद के कारख़ानों के व्यवस्थापक और दक्ष सेना के नायक भी तैयार करवाते और इस प्रकार यूरोपियनों पर सदैव के लिए अवलम्वित न रहते। इसीके साथ ध्यान में रखने की बात यह है कि जब कभी यूरोपियन लोग हिंदु-

स्थानियों की नौकरी स्वीकार करते तब उनमें से कई लोग अपने स्वामियों से यह शर्त स्वीकार करा लेते कि यूरोपियन और हिंदुस्थानियों के बीच लड़ाई छिड़ने पर हम लड़ने के लिए बाध्य न किये जायँगे। इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि मराठों की सैनिक व्यवस्था में पेशवा के समय बहुत-से दोष आ गये थे। फिर यदि यह स्मरण रक्खें कि शिन्दे की सेना पेशवों की सेना से हज़ार दर्जे अच्छी थी, तो हम यह सहज ही समझ सकते हैं कि द्वितीय बाजीराव की सेना से, अंग्रेज़ों से लड़ते समय, कुछ भी क्यों न बन सका। यदि यूरोपयनों की तैयार की हुई शिन्दे की सेना भी द्वितीय मराठा-युद्ध में अंग्रेज़ों के सामने न टिक सकी, तो क्या आश्चर्य कि द्वितीय बाजीराव की सेना अंग्रेज़ों को देखते ही भाग जाती थी! शिन्दे आदि सरदारों को जो यूरोपियन बारूद-गोला वग़ैरा के कारखाने बनाने, दक्ष सेना तैयार करने, रण में उनका संचालन करने तथा तोपख़ाना चलाने के लिए मिलते थे, वे बहुधा बिलकुल सामान्य लोग ही थे। अंग्रेज़ी अधिकारियों में इस काम के लिए जो निपुणता होती थी, वह यूरोपियनों के इन निकम्मे लोगों में क्योंकर हो सकती थी?

उपर्युक्त दोषों के अलावा पेशवा की सैनिक व्यवस्था में कुछ और भी दोष थे। पहला दोष तो यह था कि पेशवों के समय में सैनिकों को वेतन समय पर न मिलता था। इस दोष के बहुतसे परिणाम हुए, उन सबका यहाँ बतलाना सम्भव नहीं है। तथापि कुछ बातें सबपर स्पष्ट हो सकती हैं। जो सैनिक समय पर वेतन न पायँगे, वे अच्छे आज्ञाकारी कभी नहीं हो सकते। हरिपंत फड़के वग़ैरा सेनापतियों को कई बार ऐसे कठिन प्रसंगों में सामना

करना पड़ा है। समय पर वेतन न मिलने का दूसरा परिणाम यह होता है कि युद्ध के समय सैनिक लूटमार करने लगते हैं, उनका ध्यान युद्ध की ओर कम और लूट की ओर अधिक रहता है। यही बात मराठों की लड़ाइयों में देख पड़ी है। पेशवों की सैनिक व्यवस्था का दूसरा दोष यह था कि वे सैनिकों के लिए अपने सरदारों पर अवलम्बित रहते थे। इस परावलम्बन के परिणाम मराठों के इतिहास में बहुत बुरे हैं। इन परिणामों का विचार तो आगे चलकर होगा। यहाँ संक्षेप में इतना कह देना काफ़ी है कि आवश्यक सेना समय पर उपस्थित न रहने के कारण पेशवों की चढ़ाइयों में विपरीत परिणाम दीख पड़े हैं।

जहाज़ी बेड़ा

मराठों की सैनिक व्यवस्था का तीसरा अंग जहाज़ी बेड़ा था। मराठों के जहाज़ी बेड़े की स्थापना शिवाजी ने की थी। मालवण का सिन्धुदुर्ग, कोलाबा, सुवर्णदुर्ग, विजयदुर्ग आदि जंजीरे उसने बनाये। यही मराठों के जहाज़ी बेड़े के मुख्य स्थान थे। आगे चलकर कान्होंजी आंग्रे का उदय हुआ और उसके समय में मराठों ने सामुद्रिक वीर के नाते अच्छा नाम कमाया। कान्होंजी के लड़के मानाजी और तुलाजी में झगड़े उत्पन्न होने पर पेशवा ने विजयदुर्ग अपने क़ब्ज़े में ले लिया और तबसे मराठा-राज्य में जहाज़ी बेड़े का सूबा बना। मराठे अंग्रेजों की पहली लड़ाई के समय आनन्दराव धुलप इस सूबे का अधिकारी था। विजयदुर्ग के बेड़े में क़रीब दो-तीन हज़ार लोग और चालीस-पचास छोटे-बड़े जहाज़ थे। जहाज़ बनाने का बहुत-सा काम अंजनवेल और रत्नागिरी में होता था और इस काम के लिए सब ख़र्च और सामग्री

सरकार से मिलती थी। प्रत्येक जहाज़ पर हशम और दर्यावर्दी नामक दो प्रकार के लोग रहते थे। हशम लड़ाकू सिपाही थे। इनके सिवाय बाज़े हशम लोहार, बढ़ई आदि भी होते थे। दर्यावर्दी लोगों में सारंग, ताण्डेल, पांजरी और खलाशी नाम के चार प्रकार थे। इनके सिवाय गोलन्दाज़ और बरकन्दाज़ अलग थे। जंगी जहाज़ों के सिवाय व्यापारी जहाज़ भी होते थे। जंगी जहाज़ों की कल्पना मराठों के सबसे बड़े "फतेजंग" नामक जहाज़ से हो सकती है। उसपर २२६ हशम, १६ गोलन्दाज़ और १३२ दर्यावार्दी लोग रहते थे। प्रत्येक जंगी जहाज़ पर युद्ध-सामग्री भरपूर रहती थी। सन् १७८३ से १७८६ तक मराठों के जहाज़ी बेड़े में छोटी-बड़ी मिलाकर २७५ तोपें थी।

न्याय-व्यवस्था

पेशवों की न्याय-व्यवस्था बहुत कुछ शिवाजी के काल के समान ही थी। वतन, दत्त-विधान, बटवारा आदि के झगड़े उस गाँव के सभ्य लोगों की सभा के सामने पेश होते थे। इन सभाओं को गोत और उनके निर्णय-पत्रों को गोत-महज़र कहते थे। ऐसे गोत-महज़र कुछ मिले हैं। उनपर उन-उन गाँवों के पटेल, कुलकर्णी, बारह बलूते और सेठ-महाजन के हस्ताक्षर मिलते हैं। यदि कोई अपना झगड़ा बाला-बाला पटेल अथवा अन्य किसी सरकारी अधिकारी के पास ले जाता तो वे उसे गोत-महज़र लाने को कहते थे। इस व्यवस्था से एक बड़ा भारी लाभ था। लोग एक-दूसरे के आचरण पर अच्छा दबाव रख सकते थे। इस कारण झूठा आचरण करने की ओर लोगों की प्रवृत्ति बहुत कम रहती थी और वे बहुधा गाँव में मेल-जोल से रहते थे। इसके सिवा कुछ

और लाभ इस व्यवस्था से होते थे। जहाँ का झगड़ा वहीं निपटने के कारण न्याय के स्थान में अन्याय होने की सम्भावना कम होती थी। पंचायतों की प्रवृत्ति मेल कर देने की ओर होने के कारण लोगों में झगड़ालू प्रवृत्ति कम होती थी। निर्णय के लिए आज के समान समय न लगता था और ख़र्च बहुत कम पड़ता था।

जिन लोगों का संतोष गोत-महज़र में न होता, वे अपनी फ़र्याद देशक के पास ले जाते थे। देशक में हवालदार, कारकून, सरनौबत, सबनीस, हेजीब चिटनीस, कारखाननीस, सरगुरब, बाजी नाईक, नाईकवाड़ी, शेटे, महाजन, बलूते आदि शामिल होते थे। झगड़ा यदि स्थानिक स्वरूप का न होकर प्रान्तीय स्वरूप का होता तो वह बहुधा देशक के सामने पेश होता था। देशक के निर्णय-पत्र को देशक-महज़र कहते थे। गोत और देशकों की सभायें बहुधा किसी देवालय में अथवा नदी के किनारे या नदियों के संगम पर होती थीं। गोत और देशक के ऊपर न्याय का अधिकारी न्यायाधीश अथवा स्वयं पेशवा होता था, परन्तु न्यायाधीश अथवा पेशवा न्याय करते समय देशक की मजलिस यानी सभा में करते थे।

देश की मजलिस

इससे स्पष्ट है कि न्याय का काम बहुधा लोगों के ही हाथ में था। जाति-भ्रष्ट को शुद्ध करने का प्रश्न बहुधा शंकराचार्य के सामने पेश होता था और वही बहुधा उसका निर्णय करते थे। न्याय की निर्णय-पद्धति इस प्रकार की थी। पहले अग्रवादी और पश्चिमवादी यानी वादी-प्रतिवादी से यह लिखवा लेते थे कि हम अपना झगड़ा गोत अथवा देशक से निपटवाने को तैयार हैं। इस लेख को राज़ी-

न्याय की निर्णय-पद्धति

नामा कहते थे। फिर ये गोत या देशक उनसे इस बात की ज़मानत लेते थे कि हम निर्णय के अनुसार बर्ताव करेंगे। फिर वादी अपना-अपना कथन लिखकर और हस्ताक्षर करके देते थे। उन्हें तक़रीर कहते थे। तक़रीर लिख लेने पर साक्षी और सबूत पेश करवाते थे। साक्षीदार जिन कथनों को अपने हस्ताक्षर से लिख देते थे उन्हें साक्ष-पत्र कहते थे। इसके बाद धर्म-ग्रन्थों के अनुसार कुछ झगड़ों का निर्णय होता था। यदि मौखिक या लिखित प्रमाण न मिला तो झगड़े के निर्णय के लिए दिव्य-प्रथा का उपयोग होता था; और इसके लिए अनेक प्रकार के दिव्यों का उपयोग करते थे। कभी देवालय के पास सात घेरे बनाते और दिव्य करने वाले के हाथ पर पीपल के पत्ते रखकर उसपर लोहे का गरम किया हुआ गोला रखते थे। फिर उस पुरुष को सातों घेरे लाँघकर उस पार रक्खे हुए घास पर उस गोले का डालने को कहते थे। यदि घास में तुरन्त आग लग जाती और उस पुरुष का हाथ न जलता तो उसका कथन सच्चा माना जाता था। दिव्य का एक दूसरा प्रकार यह था। किसी कढ़ाई में तेल या घी तपाने पर उसमें लोहे का टुकड़ा डालते और दिव्य करने वाले को उसे उसमें से निकालने को कहते थे। यदि उसके हाथ को किसी प्रकार की तकलीफ़ पहुँचती तो वह झूठा समझा जाता था। परन्तु यदि कुछ भी ज़ख़्म न हुआ तो वह सच्चा जाना जाता था।। निर्णय से जिसकी जीत होती उसे जय-पत्र मिलता और जो पक्ष हार जाता उससे देशक या गोत जो लेख लिखवा लेते थे उसे यजित-पत्र कहते थे। जीत वाले पक्ष से जो रक़म ली जाती उसे हरकी या शेरणी कहते थे और हार वाले पक्ष से

जो रक़म ली जाती उसे गुनहगारी कहते थे। गुनहगारी बहुधा हरकी की दुगनी होती थी और दोनों से होने वाली आमदनी झगड़े की वस्तु के १५ सैकड़े तक होती थी। मराठा राज्य में सरकार को क़र्ज़ का चौथा, पाँचवा या छठवाँ हिस्सा देकर क़र्ज़ वसूल करवाने का मार्ग किसी भी साहूकार के लिए खुला था।

ऊपर बताही चुके हैं कि गाँव में बन्दोबस्त रखने का काम पटेल के ज़िम्मे था और उसे कुलकर्णी, चौगुला और गाँव का महार मदद करते थे। मामलतदार के पास कई सवार रहते थे। महाल में शान्ति और व्यवस्था रखने का काम आजकल की पुलिस के समान उसीके ज़िम्मे था। यदि किसी गाँव में कोई फ़ौजदारी गुनाह हुआ तो उसका निर्णय उस गाँव के पंच ही करते थे। परगने के सदर-मुक़ाम में उस परगने के गुनाहों का इन्साफ़ करने के लिए फ़ौजदार नाम का अधिकारी होता था। पूना-जैसे बड़े-बड़े शहरों में कोतवाल नियत किये जाते थे और उनके पास उन शहरों के बड़े-बड़े झगड़े पेश होते थे। परन्तु उनके मुहल्लों के छोटे-छोटे झगड़ों का इन्साफ़ उन मुहल्लों के कमाविसदार ही करते थे। मराठा-राज्य में सब न्यायाधिकारियों पर एक मुख्य न्यायाधीश होता था और उसके सामने फ़ौजदारी तथा दीवानी दोनों प्रकार के झगड़े आते थे। इस पद पर सन् १७५९ से नारायणराव के वध तक प्रसिद्ध न्यायाधीश राम शास्त्री प्रभुणे था। उसकी योग्यता तथा निस्पृहता इतिहास में प्रसिद्ध ही है।

फ़ौजदारी इन्साफ़

चोरी और डकैती के गुनाहों के लिए क़ैद, मृत्यु-दंड अथवा

हाथ-पाँव-कान काटने की सज़ा मिलती थी। जिस गांव में चोरी या डकैती होती, उस गाँव के लोगों पर चोरी हुए माल की हानि देने की ज़िम्मेदारी रहती थी। परन्तु यदि यह देख पड़ता

सज़ा के प्रकार और देश में शान्ति

कि उस चोरी-डकैती का सम्बंध किसी दूसरे गाँव से है, तो हानि देने की ज़िम्मेदारी उस दूसरे गाँव पर रक्खी जाती थी। राज-द्रोह या विद्रोह-जैसे भयंकर गुनाहों के लिए कभी क़ैद तो कभी माल-मिलकियत की ज़ब्ती, कभी हाथ-पैर काटने की सज़ा तो कभी पर्वतों या क़िलों से ढकेल देकर मृत्यु-दंड मिलता था। शराब पीना भी गुनाहों में शामिल था और पीने वाले को भारी गुनहगारी देनी होती थी—यहाँ तक कि कभी-कभी गुनाह करने वाले की जायदाद भी ज़ब्त हो जाती थी। एलफ़िंस्टन को स्वीकार करना पड़ा है कि देश में गुनाह बहुत कम होते थे। प्रथम माधवराव पेशवा तक तो देश में अच्छी शान्ति थी, पर नारायणराव की मृत्यु के बाद एक बार जो गड़बड़ पैदा हुई वह अन्त तक थोड़ी बहुत बनी ही रही। एलफ़िंस्टन ने जो वर्णन किया है वह द्वितीय बाजीराव के समय का है। इससे हम यह कह सकते हैं कि देश में न्याय और शान्ति की व्यवस्था बहुत ही अच्छी थी।

ऊपर यह बताही चुके हैं कि गुनाहों के लिए कभी-कभी क़ैद की सज़ा होती थी। इसके लिए मराठा-राज्य मे लोहगढ़, सिंहगढ़, पुरन्दर, राजमाची, अहमदनगर आदि क़िलों का जेल के लिए उपयोग

कारागार की व्यवस्था

होता था। क़ैदी से किस प्रकार का बर्ताव किया जाय, उसे किस प्रकार का और कितना अन्न खाने को दिया जाय, इत्यादि बातें

उसकी जाति और दर्जे से निश्चित होती थीं। कोली, रामोशी, बेरट आदि जातियों के क़ैदियों से क़िलों की इमारतों का काम लिया जाता था। प्रौढ़ मनुष्यों के लिए नागली एक सेर और लड़के को आध सेर दी जाती थी। क़ैदी ब्राह्मण हुआ तो उसे चावल, दाल, घी, नमक आदि देते थे। क़ैदी यदि अच्छे दर्जे का रहा तो क़िलेदार को इस बात की ताकीद रहती थी कि किसी प्रकार उसकी बेइज़्ज़ती न होने पावे। क़ैदियों के पैरों में बहुधा बेड़ियाँ डाली जाती थीं। राजनैतिक क़ैदियों को बहुधा उनके गुनाह और दर्जे के अनुसार दंड, वस्त्र-भोजन आदि दिया जाता था। बार-बार गुनाह करने वालों को बहुधा कड़ी सजा मिलती थी। स्त्रियाँ भी क़ैद में रक्खी जाती थीं। क़ैदी के घर में विवाह अथवा कोई धार्मिक कार्य या अन्य कोई भारी जरूरी कार्य हुआ तो जमानत पर उसे उस कार्य के पूर्ण करने की अवधि तक छोड़ देते थे। शुभ अवसरों पर क़ैदियों को मुक्त करने की प्रथा पेशवों के समय में भी थी। इतिहास से ऐसे कोई उदाहरण नहीं दीख पड़ते कि जिसमें अत्याचार के कारण क़ैदी कारावास में ही मर गया हो। पेशवों की कारागार-व्यवस्था के सम्बन्ध में सारांश में हम यह कह सकते हैं कि उस समय की रीतियों और धार्मिक विश्वासों के अनुसार लोगों को सब सुभीते मिलते थे।

आज के समान उस समय डाक की व्यवस्था न थी। तथापि सरकारी ढंग से चिट्ठी-पत्री भेजने का बन्दोबस्त अवश्य होता था।

डाक की व्यवस्था

इस काम के लिए जासूस और हलकारे रहते थे। बहुधा स्थान-स्थान पर इसके लिए टप्पे बनाये जाते थे। दूर डाक ले जाने के लिए बहुधा दो

हलकारे एक साथ भेजे जाते थे, ताकि किसी कारण से एक के काम-योग्य न होने पर दूसरा वह काम पूरा कर सके। कभी-कभी टप्पे के गाँवों पर डाक पहुँचाने की जिम्मेदारी डाली जाती थी। सरकारी डाक रोकना सरकार के विरुद्ध गुनाह करने के बराबर था। कहीं-कहीं सरकारी डाकिये के साथ कुछ थोड़ी-सी रक़म देकर अपनी निजी चिट्ठियाँ भेजने की इजाज़त लोगों को मिलती थी, परन्तु बहुधा सेठ साहूकार लोग अपने निजी डाकिये रखते थे। साहूकारों के इन डाकियों के साथ भी कभी-कभी अन्य लोग अपनी चिट्ठियाँ भेजते थे। जल्दी डाक भेजने के लिए ऊँट या ऊँटनी का उपयोग होता था और इस प्रकार डाक ले जाने वाले को साँडनी-सवार कहते थे।

शिक्षा की व्यवस्था

आजकल जैसी शिक्षा की व्यवस्था उस समय न थी। इस-लिए पेशवाई में उसके होने की आशा करना अनुचित है। पुराने प्रकार की शिक्षा-व्यवस्था पेशवाई में भी थी। शिक्षा का बहुतेरा काम प्राचीन रीति के अनुसार ब्राह्मणों के हाथ में था और बहुधा ब्राह्मण लोग ही शिक्षित होते थे। शिक्षा का स्वरूप समय के अनुसार बहुत कुछ व्यावहारिक था। शिक्षक की जीविका बहुधा लोकाश्रय से चलती थी। पेशवा श्रावण महीने में दक्षिणा-रूप से विद्वानों को योग्यतानुसार द्रव्य, देनगियाँ वग़ैरा दिया करते थे। पेशवों की इस प्रथा का शिक्षा पर थोड़ा-बहुत परिणाम हुए बिना न रहा। पूना में स्थान-स्थान के विद्वान आते और इस प्रकार वहाँ की विद्या को बढ़ाते थे। अच्छे विद्वान और सदाचारी ब्राह्मणों को कुछ वार्षिक पुरस्कार मिला करता था। इन दो

साधनों के सिवाय शिक्षा-प्रसार का एक और साधन ऐसा था कि जो हिन्दुस्थान के अन्य भागों में नहीं दीख पड़ा। साधु-संत लोग अपने कथा-कीर्तनों-द्वारा केवल धार्मिक जागृति ही न करते किन्तु समाज में शुद्ध आचार और विचार का भी प्रसार करते थे। कला-कौशल्य की शिक्षा पुराने ढंग से ही लोगों को प्रत्यक्ष अनुभव-द्वारा प्राप्त होती थी। महाराष्ट्र में सैनिक शिक्षा पर लोगों का ज्यादा प्रेम था। घोड़े पर बैठना, तलवार-भाले आदि चला सकना लोगों के लिए बहुत साधारण बात थी। प्रत्येक महाराष्ट्रीय तरुण की यही इच्छा होती कि मैं लड़ाई में जाऊँ और अच्छा नाम कमाऊँ। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि पानीपत के घमासान युद्ध के बाद केवल दस-बारह वर्ष के भीतर मराठों का फिर से स्वैर-संचार होने लगा। व्यायाम की शिक्षा का महाराष्ट्र में उस समय भी सर्वत्र प्रचार था और उसका कारण यही था कि लोग अन्य कुछ बनने की अपेक्षा सैनिक बनना पसन्द करते थे।

इसका यह मतलब नहीं कि पुस्तकीय विद्या से मराठों को कोई प्रेम न था। स्वयं पेशवों ने पुरानी पुस्तकों की प्रतियाँ और नक़लें प्राप्त करने का प्रयत्न किया है। सन् १७४७–४८ में बालाजी बाजीराव ने उदयपुर से क़रीब ३६ हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त की थीं। सन् १७५५-५६ में उसने १५ हस्तलिखित प्रतियाँ ख़रीदीं। सन् १७६५-६६ में प्रथम माधवराव ने पुरानी पुस्तकों की नक़लें प्राप्त करने के लिए ३१) रु० महीने का खर्च मंज़ूर किया। पेशवों के समय में पूना ने महाराष्ट्र की विद्या का केन्द्र-स्थान होने का गौरव जो एक बार पाया, वह अबतक चला जा रहा है।

पेशवों के समय में वैद्य-विद्या को भी काफ़ी उत्तेजना मिलती थी। वैद्य लोगों को भी भूमि इनाम में दी जाती थी और उनका काम यह था कि दवा मुफ्त दें। इन बातों में धर्म और जाति का किसी प्रकार का झगड़ा न आने पाता था। इनाम पानेवालों में केवल हिन्दू और मुसलमान वैद्य-हकीम नहीं, किन्तु पोर्तगीज़ मिश्नरी डाक्टर का भी नाम देख पड़ता है। सम्भवतः वार्षिक दक्षिणा वैद्य को भी मिलती थी।

वैद्य-विद्या

इस पुस्तक के पढ़ने से पाठको को यह मालूम हो गया होगा कि आजकल की तरह उस समय भी योग्य लोगों को पदवियाँ, इनाम वग़ैरा दिये जाते थे। उस समय की पदवियों के कुछ नाम ये हैं—हिन्दूराव, हिम्मतबहादुर, शमशेरबहादुर, वज़ारत महाआप, सेनापति, सेना खास खेल, सेना साहेब सूबा, सेना धुरन्धर, धुरन्धर, महाराव हिम्मतबहादुर, रुस्तमराव, फतेजंग बहादुर, सफेजंग बहादुर, सरलश्कर, सेना बारह हज़ारी इत्यादि-इत्यादि। उस समय ये पदवियाँ छूछी न दी जाती थीं, किन्तु इनके साथ जागीर, वेतन आदि कुछ न कुछ अवश्य मिलता था। पदवी-दान का खर्च पदवी पाने वालों से न लिया जाता था। सरकार इस बात का ख़याल रखती थी कि पदवी-प्राप्त पुरुष के सम्मान में किसी प्रकार की त्रुटि न आने पावे। जिस किसी को किसी प्रकार का सन्मान मिलता था वह निबाहने के लिए उसे खर्च भी मिलता था। उदाहरणार्थ, यदि किसी को पालकी में बैठने का मान मिलता तो उसे केवल पालकी का खर्च ही नहीं

पदवियाँ, इनाम वग़ैरा

किन्तु उसे उठाने वाले कहारों का वेतन भी सरकार से मिलता था।

पेशवों के समय में महाराष्ट्र के व्यापार में यथेष्ठ उन्नति हुई थी। इस समय अंग्रेज़, फरांसीसी, पोर्तगीज़, डच, वग़ैरा यूरोपियन लोग पश्चिमी किनोर पर बसे थे और इस किनारे के कई स्थानों पर उनका अधिकार होगया था। महाराष्ट्र का बहुत-सा माल वे इन्हीं स्थानों से यूरोप को भेजते और यूरोप का माल इन्हीं स्थानों में लाकर महाराष्ट्र के लोगों को बेचते थे। अरब लोग इनके जैसा ही व्यापार अब तक कर रहे थे, पर अब उनका बहुत-सा व्यापार यूरोपियन लोगों के हाथ में चला गया था। व्यापारियों को पेशवों के समय में कई प्रकार से उत्तेजना मिलती थी। कभी उनके लिए जहाज़ आदि का प्रबन्ध कर दिया जाता, तो कभी घर और ज़मीन रिआयती लगान पर या मुफ्त मिलती थी। कभी-कभी उनके माल पर जकात माफ़ कर दी जाती थी। चोर, डाकू आदि लोगों से उनके माल की रक्षा करने का प्रयत्न किया जाता था। कुछ ख़ास वस्तुओं की दूकानें कभी-कभी सरकार की ओर से भी खोली जाती थीं। क़ाग़ज़, कपड़ा, कला-कौशल्य के पदार्थ आदि वस्तुओं की आवश्यकता होने पर सरकार की ओर से कारख़ाने वालों को नमूने देखकर उन्हें बनाने का ठेका दे दिया जाता था, और उसके लिए धन दिया जाता था। नये बाज़ार और गाँव आदि बसाने की ओर पेशवों का बहुत लक्ष्य था। बाज़ार वग़ैरा शुरू करने का कोई ठेका लेता तो उसे गाँव में रहने की जगह, गाँव का परवाना, बाज़ार की दूकानों से अथवा गाँव

(हाशिया: व्यापार और उद्योग-धंधों को उत्तेजना)

में रहने को आने वाले मनुष्यों से जगह का किराया, वस्तुओं पर कर वसूल करने की इजाज़त दी जाती थी। सरकारी वसूली का काम या ठेका उसे ही दिया जाता था। इस प्रकार की रिआयत करने का नाम शेटेपन था। इसके सिवाय सरकारी रास्तों या इमारतों के लिए किसी की निजी ज़मीन की आवश्यकता होती तो या तो उसकी क़ीमत दे दी जाती थी, या उसके बदले में दूसरी जगह देकर उसकी सनद लिख दी जाती थी। पेशवों के समय में व्यापार की कितनी उन्नति हुई, यह एक बात से अच्छी तरह जाना जा सकता है। उस समय मराठा लोग ज़री और रेशमी कपड़ों का उपयोग भरपूर करते थे। इस कारण पूना, नागपुर, बुरहानपुर आदि स्थानों में रेशमी और ज़री के कपड़े बनाने की जो प्रथा चल निकली वह अबतक जारी है। उस समय से महाराष्ट्र के स्त्री-पुरुष बहुधा हाथ के बुने हुए कपड़े पहनते हैं। पुरुष तो अब विशेष अवसरों पर इनका उपयोग करते हैं, पर स्त्रियाँ अब भी हाथ की बुनी हुई साड़ियाँ ही पहनती हैं। इस पुरानी प्रथा के कारण कपड़े बनवाने का घरू धन्धा महाराष्ट्र में अब भी जारी है।

३१

मराठों की सामाजिक व्यवस्था, स्थिति और रीति-भाँति

इतिहास में शासन-व्यवस्था महत्त्वपूर्ण तो है, पर इतने से ही किसी राष्ट्र की सामाजिक व्यवस्था का वर्णन पूरा नहीं हो जाता।

'सामाजिक' शब्द का अर्थ

वैसे तो सामाजिक शब्द के अन्तर्गत समाज-सम्बन्धी सब ही बातें आ जाती हैं; पर कभी-कभी 'सामाजिक' शब्द का उपयोग ऐसी बातों के लिए भी होता है कि जिनसे व्यक्ति-व्यक्ति के राजकीय को छोड़ कर अन्य परस्पर सम्बन्धों का बोध होता है। यहाँ पर हमने 'सामाजिक' शब्द का उपयोग ऐसे ही संकुचित अर्थ में किया है। समाज में सब व्यक्ति बराबर हैं या ऊँचे-नीचे हैं, वे परस्पर किस प्रकार का व्यवहार करते हैं, क्या लोगों के वर्ग-भेद हैं, विशेष अवसरों पर वे किस प्रकार का आचरण करते हैं, इहलोक-परलोक-सम्बन्धी उनकी कल्पनायें क्या हैं, इन कल्पनाओं के कारण क्या किसी प्रकार के वर्ग-भेद पैदा होते हैं, आमोद-प्रमोद के समय वे परस्पर किस प्रकार का व्यवहार रखते हैं, इत्यादि

बातें ही 'सामाजिक' शब्द के अन्तर्गत आती हैं। इन्हींका वर्णन अब हम करेंगे। क्योंकि इस वर्णन के बिना किसी राष्ट्र का इतिहास पूर्ण नहीं हो सकता।

मराठे भी हिन्दू थे और हैं, इस कारण मराठों की सामाजिक व्यवस्था आदि की बहुतसी बातें शेष हिन्दुस्थानियों से मिलती-जुलती ही रहेंगी। मराठों की भी व्यवस्था का मूल भारत के शेष लोगों की व्यवस्था के समान वही था। महाराष्ट्र में भी पहले मूलनिवासी थे, फिर आर्य आये और उन्होंने अपनी बहुतेरी बातें यहाँ के मूलनिवासियों को सिखलाईं। अन्य भागों की नाईं यहाँ भी आर्यों और अनार्यों का सम्मिश्रण हुआ—सभ्यता का परस्पर आदान-प्रदान हुआ और कुछ सामाजिक व्यवस्था उत्पन्न हुई। अतएव कोई प्रश्न कर सकता है कि यहाँ की सामाजिक व्यवस्था में ऐसी कौनसी नई बातें मिलने की आशा है कि जिससे यहाँ की व्यवस्था के विशेष वर्णन की आवश्यकता समझें? अन्य भागों के समान ही यहाँ की भी व्यवस्था रही होगी; उसमें विशेषता कौनसी हो सकती है? परन्तु यह आक्षेप करते समय हम एक बात भूल जाते हैं कि स्थान, समय और राष्ट्र के अनुसार इतिहास बदला करता है। हिन्दुस्थान में जितने आर्य आये वे यद्यपि बहुतेरी बातों में परस्पर मिलते-जुलते थे, तथापि थोड़ी-बहुत बातों में परस्पर भिन्नता भी थी। अतएव यह कहना ठीक न होगा कि भारतवर्ष में जितने आर्य फैले वे सब बातों में बिलकुल मिलते-जुलते थे। यह स्मरण रखना चाहिए कि यहाँ की मूल जातियाँ सब ही एकसमान न थीं; उनमें अनेक प्रकार

मराठों की सामाजिक व्यवस्था और रीति-भाँति के पृथक् वर्णन की आवश्यकता

के भेद थे। फिर यह भी ध्यान रखना चाहिए कि भौगोलिक परिस्थिति का लोगों के विकास पर कुछ कम परिणाम नहीं होता। इतिहास एक दृष्टि से मनुष्य और प्रकृति की क्रिया और प्रतिक्रिया का ही वर्णन है। तीसरे, समय और स्थानान्तर के कारण लोगों में भेद पैदा हुए बग़ैर नहीं रहते। इन तीन कारणों से सामाजिक व्यवस्था, स्थिति और रीति-भांति के भेद पैदा होना नितान्त स्वाभाविक है। इसलिए प्रत्येक राष्ट्र की इन बातों का अलग-अलग वर्णन करना आवश्यक है। इसी कारण मराठों को भी सामाजिक व्यवस्था, स्थिति और रीति-भाँति का वर्णन कुछ विस्तारपूर्वक करना लाभदायक होगा।

महाराष्ट्र में आर्यों और अनार्यों का सम्मिश्रण

आर्य लोग जिस समय उत्तर से दक्षिण की ओर आये, उस समय सारे दक्षिण में अरण्य फैला हुआ था। आर्यों ने उसे दण्डकारण्य नाम दिया है। इसीके बहुतेरे भाग को आगे चल कर महाराष्ट्र नाम प्राप्त हुआ। महाराष्ट्र का भौगोलिक वर्णन प्रारम्भ में कर ही चुके हैं। इस अरण्य में यहाँ के मूलनिवासी अनार्य लोग रहते थे। आर्य लोग सम्भवतः ईसा के ६०० वर्ष पूर्व से दक्षिण में आने लगे और कदाचित् १००० वर्ष तक आते रहे। यहाँ के मूलनिवासियों को इतिहास में 'नाग' नाम दिया है। आर्यों के आने पर इनमें से अनेक पहाड़ी भागों में जाकर बस गये। महाराष्ट्र के भील, रामोशी, कोली आदि यहाँ के मूलनिवासी ही हैं। हिन्दुस्थान के मूलनिवासियों के समान दक्षिण के मूलनिवासी भी सभ्यता में आर्यों से बहुत पिछड़े हुए थे। इसलिए आर्यों ने यहाँ भी अपनी सभ्यता का खूब प्रसार किया और यहाँ

के अनेक मूलनिवासियों को अपनी सभ्यता में दीक्षित किया। भारत के शेष भागों के समान अपनी वर्णाश्रम-व्यवस्था भी आर्यों ने यहाँ स्थापित की और मूलनिवासियों को शूद्रों की श्रेणी में रख दिया। परन्तु शेष भागों के समान यहाँ भी आर्य लोग शूद्रों से अनेक प्रकार का व्यवहार रखते थे और सम्भवतः उनकी स्त्रियों से विवाह भी करते थे। इसलिए यहाँ भी वर्णसंकर से अनेक जातियाँ उत्पन्न हुई। उत्तर से दक्षिण में आर्यों के जो अनेक दल आते, उनमें महाराष्ट्रिक लोगों का दल बड़ा था। उन्हींके कारण आगे चलकर देश का नाम महाराष्ट्र हुआ।* उनकी भाषा महाराष्ट्री कहलाती रही, उसीसे मराठी-भाषा उत्पन्न हुई। महाराष्ट्रिक लोग सम्भवतः मगध में रहते थे। वे दक्षिण में आकर नर्मदा से भीमा तक के भाग में बसे। महाराष्ट्रिकों के समान कुरु पांचाल से वैराष्ट्रिक और विराट से राष्ट्रिक लोग भी दक्षिण में आये। वैराष्ट्रिक वाई के आस-पास बसे और राष्ट्रिक लोग आजकल के दक्षिणी महाराष्ट्र, उसके आस-पास के (निज़ाम के) भाग और मैसूर में बसे। यह क़रीब ई० पू० ६०० वर्ष के समय की बात है। उनकी भाषायें भी थोड़ी-बहुत भिन्न थीं, पर संख्या आदि के कारण महाराष्ट्री का ज़ोर रहा। यद्यपि आर्य लोग सभ्यता में बहुत बढ़े-चढ़े थे, मगर उनकी संख्या यहाँ के मूलनिवासियों के मुक़ाबले में कम थी; इस कारण दोनों का जब सम्मिलन हुआ, तो आर्यों ने भी यहाँ के मूलनिवासियों से कई बातें ग्रहण कीं। यहाँ के नाग लोग सर्प, वृक्ष, आदि की पूजा किया करते थे। आर्यों ने भी इस धर्म को अपना

---

*श्री राजवाड़े का इस सम्बन्ध में भिन्न मत है, जो दूसरे अध्याय में दिया जा चुका है।

लिया। इस प्रकार स्थान-विशेष के अनुसार आर्यों की रीति-भाँति और आचार-विचार में काफ़ी फ़र्क़ होगया।

दक्षिणी ब्राह्मणों में अधिक समानता के कारण

उपर्युक्त वर्णन मोटे तौर पर ठीक जान पड़ता है, मगर उससे कुछ बातों का समाधान नहीं होता। दक्षिणी ब्राह्मणों के आचार-विचार में जो इतनी अधिक समानता है, उनमें काले रंग की जो बहुत कमी है, और उनके शरीर की बनावट में जो समानता है, उसका समाधान कैसे हो ? इन बातों के समाधान के लिए हमें यह मानना ही होगा कि उत्तर से जो ब्राह्मण आये उन्होंने मूलनिवासियों से सम्बन्ध बहुत कम रक्खा होगा, अन्य जातियों में आर्यों-अनार्यों का जितना सम्मिश्रण हुआ उतना ब्राह्मणों में न हुआ होगा, अथवा यह भी सम्भव है कि वर्ण-संकर से होने वाली जातियों को ब्राह्मणों ने नीची जातियों में रख दिया होगा। इसके साथ यह भी मानना होगा कि महाराष्ट्र के भिन्न भागों में फैलने के पहले ब्राह्मण लोग एक स्थान में बहुत काल तक रहे होंगे। अन्यथा, महाराष्ट्र के भिन्न-भिन्न भागों में रहने वाले महाराष्ट्रियों के आचार-विचार में बहुत अधिक समानता होना सम्भव न होता। आगे चलकर हम बतलावेंगे कि महाराष्ट्र के दक्षिणी ब्राह्मणों में कुछ भेद-भाव हैं। तथापि समानता के प्रभाव में भिन्नता इतनी कम है कि किसी भी इतिहासज्ञ को यह मानना ही होगा कि वे दक्षिण आने पर बहुत काल तक एक स्थान में रहे और तदनन्तर महाराष्ट्र के भिन्न-भिन्न भागों में फैले। इसके साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि हम जैसा आज समझते हैं कि सह्याद्रि ने कोंकण के किनारे के

लोगों को 'देश' के लोगों से पूरा अलग कर दिया होगा, वह पूरी तरह ठीक नहीं है। दोनों ओर के लोगों में उस प्राचीन काल में यथेष्ट आवागमन रहा होगा। इतिहास से यह पता लगता है कि अर्वाचीन काल के हिन्दू और मुसलमान राजाओं ने भी 'कोंकण,' 'घाटमाथा' और 'देश' पर समान राज्य किया। इसलिए सह्याद्रि को जल-विभाजक के समान पूरा जन-विभाजक भी मानना ठीक न होगा।

दक्षिण के लोगों पर बौद्ध और जैन-धर्मों का प्रभाव

इसके बाद दक्षिण के लोगों पर बौद्ध और जैन-धर्मों का खूब प्रभाव पड़ा। यह जानते ही हैं कि महाराष्ट्र में मांसाहार जितना वर्ज्य है उतना हिन्दुस्थान के अन्य किसी भाग में नहीं है। महाराष्ट्रियों के आचार-विचार में अहिंसा, भूतदया, समता आदि का जितना परिमाण दीख पड़ता है उतना अन्य भागों में नहीं दीख पड़ता। वैसे तो बौद्धधर्म हिन्दुथान के अन्य भागों के समान महाराष्ट्र से भी उठ गया। पर अन्य भागों के समान यहाँ भी उसका प्रभाव आचार-विचार में बना रहा और वह अन्य भागों से अधिक रहा। महाराष्ट्र में बौद्धधर्म का कितना प्रभाव पड़ा, यह यदि जानना हो तो वहाँ के बौद्ध अवशेषों का कुछ विचार कर लेना यथेष्ट होगा। कोंकण में कन्हेरी, कुड, महाड़, पोल, कोल, साष्टी (सालसत्ती), हाथीगुम्फा, आदि स्थानों में और देश में कार्ले, बेड़से, भाजे, इन्दुरी, घोरा-वडी, अजन्तापर्वत आदि स्थानों में यथेष्ट अवशेष पड़े हैं। वे कला में एक से एक बढ़कर हैं और अजन्ता-पर्वत के अवशेषों का तो कुछ कहना ही नहीं है। उनसे यह साफ़ मालूम होता है कि

बौद्ध-प्रभाव के कारण लोगों ने और राजाओं ने इन-इन कामों पर खूब धन और श्रम खर्च किया था। तथापि कुछ लोगों का मत है कि इस धर्म ने ब्राह्मणों की अपेक्षा अन्य जातियों पर अपना प्रभाव अधिक डाला। बौद्ध-धर्म के इतिहास से यह बात ठीक भी जान पड़ती है। अन्य भागों में भी बौद्ध-धर्म में नीची जातियों के जितने लोग शरीक हुए उतने ऊँची जाति के, विशेष-कर ब्राह्मण न हुए। तथापि यह कहना ठीक नहीं है कि बौद्ध-धर्म का महाराष्ट्र के लोगों पर बहुत कम प्रभाव पड़ा। बौद्ध-धर्म के प्रभाव के कुछ उदाहरण हम ऊपर दे ही चुके हैं। यदि सब आर्य लोग प्रारम्भ में मांसाहारी थे, यदि गंगा की तराई की अपेक्षा महाराष्ट्र कम उपजाऊ है, तो सोचने की बात है कि महाराष्ट्रीय ब्राह्मणों ने ही क्यों मांसाहार सदैव के लिए वर्ज्य कर दिया। हमें तो यह बौद्ध और जैन धर्मों का प्रभाव ही दीख पड़ता है। ऊपर हमने एक स्थान पर यह अनुमान किया है कि महाराष्ट्रीय ब्राह्मण दक्षिण में आने पर बहुत काल तक एक स्थान में रहे होंगे। हमारा यह भी अनुमान है कि बौद्ध-धर्म के प्रसार के बाद ही वे महाराष्ट्र में चारों ओर फैले। यही कारण है कि सारे महाराष्ट्रिय ब्राह्मणों में मांसाहार एकसा वर्ज्य है।

महाराष्ट्र में शक लोगों का प्रभाव

आगे चलकर शक लोगों ने दक्षिण में आक्रमण किया। बहुतों का मत है कि शक लोगों का रक्त महाराष्ट्र के निवासियों में बहुत अधिक है। शक लोगों का शरीर और शील जिस प्रकार का था, उसकी बहुत-कुछ छाया महाराष्ट्र-वासियों, में, विशेषकर मराठा-जाति के लोगों में, दीख पड़ती है। यह

मराठा-जाति उत्तर-हिन्दुस्थान के राजपूतों की बराबरी की ही है। कई लोग तो यह कहते हैं कि उत्तर-हिन्दुस्थान के अनेक राजपूत-वंश दक्षिण में आकर मराठा-जाति में शामिल हो गये। यह हम बतला ही चुके हैं कि शिवाजी इसी जाति का था और उसका सम्बन्ध उदयपुर के राजघराने से स्थापित हो चुका है।

इस प्रकार महाराष्ट्र के हिन्दू यहाँ के अनार्य, आर्य और शक लोगों के सम्मिश्रण से बने दीख पड़ते हैं और उनके आचार-विचार में तथा उनकी शारीरिक बनावट में भी इन सबका प्रभाव दीख पड़ता है। आगे चलकर जब मुसलमानों का राज्य हिन्दुस्थान में स्थापित हुआ, तो उनका भी प्रभाव और जगह के हिन्दुओं के समान यहाँ के हिन्दुओं पर भी पड़ा। यह ठीक है कि उत्तर-हिन्दुस्थान के समान मुसलमानों की संख्या दक्षिण में न आई, इसलिए उत्तर-हिन्दुस्थान की अपेक्षा दक्षिण में हिन्दुओं के आचार-विचार पर उनका प्रभाव कम पड़ा; मगर उनका थोड़ा-बहुत प्रभाव पड़ा ज़रूर। मराठों के उदय-काल में उनमें ये अनेक प्रकार के प्रभाव दीख पड़ते थे।

मुसलमानों का प्रभाव

कुछ लोगों का मत इससे भिन्न भी है। श्री राजवाड़े कहते हैं कि उत्तर से दक्षिण में जो आर्य आये, उनमें से बहुतेरे क्षत्रिय जाति के थे। हाँ, अपने धार्मिक कार्यों के लिए ये क्षत्रिय कुछ ब्राह्मण भी साथ लेते आये थे। सम्भवतः उनके साथ स्त्रियाँ न थीं, इसलिए यहाँ के नाग लोगों से उन्होंने विवाह-सम्बन्ध किये। जिस समय आर्य लोग दक्षिण में आये, उस

श्री राजवाड़े का भिन्न मत

समय नाग लोगों में क्षत्रिय, शूद्र और अतिशूद्र वर्ग-भेद थे। उत्तर से दक्षिण में आने के पहले ही ये वर्ग-भेद उनमें उत्पन्न हो चुके थे। नाग क्षत्रिय और आर्य लोगों के सम्मिश्रण से मराठा-जाति की उत्पत्ति हुई, और नाग शूद्र और आर्यों के मेल से आजकल की अनेक शूद्र जातियाँ पैदा हुईं। अतिशूद्र जाति के महारों की उस समय एक अलग जाति ही थी। इस प्रकार महाराष्ट्र की मराठे, कुनबी आदि जातियाँ उत्पन्न हुईं। महाराष्ट्र में आने पर आर्य क्षत्रियों ने खेती का धन्धा शुरू किया। श्री राजवाड़े के इस मत में थोड़ी-बहुत सत्यता भले ही हो, पर पहले बतलाया हुआ मत बिलकुल असत्य नहीं है। यदि यह सत्य है कि शक लोगों ने दक्षिण में भी चढ़ाइयाँ की थीं, तो यह मानना ही होगा कि शक लोगों का रक्त महाराष्ट्र के लोगों में भी अवश्य है।

कोंकण में इन जातियों का सम्मिश्रण सम्भवतः थोड़ा-बहुत बहुत भिन्न ही रहा। कोंकण के उत्तरी भाग में आर्य लोगों की संख्या और दक्षिणी भाग में द्रविड़ लोगों की संख्या अधिक थी। आर्य लोग कोंकण में पूर्व की अपेक्षा शायद उत्तर से ही अधिक आये। कोंकण के किनारे पर ईरान, अरब आदि देशों के लोग भी आकर बसे। कदाचित् यहाँ पर अन्य लोगों से आर्यों का सम्मिश्रण बहुत अधिक न हुआ। मुसलमानों का प्रभाव तो यहाँ बहुत ही कम पड़ा। अब भी इस भाग में उनकी संख्या बहुत कम है। मुसलमानों का सम्मिश्रण होना तो सम्भव ही न था, क्योंकि तबतक सारी जातियाँ बन चुकी थीं। धर्म तथा सभ्यता के भेद इतने अधिक थे कि दोनों का वैवाहिक सम्बन्ध किसी

कोंकण की कुछ भिन्न परिस्थिति का प्रभाव

प्रकार सम्भव न था। अतएव हिन्दुओं में मुसलमानों का रक्त न आ सका। हाँ, मुसलमानों में अवश्य धर्म-परिवर्तन से हिन्दुओं का रक्त घुस गया। तथापि पास-पास रहने और राजकीय अवलम्बन से हिन्दुओं के आचार-विचार पर थोड़ा-बहुत प्रभाव अवश्य पड़ा। यह हम बता ही चुके हैं कि यह उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में सदैव कम रहा है।

हम ऊपर कह ही चुके हैं कि महाराष्ट्र के दक्षिणी ब्राह्मणों में आचार-विचार की समानता बहुत अधिक है, तथापि यह भी मानना ही होगा कि उनमें थोड़े-बहुत भेद-भाव अवश्य हैं। उनमें समानता होने के कारण हम ऊपर बतला ही चुके हैं। एक स्थान में रहने पर फिर जब वे महाराष्ट्र के भिन्न-भिन्न भागों में रहने लगे, तो उनमें आचार-विचार तथा शारीरिक रूप-रंग और बनावट के भेद थोड़े बहुत पैदा हो गये। महाराष्ट्र का परिचय कराते समय हम यह दिखला चुके हैं कि महाराष्ट्र के तीन भौगोलिक भाग कोंकण, देश तथा घाटमाथा होते हैं। इनकी भौगोलिक स्थिति भिन्न-भिन्न होने के कारण इन लोगों के आचार-विचार आदि में थोड़ी-बहुत भिन्नता पैदा हो गई। महाराष्ट्र ब्राह्मणों में कोंकणस्थ, देशस्थ तथा कऱ्हाड़े नाम के तीन मुख्य भेद हैं। कोंकण में रहनेवाले कोंकणस्थ, देश में रहनेवाले देशस्थ और सम्भवतः कृष्णा नदी के किनारे कऱ्हाड़ के आस-पास रहने वाले कऱ्हाड़े कहलाये। कोंकण में रहने वालों को अपनी जीविका के लिए बड़ा परिश्रम करना पड़ता है, इसलिए वे अत्यन्त परिश्रमी, सशक्त तथा क़द में कुछ ठिंगने होते हैं। शरीर का रंग उनका

महाराष्ट्र में 'कोंकणस्थ', 'देशस्थ' और कऱ्हाड़े

बहुधा गीरा होता है। कोंकण में मुख्य भोजन चावल है। अन्य पदार्थों में मसाले, नारियल, केले आदि ही मुख्य हैं। अतएव इनके भोजन में बहुधा यही चीजें रहती हैं। जिन लोगों को अपनी जीविका के लिए कठिन परिश्रम करना होता है उनमें उदारता, सहानुभूति आदि कोमल भाव बहुत कम देख पड़ते हैं। यही बात कोंकणस्थ लोगों की है। उदारता, सहानुभूति आदि की मात्रा बहुत कम रहती हैं। ये लोग अपने व्यवहार में अन्य लोगों से ही नहीं बल्कि अपने लड़के-बच्चों से भी काफ़ी सख्ती से पेश आते हैं। उपभोग की वस्तुयें थोड़ी होने के कारण इनका जीवन सादा एवं सुव्यवस्थित रहता है। इसी कारण ये मितव्ययी होते हैं। जीवन-कलह की कठिनाई के कारण ये शरीर से सब प्रकार के कष्ट सहने को तत्पर तथा बुद्धि से तेज होते हैं। अपने इन गुणों के कारण ये दूसरे ब्राह्मणों से अधिक मिलना नहीं चाहते। देशस्थ ब्राह्मणों की बातें कोंकणस्थ लोगों के बहुत कुछ विपरीत हैं। इनका देश कोंकण की अपेक्षा सदा से अधिक उपजाऊ रहा है। अतएव ये थोड़े-बहुत आलसी और मौजी जीव बन गये। आबहवा के कारण इनके रंग में श्यामता अधिक है। उपजाऊ भाग में होने के कारण इनमें उदारता, सहानुभूति आदि कोमल भावों की मात्रा अधिक देख पड़ती है। श्रम कम करने के कारण इनका शरीर कोंकणस्थों के समान सशक्त और गठीला नहीं होता। सुखी होने के कारण आलस्य और आलस्य से अव्यवस्था देख पड़ती है। क हाड़ के लोग यानी 'कऱ्हाड़े सह्याद्रि के पूर्व की ओर पहाड़ी भाग रहते थे। इसलिए इन लोगों में कोंकणस्थ और देशस्थ दोनों के गुण-दोषों का सम्मिश्रण देख पड़ता है। उस

प्राचीन काल में आवागन के साधन बहुत कम होने के कारण इन लोगों में बेटी-व्यवहार बन्द हो गया, परन्तु रोटी-व्यवहार जारी रहा। उत्तर-हिन्दुस्थान की तुलना में दक्षिण के ब्राह्मणों की यह विशेषता रही कि उन्होंने अपना परस्पर रोटी-व्यवहार कभी बन्द नहीं किया। दूरी के कारण बेटी-व्यवहार बहुत-कुछ बन्द हो गया। बहुत-कुछ कहने का कारण यह है कि उनमें कभी-कभी पहले से ही बेटी-व्यवहार होते रहे। महाराष्ट्र के इतिहास में इसके कई प्रसिद्ध उदाहरण हैं। उत्तर-हिन्दुस्थान में तो ब्राह्मण लोग परस्पर बेटी-व्यवहार करना जातित्व के विरुद्ध ही समझते हैं। वहाँ पर ब्राह्मणों में भी ऊँची-नीची श्रेणियाँ बन गई हैं। ऊँची श्रेणी वाला ब्राह्मण अपनी लड़की नीची श्रेणी के किसी वंश में नहीं देगा। यदि वह ऐसा करे तो जाति से पतित समझा जाता है। ये बातें दक्षिण के कोंकणस्थ, देशस्थ और कन्हाड़े ब्राह्मणों को लागू नहीं होती। इनमें परस्पर बेटी-व्यवहार होने से कोई अपने को अपनी श्रेणी से पतित नहीं समझता। कोंकण-स्थ लोग अवश्य अपने को कुछ ऊँचे दर्जे के समझते हैं। परन्तु उनकी इस भावना में सुव्यवस्थित जीवन का अहंभाव ही विशेष है, सामान्य जातिमूलक भाव नहीं है। थोड़े-बहुत अंश में यही बात करोड़ों में देख पड़ती है। इनका नाम तो महाराष्ट्रीय इतिहास में विशेष नहीं आता, पर कोंकणस्थ और देशस्थों का नाम विशेष आता है। इनके अहंभाव ने कभी-कभी बुरे परिणाम उत्पन्न किये। पेशवों के समय में इसने काफ़ी जोर पकड़ा था और नारायणराव पेशवा के बध के बाद तो, सखाराम बापू के देशस्थ और नाना फड़नवीस के कोंकणस्थ होने के कारण, देशस्थ-

कोंणस्थ का खासा झगड़ा खड़ा हो गया था और उसका राष्ट्रीय घटनाओं पर भी थोड़ा-बहुत परिणाम हुआ। महाराष्ट्रेतरों को देशस्थ-कोंकणस्थ का स्वरूप समझने के लिए इनका एक प्रकार का वर्ग-भेद और बतलाना आवश्यक है। इनमें से प्रत्येक में चार उपभेद और होते हैं। उनके नाम ये हैं—ऋग्वेदी, यजुर्वेदी, आपस्तम्भ और माध्यन् दिन। बेटी-व्यवहार के बहुत-से निर्बन्ध इस वर्ग-भेद के कारण हो गये हैं। उदाहरणार्थ, ऋग्वेदी और यजुर्वेदी में बहुधा सम्बन्ध नहीं होते; परन्तु रोटी-व्यवहार का कोई निर्बन्ध इनमें नहीं है।

अर्वाचीन काल में धन्धों में फेर-बदल

उपर्युक्त प्रकार के वर्ग-भेद पैदा होने पर और धीरे-धीरे उनकी मनुष्य-संख्या बढ़ने के कारण इन वर्ग-भेदों के निर्बन्ध कड़े होते गये और महाराष्ट्र के लोगों में भी जातियाँ, उपजातियाँ और श्रेणियाँ पैदा हुईं। मनुष्य-स्वभाव के कारण थोड़ा-बहुत वर्ण-संकर और जाति-संकर होता ही रहा, जिससे जाति-भेदों की संख्या बढ़ती ही रही। पहले-पहल तो वर्ण-व्यवस्था अच्छी तरह से अमल में थी और बिलकुल प्राचीन काल में लोगों के धन्धे उसीके अनुसार नियत होते थे। परन्तु ऊँचे दर्जे के लोगों के धन्धे जब अच्छी तरह न चल सके, तो उन्होंने भी थोड़े-बहुत धन्धे नीचे दर्जे के अपना लिये। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य भी धीरे-धीरे, नौकरी, खेती आदि का काम करने लगे। जब दक्षिण में मुसलमानों के आक्रमण हुए, उस समय सिद्धान्त में वर्ण-व्यवस्था अवश्य बनी थी, पर व्यवहार में उन्होंने अपने धन्धे बहुत कुछ बदल

डाले थे। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि मुसलमान राजाओं का राज्य स्थापित होने पर मराठा-जाति के लोग ही नहीं बल्कि ब्राह्मण लोग भी उनकी नौकरी करने लगे। सिद्धान्त की दृष्टि से तो वे अपने इस कार्य को ठीक न समझते थे, पर समय के हेर-फेर के कारण उन्हें ऐसा करना ही पड़ा। यानी हिन्दुस्थान के अन्य भागों के समान यहाँ के लोगों में भी धीरे-धीरे परिवर्तन होते गये। शिवाजी ने जिस समय अपना कार्य प्रारम्भ किया, उस समय जाति और धन्धों की यही दशा थी। परन्तु मुसलमानों के काल में सरकारी नौकरी के आनुवंशिक होने पर एक प्रकार के नये वर्ग-भेद पैदा हो गये थे। देशमुख, देशपाण्डे आदि प्रारम्भ में ग्राम के अधिकारी थे, पर धीरे-धीरे भिन्न-भिन्न जातियों में कार्य के अनुसार देशमुख, देशपाण्डे आदि भेद भी पैदा हो गये। सौभाग्यवश इन भेदों में जाति के निर्बन्ध न घुसे। शिवाजी के समय इसी प्रकार पटेल, कुलकर्णी आदि भेद पैदा हुए; परन्तु ये भी देशमुख, देशपाण्डे आदि के समान बने रहे। शिवाजी ने यद्यपि अपने को गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक कहलाया, और ब्राह्मणों के प्रति यथेष्ट श्रद्धा दिखलाई, तथापि राज्य-कार्य में व्यवहार-कुशल पुरुष के समान उसने किसी खास जाति से पक्षपात न किया। सबके साथ एकसा व्यवहार किया और योग्यता के अनुसार भिन्न-भिन्न जाति के लोगों को अपने अधीन छोटे-बड़े पद दिये। इस कारण जाति-भेद के झगड़ों को अपना सिर उठाने का मौक़ा न मिला। अतएव उसके समय में जाति-व्यवस्था पहले के समान ज्यों की त्यों बनी रही।

यदि शिवाजी के समय कोई सामाजिक परिवर्तन हुआ, तो

वह यह है कि लोगों ने जाति-पाँति के भेदभावों को भूलकर सिपाहीगिरी करना शुरू किया। लोग चार महीने तो खेती करते थे, पर दशहरे के मुहूर्त पर मुल्कगिरी करने यानी मुग़ल-राज्य में लूटमार कर जीविका कमाने को निकल पड़ते थे; और इस प्रकार आठ महीने घर के बाहर बिताया करते थे। इससे धीरे-धीरे महाराष्ट्रीय लोगों में सिपाहीगिरी ही धन्धा हो गया और जाति के भेदभाव पहले जैसे अधिक और कड़े न रहे। इस धन्धे के कारण उनमें एक प्रकार का राष्ट्रीय भाव पैदा हो गया। पेशवों के समय में यद्यपि अन्य कारणों से कई अनेक भेद उत्पन्न हो गये थे, तथापि सिपाहीगिरी के कारण उनमें एक प्रकार की एकता की भावना भी थी। मराठों को लड़ाकू जाति के बनाने का श्रेय शिवाजी को ही है। अब महाराष्ट्रीय लोगों का उद्देश्य पहले के जातिमूलक धन्धों को ही करने का न रहा परन्तु सिपाही का काम सीखना, लड़ाई लड़ना, देश जीतना और राज्य करना हो गया। वर्ण-व्यवस्था के शब्द का उपयोग करके हम सारांश में यह कह सकते हैं कि शिवाजी की व्यवस्था ने मराठों को क्षत्रिय बना दिया और पहले के जाति-भेद बहुत शिथिल कर दिये।

सिपाहीगिरी का मुख्य धन्धा

जिस एकता की भावना का हमने ऊपर उल्लेख किया है, वह पेशवों के समय में बढ़ती ही गई। धीरे-धीरे इस भावना ने हिन्दुत्व का स्वरूप धारण किया और पानीपत की लड़ाई के समय हिन्दूपद-पादशाही की कल्पना मराठों ने अमल में लाने की सोची। यदि मराठे इस लड़ाई में विजयी हो जाते, तो

पानीपत की लड़ाई का सामाजिक परिणाम

कदाचित हिन्दुओं में एकता की भावना को फिर से स्थापित करने का श्रेय मराठों को मिल गया होता। परन्तु यहाँ पर भयंकर पराजय होने के कारण एकता की भावना का पूर्ण होना दूर रहा, महाराष्ट्र के लोगों पर उसका कई प्रकार का बुरा परिणाम हुआ। राजकीय परिणामों का वर्णन हम पहले कर ही चुके हैं, इसलिए यहाँ उसके अन्य परिणामों को संक्षेप में बतलाना यथेष्ठ होगा। किसी भी लड़ाई में बहुधा १५—१६ से लगाकर ४५—५० वर्ष तक की आयु के लोग ही मारे जाते हैं। इस लड़ाई में भी यही बात हुई। महाराष्ट्र के तरुण लोग बहुतेरे वहाँ मारे गये, इसलिए छोटों को सिखलाने का काम करने के लिए अनुभवी पुरुष बहुत थोड़े रह गये। जहाँ बहुतेरी शिक्षा अनुभवमूलक रहती है वहाँ जीवन-सातत्य और उन्नति की धारा अनुभवी लोगों के मारे जाने से बहुत रुक जाती है। महाराष्ट्र में भी यही बात हुई। पहले तो लड़ाई में बहुत-सा द्रव्य नष्ट हो गया, फिर अनुभवी लोगों के निकल जाने से बहुत-से घरानों में द्रव्यार्जन के लिए कोई न रह गया; इसलिए बहुत-से घराने ग़रीब हो गये। लोगों का बढ़ता हुआ जोश एकदम ठण्डा हो गया और यह सोचने में कोई दोष नहीं कि कुछ सालों के लिए वे पूरे दैववादी बन गये होंगे। भाग्य से उस समय महाराष्ट्र को माधवराव जैसा पेशवा प्राप्त हुआ, इसलिए थोड़े-बहुत अंश में उनकी स्थिति फिर से सुधर गई।

यह हम ऊपर बता ही चुके हैं कि पेशवों के समय में मराठे लोग बहुतांश में क्षत्रिय बन चुके थे। उनका उद्देश्य लड़ाई करना

और राज्य सम्हालना हो गया था। इस बात को देखते हुए एक दृष्टि से आश्चर्य है कि मराठों ने उस समय किसी राजकीय सिद्धान्त का प्रचार क्यों न किया! परन्तु जब हम उनके जीवन की ओर ध्यान देते हैं, तो हमारा आश्चर्य दूर हो जाता है। जिन लोगों का जीवन सदैव लड़ाई लड़ते बीता, वे क्योंकर किसी नये सिद्धान्त की उत्पत्ति कर सकते थे? तथापि व्यवहार में उन्होंने कुछ नई बातों पर अवश्य अमल किया। इस समय धार्मिक बन्धनों का जोर काफ़ी कम हो गया था। उदयगीर गोसाईं ने जब मराठों के विरुद्ध कार्रवाई शुरू की, तो उसकी गोसाईं-जाति की ओर ध्यान न देकर महादजी शिन्दे ने उसे दण्ड देने का निश्चय कर लिया था। इसी प्रकार उसने निज़ाम से लड़ाई लड़ने के लिए पूना-दरबार को कहा। उसने साफ़ कहा है कि यदि हम धर्म और नीति की ओर बहुत अधिक ध्यान देंगे तो राज्य के हित में बाधा पहुँचेगी। इस एक वाक्य से ही यह स्पष्ट है कि मराठे लोग पेशवों के समय शुद्ध नीति की अपेक्षा व्यावहारिक नीति की ओर अधिक ध्यान देने लगे थे।

शुद्ध नीति की अपेक्षा व्यावहारिक नीति की ओर अधिक प्रवृत्ति

एक और बात में भी शुद्ध नीति के विचार का अभाव दीख पड़ता है। यह स्पष्ट है कि कोई भी राज्य जनता की भक्ति के आधार पर ही अधिक दिनों तक चल सकता है। पर महाराष्ट्र जनता में शुद्ध राजभक्ति कभी न उत्पन्न होने पाई। इसका मतलब यह नहीं कि मराठे लोग राजभक्त थे ही नहीं। वे राजभक्त थे और यथेष्ठ थे। पर उनकी राजभक्ति व्यक्तिमूलक थी, संस्थामूलक नहीं। यह

व्यक्तिमूलक राजभक्ति

तो मनुष्य-स्वभाव ही है कि वह अमूर्त्त संस्था की अपेक्षा मूर्त्त व्यक्ति की पूजा अधिक करता है। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि मराठे लोग भी उसी नियम के अनुयायी थे। परन्तु व्यक्ति का महत्व हिन्दुस्थान के अन्य भागों के समान बहुत अधिक बढ़ गया था। शिवाजी के बाद सम्भाजी राजा हुआ, पर वह पिता के समान योग्य न निकला। तभी से लोगों की भक्ति-भावना में भेद उत्पन्न हो गये थे। राजाराम ने यदि जीते हुए भागों की सरदारी का लोभ मराठों को न दिखलाया होता, तो उन्होंने औरंगज़ेब का उतने ज़ोरों से सामना किया होता या नहीं, इसमें भी कुछ शंका ही है। शाहू के समय तो राजभक्ति में भेद स्पष्ट हो गया। कोल्हापुर के राज्य की स्थापना और मराठों का निज़ामुलमुल्क से मिलना इस बात का खासा सबूत है। शाहू के बाद राजा का पद नाम-मात्र का रह गया और पेशवे ही सर्वाधिकारी होगये। इस समय कुछ लोग सातारा के राजा की ओर, तो कुछ पेशवा के प्रति भक्ति-भाव रखते थे।। शाहू की मृत्यु के बाद एक राजभक्ति के सूत्र में पक्की तरह से बँधने का अवसर मराठों को कभी भी प्राप्त न हुआ। पुराने सरदार पेशवों को सदैव अपनी बराबरी के समझते रहे। केवल नये सरदारों ने पेशवों के प्रति कुछ काल तक भक्ति दिखलाई; पर जब यह भक्ति उनके स्वार्थ में बाधक होने लगी, तो उन्होंने भी उसे ताक में रख दिया। सारांश यह है कि मराठों ने शुद्ध राजभक्ति की भावना कभी न दिखलाई। वह सदैव व्यक्तिमूलक रही। जबतक पदाधिकारी व्यक्ति सामर्थ्यवान होता तबतक वे थोड़ी-बहुत राजभक्ति दिखलाते रहते, परन्तु उसके कमज़ोर होते ही उनकी राजभक्ति शिथिल हो जाती थी।

यह शङ्का हो सकती है कि मराठा-समाज उस समय बहुत अधिक अधोगति को पहुँच गया था और कदाचित् इसी कारण उसका पतन भी हुआ। पर इस शंका के लिए विशेष आधार नहीं है। महाराष्ट्र की सामान्य जनता राजकीय बातों में विशेष भाग न लेती थी। मराठों को जिस कारण पराधीनता के बन्धनों में पड़ना पड़ा, उसके लिए सामान्य जनता नहीं किंतु मराठा सरकार ही जिम्मेदार है। मराठों की हार वास्तव में मराठा-सरकार की हार थी, सामान्य जनताकी नहीं। तथापि अठारहवीं सदी के अन्तिम काल में सैनिक की हैसियत से मराठे कुछ हलके दर्जे के अवश्य हो गये थे। विदेशियों की तोपों ने, क़वायदी सेना ने और उनकी गहरी राजनीति ने मराठों को पहले जैसा कार्यशील न रहने दिया। इसका यह मतलब नहीं कि मराठे अवनत हो चुके थे। हाँ, इतना मानना ही होगा कि वे भरपूर उन्नतिशील न थे। उन्नतिशीलता का अभाव बहुत पहले से ही चला आ रहा था; मराठा-सरकार ने उसे जारी रखने में और सहायता की। यदि वह चाहती तो लोगों को कुछ ऊँचा उठा सकती थी, परन्तु अज्ञान के कारण उससे यह न हो सका।

सामान्य समाज की स्थिति

प्राचीन भारतवर्ष में तथा महाराष्ट्र में ग्राम ही सारी व्यवस्था की अन्तिम कड़ी थी। इसलिए सामाजिक-व्यवस्था को समझने के लिए ग्राम-व्यवस्था का वर्णन जानना आवश्क है। इस ग्राम-व्यवस्था की कई बातें हम पहले बतला चुके हैं कि महाराष्ट्र के लोगों का मुख्य धन्धा खेती ही था, परन्तु इसके सिवाय कई अन्य धन्धे वहाँ

ग्राम के व्यवसाय

प्रचलित थे। शिकार करना, मछली मारना, ढोर चराना और पालना, सिपाहीगिरी करना, धातुओं की चीजें बनाना, व्यापार करना, नौकरी करना, पुरोहिताई करना इत्यादि रोजगार भी वहाँ जारी थे। इनके सिवा कई लोग भिन्न-भिन्न धार्मिक सम्प्रदायों का काम करते थे। शिकार का काम बहुधा ऐसे ही लोग करते थे, जो प्रायः एक जगह न रहते थे। भोई, कोलो, खारवी आदि लोग मछली मारा करते थे। पशु-पालन का काम धनगर और ग्वालों का था। कुनबी और माली जाति के लोग खेती का व्यवसाय करते थे। उन्हींमें से बहुत-से लोग सिपाहीगिरी का व्यवसाय करते थे। नौकरपेशा लोगों में कारीगर, गायक और नीची जाति के लोग—जैसे भंगी, डोम, मांग, महार आदि शामिल थे। व्यापारियों में बानो, कोमटी, तम्बोली आदि शामिल हैं। नाई, धोबी और मजदूर मजदूरपेशा लोग कहला सकते हैं। पुरोहितों की संख्या भी उस समय कुछ कम न थी। उनकी संख्या सम्भवतः सारी जनता की चार-पाँच सैकड़ा थी। कृषि-व्यवसाय में ८० से लगाकर ९६ सैकड़ा तक लोग लगे थे।

पहले-पहल कारीगरों का धन्धा ज्यादातर गाँवों में ही चलता था और उनका सम्बन्ध बहुधा खेती से ही रहता था। परन्तु आगे जब सिपाहीगिरी का धन्धा महत्त्वपूर्ण हो गया तब कारीगरों का उपयोग सेना-विभाग के कामों में भी होने लगा। एक ने लिखा है कि पेशवाई के अन्तिम काल में क़रीब २५ सैकड़ा लोग सिपाहीगिरी का धन्धा करते थे। श्री खेर ने तो इनकी संख्या ५० सैकड़ा बतलाई है। दूसरा अनुमान तो बिलकुल झूठा जान पड़ता है,

सिपाहीगिरी का महत्व

और पहले में भी कुछ कम अतिशयोक्ति नहीं है। उनकी संख्या सम्भवतः १० सैकड़ा रही होगी। फिर यह भी स्मरण रखना चाहिए कि बरसात के दिनों में सिपाही लोग भी खेती का धन्धा किया करते थे।

राजकीय बातों पर धर्म का जो कुछ प्रभाव पहले-पहल पड़ा, उसका वर्णन हम कर ही चुके हैं। अब हमें केवल यही देखना है कि अठारहवीं सदी में धर्म का समाज पर क्या प्रभाव पड़ा। धर्म

धर्म और व्यवहार

शब्द का अर्थ हिन्दुस्थान में बहुत ही व्यापक है। कभी-कभी तो इस शब्द के अर्थ में प्रत्येक ऐहिक और पारलौकिक बातें शामिल हो जाती है। हिन्दुस्थान में धर्म की कल्पना ही ऐसी है कि उसका थोड़ा-बहुत प्रभाव छोटे-बड़े सब पर पड़े बिना नहीं रहता। तथापि अठारहवीं सदी की ओर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि आजकल के समान उस समय भी ऐहिक आचार मे धर्म का वियोग हो गया था। लोग व्यक्तिगत दृष्टि से धार्मिक कार्य और आचरण करते थे; परन्तु जिस समय सामाजिक व्यवहार के प्रश्न उपस्थि होने, उस समय धर्म को एक ओर छोड़ कर व्यावहारिक नीति के अनुसार अपना आचरण किया करते थे। कई मराठे सरदार अपने ही देशभाइयों के विरुद्ध निज़ाम के साथ शामिल हुए थे। मुसलमानों से उन्होंने अपने आदमियों के विरुद्ध सहायता ली थी और इसी प्रकार के अन्य कई काम किये थे। शुद्ध धर्म की दृष्टि से उनके इन कार्यों की मीमांसा नहीं हो सकती। सारांश यह है कि उस समय के मराठों के कार्यों का आधार धर्म न होकर व्यावहारिक नीति था। तथापि यह मानना

ही होगा कि धार्मिक सहिष्णुता का भाव मराठों में पैदा हो गया था। इसी कारण मराठों के धर्मादे का लाभ हिन्दू और मुसलमानों को बराबर-बराबर मिलता था, और ईसाई पादरी भी उससे वंचित न रहते थे। महाराष्ट्र की जनता को एकता के सूत्र में बाँधने में भी धर्म का विशेष हाथ न था। मुसलमानों और हिन्दुओं का जो कुछ धार्मिक विरोध था वह इस समय तक ठण्डा हो चुका था। इसलिए धर्म के आवेग से अन्य हिन्दुओं के समान मराठों में भी कोई विशेष स्फूर्ति न पैदा होती थी। हम यह मानते हैं कि पानीपत की लड़ाई के समय हिन्दू-पद-पादशाही की कल्पना पैदा हुई थी; पर इसका प्रभाव कुछ मराठे सरदारों के हृदयों तक ही सीमित था, जनता के हृदय तक न बढ़ा था। हाँ, व्यक्तिगत आचरण में लोग अवश्य धर्माचरण किया करते थे। उस समय तथा आजकल हिन्दुओं में जितने प्रकार के धार्मिक कार्य प्रचलित हैं वे सब उस समय के मराठे किया करते थे। धर्म के नाम पर जो भ्रम आज हिन्दुओं में प्रचलित हैं, वे सब उस समय भी प्रचलित थे। यहाँ तक कि कुछ लोग तो बड़े-बड़े नेताओं को ईश्वरांश के अवतार भी समझते थे। अहिल्याबाई होलकर के दर्शन से ही लोग पाप-मुक्त हो जाते थे। जाति-भ्रष्टता के जितने कारण आज उपस्थित हैं, वे सब उस समय भी थे। प्रायश्चित्त की प्रथा भी उस समय थी। सारांश यह कि हिंदू-समाज की कर्मठता महाराष्ट्र में भी थी। यह बात जरूर थी कि यदि कोई मराठा जबरदस्ती मुसलमान बना लिया जाता तो मराठे उसे शुद्ध कर लेते थे। इससे यह दीख पड़ता है कि जाति-बन्धन पहले जैसे कड़े न रह गये थे और न

जाति का महत्व ही पहले-जैसा रह गया था। प्राण-दण्ड आव-श्यकता पड़ने पर ब्राह्मणों को भी मिलता था।

यह हम अन्यत्र बतला चुके हैं कि धार्मिक झगड़े जब कभी उठते तो उनका तसफ़िया पेशवा या उसके मातहत अधिकारी किया करते थे। इस प्रकार धार्मिक झगड़े निपटाने का भार अपने ऊपर लेकर पेशवों ने उस समय के समाज को कई हानियाँ पहुँचाईं। एक तो उनके हस्तक्षेप के कारण समाज की प्रगति बहुत-कुछ रुक गई। कोई भी सरकार निर्णय करते समय प्रच-लित रीति का ही उपयोग कर सकती है। यही पेशवों ने भी किया। उनके निर्णयों से स्थिरता तो बढ़ी, पर प्रगति रुक गई। दूसरा बड़ा परिणाम यह हुआ कि उनके हस्तक्षेप के कारण लोक-मत धीरे-धीरे उनके विरुद्ध बन गया। जात-पाँत के झगड़ों में पड़ने में किसी भी सरकार का भला नहीं हो सकता; क्योंकि ऐसी हालत में दो में से एक पक्ष सदैव उससे असन्तुष्ट बना रहेगा। और यदि सरकारी अधिकारी जात-पाँत के बन्धन से बँधे रहे तो उनकी प्रवृत्तियों और पूर्व-ग्रहों का परिणाम उनके निर्णीत कार्यों पर हुए बिना नहीं रहता। यही बात पेशवों के समय में भी हुई। कई निर्णयों से यह देख पड़ता है कि ब्राह्मणेतर जातियों को दबाये रखने की ओर ही उनकी प्रवृत्ति रही। यह हम मानते हैं कि यह प्रवृत्ति नेताओं में स्वाभाविक है, परन्तु यह भी मानना होगा कि उनके बुरे परिणाम भी उतने ही स्वाभाविक हैं।

धार्मिक झगड़े में हस्तक्षेप

अब हम मराठों के ऐहिक जीवन का कुछ वर्णन करेंगे। जात-पाँत के बन्धनों का परिणाम सामाजिक जीवन में ही नहीं

किन्तु ऐहिक जीवन में भी होता आया है। यह बात सारे हिन्दुस्थान में सर्व-सामान्य है। सारे समाज का अन्तिम आधार कुटुम्ब है और हिन्दुस्थान में तो उसका महत्व सदैव से अधिक रहा है, इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि किसी कुटुम्ब के किसी एक व्यक्ति के कोई अपराध करने पर सारे कुटुम्ब को उसका दण्ड भोगना पड़ता था! इसका यह मतलब नहीं कि तत्कालीन कुटुम्ब-पद्धति से कोई लाभ नहीं था। कई कुटुम्ब उस समय महाराष्ट्र में ऐसे थे कि जिन्होंने बहुत बड़े-बड़े कार्य किये थे। कुटुम्ब का अभिमान उस समय महाराष्ट्र में सब जगह प्रचलित था। इसलिए महाराष्ट्र में कई घरानों ने बड़ा नाम कमाया। उनका इतिहास बड़ा मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद है। उनमें से कई कुटुम्बों में बहुत-से लोग होते थे और बच्चों को बहुत-सी शिक्षा वहाँ मिलती थी तथा परस्पर की भलाई की ओर सारे कुटुम्ब के लोग ध्यान दिया करते थे। तथापि इतिहास से यह प्रकट है कि पेशवाई के अन्तिम काल में कौटुम्बिक बन्धन भी कुछ ढीले पड़ गये थे।

कुटुम्ब-पद्धति के परिणाम

महाराष्ट्र का जो भौगोलिक वर्णन कर चुके हैं उससे यह जाना जा सकता है कि महाराष्ट्रियों का ऐहिक-जीवन बहुत सादा था। आज भी उत्तर-हिन्दुस्थान के मुक़ाबले महाराष्ट्र-वासी सादे जान पड़ते हैं। पेशवों के समृद्धि-काल में भी कुछ सरदारों को छोड़कर शेष लोगों के ऐहिक जीवन में ऐश-आराम की चीजें बहुत कम दीख पड़ती थीं। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि दक्षिण में वेश्यावृत्ति का कुछ भी ज़ोर न था। हाँ, बड़े-बड़े लोग कभी-कभी रखेलियाँ

महाराष्ट्रियों का जीवन

रख लेते थे। सतीत्व का उल्लंघन करने पर स्त्रियों को उनके पति या अन्य रिश्तेदार कभी-कभी दासी के बतौर बेच डालते थे। ऐसी दासियों को, अथवा अनाथ दासियों को, सरकारी कारखानों में बहुत-सा काम दिया जाता था।

महाराष्ट्र-समाज में अपराधी बहुत कम होते थे। एलफिंस्टन तथा अन्य विदेशियों ने यह बात लिखी है। जो कुछ अपराध होते थे, उनमें से बहुतेरे सिपाहीगिरी तथा खेती के धन्धे से सम्बन्ध रखते थे। अपने देश के लिए वे सदा खून बहाने को तैयार रहते थे। इसी कारण बहुत-से खून आदि के झगड़े हुआ करते थे। राजपूतों के समान मराठों में भी मानापमान की भावना बहुत अधिक थी। इस कारण भी कुछ कम झगड़े न होते थे।

महाराष्ट्रियों में अपराधों की कमी और उनका स्वरूप

हिन्दुस्थान के अन्य भागों की अपेक्षा महाराष्ट्र-समाज में स्त्रियों का दर्जा सदा से बहुत ऊँचा रहा है। हिन्दुओं की स्मृतियों में स्त्रियों को जो स्थान दिया गया है, वस्तुतः वह महाराष्ट्र में ही दीख पड़ता है। इसका यह मतलब नहीं कि महाराष्ट्रियों में स्त्रियाँ पुरुषों से किसी भी प्रकार का परदा नहीं करती थीं; हाँ, वह उत्तर-हिन्तुस्थान की तरह इतना अधिक नहीं है कि पुरुष का चेहरा देखते ही स्त्री अपवित्र हो जाय। अतएव कोई आश्चर्य नहीं कि महाराष्ट्र में स्त्रियाँ भी अप्रत्यक्ष ही नहीं बल्कि प्रत्यक्ष भी राजकीय सूत्र-संचालन करती थीं। इसीलिए हमें आज जीजाबाई, सोयराबाई, येसूबाई, ताराबाई, अहिल्याबाई, गोपिकाबाई,

महाराष्ट्र-समाज में स्त्री का दर्जा

आनन्दीबाई आदि महत्वपूर्ण स्त्रियों के नाम इतिहास में पढ़ने को मिलते हैं। कई स्त्रियों ने तो सेना-संचालन का भी काम किया था। हम पहले बतला ही चुके हैं कि शिवाजी को रायबागिन नामक एक वीर स्त्री से लड़ना पड़ा था। आगे चलकर द्वितीय बाजीराव के सेनापति बापू गोखले को इसी प्रकार एक ताई तेलिन से सामना करना पड़ा था। महाराष्ट्र के पराधीन होने पर भी झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई का उदय हो सका, यह बहुत कुछ सामाजिक व्यवस्था का ही परिणाम है। यह एक प्रश्न है कि स्त्रियाँ उस समय पढ़ी-लिखी होती थीं या नहीं ? कई स्त्रियों के नाम की लिखी हुई अनेकों चिट्ठियाँ उपलब्ध हुई हैं। परन्तु इससे यह अनुमान नहीं निकलता कि वे सब पढ़ी-लिखी ही थीं। कारकून यानी मुंशी रखने की प्रथा उस समय थी और सम्भवत: स्त्रियों के नाम की बहुत-सी चिट्ठियाँ उन्हों-ने ही लिखी हैं। तथापि बड़े-बड़े घरानों की स्त्रियाँ सम्भवत: पढ़ी-लिखी अवश्य होती थीं। आनन्दीबाई ने 'ध' के स्थान में जो "मा" किया, उसीसे यह बात स्पष्ट होती है।

मराठों के त्यौहारों का कुछ वर्णन करना अप्रासंगिक न होगा। वैसे तो हिन्दुओं के बहुतेरे त्यौहार सारे भारतवर्ष में सर्व-सामान्य ही हैं, पर कुछ त्यौहार ऐसे हैं, जो महाराष्ट्र में खास रीति से मनाये जाते हैं। दसहरा इसी प्रकार का एक त्यौहार है। यह त्यौहार यहाँ विशेष रीति से मनाया जाता है। हम पहले बतलाही चुके हैं कि मराठे लोग शिवाजी के समय से आठ महीने लूटमार किया करते थे। इस कार्य के लिए वे दसहरे के मुहूर्त पर निक-

मराठों के त्यौहार

जाते थे। इसलिए दसहरे के साथ सैनिक विजय की भावना सारे महाराष्ट्र में सम्मिलित हो गई; और तबसे अबतक वह किसी न किसी रूप में बनी हुई है। दसहरे के दिन गाँव या नगर का मुखिया अपने मातहतों और दूसरे लोगों के साथ 'सीमोल्लंघन' के लिए निकलता था। इसके बाद वे शहर के बाहर डेरे डालकर रहते थे। दसहरे के दिन एक दूसरे से भेंट करने की और भेंट में बहुमूल्य चीजें देने की प्रथा तभीसे चल निकली है। आजकल महाराष्ट्र में 'सोनपान' देने की जो प्रथा है, वह इसीका विकृत स्वरूप है। उस काल में दसहरे के अवसर पर मुसलमान और अंग्रेज भी 'भेंट' दिया करते थे। एक दूसरा त्यौहार तिल-संक्रान्ति भी महाराष्ट्र में विशेष रीति से मनाया जाता है। उत्तर-हिन्दुस्थान में तो तिल-संक्रान्ति के दिन नदी-स्नान करने की प्रथा है, पर महाराष्ट्र में संक्रान्ति के पहले दिन पिसे हुए तिल लगाकर अभ्यंग-स्नान करने की रीति है। तिल-संक्रान्ति के दिन तिल के लड्डू बाँटने की प्रथा है। जिस समय हिन्दुस्थान में शक्कर बहुत कम बनती थी, उस समय गुड़ के साथ तिल के लड्डू बनाये जाते थे। इसीलिए उसका नाम 'तिल-गुल' (तिल-गुड़) तबसे अबतक चला आ रहा है। परन्तु आजकल शक्कर की अधिकता के कारण इस 'तिल-गुल' के कई नये संस्कृत-स्वरूप पैदा हो गये हैं। गणेशोत्सव की प्रथा भी महाराष्ट्र में कुछ विशेष स्थान रखती है। यह पेशवों के समय से विशेष प्रसिद्ध हुई है, क्योंकि पेशवे गणेश-पूजक थे। प्रथम माधवराव तो गणेश का अनन्य उपासक था। यही गणेशोत्सव अब कुछ नये ढंग से सारे महाराष्ट्र में गणेश-चतुर्थी से मनाया

जाता है। दीवाली के उत्सव में भी महाराष्ट्र में कुछ विशेषता देख पड़ती है। वैसे तो लक्ष्मी-पूजन आदि धार्मिक कार्य भारतवर्ष के अनेक भागों में आम तौर पर प्रचलित हैं, पर अमावस्या के बाद प्रतिपदा और द्वितीया को महाराष्ट्र में जो विशेष कार्य होते हैं वे अन्यत्र बहुत कम दीख पड़ते हैं। प्रतिपदा के दिन लड़की अपने पिता की आरती उतारती है और पिता लड़की को कुछ भेंट देता है। इसी प्रकार भाईदोज के दिन बहन अपने भाई की आरती उतारती है और वह उसको कुछ भेंट देता है। ये प्रथायें महाराष्ट्र में बहुत काल से चली आ रही हैं। देवताओं के उत्सवों में हनुमज्जयंती का महत्व हिन्दुस्थान के अन्य भागों की अपेक्षा कुछ विशेष है। हनुमान को महाराष्ट्र में बल-देवता का स्वरूप प्राप्त है। सम्भवतः १७ वीं सदी के मध्य में रामदास स्वामी ने इस देवता के उत्सव को विशेष स्वरूप दिया। तबसे महाराष्ट्र में ऐसे बहुत ही कम गाँव होंगे कि जहाँ हनुमान की स्थापना कहीं न कहीं न हुई हो और जहाँ लड़के और जवान आदमी कसरत व कुश्ती से अपनी शारीरिक उन्नति करने में न लगे हों।

इसीके साथ महाराष्ट्र के खेल-कूदों और कसरतों का विचार करना भी उचित ही है। ब्राह्मण लोग बहुधा 'नमस्कार' किया करते थे और मराठे लोग दण्ड लगाया करते थे। कुश्ती की प्रथा भी महाराष्ट्र में भली-भाँति प्रचलित थी। मुद्गल फेरने की प्रथा तो थी ही, पर 'मलखम' पर खेलने की प्रथा महाराष्ट्र की कुछ विशेषता ही है। इसी प्रकार खोखो और आट्या-पाट्या के खेल महाराष्ट्र में ही विशेष प्रचलित रहे हैं। इन खेलों से चपलता, चालाकी आदि

महाराष्ट्र के खेल-कूद

गुण विशेष विकसित होते हैं। आट्या-पाट्या के खेल में तो सैनिक व्यूह-रचना के सबक़ मिलते हैं। फरी-गदगा, लाठी बोथाटी आदि खेल स्पष्ट ही सैनिक भावों के उत्तेजक हैं। तलवार के अलावा पटा फेरने की प्रथा भी महाराष्ट्र में विशेष प्रचलित रही है। जो महाराष्ट्रीय सैनिक जीवन में अपना बहुत-सा काल बिताया करते थे, उनके खेल-कूद सैनिक भावों के परिपोषक हों, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। कभी-कभी तो पास-पास के दो गाँवों के लोग झूठ-मूठ लड़ाई भी लड़ लिया करते थे। घरू खेलों में शतरंज, चौपड़ और गंजफा विशेष प्रचलित रहे हैं। पहले दो तो हिन्दु-स्थान के अन्य भागों में भी प्रचलित हैं, पर गंजफा का खेल महाराष्ट्रेतर भागों में प्रचलित नहीं है। यह आजकल के ताश के समान होता था, पर इसके पत्ते गोल रहते थे और इसमें के चित्रों में दशावतारों के चित्र विशेष रहते थे। इसी कारण कभी-कभी इसे दशावतारी भी कहते हैं।

मनोरंजन के साधन

मनोरञ्जन के साधनों में पुराण-श्रवण, ललित-कीर्त्तन आदि मुख्य थे। पुराण-श्रवण की प्रथा सम्भवतः साधु-सन्तों के उदय-काल से महाराष्ट्र में प्रचलित हुई। महाराष्ट्र में परदे की प्रथा विशेष कड़ी न होने के कारण स्त्री और पुरुष उसमें एक-सा भाग लेते रहे हैं। इससे अवकाश के समय का सदुपयोग होता, मनोरंजन होता, तथा ऐहिक और पारलौकिक उपदेश भी मिलता था। महाराष्ट्र में जिस ढंग से कीर्त्तन होता है, वह भी महाराष्ट्र की कुछ विशेषता ही है। यह भी साधु-सन्तों के उदय-काल से ही महाराष्ट्र में प्रचलित हुआ है। पुराण-श्रवण से होने

वाले सारे लाभ इससे भी होते आये हैं। 'ललित' नाटक का बहुत प्राथमिक स्वरूप देख पड़ता है। इसमें भी धार्मिक भावों की पूर्ति के साथ-साथ मनोरञ्जन की मात्रा भी रहती थी।

३२

कला-कौशल्य और साहित्य

महाराष्ट्रियों ने दिग्विजय की ओर जितना ध्यान दिया, उतना कला की उन्नति पर नहीं। कारण स्पष्ट है। जिनका अधिकांश जीवन युद्ध करते ही बीता, शान्ति बहुत ही कम प्राप्त हुई, और जहाँ पूर्व-काल से सादगी बनी रही, वहाँ उत्तर-हिन्दुस्थान की मुसलमानी इमारतों जैसी शानदार इमारतें न बन सकीं तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। मगर इसका यह भी मतलब नहीं कि महाराष्ट्रियों ने कला का प्रकाश बिलकुल देखा ही नहीं। अलबत्ता, इतना अवश्य मानना होगा कि, सरकारी ढंग से कला की चीजें बहुत कम बनीं; जो कुछ बनीं, वे लोगों के व्यक्तिगत प्रयत्न का ही फल था।

कला-कौशल्य

कला की चीजों में मन्दिरों की गणना पहले होनी चाहिए। सरदारों, साहूकारों और अधिकारियों ने महाराष्ट्र के बहुतेरे मंदिर बनवाये। वाई में रास्तों ने, मीरज और साँगली में पटवर्धनों ने, चन्द्रचूड़ में नारोशंकर ने, नासिक में ओढ़ेकर ने, कई स्थानों में नाना फड़न-

वास्तुकला

बीस ने और प्रसिद्ध अहिल्याबाई ने लगभग सब बड़े-बड़े स्थानों में मंदिर बनवाये हैं। व्यक्तिगत दृष्टि से पेशवों ने भी कई स्थानों में मन्दिर बनवाये। आवागमन की सुविधा के लिए नदियों पर पुल, धार्मिक और ऐहिक कार्यों की सुविधा के लिए नदी-किनारों पर घाट, पानी की कमी दूर करने के लिए तालाब, आबपाशी आदि के लिए नदियों में बाँध, व्यापार की मण्डियों और तीर्थ-स्थानों तक सड़कें, राहगीरों के लिए धर्मशालायें और सरायें भी महाराष्ट्र में बनाई गई थीं। परन्तु इनके बनाने में भी बहुधा व्यक्तियों का ही हाथ था। इसका एक परिणाम यह हुआ कि इन सब चीजों में बहुत अधिक विविधता दीख पड़ती है। इनके निर्माण में मितव्ययता से बहुत अधिक काम लिया जाता था। तथापि इनसे यह भी सिद्ध होता है कि मराठों में कला-कौशल्य के भाव थोड़े-बहुत अवश्य थे। हाँ, दिखावट की अपेक्षा उपयोगिता की ओर महाराष्ट्रियों का विशेष ध्यान रहता था। इस दृष्टि से मन्दिरों का भी उपयोग होता था। मन्दिर बहुधा ऐसे स्थानों में ही बनाये जाते, जहाँ पानी का अच्छा खासा प्रबन्ध रहता और पूजा-अर्चा की सामग्री मिलती थी। मन्दिर में बहुधा कुछ कमरे यात्रियों के ठहरने के लिए बनाये जाते थे और उनके भोजनादि की पूर्त्ति भी वहाँ होती थी। पवित्र स्थान होने के कारण वह चोर-लुटेरों से मुक्त रहता था। वहीं पर गाँव के सामाजिक और धार्मिक कार्य सम्पन्न होते थे।

बहुत प्राचीन काल के मन्दिर तो केवल पत्थरों के बने रहते थे। बहुधा एक पर एक पत्थर रख कर उन्हें बनाते थे, इसलिए

चूने का उपयोग बहुत कम होता था। मन्दिरों पर शिखर बनाने की प्रथा सर्वत्र प्रचलित थी। इस शिखर से लोहे की एक जंजीर ज़मीन तक लगी रहती थी। इसके सम्भवतः दो उपयोग होते थे। एक तो बिजली गिरने से मन्दिर को धक्का लगने का डर कम हो जाता था; दूसरे शिखर पर चढ़ने के लिए उससे सहायता मिलती थी। मन्दिरों पर गुम्बज बनाने की भी प्रथा काफ़ी पुरानी है; परन्तु यह स्पष्ट है कि ईंट-चूने का उपयोग काफ़ी होने लगने पर ही यह प्रचलित हुई होगी। सम्भवतः मुसलमानों के समय से यह नई प्रथा अमल में आई, इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि मुसलमानी कला का प्रभाव हिन्दुओं की इमारतों पर भी पड़ा हो। पेशवों के समय में जितने मन्दिर बने, उनमें से बहुतेरों में उपर्युक्त दोनों प्रकार की कला का सम्मिश्रण दीख पड़ता है। नीचे का ढाँचा तो बहुधा पुराने ढंग का होता था, पर ऊपर का भाग नये ढंग का बना रहता था।

मन्दिर

हिन्दुओं को इमारतों की एक दूसरी विशेषता उनकी मेहराब या कमान है। उसे प्राचीन काल में 'किन्नर युग्म' कहते थे। इसमें नीचे दोनों ओर दो मानवी मूर्तियाँ बनी रहती थीं, और उनके ऊपर छोटे-छोटे अर्धवृत्तों से मेहराब बनाई जाती थी। कभी-कभी मुसलमानी ढंग की मेहराब भी बनाई जाती थीं। परन्तु कई ऐसे भी मन्दिर बने हैं, जिनमें मेहराब नाम को भी नहीं हैं।

मन्दिरों में मेहराब या कमान

उस समय आज-जैसे विशाल कारखाने तो हिन्दुस्थान में

कहीं न थे, इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि महाराष्ट्र में भी उनका पता न था। महाराष्ट्र-निवासी सदा से सादा जीवन व्यतीत करते आये हैं, इसलिए ताजमहल-जैसी कोई इमारत उन्होंने कभी न बनवाई। शौक़ की बातें उनके घरों में बहुत कम दीख पड़ती थीं, इसलिए उस समय के नक़्क़ाशी के कामवाले घर महाराष्ट्र में इने-गिने ही दीख पड़ते हैं। जहाँ शृंगार की भावना बहुत कम थी, वहाँ शृंगार के नमूने देखने को कहाँ से मिलें ? मन्दिरों के शृंगार में ही उनकी यह भावना समाप्त हो जाती थी। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि शिवाजी, शाहू, महादजी शिन्दे, तुकाराम आदि की छत्रियाँ बहुत सादा बनी हैं। मृत-महापुरुषों की यादगार में बड़ी-बड़ी छत्रियाँ या मक़बरे बनाने की अपेक्षा लोग बहुधा मन्दिर ही बनवाया करते थे और कभी-कभी मन्दिर के नाम के साथ अपना नाम भी किसी प्रकार जोड़ देते थे। मन्दिरों में जिन मूर्तियों की स्थापना होती, उनमें से बहुतेरी महाराष्ट्र के बाहर से आती थीं। इतिहास से पता चलता है कि उनमें भी कई गण्डकी के पत्थर की बनी होती थीं।

शृंगार की वस्तुयें

महाराष्ट्रियों ने जल-प्रबन्ध भी भली-भाँति किया था। बहुधा छोटे-छोटे गाँव तो जलाशयों के पास ही बसते थे, पर आजकल के समान उस समय भी बड़े-बड़े शहरों में पानी का विशेष प्रबन्ध करना पड़ता था। सातारा, पूना आदि में इस प्रबंध के जो अवशेष देख पड़ते हैं, उनसे इस प्रबंध की कुछ कल्पना हो सकती है। आजकल के समान उस समय घर-घर नल न थे, परन्तु स्थान-स्थान पर हौज़

जल-प्रबन्ध

बने रहते थे। लोग उनमें से पानी भर ले जाया करते थे। इन हौज़ों में पानी बाँधों से आया करता था। पूना में इस प्रकार चार बाँधों से पानी आता था। आजकल के इञ्जीनियर लोग भी उस समय के इस प्रबंध की प्रशंसा करते हैं। मालेगाँव में दो छोटी-छोटी नदियों को बाँध कर पानी का प्रबंध किया गया था। उसका कुछ अवशेष अब भी बना है और उस समय की कारीगरी की साक्षी देता है। इसी प्रकार के कई बाँध महाराष्ट्र में थे; और उनमें से कई पुलों का भी काम देते थे।

बाड़े, महल और शहर

महाराष्ट्र में बड़े-बड़े बाड़े और महल बनाने की प्रथा भी विशेष न थी। बहुतेरे बड़े-बड़े बाड़े और महल केवल सरदारों के ही होते थे। ये बहुधा चौक के नमूने पर बँधे रहते थे और उनके चारों ओर बहुधा ऊँची दीवाल होती थी। उस समय की आवश्यकता के कारण उनमें बहुत अधिक दरवाज़े-खिड़कियाँ आदि भी रखना सम्भव न था, क्योंकि इनसे घर और वहाँ रहने वाले लोगों की रक्षा में कमी हो जाती थी। बड़े-बड़े लोग चौकीदार वग़ैरा लोगों के लिए भी अपने घर के पास मकान बना लेते थे। घरों में फ़व्वारे, बग़ीचे वग़ैरा भी होते थे। साधारण घरों में शृंगार की चीज़ें बहुत कम दीख पड़ती थीं। केवल सरदारों और बड़े-बड़े अधिकारियों के घरों में ऐसी चीज़ें होती थीं। महाराष्ट्र के शहर किसी ख़ास ढंग से न बने थे। इसका एक कारण यह था कि उनमें से कई प्रारम्भ में केवल छोटे-छोटे गाँव थे और धीरे-धीरे ही शहर बने। बिना विशेष सोच-विचार के जो बस्तियाँ बसीं, वे किसी ख़ास ढंग से न बस सकीं; इस कारण सड़कें

और गली-कूँचे बहुत सकड़े और टेढ़े-मेढ़े होते थे। इनसे आना-जाना बड़ा कठिन कार्य था; क्योंकि कुत्ते, गाय, बैल, भेड़, बकरे आदि इनमें स्वतंत्रता से घूमा करते थे, जिससे मार्ग रुक जाता था। कभी-कभी तो दो घरों के छप्पर एक दूसरे से भिड़ जाते थे। इन्हींमें से पानी की नालियाँ भी बनी रहती थीं, इस कारण गन्दगी भी वहाँ काफ़ी होती थी। तथापि माधवपुर, साँगली, झाँसी जैसे कुछ शहर नये सिरे से बसने के कारण काफ़ी अच्छे ढंग के थे और इनमें से कहीं-कहीं मुसलमानों के नगरों की व्यवस्था के नियम अमल में आये थे।

पुल

लकड़ी और पत्थर के कई प्रकार के पुल उस समय बनाये गये थे। नीचे से पानी बहने वाले ऊँचे पुल तो बहुत कम थे, पर मत्स्य-पद्धति के पत्थर के पुल बहुत बने थे। पूना का कुम्भारे का पुल उस समय के पुलों का एक नमूना है। पूना की लकड़ी का पुल भी काफ़ी पुराना है।

घाट बनाने की प्रथा

नदियों के किनारे पर घाट बनाने की प्रथा महाराष्ट्र में कुछ कम न थी, क्योंकि नदियों में स्नान तथा कई धार्मिक कार्य सम्पन्न करने की प्रथा महाराष्ट्र में भी यथेष्ट थी। कृष्णा और गोदावरी के किनारे जितने शहर बसे हैं, उन सबमें घाट बने हुए हैं। नासिक में तो घाट बनाने के लिए नदी का प्रवाह ही बदल दिया गया था। यहाँ के घाट भव्यपटाङ्गण ही हैं। अहिल्याबाई के बनाये हुए घाट सारे हिन्दुस्थान में मशहूर हैं।

इतना सब वर्णन करने पर भी यह हमें स्वीकार करना

होगा कि महाराष्ट्र में कला ने बहुत कम उन्नति की। इसके कुछ कारण हम प्रारम्भ में बता ही चुके हैं।

कारीगरों का अभाव कारीगरों की कमी के कारण भी कला की उन्नति महाराष्ट्र में बहुत कम हो सकी। नाना फड़नवीस जैसे एकाध पुरुष ने बाहर से भोजराज जैसे कारीगर को लाने का प्रयत्न किया था, पर अच्छे कारीगर सदैव कम होने के कारण उसके ये प्रयत्न सफल न हुए। उसने भिन्न-भिन्न स्थानों से अच्छे-अच्छे चित्र प्राप्त करने का प्रयत्न किया था, पर वह बहुत देरी से हुआ। इस समय उत्तर-हिन्दुस्थान में भी कला अवनत दशा पर पहुँच गई थी। एक ने स्पष्ट लिखा है कि अब दिल्ली का केवल नाम ही रह गया है, अच्छे कारीगर कहीं देखने को भी नहीं मिलते। यही बात एक दूसरे ने आगरा के सम्बन्ध में कही है। महादजी शिन्दे ने नाना फड़नवीस के लिए बहुत प्रयत्न के बाद जयपुर से सचित्र-भारतवर्ष की एक प्रति प्राप्त की। फिर नाना फड़नवीस ने वेल्स नामक एक विदेशी कलाविज्ञ से उसकी नक़ल करने को कहा। महादजी शिन्दे भी चित्रों का शौक़ीन था। उसने भी वेल्स से अपना चित्र बनवाया था। जो भी हो, पर इससे यह बात अवश्य सिद्ध होती है कि महाराष्ट्र में कारीगरों की बहुत कमी थी। कहीं-कहीं घरों में दीवालों पर कुछ सादे चित्र बनाने की प्रथा अवश्य थी, पर उनमें कला बहुत कम देख पड़ती है।

अब हम मराठी-भाषा और साहित्य के इतिहास का वर्णन करेंगे।

हिन्दुस्थान में आजकल जो अनेक भाषायें प्रचलित हैं, उनमें

मराठी भाषा बड़ी महत्वपूर्ण है। यद्यपि उसके बोलनेवालों की संख्या हिन्दी या बंगला बोलनेवालों के बराबर नहीं है, तथापि साहित्य और महत्व की दृष्टि से बंगला के बाद वही अपना स्थान रखती है। हिन्दुस्थान की अन्य भाषायें जिस प्रकार उत्पन्न हुईं, उसी प्रकार मराठी भी हुई। आजकल की देशी भाषाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो मत प्रचलित हैं, वे मराठी-भाषा पर भी लागू होते हैं। एक पक्ष का कहना है कि आर्य लोग जब हिन्दुस्थान में आये तब वे संस्कृत बोलते थे, परन्तु यहाँ बहुत समय तक रहने पर उनकी भाषा में यहाँ के मूलनिवासियों की भाषा का मिश्रण होने लगा। स्थान-विशेष के अनुसार मिश्रण होने के कारण ये अपभ्रंश भाषायें 'शौरसेनी', 'मागधी', 'पैशाची' और 'महाराष्ट्री' नाम से प्रचलित हुईं। इनके सिवा यहाँ के लोगों की निजी बोलियाँ थीं ही। कदाचित इन्हींको आर्य लोग प्राकृत कहते थे और स्थान-विशेष के अनुसार 'पाली' आदि उनके नाम थे। आगे चलकर 'शौरसेनी', 'मागधी', 'पैशाची' और 'महाराष्ट्री' के भी अपभ्रंश हुए। उन्हींसे आजकल की प्रचलित भाषायें उत्पन्न हुईं। इसी प्रकार 'महाराष्ट्री' से 'मराठी' का जन्म हुआ।

मराठी-भाषा की उत्पत्ति

श्री राजवाड़े का मत है कि आर्य लोग जिस समय हिन्दुस्थान में आये उस समय 'वैदिक संस्कृत' तथा उसकी सहोदरा 'महाराष्ट्री' दोनों बोलते थे। उनमें जो विद्वान और सभ्य थे, वे पहली यानी वैदिक संस्कृत बोलते थे; परन्तु जो गँवार और बेपढ़े थे, वे महाराष्ट्री बोलते थे। इन दोनों की मूल भाषा 'पूर्व-वैदिक' थी।

श्री राजवाड़े का मत

परन्तु जिस समय आर्य दण्डकारण्य में बसे उस समय 'पूर्व-वैदिक' नामशेष हो गई थी और उसके स्थान में 'वैदिक संस्कृत' तथा 'महाराष्ट्री' प्रचलित हुई थीं। इसी 'महाराष्ट्री' से मराठी-भाषा उत्पन्न हुई।

इस सम्बन्ध में एक तीसरा मत और है। वह यह कि यहाँ के मूलनिवासियों की कुछ निजी सभ्यता और बोलियाँ थीं। आर्यों ने जब उन्हें जीता तब उनपर आर्यों की भाषा और सभ्यता का असर पड़ा। साथ ही, भाग-विशेष के अनुसार आर्यों की भाषा से 'शोरसेनी', 'मागधी' आदि भाषायें प्रचलित हुईं; और आर्यों की संगति से एक नई भाषा उत्पन्न हुई। इसीका 'प्रकट' किंवा 'पाअड़ी' या 'पाअली' अथवा 'पाली' नाम हुआ। इस भाषा की उत्पत्ति आजकल की उर्दू के समान हुई और उसे आर्य तथा अनार्य दोनों बोल व समझ सकते थे। बुद्ध ने इसी भाषा में अपना धर्म-प्रचार किया और वह धीरे-धीरे सारे देश में प्रचलित हो गई। मराठी का मूल भी इसी भाषा में है। इस पक्ष का यह भी कहना है कि आर्यों की मूल भाषा संस्कृत न थी। यह 'संस्कृत' भाषा पूर्व-भाषा का संस्कृत यानी संस्कार किया हुआ रूप है। इस नई भाषा का अथवा उसके अपभ्रष्ट रूप का यहाँ के महाराष्ट्र की भाषा से संसर्ग होने पर मराठी की उत्पत्ति हुई। यहाँ पर पहले 'रट्ट' नाम के राजा राज्य करते थे। 'रट्ट' का ही संस्कृत रूप 'राष्ट्र' बना। इनके राज्य का 'महाराष्ट्र' नाम हुआ। इस राष्ट्र की मूल भाषा 'महाराष्ट्री' हुई। आर्यों की भाषा के प्रभाव में आने पर इसीसे मराठी उत्पन्न हुई। अपने

एक अन्य मत

इस मत क समर्थन में इस पक्ष के लोग कहते हैं कि मराठी में कई शब्द ऐसे हैं कि जिनका मूल रूप संस्कृत में नहीं है। वे मूल में यहीं के हैं, उनका सम्बन्ध संस्कृत से नहीं जोड़ा जा सकता।

इतनी मत-भिन्नता के होते हुए यह बतलाना कठिन है कि मराठी की उत्पत्ति वास्तव में किस प्रकार हुई। यह तो स्पष्ट है कि आज की भारतीय भाषाओं की उत्पत्ति आर्यों और अनार्यों की भाषाओं के संसर्ग से हुई है। जबतक हमारे सामने भाषा-प्रवाह के भिन्न-भिन्न रूप नहीं आते तबतक यह निश्चय रूप से नहीं कह सकते कि इसका उद्गम संस्कृत से हुआ या यहाँ के मूलनिवासियों की बोली से हुआ। हमारी राय में उपर्युक्त तीसरा मत ही विशेष ठीक मालूम पड़ता है। बहुत-से शब्दों और रूपों के अस्तित्व को अन्यथा समझाना वास्तव में कठिन है। तथापि यह तो मानना ही होगा कि संस्कृत से मिलने-जुलने वाली भाषाओं का मराठी पर कुछ कम प्रभाव नहीं पड़ा है। हमारी समझ में यही बात अन्य भारतीय भाषाओं पर भी लागू होती है।

सम्भाव्य ठीक मत

महाराष्ट्री का परिवर्तन होते-होते उसका मराठी रूप कब हुआ, यह बतलाना कठिन है। तथापि अनुमान ऐसा होता है कि उसका भाषित रूप तीसरी या चौथी सदी में बना। इस अनुमान का यह मतलब नहीं कि इस समय इस भाषा में ग्रन्थ-रचना होने लगी, अथवा सभ्य लोग इसका उपयोग करने लगे। इस विषय में कुछ भी निश्चित

मराठी का निर्माण-काल

तौर से नहीं कहा जा सकता; क्योंकि इस समय का कोई भी लेख उपलब्ध नहीं है। हाँ, कुछ शिलालेखों से यह अच्छी तरह कहा जा सकता है कि बारहवीं सदी में आजकल के बम्बई-प्रान्त के बहुतेरे भाग में लिखने और बोलने में इस भाषा का आम तौर पर उपयोग होता था। दसवीं सदी का एक वाक्य मराठी में मिला है। इससे यह कह सकते हैं कि मराठी भाषा बोलने और लिखने वाले दसवीं सदी में भी काफ़ी थे। बात यह है कि उत्पत्ति के प्रारम्भ से बोलने और लिखने के उपयोग में आने के लिए पाँच-सात सौ वर्ष इसे अवश्य लगे। ग्यारहवीं सदी में चालुक्य-वंश के सोमेश्वर राजा का एक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर मराठी रूप और शब्द आये हैं और अन्त में कुछ पद्य भी हैं। इसके बाद के कुछ लेखों से ऊपर बताये अनुसार यह कह सकते हैं कि जन-साधारण की भाषा बारहवीं सदी तक मराठी हो गई थी, यद्यपि कुछ सभ्य लोग लिखने में संस्कृत भाषा का उपयोग अब भी करते थे। प्रसिद्ध भास्कराचार्य के पोते चाँगदेव ने अपने बाबा के ग्रंथ के पठन-पाठन के लिए एक मठ की स्थापना की थी। यादवराजा के माण्डलिक निकुम्भ-वंश के राजा सोइदेव और हेमाद्रिदेव ने चाँगदेव के मठ को जो दानपत्र दिया, वह अच्छी मराठी में है। इसी प्रकार अथवा इससे अधिक महत्व का बारहवीं सदी का एक दान-लेख मिला है। उसमें यादव-वंश के मुख्य प्रधान हेमाद्रि उर्फ़ हेमाड़पन्त के नाम का भी उल्लेख है। ऐसा अन्दाज़ है कि इसके कुछ ही वर्ष बाद ज्ञानेश्वर उर्फ़ ज्ञानदेव ने गीता-ग्रन्थ की प्रसिद्ध टीका लिखी, जिसका वास्तविक नाम भावार्थ-दीपिका है पर लेखक के नाम से उसका सर्व-प्रचलित नाम ज्ञानेश्वर हो गया।

है। ज्ञानेश्वर अपने को ज्ञानदेव और अपने ग्रन्थ को ज्ञानदेवी कहते हैं। सारांश यह है कि बारहवीं सदी में बोलने-लिखने में इस भाषा का महाराष्ट्र-भर में उपयोग होने लग गया था।

मराठी के निर्माण-काल का साहित्य

सम्भवतः पहला मराठी ग्रन्थ ग्यारहवीं सदी में श्रीपति का बना था। उसने रत्नमाला नाम का जो ज्योतिष-ग्रंथ संस्कृत में लिखा है, उसकी स्वयं उसीने मराठी में टीका भी लिखी। परन्तु खेद है कि उसकी भाषा का निजी रूप अब न रह गया, वह बदल कर आधुनिक हो गई है। इसलिए कुछ लोगों का ऐसा अनुमान है कि इस टीका को श्रीपति के बाद अन्य किसी ने लिखा। परन्तु इसके बाद के कवि मुकुन्दराज के मराठी ग्रन्थों की यह दशा नहीं हुई। इस कवि ने संस्कृत में 'परमार्थ-तत्त्वबोध' अथवा 'महाभाष्य' नामक ग्रंथ लिखा है और मराठी में 'विवेक सिन्धु' 'पवन विजय' 'मूलस्तम्भ' 'परमामृत' और 'पंचीकरण' नामक पाँच ग्रंथ लिखे कहे जाते हैं। उनमें से 'मूलस्तम्भ' तो साफ़ तौर पर दूसरे किसी का समझा जाता है, और 'परमामृत' के विषय में भी यही शंका है। इस कवि का 'विवेक-सिन्धु' ग्रन्थ विशेष प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ में इसने अपनी गुरु-परम्परा बताई है। यह कवि कहाँ हुआ, इसके विषय में एक मत नहीं है, तथापि अनेक बातों से ऐसा कह सकते हैं कि यह कवि नागपुर, भण्डारा, छिन्दवाड़ा या बैतूल ज़िले में कहीं हुआ। इस कवि का काल बारहवीं सदी का उत्तरार्ध जान पड़ता है। इसके बाद के मराठी लेखकों में हेमाद्रि और चाँगदेव के नाम उल्लेखनीय हैं।

यह पहले बता ही चुके हैं कि यह यादव-वंश के महादेव और रामदेव का मुख्य प्रधान था। इसके धर्म-सम्बन्धी कार्यों का वर्णन हम पहले कर चुके हैं। इसीको मोड़ी-लिपि के प्रचार का श्रेय देते हैं। इसने कई ग्रंथ लिखे या लिखवाये, उनमें से 'लेखन-कल्पतरु' नाम का ग्रन्थ मराठी में विशेष प्रसिद्ध है। इसमें यह बताया है कि किसे किस प्रकार कैसे लिखना चाहिए। लेखन के अनेक नमूने भी दिये गये हैं। जिस पुरुष ने 'चतुर्वर्ग-चिन्तामणि' नामक ग्रन्थ तैयार किया उसने 'लेखन-कल्पतरु' नामक ग्रन्थ लिखा, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। परन्तु खेद है कि हेमाद्रि का असली ग्रंथ अब मिलता नहीं। तथापि यह कई बातों से स्पष्ट है कि हेमाद्रि के ग्रन्थ का दूसरों ने उपयोग किया है। हेमाद्रि का काल तेरहवीं सदी का उत्तरार्ध है। बोपदेव नाम का प्रसिद्ध विद्वान उसका सहयोगी था। इसके बाद के ग्रन्थों में 'मानभाव' पंथ के ग्रंथों का उल्लेख हो सकता है। इस पंथ का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। इसके ग्रंथ साङ्केतिक ढंग से लिखे गये थे। सम्भवतः वे तेरहवीं सदी में बने थे। इसलिए उस समय की भाषा और स्थिति के निदर्शन की दृष्टि से उनका बड़ा महत्व है। उनकी भाषा में मुसलमानी प्रभाव बहुत कम देख पड़ता है और उनके शब्दों के रूप ज्ञानेश्वरी के काल अथवा उसके पहले के काल के जान पड़ते हैं। इसलिए भाषा का इतिहास जानने के लिए वे बड़े उपयोगी हैं। क्योंकि उनमें शब्दों के प्राचीन रूप, प्राचीन सर्वनाम, प्राचीन विभक्ति, प्रत्यय आदि बहुत भरे पड़े हैं।

तेरहवीं सदी के उत्तरार्ध में ज्ञानेश्वर उर्फ़ ज्ञानदेव नाम का जो साधु पुरुष हुआ, जिसने गीता पर 'भावार्थदीपिका' उर्फ़

'ज्ञानेश्वरी' या 'ज्ञानदेवी' नामक टीका लिखी, उसका उल्लेख ऊपर करही चुके हैं। इसका जन्म सन् १२७५ में, आलंदी नामक स्थान में, हुआ। इसकी माता का नाम रखभाबाई और पिता का नाम विट्ठलपन्त था। विट्ठलपन्त ने विवाह होने पर संन्यास-दीक्षा लेली थी, पर बाद में फिर से गृहस्थाश्रम स्वीकार किया। इसके तीन लड़के और एक लड़की हुई। उनके नाम ये हैं निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर, सोपानदेव और मुक्ताबाई। ये सब बालपन से ही विरक्त, विट्ठलभक्त और ज्ञानी थे। ब्राह्मणों ने इन्हें संन्यासी के बच्चे कहकर जातिच्युत कर दिया था और लड़कों के व्रतबन्ध न किये थे। परन्तु पैठण में ज्ञानेश्वर ने अद्भुत चमत्कार दिखलाये, उनके कारण ब्राह्मणों का विश्वास हो गया कि ये लड़के साधारण न होकर दैवी अंशों से पूर्ण हैं। इसलिए उन्होंने इन्हें शुद्धि-पत्र दिया और क्षमा माँगी। ज्ञानेश्वर ने थोड़े ही काल में 'ज्ञानेश्वरी', 'अमृतानुभव', 'स्वात्मानुभव', 'भक्तराज', 'योगवाशिष्ठ,' 'पंचीकरण' 'पासष्टी' आदि अनेक ग्रंथ तथा भक्तिपूर्ण, वैराग्यपूर्ण और ज्ञानपूर्ण उत्तम अभंग लिखे हैं। इस कवि की भाषा सरस है और उपमा, रूपक, दृष्टान्त आदि अलंकारों से परिपूर्ण है। वर्णन शैली इतनी उत्तम है कि वर्ण्य विषय का अर्थ पाठकों की दृष्टि के सामने मूर्त्तिमान देख पड़ता है। इस कवि का ग्रंथ 'ज्ञानेश्वरी' इसके सब ग्रंथों में बहुत अधिक प्रसिद्ध है। गीता की यह टीका मराठी में अपने ढंग की अकेली है। एक विवेचक ने लिखा है कि 'जिस विषय का आकलन केवल मन से हो सकता है, उसका वर्णन इस कवि ने शब्दों में मूर्त्तिमान कर दिया है।

ज्ञानेश्वर उर्फ़ ज्ञानदेव

इसकी भाषा अमृत से भी मीठी है। शब्द इतने सरस हैं कि उनसे कानों को जीभ पैदा हो सकती है और प्रत्यक्ष पिशाच के मन में भी सात्विक भाव उत्पन्न हो सकते हैं। इसकी उत्तमोत्तम उपमाओं को देखकर आँखें कृतार्थ हो सकती हैं और अलंकार-शास्त्र को नये अलंकार प्राप्त हुए से जान पड़ते हैं।' इससे अधिक इस ग्रंथ के विषय में क्या कहा जाय ? फिर आश्चर्य की बात यह है कि ज्ञानेश्वर ने यह ग्रंथ अपनी आयु के पन्द्रहवें वर्ष में रचा था। इस कवि का 'अमृतानुभव' भी यथेष्ट अच्छा ग्रंथ है, पर वह छोटा है और ज्ञानेश्वरी से कठिन होने के कारण उसकी ख्याति अधिक न हुई। तथापि कवि के सब अच्छे गुण उसमें भी विद्यमान हैं। इस ग्रंथ पर संस्कृत और मराठी में अनेक टीकायें लिखी गई हैं।

ज्ञानेश्वर महाराज के समान ही उनकी बहन और दो भाई विद्वान और विरक्त थे। उनके नाम हम ऊपर बताही चुके हैं।

ज्ञानेश्वर के भाई और बहन की साहित्य-सेवा

निवृत्तिनाथ ने 'निवृत्तिसार' नामक ग्रंथ लिखा था। सोपानदेव ने 'पंचीकरण', 'हरिपाठ', 'नमन' इत्यादि छोटे-छोटे ग्रंथ तथा गीता पर 'सोपानदेवी' नामक टीका लिखी। इनकी एकमात्र सबसे छोटी बहन मुक्ताबाई भाइयों के समान ही विरक्त और विदुषी थी। मराठी भाषा की पहली कवयित्री होने का मान उसीको है। वह आजन्म कुमारी रही। उसने कई अभंग, पद और 'कल्याण पत्रिका' व 'हरिपाठ' नामक ग्रंथ लिखे। ये सब रचनायें बड़ी मीठी हैं और स्त्रियों के कोमल स्वभाव की छाया उनमें अच्छी देख पड़ती है। सूर्यो-

दय के पहले पक्षियों की चहचहाहट सुनकर जो आनंद होता है वही इसके अभंगों से होता है। चौदह-पंद्रह वर्ष की लड़की की रचना देखकर मन आश्चर्य से मुग्ध हो जाता है। यह भी अपने भाइयों के समान छोटी ही उम्र में इस जगत से चल बसी। निवृत्तिनाथ ने २६ वें साल में और ज्ञानदेव ने २२ वें साल में समाधि ली, सोपानदेव की २० वें साल में और मुक्ताबाई की १८ वें साल में मृत्यु हुई। इतनी छोटी उम्र में इन भाई-बहन ने अपूर्व साहित्य-रचना की और अध्यात्म-ज्ञान का सतत स्रोत महाराष्ट्र में बहा दिया।

तेरहवीं सदी के अन्य कवियों में चाँगदेव और नामदेव विशेष प्रसिद्ध हैं। चाँगदेव का नाम तो बहुत प्रसिद्ध है, पर उसके

तेरहवीं सदी के अन्य कवि

ग्रंथ अबतक बहुत थोड़े मिले हैं। संस्कृत में 'योगेन्द्र चिन्तामणि' और मराठी में उत्तर-पंचविशी (उत्तर-पचीसी), एक आरती और बीस-पचीस अभंग इसके मिले हैं। इनके सिवा कई अन्य रचनायें इसके नामसे प्रसिद्ध हैं, पर उनकी भाषा बिलकुल अर्वाचीन है। इस काल का इससे अधिक प्रसिद्ध कवि और भगवद्भक्त नामदेव था। यह जाति का दर्जी था। इसका जन्म सन् १२७० में हुआ। पहले यह गृहस्थाश्रमी था, पर दामादों ने बहुत कष्ट दिये, इसलिए इसने घर-द्वार छोड़ दिया। इसने विसोबा खेचर नामक साधु पुरुष को गुरु बनाया और उसीसे कविता रचने की विद्या भी सीखी। नामदेव का कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है, परन्तु उसके बनाये सैकड़ों अभंग प्रसिद्ध हैं। इनके बनाने में उसे बहुत ही परिश्रम करना पड़ता था।

वह बोलते-चालते अभंग बनाता था। और बाहर, चलते-फिरते, सब समय वह भजन करता और मुँह से अभंग कहता जाता था। विट्ठल का वह निःसीम भक्त था और उसकी कविता में सहृदयता बहुत अधिक है। इस कारण उसके सहवास में किसी को भी आनन्द आता था। नामदेव के जितने कुटुम्बी-जन थे,वे सब विट्ठल-भक्त और कवि थे। जनाबाई नाम की लड़की नामदेव को चंद्रभागा नदी की रेत में मिली थी। इसने उसका अच्छा पालन-पोषण किया और वह आजन्म नामदेव के कुटुम्ब में रही। नामदेव के रंग में वह भी पूरी-पूरी रंग गई थी। तुकाराम ने कहा है कि इसने साढ़े बारह करोड़ अभंग बनाये। इतना तो सत्य है कि यह भी नामदेव के समान सदैव अभंगों में भजन किया करती थी। इसका 'द्रौपदी-वस्त्र-हरण' नामक ग्रंथ प्रसिद्ध है। मुक्ताबाई के समान इसकी भी भाषा मीठी और सरस है। नामदेव के लड़के और उनकी स्त्रियाँ भी अभंग-रचना किया करती थीं। कहते हैं कि नामदेव ने 'शत-कोटि' अभंग रचने की प्रतिज्ञा की थी, इस कारण वह सदैव इसीमें लगा रहता था। तुकाराम ने उसके सब कुटुम्बियों की अभंग-रचना की जो गणना दी है, उससे भी शत कोटि अभंग नहीं होते। तथापि इतना तो निश्चित है कि नामदेव और उसके कुटुम्बीजनों ने सैकड़ों अभंग रचे। इस समय नामदेव के नाम से क़रीब दो हज़ार, जनाबाई के नाम से क़रीब चारसौ और अन्य लोगों के नाम से दो-ढाई सौ अभंग प्रसिद्ध हैं। नामदेव की कविता और भक्ति-भावना की इतनी प्रसिद्धि हो गई थी कि 'भक्तमाला' के रचयिता नाभाजी ने नामदेव के चरित्र का अपने

ग्रंथ में वर्णन किया है। नामदेव के समय के अन्य भगवद्भक्तों में विसोबा खेचर, परिसा भागवन, साल्या रसाल, कान्हो पाठक, साँवना माली, जगमैत्र नागा, नरहरि सोनार, शामा कासार, गोरा कुम्हार, बंकामहार, चोखामेला, काशिबा गुरव, जोगा परमानंद, सुदेव काइत आदि प्रसिद्ध हैं। इन सबने कविता की है। यह ध्यान में रखने की बात है कि इनमें से कुछ शूद्र जाति के थे। इनकी बहुत कम रचनायें प्राप्य हैं; और जो प्राप्य हैं, उनमें भाषा के हेरफेर बहुत हो गये हैं। परन्तु इन कवियों की रचनाओं का स्वरूप, इनका भाषा-माधुर्य और विचार-शैली का स्पष्ट पता चल सकता है। ये सब रचनायें भक्ति-भाव से परिपूर्ण हैं और इनकी भाषा मीठी तथा कोमल है। इसमें कोई आश्चर्य भी नहीं, क्योंकि ये सब कवि अत्यन्त सात्विक मनोवृत्ति के तथा अच्छे ऊँचे दर्जे के भगवद्भक्त थे। इनकी रचनायें हृदय से निकलती थीं। उनमें प्रेम परिपूर्ण था। ये अपनी वाणी से अमृत-सिंचन करते तथा द्वैत-भाव नष्ट करते थे। ये कट्टर वैष्णव और प्रतिवर्ष पंढरपुर की यात्रा करते, हरि-नाम का घोष करते तथा सन्तोष-वृत्ति से रहते थे; और यही उपदेश ये दूसरों को दिया करते थे। लोभ, मत्सरादि विकार इन्हें छू भी न गये थे। वर्णसंकर करने को ये न कहते, पर जाति-भेद पर ज़ोर न देते थे। ये यही मानते थे कि देव के पास भाव का ही महत्व है, जाति का नहीं। "जाकी रही भावना जैसी, प्रभु-मूरति देखी तिन तैसी" का भाव इनमें खूब भरा था; इसका कारण वह इनके समस्त उद्‌गारों में देख पड़ता है। इन्हीं जैसे लोगों ने महाराष्ट्र में भागवत-धर्म

और भक्ति-मार्ग का प्रसार किया और विश्वबन्धुत्व की भावना तथा धर्म-जागृति उत्पन्न की। इसका क्या परिणाम हुआ, यह हम प्रारम्भ में बता ही चुके हैं।

चौदहवीं और पन्द्रहवीं सदी के कवि

चौदहवीं सदी में 'बहिरापिसा' का नाम बार-बार आता है। पत्नी ने इसे अनेक कष्ट दिये, इसलिए घर-द्वार छोड़ कर यह संन्यासी हो गया था। इसने श्री भागवत के दशमस्कन्ध की टीका लिखी है। यह बहुत ही उत्तम है। मराठी के प्रसिद्ध कवि श्रीधर स्वामी ने अपनी टीका इसी कवि की टीका के आधार पर लिखी है। बहिरापिसा की टीका तबसे अबतक महाराष्ट्र में प्रसिद्ध है। उसे पढ़कर भावुक लोगों को तो सुख होगा ही, पर अभावुकों को भी आनन्द मिले बग़ैर न रहेगा। निर्मल पाठक नामक कवि ने पंचतंत्र का अनुवाद किया। नामा पाठक ने छोटे-छोटे अनेक ग्रन्थों के सिवा 'अश्वमेध' नामक एक बड़ा भारी ग्रन्थ लिखा, पर वह कई कारणों से विशेष प्रसिद्ध न हो सका इस काल के महालिंगदास ने भी पंचतंत्र का मराठी में अनुवाद किया। यह भी मराठी के 'ओवी' नामक छंद में लिखा है। इसके सिवा इस कवि की बेताल-पञ्चविसी (बेताल-पच्चीसी) और सिंहासन बत्तीशी (सिंहासन-बत्तीसी) नामक दो छोटी-छोटी पुस्तकें भी हैं। चोंभा नामक कवि भी इसी समय हुआ है। इसने 'उषा-हरण' नामक काव्य लिखा, पर वह पूरा नहीं मिल सका है। विनोदराम को भी इसी काल का गिनते हैं। इसने गीता की ओवीबद्ध टीका लिखी है। मैराल सतीदास नामक कवि ने 'द्रोणपर्व' लिखा है, पर वह पूरा नहीं है। इसकी कविता

ज्ञानेश्वर की कविता के समान जान पड़ती है। इसी काल के लेखकों में पातालकाण्ड लिखने वाले कान्हो विमलदास, भागवत के दशमस्कन्ध पर ओंवीबद्ध टीका लिखने वाले भास्कर, तथा शैल्य व स्वर्गारोहण पर्व पर विचित्र कथायुक्त रचना लिखने वाले नवरसनारायण का उल्लेख करना आवश्यक है।

चौदहवीं सदी तक मुसलमानों का विशेष प्रभाव मराठी भाषा पर न हो सका। पर इस सदी में दक्षिण में मुसलमानों के राज्य स्थापित हुए, उससे मराठी में मुसलमानों की फ़ारसी आदि भाषाओं के शब्द मिलने लगे। इस संसर्ग के पहले ही मराठी से हिन्दी और कानड़ी का संसर्ग हो चुका था और इन भाषाओं के शब्द मराठी में शामिल होने लगे थे मुसलमानों के संसर्ग का परिणाम बहुत अधिक हुआ। इसका यह मतलब नहीं कि इस संसर्ग के पहले अथवा हिन्दी या कानड़ी के संसर्ग के परिणामों के सिवा मराठी में परिवर्तन न हुए या न होते थे। भाषा वास्तव में नदी के समान है। वह धीरे-धीरे आपही आप बदलती जाती है। तथापि वह किस स्थान पर बदली, यह बतलाना बहुधा कठिन होता है। हाँ, कहीं-कहीं पर इतना परिवर्तन हो जाता है कि परिवर्तन को स्पष्टतया देख सकते हैं। पहले का परिवर्तन स्वाभाविक था—वह किसी संसर्ग-विशेष का परिणाम न था; पर मुसलमानों की भाषा का प्रभाव बहुत कुछ विशिष्ट प्रकार का हुआ। मुसलमानी प्रभाव का एक परिणाम यह भी हुआ कि साहित्य के विकास और वृद्धि की गति बहुत-कुछ रुक गई। मुसलमानों की विध्वंसवृत्ति का परिचय सारे भारतवर्ष को एकसाही मिला है।

भाषा-परिवर्तन

दक्षिण भारत इस वृत्ति से अछूता न रह सका। मुसलमानों ने यहाँ भी अपने धर्म, अपनी भाषा और अपनी रीति-भाँति को ज़बरदस्ती से फैलाने का प्रयत्न किया। ग्रन्थों और देवालयों का विध्वंस करना तथा तलवार के बल पर गाँव के गाँव अपने धर्म में दीक्षित करना उनका मामूली काम था। दक्षिण में भी ये बातें थोड़ी-बहुत हुईं। इनके सामने सन्त-मण्डल का ज़ोर फीका पड़ गया और सरकारी काम पहले-पहल फ़ारसी में होने लगा। स्वतंत्रता का विनाश होने पर बहुत-से लोगों को विजेताओं की बातें ऊँचे दर्जे की जान पड़ती ही हैं। अपने शक्ति-काल में अंग्रेज़ शासकों का हमारे जीवन पर कितना परिणाम हुआ है, इसीसे जान सकते हैं कि ज़बरदस्त का ठेंगा सिर पर करने वाले मुसलमानों का प्रभाव कितना पड़ा होगा। भाषा पर कितना प्रभाव पड़ा, यह जानना हो तो उस काल का निम्नलिखित नमूना पढ़िए—

अज रखतखाने राज श्री बाबाजी राजे भोसले दामदौलतहू बिजानेबु कारकुनानी हाल व इस्तकबाल व मोकदमानो कसबे पेड़ गाँऊ पग पाड़े पेड़ गाँऊ बिदानद सुग समान तिसैन व तिसा मया दर अज इनाम बदल धर्मादाऊबो।

उपर्युक्त उद्धरण में मराठी-पन कितना है, यह महाराष्ट्रेतर भी जान सकते हैं। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि यह एक मराठे को लिखे पत्र में से ही लिया गया है। यह प्रभाव शहरों में और वहाँ के पुरुषों पर ही विशेष दीख पड़ता था। यह स्पष्ट ही है कि देहातों में तथा महाराष्ट्र की स्त्रियों पर मुसलमानी भाषा का प्रभाव बहुत कम पड़ा। इतना ही नहीं किन्तु सरकारी क़ाग़ज़-

पत्र, दरबारी पत्र-व्यवहार और लेख तथा 'सभ्यों' के पत्र-व्यवहार को छोड़कर अन्य व्यवहारों में फ़ारसी का प्रभाव न पड़ा। घरू बातों में तथा धर्म-ग्रन्थों में मराठी बहुत-कुछ अपने मूलरूप में व्यवहृत होती थी। पन्द्रहवीं सदी के उत्तरार्ध में विट्ठल गलांडू नामक वैद्य ने 'रसरत्नदीप' नामक ग्रन्थ ओंवी छंद तथा गद्य में लिखा। यह ग्रन्थ शुद्ध मराठी में है। इस प्रकार मुसलमानी प्रभाव महाराष्ट्र में फिर से मराठा-राज्य स्थापित होने तक बना रहा। तथापि संख्या की कमी के कारण पहले बतलाये अनुसार सरकारी और दरबारी बातों में तथा सभ्य-व्यवहार में फ़ारसी का स्थान धीरे-धीरे मराठी का लेना मुसलानी काल में ही शुरू हो गया था। हिन्दुओं की संख्या, सभ्यता तथा धर्मभ्रष्ट हिन्दुओं का प्रभाव मुसलमानों पर खूब पड़ा। इस कारण धीरे-धीरे मुसलमानों की निजी भाषा में मराठी के शब्दादि घुस पड़े।

पन्द्रहवीं सदी के अन्त में अपने ज्ञान और कर्तव्य के बल पर जो दो सत्पुरुष महाराष्ट्र में विशेष प्रसिद्ध हुए, वे नृसिंह सरस्वती और जनार्दन स्वामी हैं। नृसिंह सरस्वती की कोई रचना अभीतक उपलब्ध नहीं हुई। तथापि इनके एक शिष्य ने 'गुरु-चरित्र' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ के लेखक का नाम सरस्वती गंगाधर है। यह ग्रन्थ रचना की दृष्टि से अच्छे ऊँचे दर्जे का नहीं है, तथापि दत्त-भक्तों के लिए इसके सिवा कोई अन्य ग्रन्थ न होने के कारण यह महाराष्ट्र में बहुत पूज्य समझा जाता है। इसी कारण यह अजरामर भी हो गया है और इसका संस्कृत में भी अनुवाद हो चुका है। नृसिंह सरस्वती

नृसिंह सरस्वती और जनार्दन स्वामी

के समान जनार्दन स्वामी भी बड़े भारी सत्पुरुष हो गये हैं। लोगों में ऐसी मान्यता है कि स्वयं दत्तात्रय ने इन्हें मंत्रोपदेश दिया था। यह देवगिरी के क़िले में क़िलेदार के मुंशी का काम करते थे और ईश्वर-चिन्तन में मग्न रहते थे। इस प्रकार के दो मालिकों की सेवा करना टेढ़ी खीर है, पर इस सत्पुरुष ने दोनों काम निभाये। इनके बनाये कुछ अभंग और पद मिले हैं। इनके सिवा अन्य कोई रचना नहीं मिलती; हाँ, लोगों की ऐसी धारणा है कि 'श्रीदत्तस्तुति' पर इन्होंने एक ग्रन्थ लिखा है। पर वह अबतक उपलब्ध न हो सका। इन दो सत्पुरुषों ने यद्यपि स्वयं कोई विशेषरचना नहीं की, पर अपने उपदेश और आचरण से उन्होंने महाराष्ट्र पर तथा अपने शिष्यों पर इतना प्रभाव डाला कि उनके इस प्रभाव से ही अनेक संत कवि उनके पश्चात पैदा हुए। इसीलिए इन सत्पुरुषों के नामों का हमने यहाँ उल्लेख किया है।

जनार्दन स्वामी के शिष्य-वृंद में एकनाथ कवि बहुत प्रसिद्ध है। यह बचपन से भगवद्भक्त और बुद्धिमान था। इसने अपने

एकनाथ-पंचक

गुरु जनार्दन स्वामी के पास ज्ञानेश्वर महाराज की ज्ञानेश्वरी और अमृतानुभव नामक ग्रंथों का पठन किया। इन ग्रंथों का, गुरु का तथा बचपन की भगवद्भक्ति का असर इसके सारे जीवन तथा ग्रंथों पर पड़ा है। कहते हैं कि गुरु के कहने से इसने चतुःश्लोकी भागवत पर टीका लिखी। यह ग्रंथ बहुत ही अच्छा बना है और बहुत लोकप्रिय है। इसके बाद इसने एकादशस्कंध पर टीका लिखी। यह ग्रंथ उसी समय अच्छा प्रसिद्ध हो गया था। तबसे

अबतक वह वैसा ही लोकप्रिय है। भागवत के बाद एकनाथ ने 'रुक्मिणी स्वयंवर' लिखा। इस ग्रंथ में भी लेखक ने वेदांत को गूंथ डाला है। इसने जो दूसरे पौराणिक कथात्मक छोटे-छोटे ग्रंथ लिखे वे ' बाल क्रीड़ा, ' प्रह्लाद चरित्र ' तथा 'शुकाष्टक' हैं। ' स्वात्मसुख ' नामक छोटा ग्रन्थ शुकाष्टक के आधार पर लिखा। तदनन्तर ' आनंद-लहरी, ' ' अनुभवानंद, ' शङ्कराचार्य के हस्तामलक पर टीका, 'चिरंजीवपद,' 'गीतासार,' 'मुद्राप्रकाशक' आदि वेदांतपूर्ण अद्वैत मत-प्रधान ग्रन्थ लिखे हैं। इनके सिवा इस कवि के कई पद्य, चुटकले, अभङ्ग आदि भी हैं। परन्तु इसने एक और जो भारी काम किया, वह 'ज्ञानेश्वरी' का सम्पादन है। अनेक प्रतियाँ प्राप्त कर उसने यह काम किया। इस कवि ने अपने अंतिम काल में 'भावार्थ रामायण' नामक ग्रंथ लिखने का प्रयत्न शुरू किया, पर उसे यह पूर्ण न कर सका। उसे पूर्ण करने का काम इसके शिष्य गावबा ने किया। वह भी अपने गुरु के समान विद्वान था। इसी कारण उससे यह काम अच्छी तरह हो सका।

एकनाथ के समकालीन और अत्यंत सहवास में रहने वाले चार साधु प्रसिद्ध हैं। उनके नाम हैं—(१) विठारेणुकानंदन, (२) जनीजनार्दन, (३) रामाजनार्दन, और (४) दासोपन्त। इनमें से विठारेणुकानंदन देवी-भक्त था। इसके कुछ पद्य मिले हैं। जनीजनार्दन वास्तव में जनता का जनार्दन था। इसने बीजापुर की नौकरी में रहते समय अकाल पड़ने पर सरकारी द्रव्य लोगों को बाँट दिया। इसने 'महावाक्य विवरण' और 'निर्विकल्प ग्रन्थ' नामक दो पुस्तकें लिखी हैं। दोनों ग्रन्थों

में अध्यात्मशास्त्र का विवेचन है। इस कवि ने कुछ पद्य भी लिखे हैं। इन दोनों से दासोपन्त विशेष प्रसिद्ध था। यह वेदर के सुलतान की नौकरी में था। एक समय वसूली समय पर न पहुँच सकी, इसलिए सुलतान ने मुसलमान बनाने की धमकी थी। परन्तु परमेश्वर की कृपा से वह अपनी वसूली अदा कर सका। फिर वह विरक्त हो गया। इसने छोटे-बड़े अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। अकेली गीता पर ही इसने पाँच-छः टीकायें लिखी हैं। इनमें से 'गीतार्थ-बोध-चन्द्रिका' अच्छा बड़ा ग्रन्थ है। 'गीतार्णव' इससे भी बड़ा है। इसमें सवालाख छन्द हैं। अकेले अठारहवें अध्याय में सोलह हजार छन्द हैं। कहा जाता है कि इस ग्रन्थ की रचना में इसे बीस साल लगे। यद्यपि यह 'ज्ञानेश्वरी' की बराबरी नहीं कर सकता, तथापि यह भी काफ़ी अच्छा ग्रन्थ है। इससे सब प्रकार के ज्ञानेच्छु लोगों का मनोरंजन और समाधान हो सकता है। उपर्युक्त ग्रन्थों के सिवा 'अवधूत राज', 'ग्रंथराज', और 'वाक्यवृति' नामक वेदान्त ग्रंथ इसने और लिखे हैं। इनमें से 'वाक्यवृत्ति' गद्य में है। इसने 'पंचीकरण' नामक अपना ग्रंथ ढाई हाथ चौड़ी खादी पर लिखा है। इन ग्रंथों के सिवा कई संस्कृत ग्रन्थ, दशोपनिषदों पर लिखे भाष्य, उपनिषदर्थ-प्रकाश, स्तोत्र आदि भी हैं। इसके अनेक पद्य भी मिले हैं। ऐसी कल्पना है कि इनके सिवा भी इसके कुछ और ग्रन्थ होंगे। इससे इस पुरुष की विद्वत्ता और परिश्रमशीलता का अच्छा पता लगता है। ऐसा कहते हैं कि इसे रोज दो पैसे की स्याही अपने लेखन-कार्य के लिए खर्च करनी पड़ती थी। इसकी भाषा शुद्ध और दोष-रहित है। एकनाथ-पंचक में से

पाँचवाँ पुरुष रामा जनार्दन है। इसकी रचनायें बहुत थोड़ी मिली हैं। उनमें कुछ 'आरतियाँ' मुख्य हैं।

एकनाथ के समय में कुछ और कवि भी हुए हैं। उनमें से विष्णुदास, भोजलिंग, मृत्युञ्जय स्वामी, विट्ठलनंदन, माधवदास, माधवदास उर्फ त्र्यम्बकराज, कृष्णदास, सिद्धपाल केसरी, कृष्ण याज्ञवल्की, रंगनाथ मेरु कवि, निरंजन, विट्ठल आदि नाम उल्लेख योग्य हैं। विष्णुदास नाम का कवि सोलहवीं सदी के अखीर में हुआ। इसने संपूर्ण महाभारत की रचना की है। मराठी में पूरे अठारह पर्व महाभारत लिखनेवाला यह पहला ही कवि था। इसकी वर्णन-शैली सरस और मधुर है। इसके कुछ पद्य भी हैं, पर ज्ञानेश्वर-कालीन नामदेव के पद्यों से इतने मिल गये हैं कि उनको अलग करना कठिन काम है, क्योंकि यह भी अपने को 'नामा' अथवा नामा विष्णुदास लिखा करता था। भोजलिंग ने 'महात्मसार' नामक ग्रन्थ लिखा है। मृत्युंजय स्वामी संभवतः पहले मुसलमान और बेदर के राजघराने का था। इसकी रचनायें बहुत हैं। उनमें से (१) अनुभवसार, (२) गुरुलीला, (३) अमृतसार, (४) अद्वैत प्रकाश, (५) सीता बोध, (६) पंचीकरण, (७) स्वरूप समाधान और (८) सिद्धान्त-संकेत प्रबन्ध उपलब्ध हुए हैं। इनके सिवा कुछ अभंग आदि भी हैं। विट्ठलनंदन एकनाथ से कुछ बड़ा था। इसने 'सप्तसती-चण्डिका' नामक ग्रन्थ लिखा। देवीभक्तों में यह ग्रंथ बहुत लोकप्रिय हुआ है। माधवदास अच्छे ऊँचे दर्जे का कवि था। इसने अनेक ग्रंथ लिखे, पर अभी दो ही मिले हैं। वे हैं भग-

एकनाथ-काल के अन्य कवि

वद्गीता की टीका और योगवासिष्ठसार । त्र्यम्बकराज ने अध्यात्म विषय को सरल ढंग से बनाने के विचार से 'बालबोध' नामक ग्रन्थ रचा; और वास्तव में यथासंभव इस विषय को उसने सरल और मनोरंजक बनाने का प्रयत्न किया है। सिद्धपाल केसरी ने 'मकारी-माहात्म्य' नामक ग्रंथ रचा। इसका समकालीन कृष्णदास नामक कवि महाराष्ट्र में विशेष प्रसिद्ध था। इसने रामायण का युद्धकाण्ड मराठी भाषा में लिखा है। इसी कवि को संभवतः कृष्णदास मुद्गल भी कहते हैं। यह हम पहले ही बता चुके हैं कि महाराष्ट्र के क़िलों में इसके युद्धकाण्ड का पारायण बहुत होता था। इसी कवि के समय एक और कृष्णदास था। इस कृष्णदास ने महाभारत की कथाओं के आधार पर कई छोटे-छोटे ग्रंथ लिखे हैं। संभवतः इसका वास्तविक नाम 'विश्वनाथ' था। उसके अभिमन्यु-विवाह नामक ग्रंथ में इसीका उल्लेख है। इन दो कृष्णदासों के सिवा एक और कृष्णदास इनके कुछ ही बाद हुआ। उसने 'बालक्रीड़ा' रची। इन तीन कृष्णदासों के सिवा कृष्ण नामक एक कवि महाराष्ट्र में बहुत प्रसिद्ध है। इसे 'कृष्ण याज्ञवल्की' कहते थे। इसने 'देवी माहात्म्य' और 'कथा-कल्प-तरु' नामक ग्रंथ लिखे। इन ग्रंथों के विषय उनके नामों से ज्ञात हो सकते हैं। रंगनाथ ने गीता पर 'चित्सदानंद लहरी' नामक टीका लिखी। इसके सिवा 'योगवासिष्ठ' और 'पंचरत्न' नामक ग्रन्थ भी इसने रचे। इसके पुत्र के शिष्य विश्वनाथ ने 'उपदेश रहस्य' लिखा। मेरु कवि ने अवधूत गीता पर टीका लिखी और निरंजन नामक साधु पुरुष ने गणेश गीता पर टीका लिखी। यह याद रहे कि रामदास-कालीन निरंजन स्वामी से उपर्युक्त निरंजन भिन्न

पुरुष था। विट्ठल कवि की रचना 'रास क्रीड़ा' है। यह संस्कृत के अक्षर छन्दों में हैं। इससे यह स्पष्ट है कि प्रसिद्ध वामन पण्डित के बहुत पहले संस्कृत के छन्दों का उपयोग मराठी में होने लग गया था।

एकनाथ के समकालीन कवियों के सम्बन्ध में लिखने के पहले उसके नाती मुक्तेश्वर के सम्बन्ध में लिखना आवश्यक है क्योंकि यह उन अन्य कवियों से बहुत श्रेष्ठ दर्जे का कवि था। मुक्तेश्वर एकनाथ की लड़की का पुत्र था, और अपने नाना से ही विद्या और ग्रंथ-रचना का प्रेम उसने पाया था। लोगों का ऐसा खयाल है कि मुक्तेश्वर ने बहुत-सा लेखन-कार्य किया होगा, पर खेद है कि उसमें से बहुत थोड़ा अबतक मिल सका है। उसने ज्ञानेश्वर, एकनाथ आदि की आरतियाँ तुलसी, पांडुरंग, दत्तात्रय आदि के स्तोत्र और उसी प्रकार कुछ अभंग और पद रचे हैं और इन छोटी-छोटी रचनाओं में भी उसकी कुशलता और शैली देख पड़ती है। हमें यह बतलाना कठिन है कि उसकी कौनसी रचना पहले की है और कौनसी बाद की। तथापि उसके रामायण नामक ग्रन्थ को पढ़ने से ऐसा मालूम पड़ता है कि यह ग्रन्थ उसने कदाचित पहले-पहल रचा होगा। इस ग्रंथ की कविता बिलकुल साधारण है। मुक्तेश्वर की वास्तविक प्रतिभा उसके महाभारत नामक ग्रन्थ में देख पड़ती है। मुक्तेश्वर के सृष्टि-सौन्दर्य के वर्णन और किसी के मनोविकार का हावभाव सहित वर्णन बहुत ही आकर्षक है। उसकी वाणी ऐसी मोहक है कि उसे सुनकर श्रोता वर्णित विषय या दृश्य से आत्मरूप हो जाता है। उसे ऐसा मालूम

मुक्तेश्वर

होने लगता है कि मैं वर्णित विषय का प्रत्यक्ष अनुभव पा रहा हूँ। और मज़ा यह कि कवि एकबार एक ही मनोविकार का वर्णन नहीं करता, किन्तु वह अपने वर्णनों में अनेक रसों का मिश्रण करके पाठकों के मन में अनेक विकार उत्पन्न कर देता है। इसके मुग्ध-श्रृंगार के वर्णनों का तो कहना ही नहीं। तथापि काल विपरियास का दोष उसके काव्यों में कहीं-कहीं घुस गया है। उदाहरणार्थ, भास्कराचार्य के लीलावती नामक गणित की सहायता से ऋतुपर्ण के द्वारा उसने पेड़ों के पत्तों की गणना करवाई है। इसका कारण यह हो सकता है कि जो-जो कल्पनायें उसके दिमाग़ में पैदा हुई उनको ज्यों का त्यों अपने वर्णन में उसने चित्रित कर दिया है। खेद है कि उसके महाभारत के केवल चार ही पर्व अब-तक उपलब्ध हो सके हैं। हाँ, रामायण अवश्य सम्पूर्ण ग्रन्थ है। इन ग्रंथों के सिवाय—गरुड़गर्व परिहाराख्यान, रम्भा-शुक-संवाद, मूर्खों के लक्षण, पद्मगीता, विश्वामित्र भोजन आदि और भी छोटी-छोटी रचनायें हैं। इस कवि का आत्मविश्वास बहुत बढ़ा-चढ़ा था। महाराष्ट्र के अनेक साधु-संतों में से उसने केवल दो कवियों—ज्ञानेश्वर और नामदेव—को अपने ग्रन्थ में नमन किया है। उसे अपनी ग्रन्थ-रचना का बड़ा अभिमान था। उसने अपने महाभारत को महाराष्ट्र का काव्य-गुरु कहा है और आदिपर्व पढ़ने पर इस कथन की सत्यता भरपूर प्रतीत होती है। परन्तु शेष पर्व उत्तरोत्तर नीचे दर्जे के होते गये हैं।

लोगों की ऐसी धारणा है कि मुक्तेश्वर ने भागवत की टीका लिखी है, पर वह अबतक उपलब्ध नहीं हुई है। हाँ, मुक्तेश्वर के

समय के कुछ साधु पुरुषों ने इस ग्रन्थ की टीकायें अवश्य लिखी हैं। इन साधु पुरुषों में से रमावल्लभदास और शिव-कल्याण उल्लेखनीय विद्वान हो गये हैं। दोनों ने कई ग्रंथ रचे हैं। रमावल्लभदास ने दशकनिर्धार में भागवत के दशमस्कंध के आधार पर कृष्ण-जन्म-कथा का वर्णन किया है। सम्भवतः यह ग्रन्थ उसने १६२२ में लिखा, परन्तु रमावल्लभ-दास का मुख्य और प्रसिद्ध ग्रन्थ भी शंकराचार्य के 'वृहत्त वाक्य वृत्ति' नामक ग्रन्थ की 'वाक्य वृत्ति' नामक विस्तृत टीका है। उसने गीता की भी एक टीका लिखी है। उपर्युक्त रचनाओं के सिवाय वैश्वणगीत आदि अन्य कुछ ग्रन्थ और अनेक पद्य तथा अभंग उसने लिखे हैं।

सत्रहवीं सदी के कुछ अन्य कवि

रमावल्लभदास की अपेक्षा शिवकल्याण की भागवत की टीका अधिक विस्तृत और अच्छी है। दशमस्कंध में मुख्यतया कृष्ण-लीलाओं का वर्णन है। परन्तु उनका भी उसने परमार्थिक अर्थ किया है। उसकी इस टीका में ओवी नामक छन्द के एक लाख छन्द हैं। शिवकल्याण की यह टीका पढ़ते समय ज्ञानेश्वर की भाषा का स्मरण हुए बिना नहीं रहता। इसका मुख्य कारण यह है कि उसने ज्ञानेश्वर के ग्रन्थों का अच्छा अध्ययन किया था और उसके अमृतानुभव नामक ग्रन्थ की एक बहुत अच्छी टीका भी लिखी है।

शिवकल्याण का समकालीन और उसीके समान भागवत के दशमस्कन्ध की टीका लिखनेवाला एक और ग्रंथकार हो गया है। इसका नाम लोलिम्ब राज था। यह प्रसिद्ध साधु पुरुष था।

सम्भवतः यह अपनी तरुण अवस्था में बहुत विषयी था। 'लोलिम्ब राज आख्यान' नामक काव्य से ऐसा जान पड़ता है कि इसने किसी मुसलमान युवती से विवाह किया था। समस्त मराठी साहित्य में उपर्युक्त आख्यान के समान बीभत्स ग्रन्थ अन्य कोई नहीं है; परन्तु अपनी स्त्री के मरने पर उसने अपनी पुरानी सब बातें छोड़ दीं और महाराष्ट्र में प्रसिद्ध साधु हो गया।

इसी समय श्यामाराध्य नामक एक और कवि हो गया है। यह बड़ा विद्वान और उद्योगी पुरुष था। इसने सब प्रकार की रचनायें लिखी हैं। भारत, भागवत, रामायण आदि कोई ग्रन्थ उसने नहीं छोड़े। ज्ञानेश्वर से कठिन शब्दों के अर्थों का कोष उसने पद्यमाला के नाम से तैयार किया है; आश्वलाप्रन प्रश्न-माला, नित्यानित्य विचार, ज्ञानोदय सिन्धु आदि वेदान्त ग्रंथ भी उसने लिखे हैं। गीता की उसकी एक टीका भी है और ऐसा जान पड़ता है कि कुछ उपनिषदों का भाष्य उसने मराठी में लिखा था। इससे स्पष्ट है कि उसने बहुत लेखन-कार्य किया, परन्तु उसकी भाषा तथा रचना-शैली साधारण ही है।

तुकाराम

इस काल का सबसे प्रसिद्ध कवि तुकाराम हो गया है। यह जाति का शूद्र था, परन्तु उसके घराने में सब व्यापार का धंधा करते आये थे। तुकाराम बालपन से ही सुख में पला था परन्तु गृहस्थाश्रम में पड़ने पर उसकी आर्थिक स्थिति खराब होती गई और शीघ्र ही वह अकिंचन होगया। इस कारण कुछ काल तक वह बहुत निराश बना रहता था। इसी कारण उसने अपना चित्त सांसारिक बातों से निकाल कर हरिकीर्तन में लगाया। इससे उसे कुछ सुख मिलने

लगा । अंत में उसने घर के तमाम क़ाग़ज़-पत्र नदी में बहा दिये और एकांतवास कर परमेश्वर-कीर्तन करने लगा । इसी समय उसने ज्ञानदेव, एकनाथ आदि साधु कवियों के ग्रंथों का मनन किया । इससे वह शीघ्र ही थोड़ा बहुत विद्वान हो गया और कविता की स्फूर्ति उसके मन में पैदा हुई । अब वह उठते-बैठते सब समय भजन और कीर्तन किया करता था । उसके ये भजन स्वाभाविक स्फूर्ति से कविता में हुआ करते थे । इसी प्रकार उसकी तमाम कविता बनी । यह तमाम कविता मराठी के अभंग नामक छंद में है । तुकाराम कोई बड़ा भारी संस्कृतज्ञ अथवा विद्वान न था । परन्तु उसकी बुद्धि तीक्ष्ण थी और उसकी भाषा बहुत अच्छी थी । इस कारण जो काम श्रुति-स्मृति से न हो सकते वे उसने अपनी प्रेमपूर्ण वाणी से सिद्ध किये । उसके उपदेश से हलके दर्जे के हिन्दू लोग ही नहीं किंतु शूद्र; अति शूद्र और मुसलमान लोग भी अभंग-रचना करते और पंढरपुर की यात्रा किया करते थे । उसने अपनी वाणी से छोटे-बड़े, उच्च-नीच, का भाव लोगों के ख़याल से दूर कर दिया । और सब वैष्णव वीर एक दूसरे को भाई-भाई समझने लगे; तुकाराम की भाषा में प्रसाद बहुत अधिक है और वह सादा होने पर भी मनोहर और परिणामकारक है । उसके शब्द सीधे हृदय में जा चुभते हैं । उसने कोई बड़ा भारी ग्रन्थ नहीं लिखा, परन्तु उसकी अभंग-रचना बहुत अधिक है । तुकाराम की मृत्यु इंद्रायणी नदी के किनारे देहू नामक ग्राम के पास सन १६४९ में हुई ।

ऊपर हम बताही चुके हैं कि तुकाराम की संगति के कारण

उच्च और नीच, छोटे और बड़े, अनेक लोगों को काव्य-रचना की स्फूर्ति उत्पन्न हुई। उनमें से कई तो हिन्दू थे, पर शेख सुलतान, शेख फरीद आदि कुछ मुसलमान भी विट्ठलभक्त हो गये थे और काव्य-रचना किया करते थे। इनमें से शेख मुहम्मद का नाम उल्लेखनीय है। इसने 'पवन-विजय' 'निष्कलंक-प्रबोध,' 'योग-संग्राम' और 'ज्ञानसागर' नामक चार ग्रन्थ लिखे हैं। इनमें से 'योग-संग्राम' सबसे बड़ा है। यह ओवी छंद में है और इसकी छंद संख्या क़रीब २५०० है। शेख मुहम्मद जाति से मुसलमान होने के कारण मूर्ति-पूजा को ठीक न समझता था। भगवद्भक्ति और पंढरी की यात्रा से उसका यह तिरस्कार बहुत कुछ कम हो गया था, परन्तु वह समूल नष्ट न हुआ। मूर्तिपूजा को वह अधिक से अधिक धर्म की प्रथम सीढ़ी समझता था। वह हिन्दू और मुसलमान का भेद न मानता था।

तुकाराम से प्रभावान्वित कवि

रामदास इस काल का बड़ा प्रभावशाली कवि हो गया है। इसका जन्म सन १६०८ में हुआ। इसका वास्तविक नाम नारायण था। यह बालपन ही में घर-द्वार छोड़कर चला गया। इसके बाद इसने बहुत-सा समय गोदावरी नदी के किनारे पंचवटी नामक स्थान के पास भजन-पूजन में बिताया। ऐसा जान पड़ता है कि इसे बालपन से लोकहित का ध्यान रहता था। मुसलमानों के कारण धर्म और देश को जो हानि पहुँची थी उसका इसे भरपूर ज्ञान था। इस बात को इसने अपनी कविता में स्थान-स्थान पर व्यक्त किया है। यही कारण है कि उस समय विरक्ति की जो लहर

रामदास

कई कवियों ने देश में फैला रक्खी थी उसके यह विरुद्ध था। वह इस बात को अच्छी तरह समझता था कि देश की स्थिति का बिना सुधार किये धर्म की स्थिति नहीं सुधर सकती और न धर्मरक्षा हो सकती है। इसलिए इसने सारे देश में पर्यटन किया और सैकड़ों मठ स्थान-स्थान पर स्थापित किये। रामदास के कार्यों का वर्णन हम पहले कर ही चुके हैं, इसलिए अब उसके विषय में अधिक कहने की कुछ आवश्यकता नहीं है। रामदास की रचना में से दासबोध नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध ही है। इसके सिवा उसने बहुत-से फुटकर अभंग, पद्य आदि भी बनाये हैं। इसके 'मनाचें श्लोक' बहुत प्रसिद्ध हैं। रामदास की कविता का मुख्य गुण उसका राष्ट्रीय भाव है। इसने जो कुछ लिखा है वह सब अनुभव के आधार पर और प्रत्यक्ष सांसारिक जीवन के लिए। इसलिए इसके उपदेशों का परिणाम बहुत अधिक होता है।

जिस प्रकार तुकाराम की संगति से अनेक लोगों को काव्य-रचना की स्फूर्ति उत्पन्न हुई, उसी प्रकार रामदास स्वामी की संगति से अनेक साधु-संतों को काव्य-रचना की स्फूर्ति पैदा हुई। इनमें से वड़गाँव के जय-

दास पञ्चायतन

राम स्वामी, निगड़ी के रंगनाथ स्वामी, ब्रह्मनाद के आनंदमूर्ति और भागानगर के केशव स्वामी प्रसिद्ध हैं। रामदास स्वामी सहित ये साधु दास, पंचायतन' कहलाते हैं। ये सत्पुरुष, श्रेष्ठ साधु और अच्छे विद्वान ग्रंथकार थे। जयराम स्वामी ने जो ग्रन्थ बनाये उनमें भागवत दशम स्कंध की टीका, रुक्मिणी-स्वयंवर, सीता-स्वयंवर और अपरोक्षानुभव मुख्य हैं। वेदान्त जैसे कठिन विषय को सरल ढंग से बताने की तथा अपनी कथा को मनोहर करने की शैली जयराम

स्वामी को भरपूर सिद्ध थी। रघुनाथ स्वामी ने 'गजेन्द्र-मोक्ष' 'गुरु-गीता', 'सुदामा चरित्र', 'शुक-रंभा-संवाद', 'पंचीकरण', 'भानुदास चरित्र' और 'योगवाशिष्ठ-सार' नामक कई ग्रन्थ लिखे हैं। 'गजेन्द्र मोक्ष' छोटा-सा होने पर भी बहुत मनोहर है। रंग-नाथ स्वामी की भाषा बहुत जोरदार है। दास-पंचायतन के शेष दो पुरुषों के ग्रंथ नहीं मिले हैं। हाँ, दोनों के बहुत-से स्फुट छंद प्राप्त हुए हैं। आनंदमूर्ति की भाषा बड़ी सरस है। उपर्युक्त पुरुषों के शिष्य वर्गों में से कई लोगों ने कविता की है।

रामदास स्वामी के शिष्यवर्ग में अनेक स्त्रियाँ भी थीं। उनमें से वेणाबाई बहुत प्रसिद्ध हैं। वेणाबाई के पद्य, अभंग और कई ग्रंथ हैं। इनमें से 'सीता स्वयंवर' बहुत ही उत्तम है। इसका वर्णन बहुत मनोहर और सरस है। पुरुष लोग भले ही पुरुषों के मनोविकारों का वर्णन अच्छी तरह कर सकें, पर स्त्रियों के मनोविकारों का वर्णन स्त्रियाँ ही कर सकती हैं। यह बात वेणा-बाई ने अपने ग्रंथ में सिद्ध कर दी है। वेणाबाई के शिष्यवर्ग में बयाबाई नामक एक स्त्री प्रसिद्ध है। इस स्त्री ने भी कुछ काव्य-रचना की है। इसकी कुछ रचना आर्या छंद में है और वह अच्छी है। इसकी रचना स्त्री-स्वभाव के अनुसार कोमल न होकर ठस-कदार है। इसने हिन्दी में भी कुछ रचना की है और वह मराठी की अपेक्षा अधिक ही ठसकदार है।

कुछ कवयित्रियाँ

रामदास स्वामी के समान तुकाराम महाराज के भी कुछ शिष्यायें थीं। इनमें बहिणाबाई का नाम प्रसिद्ध है। इसकी रचना बहुत ही प्रेमपूर्ण है। इसके शब्द सादे परंतु मोहक हैं।

बहिणाबाई के समान प्रभाबाई नामक स्त्री की रचना भी बड़ी मोठी है। यह कृष्णभक्त थी। इसके कुछ पद्य महाराष्ट्र में सर्व-प्रसिद्ध हैं।

सत्रहवीं सदी के कवियों में वामन पंडित का नाम बहुत ऊँचा है। इसने काशी में विद्याभ्यास किया था और यह बड़ा विद्वान था। कहते हैं कि प्रारंभिक जीवन में यह

वामन पंडित

इतना अभिमानी था कि अपने ग्रंथ अपने साथ लेकर स्थान-स्थान घूमा और शास्त्रार्थ किया करता था। परंतु एक यति की कृपा से इसका यह गर्व दूर हो गया और वह बड़ा धार्मिक पुरुष बन गया। इसका प्रथम ग्रंथ 'निगमसार' है। यह वेदान्त ग्रंथ है। इसके बाद पसने 'कर्मतत्त्व' 'समश्लोको' आदि ग्रंथ आध्यात्मिक ज्ञान सिखाने के लिए लिखे। उसके बाद इसने 'सिद्धांत विजय' और 'अनुभूतिश्लेष' नामक संस्कृत ग्रंथ रचे। 'समश्लोकी' भगवद्गीता की समश्लोकी टीका है। इसके विषय में एक ग्रंथकार ने यह कहा है कि भगवद्गीता में भरा हुआ ज्ञान इसके द्वारा वामन पंडित ने महाराष्ट्र के लोगों को प्राप्त करा दिया है। यह टीका वास्तव में बहुत अच्छी बनी है। स्वयं वामन पंडित को इस टीका से अपना जीवन सफल जान पड़ा। परंतु कुछ काल के बाद इतनी रचना से उसका संतोष न होने के कारण 'गीतार्णव सुधा' 'चरण गुरु मंजरी' 'उपादान' आदि ग्रंथ लिखने पर गीता की 'यथार्थ दीपिका' नामक एक टीका और लिखी। इस टीका में उसने अंधभक्ति को निकृष्ट बतलाया और ज्ञानयुक्त सगुण भक्ति को सर्वश्रेष्ठ और मोक्ष-साधन का उत्तम मार्ग बतलाया है। यह 'यथार्थ दीपिका' ओवी छंद में है।

और उसकी छंद-संख्या २२००० से ऊपर है। यह एक विद्वत्ता-पूर्ण व्याख्यान ही है, इस कारण इसमें काव्य-कल्पना बहुत थोड़ी है। परन्तु उसकी भाषा ज़ोरदार और वकीली ढंग की है। उसके अध्यात्म ग्रंथों में 'प्रेमसरी', 'योगवाशिष्ठ', आदि ग्रंथ भी उल्लेख-नीय हैं। इन अध्यात्म ग्रन्थों के सिवाय उसने कई आख्यानात्मक ग्रन्थ भी लिखे हैं। इनका मुख्य उद्देश परमेश्वर-चरित्र-वर्णन है। ये वर्णन हृदयभेदक, सतेज तथा मधुर हैं। इनमें से बहुतेरे संस्कृत के अक्षर।छंदों यानी श्लोकों में हैं। इसी कारण वामन पंडित महाराष्ट्र में विशेष प्रसिद्ध हैं। इस कवि के अनेक श्लोक महाराष्ट्र के लोगों को कंठस्थ रहते हैं। एक ग्रन्थकार ने कहा है कि यह मानवी कवि नहीं था किन्तु परमेश्वर का प्रेमो शुक ही था। कविता धेनु के मधुर गोरस में कभी भक्ति-रस का, कभी वात्सल्य-रस का, कभी करुण श्रृंगार का तो कभी अद्भुत रस का उत्कृष्ट मिश्रण तैयार कर और उसमें वेदांत का मसाला डालकर अच्छी मिठाई बनाकर खिलाने वाला व्रजवासी गोपाल का यह हलवाई ही था। वामन पंडित की शब्द रचना और वर्णन-शैली दोनों बहुत मार्मिक हैं। अर्थ तथा वर्णन-प्रसंग के उचित ही छंदों की रचना कर वह अपने काव्य को बहुत ही मोहक बना डालता है। वामन पंडित ने जगन्नाथ पंडित के काव्य 'गंगालहरी' और भर्तृ-हरि के 'शतकत्रय' का अनुवाद मराठी भाषा में इतना अच्छा किया है कि वे मूल से किसी प्रकार कम नहीं हैं। मूल के समान ही शतकत्रय के मराठी छन्द महाराष्ट्र में लोग कंठस्थ किया करते हैं। सारांश में यह कह सकते हैं कि सरस्वती उसे परिपूर्ण सिद्ध थी।

वामन पंडित के समकालीन और उसीके समान श्लोकबद्ध कविता करने वाले दो कवि प्रसिद्ध हैं। एक का नाम नागेश है और दूसरे का विट्ठल। नागेश जोशी था, परंतु उसमें विद्वत्ता न थी। विट्ठल व्यापारी था, परन्तु संस्कृतज्ञ था। नागेश की स्फूर्ति स्वाभाविक थी, परतु विट्ठल की रचना श्रमपूर्ण थी। नागेश की रचना में देहातियों की बातें देख पड़ती हैं, परन्तु विट्ठल सभ्य और मर्यादाशील है। दोनों को अंत्यानुप्रास का विशेष शौक़ है। नागेश की 'चंद्रावली' नामक रचना विशेष प्रसिद्ध है। इसके सिवा इसने 'सीता स्वयंवर' 'रुक्मिणी स्वयंवर' 'रस-मंजरी' और 'शारदा विनोद' नामक काव्य और लिखे हैं। किसी समय इसके श्लोक महाराष्ट्र में लोग बहुधा कंठस्थ किया करते थे। उसके छंद विनोदपूर्ण होने के कारण छोटे बच्चे मजे से कहा करते हैं। विट्ठल के ग्रन्थों में 'रुक्मिणी स्वयंवर' 'पांचाली-स्तवन' 'सीता स्वयंवर' 'रस मञ्जरी' 'द्रौपदी-वस्त्र-हरण' 'विद्वज्जीवन' और 'विल्हण-चरित्र' प्रसिद्ध हैं। हम ऊपर बतला ही चुके हैं कि विट्ठल के काव्य में स्वाभाविकता कम और विद्वत्ता अधिक है। उसने कई चित्र-काव्य भी बनाये हैं। हाँ, 'रस-मञ्जरी' और 'विल्हण-चरित्र' में उसने चित्र-रचना का विचार छोड़ दिया है, जिससे इनमें स्वाभाविकता अधिक है और ये सरस भी हुए हैं।

वामन पंडित से प्रभावान्वित कवि

रामदास स्वामी का शिष्य-समुदाय बड़ा भारी था और वह सारे देश में फैला हुआ था। उनकी शिक्षा-दीक्षा बहुत अच्छी

तरह होती थी। इस कारण उनमें से कई विद्वान और बुद्धिमान निकले। इन लोगों ने सरस्वती की यथेष्ट सेवा की। परन्तु उनकी तमाम रचना एक ढंग की है। उसमें स्वतंत्रता और विशिष्टता कुछ नहीं देख पड़ती। इस शिष्य-समुदाय में से देवीदास की कविता कुछ जोरदार है। इसने 'गजेन्द्र-मोक्ष' नाम का एक छोटा-सा काव्य संस्कृत के प्रमाणिका छन्द में लिखा है। वह बच्चों के गाने लायक़ और सरस है। शब्द-रचना सादी और मीठी है। रामदास स्वामी के शिष्यों में से एक दूसरा देवीदास महाराष्ट्र में प्रसिद्ध है। इसका कुल-देव व्यंकटेश था, इसलिए इसने 'व्यंकटेश-स्तोत्र' नामक एक मधुर कांव्य लिखा है; और वह महाराष्ट्र भर में सर्वत्र पढ़ा जाता है। इसी देवीदास का 'सन्त-मालिका' नामक एक काव्य और है। श्री समर्थ रामदास स्वामी के शिष्य निरंजन, वालकराम, सीताराम, प्रदोषमहात्म-कर्त्ता राम कवि, संदेहहरण ग्रन्थ का कर्त्ता राघव, श्रीखण्ड-चरित्र आदि का कर्त्ता प्रभुनन्दन, कानड़ी ग्रन्थ से मराठी में उद्योगपर्व लिखने वाला चन्द्रात्मजरुद्र त्र्यम्बक अंकोलकर, मुकुन्द वग़ैरा बहुत कुछ समकालीन हो गये हैं। इन सबसे अवचितसुत काशी नामक कवि की रचना बहुत अधिक है। इसने 'द्रोपदी-स्वयंवर' पर दो ग्रन्थ लिखे हैं। उनमें से एक श्लोक-बद्ध है और दूसरा ओवींवद्ध। यह कवि मानभाव-पंथ का अनुयायी था, इसलिए इसके ग्रन्थ इसी पंथ के लोगों में विशेष प्रचलित हैं। रामदास के शिष्य-समुदाय में जयराम बाबा नामक एक कवि होगया है। इसने अनेक श्लोक, पद, अभंग आदि रचे हैं। इस कवि की वाणी मनोहर

रामदास स्वामी से प्रभावान्वित कवि

और सादी है। इसीका समकालीन पंडित नामक एक कवि हो गया है। इसकी रचना में शब्द-चमत्कार बहुत है। इसके रचे हुए बहुत-से पद्य मिलते हैं। इन सब कवियों का समकालीन अथवा कुछ पूर्व-कालीन कवि शिवराम था। वह बड़ा भारी ग्रन्थ-कर्त्ता हो गया है। उसने अनेक ग्रन्थ रचे हैं। उनमें से कुछ ओवी छन्द में, कुछ अन्य छन्दों में, और कुछ गद्य में हैं। शिवराम के गुरुबन्धु निरंजन ने भी कई ग्रंथ लिखे हैं। इसी समय मचकुन्द और कोकिल नाम के दो कवि और हुए। मचकुन्द की कविता के सम्बन्ध में एक विद्वान ने कहा है, वह इतनी सरस है कि वह मुक्तेश्वर की कविता की बराबरी कर सकती है। इसने 'श्री भार्गव-चरित्र' लिखा है। यह वीररस-प्रधान है। कोकिल की रचना बहुतांश में पद्यमय है।

अबतक हमने केवल महाराष्ट्र के कवियों का वर्णन किया, इसलिए अब महाराष्ट्र के शेष कवियों का वर्णन करने के पहले

कर्नाटक के कवि

महाराष्ट्र से बाहर के मराठी कवियों का वर्णन करेंगे। शाहजी के समय से कर्नाटक-प्रान्त में तंजोर आदि स्थानों के आस-पास मराठे जाकर बसे, इसलिए मराठी भाषा ने उधर भी कुछ कवियों को जन्म दिया। शिवाजी महाराज के साथ रामदास स्वामी का शिष्य भीमस्वामी गया था। इसने कुछ रचना की है, जिसमें रामदास स्वामी का एक छोटा-सा चरित्र भी है। भीम-स्वामी के समान आनन्दस्वामी और राधास्वामी नामक दो शिष्य और गये थे। आनन्दस्वामी का शिष्य मेरुस्वामी अच्छा ग्रंथकार था। उसने 'भीमोपदेश', 'स्वानन्दलहरी', 'अनुभवसार' वग़ैरा ग्रंथ लिखे हैं। राधास्वामी का माधव नामक एक शिष्य था।

कर्नाटक-प्रान्त के कवियों में इसीने सबसे अधिक ग्रन्थ लिखे हैं। इसका एक ग्रन्थ श्लोकबद्ध रामायण है और दूसरा ओवींबद्ध रामायण। इनके सिवाय 'योग-वाशिष्ठ', 'गणेशपुराण', 'विष्णुपुराण', 'अश्वमेध' वग़ैरा ग्रन्थ भी इसने लिखे हैं, परन्तु इन सबसे इसका महाभारत नामक ग्रन्थ बहुत बड़ा है। महाभारत का टीका-ग्रन्थ मराठी में इतना बड़ा अन्य कोई नहीं है। कर्नाटक में माधव के समान अनेक ग्रन्थ लिखने वाला दूसरा कवि रंगनाथ हो गया है। इसकी बहुतेरी रचना पौराणिक है। इसीने 'कावेरी महात्म' नामक एक बड़ा भारी ग्रन्थ लिखा है। कावेरी नदी के किनारे और श्रीरंगपट्टन के आसपास रंगनाथ के समान कई अन्य मराठी कवि होगये और उन्होंने कई काव्य रचे। इनमें से दासानुदास ने श्री शंकराचार्य के ज्ञान-संन्यास नामक ग्रन्थ की टीका लिखी है। इस ग्रन्थ के अलावा 'सिद्धानुभव', 'काया जीवलग्न', 'ज्ञानामृत', 'ज्ञानसागर' आदि कई अन्य ग्रन्थ लिखे हैं। कर्नाटक भाग के ग्रन्थकारों के सम्बन्ध में कुछ बातें ध्यान में रखने लायक़ हैं। इन्होंने अनेक छन्दों में काव्य-रचना की, परन्तु पोवाड़ा और लावणी नामक कविता उधर न बनी। सम्भवतः इस प्रकार की कविता के लिए वहाँ अनुकूल परिस्थिति भी न थी। परन्तु एक प्रकार की रचना उधर यथेष्ठ देख पड़ती है। तंजोर के सरस्वती-महल में अनेक पौराणिक नाटक रक्खे हैं। ये सब वहाँ के राजा शाहू महाराज के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह तो कह नहीं सकते कि वास्तव में वे किसके रचे हैं, परन्तु उनसे हमें यह ज्ञात हो सकता है कि इस समय के नाटक किस प्रकार के होते थे। ये नाटक बिलकुल साधारण ही हैं। इसके साथ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इन नाटकों में

कालिदास, भवभूति आदि उत्तम नाटककर्ताओं के नाटकों का अनुवाद नहीं मिलता। रामदास के शिष्यों में अनन्त नामक एक शिष्य भी कर्नाटक गया था। अनन्त नाम के कई कवि हो गये हैं, परन्तु जिस अनन्त का हमने यहाँ उल्लेख किया है वह विट्ठल-भक्त था और पण्ढरी की यात्रा किया करता था। इसने 'सुलोचना-गहिवर' और 'सुलोचना-आख्यान' नामक काव्य लिखे हैं। उस समय का आनन्दतनय नाम का कवि प्रसिद्ध है। वह अनन्त की बराबरी का कवि था। दोनों की भाषा-कथा का चुनाव, कल्पना, शैली आदि सब बहुत-कुछ एकसे हैं। दोनों संस्कृत तथा हिन्दी से परिचित थे और दोनों को छन्द-साहित्य पढ़ने का शौक़ था। इन दोनों कवियों का मान स्त्रियों और लड़कों में विशेष है, क्योंकि इनका वर्णन बहुधा सर्व-परिचित होता है और इनकी भाषा सरल तथा मधुर है। परन्तु दोनों ने शब्दों की खींचातान की है। दोनों को अनुप्रास का शौक़ है और इस कारण दुर्बोधता का दोष दोनों में देख पड़ता है। आनन्दतनय से उसका सम्बन्धी रघुनाथ पण्डित बहुत श्रेष्ठ दर्जे का कवि हो गया है। इसकी रचना तथा कल्पना-चातुर्य केवल अप्रतिम है। इसका रचा हुआ 'नल-दमयन्ती-आख्यान' सर्व-प्रसिद्ध है। इसी एक ग्रन्थ से इसकी महाराष्ट्र-भर में प्रसिद्धि है। यह ग्रंथ इसने संस्कृत काव्य-शास्त्र के नियमों के अनुसार ठीक पंचमहाकाव्य के ढंग पर लिखा है। रघुनाथ पण्डित की कविता अन्तःस्फूर्ति से बनी हुई नहीं देख पड़ती। इसकी रचना स्वाभाविक न होकर परिश्रमजन्य है। उसमें इसने बहुत सावधानी दिखलाई है। अपनी सब चातुरी इसने उसमें लगा दी है। इसलिए इसकी रचना कुशल कारीगर की रचना के

समान देख पड़ती है। पद्य-लालित्य, वचन-माधुर्य, उपमा-चातुर्य आदि अलंकारों से इसने अपनी सरस्वती को सजाया है। रघुनाथ पंडित का 'गजेन्द्र मोक्ष' भी प्रसिद्ध काव्य है। रघुनाथ पंडित का समकालीन गोसावीनन्दन नामक एक कवि हो गया है। इसका 'ज्ञानमोदक' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इसके सिवा इसने 'सीता-स्वयंवर' नामक एक काव्य लिखा है। इन दो ग्रन्थों के सिवाय इसकी कुछ फुटकर रचनायें भी है। इसकी रचना सादा और मधुर है। इन तमाम कवियों के ग्रंथों में अश्लीलता तो है ही नहीं, किंतु अनावश्यक शृंगार भी नहीं है।

शाहू महाराज के समय अठारहवीं सदी में महाराष्ट्र में जो कवि हो गये, उनमें कचेश्वर और निरंजन माधव विशेष प्रसिद्ध हैं। कचेश्वर सदैव भजन-कीर्तन में लगा रहता था, इसीसे उसे कवित्व-स्फूर्ति हुई। कचेश्वर के अनेक भजन उसके शिष्य-समुदाय में प्रसिद्ध हैं। उसके ग्रंथों में 'सुदामा-चरित्र' और 'गजेन्द्र मोक्ष' मुख्य हैं। उसने संस्कृत छन्दों का विशेष उपयोग किया है और वे मधुर भी हैं। उसकी शब्द-रचना बिलकुल घरेलू है। उदाहरण, उपमा आदि भी सर्व-साधारण हैं, इसलिए उसकी रचना समझने में कोई कठिनाई नहीं। 'द्रौपदी-वस्त्र-हरण' नामक एक काव्य उसीका माना जाता है, परन्तु वह वास्तव में शायद रामसुतात्मज का है। यह कचेश्वर का समकालीन था। दोनों की रचनाओं में बहुत समानता होने के कारण उपर्युक्त भ्रान्ति पैदा हो गई है। रामसुतात्मज कवि ने 'गोपीचंद-आख्यान' नाम का एक काव्य और लिखा है। रामसुतात्मज

शाहू महाराज के समकालीन कवि

के समान ही रचना करने वाला वस्वलिंग नामक एक कवि सत्रहवीं सदी के उत्तरार्ध में हो गया है। इसने 'भामाविलास' 'उमा-महेश-संवाद, 'गज-गौरी-वृत्त' आदि काव्य लिखे हैं। इसकी कविता साधारण है। इस समय के अन्य कवियों में 'स्वरूप-निर्णय' के लेखक अमृतानंद, और कपिल गीता पर टीका लिखने वाले अवधूत निरंजन उल्लेखनीय हैं। निरंजन माधव उपर्युक्त सब कवियों से विशेष श्रेष्ठ था। वह विद्वान्, नीतिमान, आचारवान, प्रेमी और बहुगुणी था। गायन-वादन में भी वह निपुण था। उसकी काव्य-रचना-शैली कुछ ऐसी अलौकिक थी कि उसके कारण उसके गुरु ने उसे 'लक्ष्मीधर कालिदास' नाम दिया था। यह बाजीराव पेशवा के आश्रय में रहता था। इसने 'साम्प्रदाय-परिमल', 'कृष्णानंद-सिन्धु', 'चिद्बोध रामायण', 'राम-कर्णामृत' 'मंत्र-रामचरित्र' और 'निर्वोष्ठ राघव-चरित्र' लिखे हैं। अन्तिम दो काव्य चित्र-काव्य हैं। इसने 'वृत्तावतंस' और 'वृत्त मुक्तावली' नामक छंदःशास्त्र के भी दो ग्रंथ लिखे हैं। इनके सिवा इसके कई भजन, स्तोत्र इत्यादि प्रसिद्ध हैं। इसने हिन्दुस्थान भर का प्रवास तथा तीर्थ-यात्रा की थी और अपना प्रवास-वर्णन लिख रक्खा है। निरंजन माधव के समान ही अनेकविध रचना करने वाला सामराज नामक एक कवि उस समय हो गया है। इसके नाम के सम्बन्ध में कुछ गड़बड़ बनी है। इसने कोकशास्त्र से लगाकर भागवत की टीका तक अनेक प्रकार के ग्रंथ लिखे हैं। इसका लिखा हुआ रुक्मिणी-हरण सरस और काफी बड़ा ग्रन्थ है।

सत्रहवीं सदी के अन्तिम काल में कृष्ण-दयार्णव और श्रीधर

नामक दो प्रसिद्ध कवि होगये हैं। कृष्णदयार्णव हमेशा अपना समय भजन-पूजन में बिताया करता था। इसका एक कारण यह था कि उसे अपने गृहस्थाश्रम में अनेक कष्ट सहने पड़े। उसने

कृष्णदयार्णव और श्रीधर

५४ वर्ष की आयु होने पर ग्रंथ-रचना के कार्य में हाथ लगाया और भागवत के दशमस्कन्ध की टीका लिखी। इसमें उसे क़रीब ७ साल लग गये। यह ग्रंथ बहुत अच्छा बना है। विद्वत्ता-पूर्ण तथा सरस है। ग्रन्थ की छंद-संख्या लगभग ४२,००० है। इसके सिवाय कृष्णदयार्णव का 'तनभयानन्द-बोध' नामक एक छोटा-सा ग्रन्थ और है। इससे अधिक विद्वान, प्रतिभा-सम्पन्न और रसिक ग्रंथकार श्रीधर स्वामी था। यह महाराष्ट्रीय कवि ऐसा है कि महाराष्ट्र भर में इसके ग्रन्थ छोटे से बड़े तक सब पढ़ते हैं। इसकी भाषा मधुर है। इसके ग्रन्थों ने महाराष्ट्र में धार्मिकता का परिपोषण बहुत किया है। स्त्रियों में भी यदि किसी कवि के ग्रन्थ अधिक पढ़े जाते हैं तो वे इसी के। इसके बहुतेरे ग्रंथ ओंवी-बद्ध हैं और संस्कृत के पौराणिक ग्रन्थों के आधार पर लिखे गये हैं। भावुक लोग श्रीधर स्वामी के ग्रंथों को श्रद्धा से पढ़ते हैं। इसके काव्यों में सभी रसों का वर्णन हुआ है, परन्तु उनमें कठिन या बड़े शब्दों का उपयोग बहुत कम हुआ है। इसके ग्रन्थों की भाषा शुद्ध, शैली सुबोध और विषय-रचना चित्ताकर्षक होने के कारण इसके ग्रन्थ पढ़ने में सरल मालूम होते हैं। इसके ग्रन्थों के पढ़ने से महाराष्ट्र की स्त्रियाँ और बच्चे भी अच्छी भाषा सीख सकते हैं। इसका सब वर्णन प्रसंगानुसार और उचित मनोविकारों के अनुकूल हुआ है। इसके 'हरि-विजय,'

'राम-विजय,' 'वेदान्त सूर्य,' 'पाण्डव प्रताप,' और 'शिवलीलामृत,' 'जैमिनी-अश्वमेध', 'श्री पण्ढरी महात्म,' 'मल्हारी विजय' आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इसके घराने में अन्य लोगों ने भी ग्रन्थ-रचना का कार्य किया था। इसकी मृत्यु सन् १७२९ के लगभग हुई। श्रीधर का समकालीन कवि गिरधरस्वामी हो गया है। उसने 'अब्द रामायण,' 'मङ्गल रामायण,' 'छन्दो रामायण,' 'सुन्दर रामायण' और 'संकेत रामायण' नामक पाँच रामायण लिखी हैं। 'श्री करुणा राम' में उसने राम की करुणा की भिक्षा मांगी है। 'करुणा रुद्र' में हनुमान के चित्र का वर्णन किया है और 'समर्थ करुणा' में रामदास स्वामी की स्तुति की है। 'कृष्णकथा तरंग' तथा 'हरिलोला' में कृष्ण-चरित्र का वर्णन है। 'निवृत्तिराम' में उसने यह दिखलाया है कि किस प्रकार धीरे-धीरे मुझे निवृत्ति प्राप्त हुई। यह ग्रंथ वहुत अच्छा बना है। इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि निरंजन माधव के समान उसकी भी रचना अनेक प्रकार की थी। भीमस्वामी का एक शिष्य नरहरि नामक हो गया है। उसे लोग बचाजी कहते थे। वह बहुश्रुत और अध्ययनशील मनुष्य था। उसने महाभारत के कुछ पर्वों पर टीका लिखी है। उसकी भाषा अच्छी और रचनाशैली मजेदार है।

सत्रहवीं सदी का ज्ञानेश्वर-शिष्य-समुदाय

ज्ञानेश्वर के शिष्य-समुदाय में सत्रहवीं सदी में सत्यामलनाथ नामक एक कवि हो गया है। उसने 'सिद्धान्त-रहस्य' उर्फ 'ललित-प्रबन्ध' नामक ग्रंथ लिखा है, जो अधिकांश में अभंग छंद में है। इसमें वेदांत का विवेचन बहुत अच्छी रीति से हुआ है। यह किसी ग्रन्थ की टीका न होकर स्वतंत्र ग्रंथ है।

इसी कवि के शिष्यों में गुप्तनाथ नामक एक कवयित्री हो गई है। उसका वास्तविक नाम गंगाबाई था। वह बाल-विधवा थी। बड़ी होने पर उसने सारा समय भजन-कीर्त्तन में बिताया था। वह ज्ञानेश्वर के ग्रन्थों का विवेचन किया करती थी। उसका विवेचन बहुत अच्छा होता था और सैकड़ों लोग उसे सुनने आया करते थे। इस गुप्तनाथ का शिष्य उद्बोध-नाथ हुआ। उसने अनेक भजन आदि रचे हैं। उसके शिष्यों में केसरीनाथ ने 'सिद्धान्त-सार' नामक एक ग्रन्थ सन् १७१६ में लिखा है। केसरीनाथ का शिष्य शिवदिननाथ एक अच्छा कवि हो गया है। उसने 'विवेक दर्पण', 'ज्ञानप्रदीप' आदि ग्रंथ लिखे हैं। उसकी मृत्यु सन् १७७४ में हुई। उसके शिष्यों में महिपति नामक एक प्रसिद्ध कवि हो गया है। इसके अनेक भजन, अभंग, कटाव, लावनियाँ प्रसिद्ध हैं।

मराठा-राज्य के उत्कर्ष-काल में स्वतंत्र काव्य-ग्रन्थ लिखने की ओर मराठे कवियों की प्रवृत्ति हो रही थी। अबतक अनेक आध्यात्मिक ग्रन्थ लिखे जा चुके थे, अब ऐहिक विषयों की ओर लोगों का झुकाव हो चला था। जगन्नाथ नामक एक कवि ने इसी प्रकार का शशिसेना-काव्य लिखा है। वह काव्य साधारण ही है और उसमें अनुचित शृंगार भी देख पड़ता है, परन्तु ऐहिक विषयों पर स्वतंत्र कल्पना की उपज होने के कारण वह आदर्श हुआ है। इसने 'बोध-वैभव', 'ज्ञान-बत्तीसी' इत्यादि छोटी-छोटी पुस्तकें तथा 'वाक्यसुधा' और भगवत् गीता पर टीकायें लिखी हैं। 'बोध-वैभव' की रचना का काल सन् १७५७

अठारहवीं सदी के 'ऐहिक' कवि

है, यानी यह कवि आठरहवीं सदी के मध्यकाल में हुआ। इसी समय का जीवन नामक एक कवि हुआ है। उसने 'अनुभव-लहरी' नामक ग्रन्थ लिखा है। उसमें भी सांसारिक जीवन के अनुभवों का वर्णन है। अनाम कवि नामक पुरुष ने 'सावकार-आख्यान' नामक मज़ेदार ग्रन्थ लिखा है। इस प्रकार के कथा-वर्णनों में मध्वनाथ का ''धनेश्वर-चरित्र' उर्फ़ चोल राजा की कथा विशेष प्रसिद्ध है। मराठी में मध्वमुनि कवि और साधु पुरुष विशेष प्रसिद्ध हो गया है। इसका जन्म-काल तो मालूम नहीं, परन्तु मृत्यु-काल १७२४ है। इसकी भाषा वास्तव में मधुस्रवणी है। इसने 'घनेश्वर की कथा' अभंग छन्द में लिखी है। इसके भजन बड़े मीठे लगते हैं। मध्वमुनि का प्रसिद्ध शिष्य अमृतराय था। उसका जन्म सन् १६९८ में हुआ। वह कोई बड़ा भारी पण्डित या विद्वान न था, परन्तु उसकी वाणी बड़ी सरल थी। उसकी अधिकांश कविता कटाव में है। उसकी रचना प्रौढ़ होकर उसमें हिन्दी और संस्कृत शब्दों का मिश्रण बड़ी चतुराई से होने के कारण बहुत चमत्कार-पूर्ण हो गई है। उसके कटावों में प्रसाद लबालब भरा देख पड़ता है। जिस प्रकार कोई चतुर चित्रकार अपनी कूँची किसी भी प्रकार फेरे तब भी उसका रङ्ग अच्छा खुलता है, वही बात उसके कटावों की है। बहुत साधारण बातें उसने बहुत चतुरता-पूर्वक मनोरंजक ढंग से बतलाई हैं। उसकी कविता में अनुप्रासानुप्रास इतना अधिक है कि केवल उनका ही निनाद किसीके चित्त को आकर्षित कर सकता है। बालाजी उर्फ़ नानासाहब पेशवा भी उसका कीर्तन सुनकर खुश हुआ करता था। अमृतराय ने कटाव-छन्द मराठी भाषा में नया ही शुरू किया।

अमृतराय हिन्दी भी जानता था। हिन्दी में उसने एक आशीर्वादात्मक पद्य लिखा है। उसकी हिन्दी भाषा का उदाहरण देने के लिए उसे हम यहाँ देते हैं—

'तुम चिरंजीव कल्याण रहो, हरिकथा सुरस पावो ॥
हरिकीर्तन के साथी सज्जन, बहुत बरस जीवो ॥ तुम चिरंजीव० ॥
उचा मन्दिर मेहेल सुनेरी; महल भुलख बस्ती।
पुत्र पौत्र धन, सुंदर कामिनी; सुगुण रूप हस्ती ॥ १ ॥
सस्ता दाना पार्णा निर्मल; गङ्गाजल गेहरा।
रंग राग घर बाग बगीचे; रुपये होन मोहरा ॥ २ ॥
अमृतराय के अमृत बचन, तुम सदा सुखी रहियो।
सबल पुष्ट अरोग्य अनामय, आनन्द मो रहियो ॥ ३ ॥

अमृतराय के कटाओं का रंग-ढंग देखकर महाराष्ट्र के अन्य कवि भी कटाव रचने लगे। कथा-कीर्तन में श्रोताओं का मन रिझाने के लिए उनका उपयोग होने लगा और लोगों को उनका बड़ा शौक़ हो गया। अमृतराय के माधव, शंकर आदि शिष्य भी कटाव रचने लगे। इनके शिष्यों में वम्हगिरि की 'दाभाजी की रसद' नामक रचना विशेष प्रसिद्ध है।

अब हम ऐसे कवियों का वर्णन करेंगे कि जिन्होंने चरित्र-लेखन का काम किया है। वैसे ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ

चरित्र-लेखक कवि

दासोपंत, जनी जनार्दन, रामदास, तुकाराम आदि सन्तों के चरित्र भिन्न-भिन्न लेखकों ने लिख रक्खे हैं। निरञ्जन, माधव, कचेश्वर आदि ने तो आत्म-चरित्र भी लिखे हैं। बहुधा ग्रन्थकार अपना थोड़ा-बहुत वर्णन अपने ग्रन्थ के आरम्भ अथवा अन्त में दे ही देते हैं, परन्तु इतने से उन लेखकों के चरित्रों का भरपूर वर्णन

नहीं हो जाता। केवल सूची के समान नाम गिनाने वाले सँत-मालिका नामक ग्रन्थ कई हैं, परन्तु विस्तार-पूर्वक चरित्र वर्णन करनेवाले लेखक बहुत कम हो गये हैं। नाभाजी की हिन्दी भक्तमाल उत्तर-हिन्दुस्तान में प्रसिद्ध ही है। इस भक्तमाला का उपयोग महाराष्ट्र के चरित्र-लेखकों ने यथेष्ठ किया है। इस भक्तमाला पर प्रियादास ने भक्तिरसबोधिनी नामक टीका और उसपर श्री मार्तण्ड बाबा ने भक्ति-प्रेमामृत नामकी टीका लिखी है। इसीको मराठी में भक्तमाला कहते हैं। इसके बाद उद्धव चिद्धन ने नागनाथ और उसके शिष्य हेमराज तथा बहिरभट्ट, मृत्युञ्जय, गौरा कुम्हार आदि सन्तों के चरित्र लिखे। इन चरित्रों की अपेक्षा अपने भक्तकथामृतसार नामक ग्रंथ के कारण वह विशेष प्रसिद्ध है। परन्तु खेद की बात है कि उसका यह ग्रंथ अबतक उपलब्ध न हो सका। उद्धवचिद्घन ने इन ग्रन्थों के सिवाय 'अनुभवशतक' और 'गीतार्थमञ्जरी' नाम के ग्रन्थ लिखे हैं। कहते हैं कि इसने 'शतमालन' नामक ग्रन्थ और लिखा था, परन्तु इस ग्रन्थ के बारे में हमें कुछ भी मालूम नहीं है। इसके बाद दासोदिगम्बर ने चरित्र-वर्णनात्मक 'सन्त-विजय' नामक ग्रन्थ लिखा। यह ग्रन्थ उपलब्ध है। इसमें २४ परिच्छेद हैं और लेखक ने साफ़ कहा है कि मैंने नाभाजी के ग्रन्थ का अपने ग्रन्थ के लिए यथेष्ठ उपयोग किया है। दासोदिगम्बर के सम्बन्ध में हमें बहुत कुछ मालूम है। उसने अपना ग्रन्थ लिखते समय अच्छी छान-बीन की, ऐसा नहीं जान पड़ता। परन्तु इन सबसे बढ़कर ताहराबाद के महिपति बाबा चरित्र-वर्णनात्मक ग्रंथ के लेखक की दृष्टि से प्रसिद्ध हैं। उन्होंने नाभाजी तथा उद्धव चिद्घन के ग्रथों का उपयोग

किया सा जान पड़ता है । उनके 'भक्तविजय' 'सन्तलीलामृत' और 'भक्तलीलामृत' नामक चरित्रात्मक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। संत-लीलामृत किसी एक खास ग्रन्थ के आधार पर नहीं लिखा है। उसमें लेखक ने भिन्न-भिन्न ग्रन्थों का तथा सुनी हुई बातों का उपयोग किया है। 'भक्त-विजय' के लिखने में नाभाजी तथा 'उद्धव-चिद्घन' के ग्रन्थों का, इसी प्रकार नामदेव के 'तीर्थावली' नामक ग्रन्थ का, उपयोग विशेष किया है। परन्तु इनके अलावा कई अन्य ग्रन्थों का भी उपयोग हुआ है। सन्त-विजय अपूर्ण ग्रन्थ है। उसमें केवल रामदास स्वामी और बावाजी गोसाई के चरित्र हैं। यह ग्रन्थ इसने ६० वर्ष की अवस्था के बाद आरम्भ किया था। इन ग्रन्थों के सिवा इस कवि ने 'तुलसी-माहात्म्य,' 'गणेश-पुराण,' 'दत्तात्रय-चरित्र,' मुक्ताभरण,' 'ऋषि पंचमी', 'पांडुरंग-स्तोत्र' 'अनन्त चतुर्दशी' नामक कई छोटी-छोटी पुस्तकें लिखी हैं। इनके बाद लिखे हुए दो चरित्रात्मक ग्रन्थ विशेष प्रसिद्ध हैं, जिनमें एक भोमस्वामी कृत 'भक्तलीला-मृत' है और दूसरा राजाराम प्रासादी कृत 'भक्त-मंजरी, है। 'भक्तलीलामृत' में पहले श्री रामदास स्वामी का चरित्र देकर फिर ३७ भक्तों का चरित्र लिखा है। भक्तों के चुनाव में कोई विशेष विचार नहीं देख पड़ता। चरित्र-वर्णन में भी छान-बीन का अभाव है। 'भक्त मंजरी' 'भक्त लीलामृत' की अपेक्षा बहुत बड़ा और अच्छी तरह लिखा हुआ ग्रंथ है। उसमें १०९ अध्याय हैं। अष्टोत्तर शत अध्यायों की मणिमाल की कल्पना करके १०९ वें अध्याय को मेरुमणि कहा है। इस अंतिम अध्याय में श्री रामदास स्वामी का चरित्र बताया है। वैसे तो प्रारम्भ के

ग्यारह अध्यायों में रामदास स्वामी का चरित्र आया ही है। शेष ९७ अध्यायों में लगभग सवासौ संतों का वर्णन है। कवि का उद्देश्य यह जान पड़ता है कि जिन संतों का वर्णन महिपति बाबा ने नहीं किया उन्हींका वर्णन करूँ। इस लेखक ने अपना वर्णन बहुत छान-बीन के बाद लिखा है। इसके बाद नरहरि धुण्डीराज भालु ने 'भक्तकथामृत' नामक चरित्रात्मक ग्रन्थ लिखा। इसमें ६४ अध्याय हैं और उनमें अनेक साधु पुरुषों के चरित्र आये हैं। मराठी में इसके समान कोई दूसरा ग्रंथ नहीं है। लेखक ने प्रत्येक संत के सम्बन्ध की प्रत्येक बात देने का प्रयत्न किया है, इस कारण उसने कई बार अपनी स्वतंत्र कल्पना का भी उपयोग किया है।

अठारहवीं सदी के कवियों में मयूर पण्डित उर्फ़ मयूरेश्वर अथवा मोरोपन्त सर्वश्रेष्ठ कवि हो गया है। इसका जन्म सन १७२९ में हुआ। मोरोपन्त के सम्बन्ध में महाराष्ट्र में दो मत हैं। कुछ तो उसको केवल भाषान्तर-कर्त्ता और तुकबंदी करने वाला समझते हैं; परंतु अन्य कुछ उसे महाराष्ट्र-कविवर कहते हैं। यह तो मानना होगा कि मोरोपन्त की कविता स्वाभाविक स्फूर्ति की नहीं है। उसमें पाण्डित्य है, विचार है और भक्ति का प्रवाह है। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि मोरोपन्त ने केवल पाण्डित्य दिखलाने के लिए अपने बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे। उसकी कविता तो गृहस्थाश्रमियों के लिए है। इसीलिए शृंगार, हास्य आदि की मात्रा बहुत विचार-पूर्वक और परिमित सीमा में अपनी कविता में इस कवि ने रक्खी है। कविता लिखते समय वह

मयूर पण्डित उर्फ़ मयूरेश्वर

अपने पाठकों और श्रोताओं को कभीं नहीं भूला। इसलिए पाण्डित्य का उपयोग भी यथास्थान हुआ है। सारांश में यह कह सकते हैं कि यह कवि विशालबुद्धि, बहुत परिश्रमी, सकल शास्त्र-पारंगत और चतुर था और इसने अपने ग्रन्थ सांसारिक लोगों के लिए लिखे। इसका पहला ग्रंथ 'ब्रह्मोत्तर-खण्ड' है। इसमें श्री शंकर की स्तुति है। यह आर्यावृत में लिखा है। इसके बाद इसने 'भस्मासुर-आख्यान' श्लोकों में लिखा। इन ग्रंथों की अपेक्षा इसके बाद के 'सीतागीत' और 'लवांकुश-आख्यान' विशेष अच्छे हुए हैं। ये लड़कियों के गाने लायक़ ग्रंथ हैं। इसी प्रकार 'रुक्मिणी गीत' भी है। इनके बाद कवि ने 'हरिश्चन्द्र-आख्यान', 'देवी महात्म्य', 'प्रह्लाद विजय', 'अंबरीश-चरित्र' जैसे छोटे-छोटे आख्यानात्मक ग्रंथ लिखे। ये सब रचनायें साधारण दर्जे की ही हैं। हाँ, इनमें 'हरिश्चन्द्र आख्यान' और बाद में लिखा हुआ 'मदालसा आख्यान' कुछ विशेष अच्छे हुए हैं। बड़े ग्रन्थों में 'कृष्ण-विजय' पहले लिखा जान पड़ता है। इसकी रचना बहुत कुछ क्लिष्ट है। पहले ५४ अध्याय तो आर्या छन्द में लिखे हैं, परन्तु शेष अध्यायों में लेखक ने अनेक छन्दों का उपयोग किया है। इसके उत्तरार्ध के ११ अध्याय बहुत अच्छे हुए हैं। यह ग्रन्थ कवि ने भागवत के दशमस्कन्ध के आधार पर लिखा है। इसके बाद मयूरपन्त ने 'मंत्रभागवत' नामक ग्रन्थ लिखा। इसमें उसने आद्याक्षरों के संयोग से 'नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्र सारे ग्रन्थ में भर दिया है। इसीलिए इसे 'मंत्र भागवत' कहते हैं। इसके बाद का इसका ग्रन्थ 'हरिवंश' है। यह ग्रन्थ जैसा चाहिए उतना अच्छा

नहीं हुआ। हाँ, यहाँ-वहाँ कुछ वर्णन बहुत अच्छा है। मोरोपंत का महाभारत बड़ा भारी ग्रन्थ है। इसकी रचना में कवि ने दस साल लगाये और ५३ वर्ष की अवस्था में इसे समाप्त किया। इस ग्रंथ में सब प्रकार के रस आये हैं। कवि ने अपनी सुन्दर भाषा से अनेक प्रकार की सुन्दर कल्पनाओं को सजाया है। इस प्रकार यह ग्रन्थ स्वतंत्र ग्रन्थ के समान उत्तम बना है। 'मन्त्र-भागवत' के सम्बन्ध में बतलाये अनुसार मोरोपन्त को अपने काव्यों में अक्षर-चमत्कार दिखलाने की बड़ी भारी इच्छा होती थी। यद्यपि सारे महाभारत में मोरोपन्त ने यह अक्षर-चमत्कार नहीं दिखाया है तथापि प्रारम्भिक १८ पर्वों में आद्याक्षरों से उसने 'श्रीपाण्डवसहायोभगवानरविंदाक्षो जयति' नामक १८ अक्षरों का मन्त्र सिद्ध किया है। इस चित्र-चमत्कार के पीछे पड़ने के कारण कहीं-कहीं क्लिष्टता और रस-हानि का दोष देख पड़ता है। कहते हैं कि मोरोपन्त ने क़रीब १०८ रामायण लिखीं। उनमें से १०६ रामायणों का पता हमें मिलता है। मन्त्र-रामायण में उसने 'श्रीराम जय राम जय जय राम' नामक मंत्र आद्याक्षरों से अथवा अन्य ढंग से सिद्ध किया है। इसी प्रकार 'मन्त्रगर्भ-रामायण' और 'बालमन्त्र रामायण' है। यही बात थोड़े बहुत अंश में उसकी अन्य रामायणों की हैं। कुछ रामायणों के नाम तो बहुत ही विचित्र हैं; जैसे 'परन्तु रामायण', 'धन्य रामायण', 'हुँ रामायण' आदि। इस प्रकार की अनेक रामायण उसने लिखीं, परन्तु सभी अच्छी न बन सकीं; तथापि किसी को भी यह मानना ही होगा कि कवि के हाथ में भाषा केवल चेरि के समान थी और वह उसे किसी भी प्रकार नचा सकता था।

बुढ़ापे के ग्रन्थों में काशीजीने पर 'गङ्गा प्रार्थना', 'गङ्गा विज्ञप्ति', 'गङ्गा वकीली', 'विष्णुपद वकीली', 'गङ्गास्तव', 'काशी स्तुति', 'विश्वेश स्तुति' आदि छोटे-छोटे काव्य सम्मिलित हैं। इसी प्रकार तुलजाभवानि, जेंजुरी का खण्डोवा, गिरी का व्यंटेस, कोल्हापुर की अम्बा, विघ्नहर्ता विनायक आदि अनेक देवताओं के स्तोत्र इसी कवि ने रचे। 'पाण्डुरङ्ग दण्डक', 'पण्ढरी माहात्म्य', 'विट्ठल प्रणिधि', 'विट्ठल स्तुति' और 'विट्ठल विज्ञापना' उनमें से कुछ अच्छे सधे हैं। सब स्तोत्रों में 'मुरलीपञ्चक' वहुत छोटा है। वह क्लिष्ट तो है, परन्तु सरस है। कवि के अन्य ग्रन्थों के नाम 'ब्रहद्दशम', 'प्रल्हाद विजय', 'केकावली' और 'संशय रत्नावली' हैं। 'केकावली' महाराष्ट्र में बहुत प्रसिद्ध है। इसमें पृथ्वी-छन्द के १२१ छन्द हैं। यह काव्य कवि ने बिलकुल बुढ़ापे में लिखा। इसमें उसने अपने लिए परमेश्वर की तल्लीनता-पूर्वक स्तुति की है। इसके बाद सन् १७९४ में इस कवि की मृत्यु हुई। मोरोपन्त ने अपनी कविता में आर्याछन्द का विशेष उपयोग किया है और इस छन्द की रचना में यह कवि महाराष्ट्र के कवियों में अद्वितीय है।

मयूर कवि का अनुसरण करनेवाले कवि

मोरोपन्त ने आर्याछन्द रचकर जो नवीन मार्ग महाराष्ट्र को वतलाया, उसका अनुसरण जाने-अनजाने इस कवि के समकालीन कवियों ने करने का वहुत प्रयत्न किया। इन अनुकरणकारों में से एक घुण्डीराजात्मज मोरेश्वर था। उसने 'चन्द्रावलि' नामक काव्य लिखा है। शृङ्गार और नीति की दृष्टि से यह रस तिरस्कार के योग्य है, परन्तु उसके आर्याछन्द मयूर पण्डित के

छन्दों के समान ही सरल और सादे हैं। इसी प्रकार जनार्दन कृष्णानन्द निमग्न, विट्ठल केरिकर आदि लोगों ने मोरोपन्त की नक़ल करने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार के अनुकरणशील कवियों में नारायण कवि भी एक है। इसका 'कविराख्यान' कुछ अच्छा बना है। इस कवि ने मोरोपन्त की रचना का यथेष्ठ उपयोग किया है, परन्तु उसका उपकार इसने कहीं भी नहीं माना। चिन्तामणि नामक कवि ने पन्त की कविता का उपयोग कर उसके नाम का अपने ग्रन्थ में उल्लेख किया है। इसने 'गोपीचन्द्राख्यान' और 'सीता-स्वयंवर' आर्याछन्द में लिखे हैं। महाराष्ट्र में सर्वप्रसिद्ध ध्रुवाख्यान इसीकी रचना समझी जाती है। मोरोपन्त के चित्र-काव्य की भी कई लोगों ने नक़ल करने का प्रयत्न किया। एक ने ध्रुवचरित्र में 'नमोभगवते वासुदेवाय' नामक मन्त्र आद्या-क्षरों से सिद्ध किया है। इसी प्रकार नरहरि कवि ने अपने 'रामजन्म' नामक काव्य में मयूरपन्त का प्रिय मन्त्र 'श्रीराम जयराम जयजयराम' सिद्ध किया है। 'चतुरमन्त्र रामायण' के कर्ता ने तो मयूरपन्त को भी मात कर दिया है। उसने अपने इस ग्रंथ के भिन्न-भिन्न काण्डों में भिन्न-भिन्न रङ्गों से 'श्रीराम जयराम जयजयराम' नामक मंत्र रख दिया है। मोरोपन्त का अनुकरण एक और बात में भी हुआ। अनेक कवियों ने मोरोपन्त के समान अपनी-अपनी कल्पना के अनुसार महाभारत लिखने का प्रयत्न किया, परन्तु उनकी ये रचनायें विशेष प्रसिद्ध होने के कारण उनके ग्रन्थों का उल्लेख हम यहाँ नहीं करते।

अठारहवीं सदी में मोरोपंत के समान भिन्न-भिन्न विषयों पर

ग्रन्थ लिखने वाले कई कवि हो गये हैं। उनमें से सोहिरोबानाथ

मयूरकालीन अन्य कवि

अंबी, ज्योतिपन्त दादा महाभागवत, हरिबाबा आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। सोहिरोबानाथ के अनेक अभंग भजन वग़ैरा तो हैं ही, परन्तु 'अक्षयबोध', 'पूर्णाक्षरी', 'अद्वयानन्द' जैसे छोटे-छोटे ग्रन्थ और 'सिद्धान्त-संहिता', 'महादनुभवेश्वर' जैसे बड़े-बड़े ग्रन्थ भी हैं। इस कवि ने अपने बहुतेरे ग्रन्थ निजी अनुभव से लिखे हैं और उनमें ज्ञान, वैराग्य, नीति, योगाभ्यास आदि का विशेष विवेचन है, परन्तु काव्य की दृष्टि से वे हलके दर्जे के हैं। ज्योतिपन्त दादा ने पूरे भागवत पर मराठी में विस्तृत टीका लिखी है। पूरे भागवत पर जिन दो-तीन कवियों ने टीका लिखी हैं, उनमें इस कवि की गणना है। ज्योतिपन्त दादा के समय हरि अथवा हरिदास नामक एक-दो कवि महाराष्ट्र में हुए। उनमें से एक ने 'योगवाशिष्ठ' नामक ग्रन्थ लिखा है। इसकी छन्द-संख्या १६००० है। योगवाशिष्ठ पर ही दूसरा एक ग्रन्थ लिखने वाला एक दूसरा हरिदास हो गया है। उसने 'कपिल गीता' वग़ैरा कुछ ग्रंथ और लिखे हैं। इन दोनों से भिन्न हरिबाबा नामक एक ग्रन्थकार हो गया है। उसका 'ज्ञान-सागर' नामक बृहत् ग्रन्थ प्रसिद्ध है। उसीने 'हरिबोध' नामक एक वेदान्तात्मक ग्रन्थ और लिखा है। उसके रचे हुए बहुत-से अभंग हैं। इसी प्रकार १८ वीं सदी के अंत में एक-दो छोटे-छोटे कवि और हो गये हैं। उनमें से काशी कवि का नाम उल्लेखनीय है। उसने मोरोपन्त की कविता का उपयोग कर 'पद्यमणिमाला' नामक ग्रन्थ तैयार किया। पन्त की विद्वत्ता इसमें नहीं देख पड़ती, परन्तु शब्द-योजना की दृष्टि से उसने पन्त को भी मात कर दिया

है। उसकी कविता में मृदुता तथा मोहकता बहुत भरी है। इसकी ऐसी सादी रचना है कि रसभंग नाम को न होते हुए, कान पर शब्द पड़ते ही, उनका अर्थ समझ में आ जाता है।

महाराष्ट्र के शाहिर

अबतक हमने शिष्टजनोपयोगी कविता लिखने वाले कवियों का ही वर्णन किया है। परन्तु कुछ कवि ऐसे भी होते हैं कि जिनकी कविता हलके दर्जे के समाज के लिए होती है। तत्त्व की दृष्टि से इनकी रचनायें भी साहित्य में सम्मिलित हैं। प्रत्येक भाषा में इस प्रकार की कविता बनती है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं की मराठी भाषा में उसकी यथेष्ट मात्रा देख पड़ती है। मराठी की इस प्रकार की कविता में पोंवाड़े और लावनियाँ उल्लेखनीय हैं। पोंवाड़े में वीर-रसात्मक वर्णन बहुत अच्छा होता है, परन्तु लावनियाँ शृंगार-रस के लिए ही उपयुक्त हैं। सबसे पुराना पोंवाड़ा आगिनदास नामक कवि का है। उसमें अफ़जलखाँ के वध का वर्णन है। कहते हैं कि यह पोंवाड़ा जीजाबाई, शिवाजी और उसके मराठे सरदारों के सामने ही कहा गया था। इसके बाद दूसरा प्रसिद्ध पोंवाड़ा तुलसीदास नामक शाहिर का है। आगिनदास की तड़प तुलसीदास में नहीं देख पड़ती, परन्तु इसमें काव्य उससे अधिक है। इस पोंवाड़े में प्रसिद्ध तानाजी मालसुरे का वर्णन है। यह भी शिवाजी के समय रचा गया था। इसी काल का तीसरा एक पोंवाड़ा यमाजी नामक शाहिर का है। इसमें बाजी पासलकर की एक लड़ाई का वर्णन है। इसके बाद बहुत काल तक, यानी खास पानीपत की घनघोर लड़ाई तक, कोई पोंवाड़ा न रचा गया। इस युद्ध-प्रसंग के वर्णनात्मक तीन-चार पोंवाड़े हैं। उनमें 'जंगबहार'

नाम का उर्दू पोंवाड़ा क़ादर नामक किसी शाहिर ने उर्दू में सब-से पहले लिखा था। ऐसा जान पड़ता है कि उसने आँखों-देखी बातों का वर्णन किया है। इसी युद्ध के वर्णनात्मक पोंवाड़े पिपलगाँव कर शिवराम, रामासटवाजी, रंगराय वग़ैरा शाहिरों के हैं। शिवराम की रचना साधारण ही है, परन्तु रामासटवाजी का वर्णन कहीं-कहीं बहुत अच्छा हुआ है। रंगराय ने सृष्टि-सौन्दर्य का वर्णन अच्छा किया है। रंगराय के समान गोपीनाथ और माधवसुत नामक शाहिर अनेक प्रकार की कविता करते थे। गोपीनाथ की लावनियाँ ही विशेष देख पड़ती हैं और वे वैराग्यात्मक हैं। माधव-सुत ने सवाई माधवराव पर एक लावनी बनाई है। माधव-सुत, लहरी, मुकुन्द, खण्डे सांड, जनार्दन आदि शाहिर पेशवाई के उत्कर्ष-काल में हुए। इनमें से किसी ने माधवराव पर, किसीने महासाध्वी रमाबाई पर, और किसीने नारायणराव पर कवितायें की हैं। लहरी का नारायणराव की मृत्यु का पोंवाड़ा बहुत प्रसिद्ध है। इस सदी के अन्य शाहिरों में होनाजी बाला, अनंत फन्दी, रामजोशी प्रभाकर, सगन भाऊ, रामचन्द्र, परशराम विशेष प्रसिद्ध हैं। इन लोगों ने उस समय की स्थिति, हलचल आदि का वर्णन अपनी कविताओं में किया है। परन्तु इसके अलावा पूर्ण ऐहिक विषयों का भी वर्णन इन्होंने अपनी कविताओं में किया है। इनकी कविताओं में गृहस्थाश्रम के भिन्न-भिन्न प्रसंगों के चित्र देख पड़ते हैं। वे स्वांग वग़ैरा रच कर तमाशा करते और अपनी कवितायें लोगों को सुनाते थे। पहले-पहल तो हलके दर्जे के लोग ही इस कार्य को किया करते थे। परन्तु लोगों की उसकी ओर इतनी रुचि हो गई कि ब्राह्मण लोग भी

यह पेशा करने लगे। लावनियाँ और पोंवाड़े रचनेवाले कवियों में रामजोशी बहुत ही प्रसिद्ध हो गया है। यह पुरुष तीव्र बुद्धि का अच्छी विद्वत्ता वाला और लहरी स्वभाव का था। साथ ही यह बड़ा भारी प्रतिभावान था। इसकी लावनियाँ महाराष्ट्र में इतनी प्रसिद्ध थीं कि छोटे और बड़े, ऊँच और नीच, सभी उन्हें सुनने जाया करते थे। यहाँ तक कि मयूरपन्त जैसे कवि भी उसकी लावनियाँ सुनने के शौक़ीन हो गये थे। इसी प्रकार अनन्तफन्दी भी प्रसिद्ध शाहिर हो गया है। इसने अनेक प्रकार की रचनायें की हैं, परन्तु इसकी लावनियाँ और फटका नामक रचना महाराष्ट्र में विशेष प्रसिद्ध हैं। इसकी रचनायें सुनने के लिए हज़ारों लोग दौड़ पड़ते थे। जिस प्रकार मदारी साँप को नचावे उसी प्रकार यह अपनी कविता-द्वारा लोगों को आकर्षित करता था। इसकी लावनियाँ सुनने के लिए हज़ारों लोग शाम से सवेरे तक एकसाथ बैठे रहते थे। आजकल अनंतफंदी की लावनियों की अपेक्षा उसके 'फटके' ही विशेष सुनाई पड़ते हैं। इनमें व्यावहारिक नीति अच्छी तरह भरी है, इसलिए वे शिक्षा की दृष्टि से बहुत उपयोगी हैं। अहिल्याबाई होलकर के कहने से अनंतफंदी ने तमाशा करने का और लावनियाँ कहने का धन्धा छोड़ दिया, और वह हरिकीर्तन करने लगा। इसमें भी उसने इतनी कुशलता प्राप्त की कि हज़ारों लोग उसका कीर्तन सुनने आया करते थे। फिर उसका अनुकरण कई लोगों ने करना शुरू किया। अन्तिम बाजीराव के वर्णन का इसका पोंवाड़ा बहुत ही प्रसिद्ध है। फन्दी बाबा ने 'श्रीमाधव ग्रन्थ' नामक सवाई माधव के कार्य-काल का वर्णनात्मक ग्रन्थ लिखा है, परन्तु उसके केवल

प्रथम ६ अध्याय उपलब्ध हैं। इसका छठवाँ अध्याय प्रक्षिप्त जान पड़ता है। अनन्तफन्दी की मृत्यु सन् १८२१ में हुई। अन्तिम पेशवा के कार्य-काल का वर्णन प्रभाकर नामक शाहिर ने किया है। यह बहुत ही हृदयद्रावक हुआ है। इसके सिवाय प्रभाकर ने सवाई माधवराव का जन्म, खड़ी की लड़ाई वग़ैरा विषयों पर भी कविता रची है। इनके अलावा उसकी पौराणिक वर्णनात्मक और शृंगारिक रचनायें भी हैं और वे बहुत ही चित्ताकर्षक हैं। प्रभाकर की कविता कुछ प्रतिष्ठित ढंग की है। अन्य शाहिरों में होनाजी बहुत गुणी पुरुष था। उसकी वाणी में प्रसाद था और उसकी कविताशक्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। इसका कारण कदाचित् यह था कि शाहिरी का धन्धा उसके घराने में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चला जाता था। पौराणिक आख्यान गाते समय वह मुक्तेश्वर और श्रीधर की कल्पनाओं को अप्रत्यक्ष रूप से अपनी कविता में जोड़ देता था। वैसे तो उसने अनेक देवताओं पर लावनियाँ बनाईं, पर श्रीकृष्ण की लावनियाँ बहुत ही ठसकदार बनी हैं। इस समय महाराष्ट्र का उत्कर्ष-काल था और लोग विलास की ओर झुक चुके थे, इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि इस समय की लावनियों में शृंगार-रस भरपूर भरा है। होनाजी की सब कविताओं में प्रभात-काल की भूपाली सारे महाराष्ट्र में प्रसिद्ध है। होनाजी की बराबरी का दूसरा एक शाहिर सगनभाऊ था। यह जाति का मुसलमान था। इसकी लवनियों की चाल, तान, ठेका वग़ैरा बहुत कठिन है। नवसिख तमाशगीर उन्हें नहीं गा सकता, परन्तु वे मार्मिक और भेदक हैं। सगनभाऊ के समान विठोबा, ज्योतिबा, गंगहैबवी, उषामाली वग़ैरा अन्य शाहिर हो गये हैं, परन्तु वे

हलके दर्जे के हैं। हाँ, गोविन्दराव नामक शाहिर अच्छा प्रसिद्ध देख पड़ता है। इसकी लावनियाँ जुन्नर के आसपास विशेष प्रसिद्ध हैं। इसने बहुत-सी कविता की थी। परशराम की प्रसिद्धि नासिक के आसपास विशेष है। यह हरि-विजय, राम-विजय आदि पौराणिक ग्रन्थ और ज्ञानेश्वरी जैसे आध्यात्मिक ग्रन्थ विशेष पढ़ा करता था, इसलिए उनकी छाया इसकी लावनियों में देख पड़ती है। यह तमाशगीर का धन्धा करता तो था, पर उससे पैसा न कमाता था।

अबतक हमने काव्य और कविता का ही इतिहास बताया है। प्राचीनकाल में सारे भारतवर्ष में प्रत्येक बात बहुधा पद्य में ही लिखी जाती थी। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि किसी भी हिन्दुस्थानी भाषा के इतिहास में काव्यों का ही विवेचन विशेष करना पड़ता है। इसका यह मतलब नहीं कि गद्य का उपयोग होता ही नहीं था। हिन्दुस्थानी भाषाओं का स्वरूप निश्चित होने पर उनका गद्य में भी उपयोग होने लगा था। उपर्युक्त सब विधान मराठी पर भी लागू होते हैं। मराठी भाषा के प्राथमिक गद्य-ग्रन्थ महानुभाव-पंथ के धर्म-ग्रन्थ हैं। इस पंथ के लोग अपनी पुस्तकों को सांकेतिक लिपि में लिखते रहे, ताकि दूसरे इन्हें न समझ सकें। परन्तु अपने पंथ के लोगों की समझ में वे शीघ्र ही आवें, इसलिए पद्य की अपेक्षा वे। उन्हें बहुधा गद्य में ही लिखा करते थे। इस पंथ के गद्य-ग्रन्थों में महिंधर व्यास अथवा महिभट के ग्रंथ सबसे प्राचीन गद्य-ग्रन्थ हैं। सम्भवतः इसने अपने ग्रन्थों की रचना तेरहवीं सदी के उत्तरार्थ में की। केशवराज व्यास ने महिंधर के

(पार्श्वशीर्षक: महाराष्ट्र का गद्य-साहित्य)

ग्रन्थों के आधार पर 'सूत्र-पाठ' नामक गद्य-ग्रंथ मराठी में लिखा। इसके 'लापनिक' और 'मूर्तिज्ञान' नामक दो गद्य-ग्रन्थ और हैं। केशवराव व्यास के भाई गोपाल पण्डित ने कई पद्य-ग्रन्थ तो लिखे ही, परन्तु 'दृष्टान्त लक्षण' और 'दृष्टान्त-व्याख्या' नामक दो गद्य-ग्रन्थ भी लिखे। गोपाल पण्डित की मृत्यु १३४० में हुई। इसके समकालीन भात्रे देवबास नामक ग्रन्थकार ने कई गद्य-ग्रन्थ लिखे। इसके बाद नागम्बा नाम की स्त्री अपने लेखनकार्य से बहुत प्रसिद्ध हुई। 'सूत्र-मालिका', 'शय्यापालन' 'दृष्टान्तव्याख्या', 'दुर्भगाप्रमय' और 'उद्धरणपट नामक' चार गद्य-ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इसके गुरु कवीश्वर ने कई गद्य-चरित्र लिखे हैं। तबसे अबतक इस पंथ के ग्रन्थकारों ने अनेक ग्रन्थ मराठी भाषा में लिखे। मराठी भाषा का प्रथम व्याकरण तथा कोष रचने का मान इसी पन्थ के लोगों को है। इस काल में पंचतन्त्र के अनेक अनुवाद भी हुए। इन ग्रन्थों का बहुतसा भाग गद्य में है। इनके बाद 'बेतालपच्चीसी', 'विक्रम बत्तीसी' जैसे गद्य-ग्रन्थ मराठी में लिखे गये। रामदेवराय की बखरें भी लिखी गईं। बिंबस्थान उर्फ़ थाना की बखर तेरहवीं सदी की लिखी जान पड़ती है, परन्तु उसके रूपों के स्थान में अर्वाचीन रूप बहुतसे घुस गये हैं। गद्य-ग्रन्थ की रचना को मुसलमानों के आने से एक दृष्टि से बहुत उत्तेजना मिली। मुसलमानों में तवारीखें लिखने की रीति थी। इस रीति का अनुकरण मराठों ने यथेष्ठ किया; और ऐतिहासिक घटनाओं के वर्णन बखर आदि रूप से लिखे जाने लगे। सन् १५६५ में तालीकोट उर्फ़ राक्षसतागड़ी की जो लड़ाई हुई, उसका वर्णन एक बखर में मिलता है। इस काल के कामशास्त्र, मन्त्रशास्त्र,

रसायनशास्त्र आदि विषयों पर लिखे हुए ग्रन्थ उपलब्ध हैं। सोलहवीं सदी के अन्त में दासोपन्थ नाम का जो कवि हो गया, उसने 'वाक्य-वृत्ति' नामक प्रश्नोत्तर गद्य-ग्रन्थ लिखा है। सत्रहवीं सदी के प्रारम्भ में गोवा-प्रान्त में 'खिस्त्र पुराण' नाम का एक पद्य-ग्रन्थ लिखा गया। उसकी प्रस्तावना गद्य में है। आजकल जो ऐतिहासिक बखरें प्रसिद्ध हैं, उनमें 'छयानवें कलमी बखर' सब-से पुरानी है। इससे पुरानी शिवाजी के काल की कोई बखर उपलब्ध नहीं है। हाँ, उस समय के वृत्तान्त-वर्णन, चिट्ठियाँ और सनदें अवश्य उपलब्ध हैं। शिवाजी के चरित्र का वर्णन अनेक बखरों में लिखा गया है, परन्तु उनमें से बहुतेरी शिवाजी के कई वर्षों बाद लिखी हुई जान पड़ती हैं। कृष्णाजी आनन्द सम्भाजी ने अपनी बखर राजाराम महाराज के कहने पर सन १६९४ में लिखी। इसके बाद कुछ सालों तक महाराष्ट्र में सङ्कट के बादल बने रहे। इसलिए इस समय विशेष ग्रन्थ-रचना न हुई। आगे बालाजी विश्वनाथ के कार्यों का वर्णन एक बखर में लिखा गया। इसका कुछ भाग उपलब्ध हुआ है। इसी समय निरञ्जन माधव ने 'ज्ञानेश्वर-विजय' नामक गद्य-ग्रन्थ लिखा। इसने शंकराचार्य के कुछ ग्रन्थों पर गद्य-टीकायें लिखीं। करहाड़कर निरंजन महाराज का एक गद्य-चरित्र उसके पोते भगवान पाठक ने लिखा। शाहू महाराज के समय लिखे हुए नाटकों का उल्लेख हम पहले कर ही चुके हैं। नाटकों के समान उपन्यास लिखने का उपक्रम किसी ने उस समय न किया, परन्तु छोटी-छोटी कहानियाँ लिखने का प्रयत्न उस समय अवश्य हुआ। संस्कृत-भाषा से मराठी में गद्या-नुवाद करने की प्रवृत्ति बहुत पहले से थी। सन १७६० में पानी-

पत में जो घमासान युद्ध हुआ, उसका वर्णन कई लोगों ने गद्य में लिख रक्खा है। इनमें से भाऊसाहब की बखर बहुत अच्छी है। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध नाना फड़नवीस ने अपना आत्म-चरित्र लिख रक्खा है। इस काल में राजकीय घटनाओं का वर्णन कभी-कभी इतना विस्तार से लिखा गया है कि उन्हें स्वतन्त्र ग्रन्थ भी कह सकते हैं। नाना फड़नवीस ने सवाई माधवराव के लिए बालाजी गणेश के हाथ से एक बखर लिखवाई। यह बखर सन् १७८२ में तैयार हुई। सवाई वाधवराव की शिक्षा-दीक्षा के लिए नाना फड़नवीस ने कई ग्रन्थ लिखवाये। उनमें से 'नारायण-व्यवहार-दीक्षा' महाराष्ट्र में कुछ समय तक सर्वत्र प्रसिद्ध थी। सन् १७८९ के बाद के कई गद्य-ग्रन्थ उपलब्ध हैं। उनके विषय भी भिन्न-भिन्न हैं। यहाँ तक कि बुद्धिबल उर्फ शतरंज खेलना सिखाने के लिए एक पुरुष ने एक ग्रन्थ तैयार किया। मल्हारराव चिटणीस ने सन् १७९३ में अपनी बखर लिखी। फिर चित्रगुप्त की बखर तैयार हुई। इसी काल का 'राजनीति' नामक ग्रन्थ उपलब्ध है, वह संस्कृत-ग्रन्थों के आधार पर लिखा गया है। अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध में बखर लिखने की प्रवृत्ति बहुत बढ़ गई थी, इसलिए कई बखर-ग्रन्थ लिखे गये। इनमें मराठा-साम्राज्य की छोटी बखर और 'पेशवों की बखर' उल्लेखनीय हैं। हमें यह मालूम नहीं कि 'मराठा-साम्राज्य की छोटी बखर' किसने लिखी, परन्तु यह स्पष्ट देख पड़ता है कि उसका लेखक कोई चतुर पुरुष था। यह बखर सन् १८१७ में समाप्त हुई। पेशवों के बखर का कर्ता कृष्णाजी विनायक सोहनी है। वास्तव में यह बखर सोहनी ने स्वयं नहीं लिखी, किन्तु उसने अपने मुख से वर्णन किया और

दूसरों ने उसे लिख रक्खा; इसलिए बहुत-सी सुनी हुई बातें भी उसमें भरी हैं। इन बखरों के सिवाय छोटी-छोटी अनेक बखरें महाराष्ट्र में लिखी गईं। मराठा-राज्य के पतन के बाद अन्य भाषाओं के समान मराठी ने भी सैकड़ों गद्य-ग्रन्थों को जन्म दिया है।

अन्त में पेशवाई के अन्तिम काल के कवियों का वर्णन कर देना अनुचित न होगा। उस समय के जो प्रसिद्ध कवि हुए,

पेशवाई के बाद के कुछ कवि

उनमें देवनाथ महाराज का नाम विशेष उल्लेखयोग्य है। इनका जन्म सन् १७-५४ में हुआ। यह साधु पुरुष थे और कथा-कीर्तन करते हुए घूमा-फिरा करते थे। इनके भजन विशेष प्रसिद्ध हैं। इनकी वाणी में प्रसाद अच्छा है। 'श्रावणाख्यान', 'अहिमहि-आख्यान', कृष्णजन्म' आदि आख्यान और अनेक सुरस कटाव इन्होंने रचे। ये वास्तव में आशु-कवि थे और चाहे जिस समय अपनी कविता करके सुना देते थे। इसी समय के शाहमुनि नामक एक मुसलमान भक्त की कविता प्रसिद्ध है। इसने 'सिद्धान्त बोध' नामक एक पचास अध्याय का ग्रन्थ लिखा है। इस मुसलमान ने हिन्दू-धर्म की दीक्षा लेकर यह ग्रंथ लिखा, इसलिए वह कौतुकास्पद है; परन्तु उसमें कोई विशेष बात नहीं है। वह कई बातों की खिचड़ी है, और वह भी नीरस है। पेशवाई के बाद के कवियों में रामचन्द्र और विट्ठलनाथ की कवितायें कुछ मजेदार हैं। विट्ठलनाथ का कृष्ण-राधिका का वर्णन बहुत प्रसिद्ध है। उसमें शृंगारिक कल्पनायें उस काल के अनुसार बहुत हैं। उस काल में और भी कई कवि हुए, परन्तु वे इतने प्रसिद्ध

नहीं हैं कि हम यहाँ उनके ग्रंथों का वर्णन करें। उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में यह सर्व-साधारण बात ध्यान में रखने लायक़ है कि उनमें पारलौकिक प्रवृत्ति की अपेक्षा ऐहिक प्रवृत्ति ही अधिक देख पड़ती है। यहाँ तक कि एक कवि ने तो भोजन के पदार्थों पर भी कविता की है। उनकी इन कविताओं से समाज की दशा की कल्पना अच्छी तरह हो सकती है।

३३

मराठी सत्ता का विनाश : उसके कारण

मनुष्य के शरीर का विनाश या तो भीतरी बीमारियों से होता है, या संक्रामक रोग उसे नष्ट करते हैं, अथवा कभी-कभी दुर्दैवी घटनाओं के कारण उसका अन्त हो जाता है। शरीर-विनाश के कारणों का यह वर्ग-भेद राजकीय सत्ता के विनाश पर भी बहुत कुछ लागू हो सकता है। इसलिए हम मराठी सत्ता के विनाश के कारणों का विवेचन यथासम्भव इसी क्रम से करेंगे।

विनाश के कारणों का वर्गीकरण

महाराष्ट्र की सत्ता अच्छी तरह फूले-फले और उसका विशाल सुदृढ़ वृक्ष तैयार हो, इसके लिए शिवाजी ने कई प्रकार की सावधानी ली थी। पर कुछ तो अनिवार्य कारणों से और कुछ निवार्य कारणों से शिवाजी के बाद शीघ्र ही उसकी व्यवस्था बदल गई। शिवाजी की व्यवस्था का पहला प्रधान गुण

शाहू के समय कई बुराइयों की उत्पत्ति

यह था कि मराठा-राज्य की सत्ता उसके समय में एक व्यक्ति के हाथ में केन्द्रीभूत थी। उसके ऐसा होने में शिवाजी का कोई दोष न था। बहुत प्राचीन काल से उस समय तक और उसके बाद भी कुछ समय तक राज्य-सत्ता एकतंत्री होने की प्रथा ही थी। जबतक राज्य का शासक योग्य पुरुष होता तबतक शासन बहुत अच्छी तरह चलता और राज्य की नींव मजबूत रहती, पर उसके अयोग्य होते ही सब बातें बिगड़ जाती थीं। कई लोग पेशवों पर इस बात का दोष लगाते हैं कि पेशवों ने राजा की सत्ता अपने हाथ में ले ली और उन्हें निःसत्व बना डाला। इसी कारण मराठी सत्ता के विनाश का पहले-पहल बीज बोया गया। पर अबतक हमने जो वर्णन किया है, उससे यह स्पष्ट हो जायगा कि पेशवे राजा को निःसत्व करने के लिए बहुत ही कम जिम्मेदार हैं। हम यह देख चुके हैं कि शाहू महाराज ने अपनी पूर्ण इच्छा से अपने बहुतेरे अधिकार बालाजी विश्वनाथ, बाजीराव तथा बालाजी बाजीराव के हाथ में सौंप दिये और वह स्वयं विलास और मृगया में अपना समय बिताया करता था। शाहू ने अपने अन्त समय में बालाजी बाजीराव को मराठा-राज्य के शासनाधिकार की जो सनद लिख दी, उसके विषय में भले ही कोई यह कहले कि पेशवा ने राजा से उसकी भ्रमावस्था में लिखवा लिया; परन्तु रामराजा ने जो सारे शासनाधिकार उसके हाथ में सौंप दिये और स्वयं निश्चेष्ट बना रहा, वह तो भ्रम की अवस्था की बात नहीं हो सकती। राजा जब निःसत्व और अयोग्य होते हैं, तो उनकी शक्ति का उपयोग बहुधा प्रधान मंत्री किया करते हैं। इस ऐतिहासिक सत्य के विषय में कुछ भी आशंका करने के लिए

स्थान नहीं है। यदि सातारा के राजा लोग शिवाजी के समान सारा शासन स्वयं करते, तो पेशवों को सर्व-सत्ताधीश होने का अवसर ही न मिलता ! इसलिए राजाओं को शून्यवत् करने का अभियोग पेशवों पर नहीं लगा सकते। परन्तु हमारे इस कथन का यह मतलब नहीं है कि इस परिवर्तन से कोई बुराई नहीं हुई। राजा की सत्ता पेशवों के हाथ में आने से जो अन्य परिवर्तन हुए और जो अनेक बुराइयाँ हुईं, उनका दिग्दर्शन हम समय-समय पर कर ही चुके हैं। हम यह बताही चुके हैं कि पेशवों के सर्व-सत्ताधारी होने पर अष्ट-प्रधान-मण्डल के अन्य प्रधान नाचीज़ हो गये और इस प्रकार पेशवों की सत्ता एक दृष्टि से शिवाजी की सत्ता से भी बढ़कर हो गई। जो काम पहले नौ-दस की सलाह से होता था, वह केवल एक के मत से होने लगा। इस परिवर्तन से एक बुराई यह और देख पड़ी कि पेशवा की सत्ता को पुराने जागीरदार उतनी तत्परता से न मानते थे कि जितनी तत्परता से शिवाजी के प्रधान उसकी आज्ञा मानते थे। आगे हम यह तो देखेंगे ही कि जागीरदारी की प्रथा से अनेक बुराइयाँ पैदा हुईं और इस प्रकार की बुराइयाँ सभी इतिहास में देख पड़ती हैं। पर यह सबको मानना होगा कि राजा के सर्व-सत्ताधारी रहते यदि जागीरदारी की प्रथा चल निकली होती तो उससे जितनी बुराइयाँ होतीं, उससे कहीं अधिक पेशवा के सर्व-सत्ताधारी होने पर जागीरदारी-प्रथा के प्रचलित होने से हुईं। यह बात इसीसे सिद्ध है कि रघुजी भोंसले और दाभाड़े शाहू को जितना मानते थे, उतना किसी पेशवा को न मानते थे। यही कारण है कि पेशवा और इन सरदारों के बीच बहुत अधिक

लड़ाई-झगड़े होते थे। इन लड़ाई-झगड़ों में मराठी सत्ता की जो सर्व-शक्ति नष्ट हुई वह यदि मराठी सत्ता के प्रसार या व्यवस्था में लगी होती, तो वह बहुत सुदृढ़ हो जाती; पर जागीरदारी-प्रथा को अमल में लाने पर मराठी सत्ता का यह रोग अनिवार्य हो गया था।

पेशवों के निकम्मे होने से बुराइयाँ

मराठी सत्ता में जो परिवर्तन और बुराइयाँ सातारा के राजाओं के निकम्मे होने पर पेशवों के हाथ में सर्व सत्ता के केन्द्रीभूत होने से हुईं, वही आगे पेशवों के निकम्मे होने पर परिवर्तित रूप में देख पड़ीं। पेशवा की सत्ता तो बहुत-से सरदार कम-अधिक प्रमाण में मानते ही थे, पर उनके अयोग्य निकलने पर उनके कारबारी की आज्ञाओं को पेशवों के सरदार भी बहुत कम तत्परता से मानते थे। नाना फड़नवीस के स्थान में स्वयं कारबारी होने की महादजी की इच्छा ने महाराष्ट्र की कितनी शक्ति नष्ट की, इसका लेखा इतिहास भी नहीं बतला सकता। पेशवों के अयोग्य होने पर उनकी सत्ता किसी अन्य के हाथ में चली जाना अनिवार्य था। भाग्य से नाना फ़ड़नवीस जैसा चतुर पुरुष कारबार चलाने के लिए मिल गया, अन्यथा वह कारबार दूसरों के हाथ में पड़ने से मराठी सत्ता का अन्त कम से कम ४० वर्ष पहले हो जाता। जो बात हमने नाना फड़नवीस के सम्बन्ध में कही है, वही बात बालाजी विश्वनाथ, बाजीराव और बालाजी बाजीराव के सम्बन्ध में लागू होती है। इन पेशवों में जो योग्यता थी वह यदि उनमें न होती, तो दक्षिण के सूबेदार निजामुलमुल्क ने और दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह ने मराठी सत्ता को कभी

का ग्रस डाला होता। इससे यह कहना ठीक नहीं कि पेशवों के सर्वसत्ताधारी होने से मराठा सत्ता का विनाश हुआ। उलटे यह कहना अधिक ठीक होगा कि पेशवों ने उसे बढ़ाया और उसे दीर्घायुषी बनाया। राजाओं के निकम्मे होने पर जो परिवर्तन हुए और उन परिवर्तनों से जो बुराइयाँ पैदा हुईं, वे उपर्युक्त स्थिति के स्वाभाविक परिणाम हैं। जहाँ-जहाँ शासन-व्यवस्था व्यक्ति-प्रधान होती है, वहाँ-वहाँ ये दोष अनिवार्य होते हैं। संस्था-प्रधान राज्य बहुधा संस्थाओं पर अवलम्बित रहते हैं। उनमें व्यक्ति का महत्व कम रहता है और बहुधा अयोग्य व्यक्ति के हाथ में राजकीय सत्ता जाने की सम्भावना कम रहती है और इसलिए उसके विनाश की सम्भावना भी कम रहती है। शिवाजी की शासन-व्यवस्था कुछ अंशों में तो संस्था-प्रधान थी, पर पेशवों के समय में मराठा शासन बिलकुल व्यक्ति-प्रधान था। उस समय किसीने उसे संस्था-प्रधान करने का प्रयत्न नहीं किया। इस स्थिति के जो परिणाम हुए, वह हम ऊपर बतला ही चुके हैं।

नियम न मानने से होने वाले दोष

शिवाजी की शासन-व्यवस्था में एक-दो बड़े भारी परिवर्तन और हुए। शिवाजी बहुधा किसीको जागीर न देता था। सम्भवतः इस प्रथा की बुराइयों को वह बहुत अच्छी तरह जानता था। इसलिए उसने नक़द वेतन देने की रीति प्रचलित की। इसी प्रकार शिवाजी के समय में बाप के बाद बेटे को बाप की नौकरी मिलना कोई आवश्यक बात न थी। नौकरियाँ बहुधा योग्यता के अनुसार दी जाती थीं। शिवाजी के ये दोनों नियम उसके बाद तोड़े जाने लगे और पेशवों के समय में तो उनका

कहीं नाम भी न रहा। जागीरदारी की प्रथा पहले-पहल राजाराम के समय अमल में आई। औरंगज़ेब ने महाराष्ट्र पर चढ़ाई करके उसकी जो दशा की और उससे महाराष्ट्रियों ने अपने देश की किस प्रकार रक्षा की, इन दोनों बातों का वर्णन हम यथास्थान कर चुके हैं। उससे यह प्रकट होगा कि जागीर का लोभ दिखलाये बिना महाराष्ट्र का उद्धार उस समय कदाचित न हुआ होता। केवल स्वदेशाभिमान से प्रेरित होकर बिना किसी स्वार्थ की आशा के अपनी जान और माल को जोखिम में डालने वाले पुरुष सब काल और देशों में थोड़े होते हैं। महाराष्ट्र में उस समय चारों ओर जो मुग़ल सेना फैली हुई थी, उसे दूर करने के लिए स्वार्थ का प्रलोभन अत्यावश्यक था। इसलिए शाहू जब महाराष्ट्र में आया तब उसे भी उस प्रचलित प्रथा को मानना ही पड़ा। इसलिए जागीरदारी की प्रथा पहले-पहल शुरू करने का दोष शाहू पर लगाना ऐतिहासिक दृष्टि से अनुचित है। संसार के इतिहास में यह देख पड़ता है कि ऐसे समय में जागीरदारी की प्रथा अवश्य प्रचार में आई है। इसलिए बाहरी आपत्ति से यदि कोई भीतरी दोष पैदा हो तो उसके लिए किसी को जवाबदार ठहराना अनुचित है। बालाजी विश्वनाथ ने पूर्व-प्रचलित प्रथा को मान्यता देकर उसे एक सत्ता के हाथ में संगठित करने का जो प्रयत्न किया, उसमें विशेष गुण-दोष निकालना सम्भव नहीं है। उसने इस समय जागीरदारों को एक सूत्र से बाँधने का जो प्रयत्न किया, वह उस समय में सर्वोत्तम था। जागीरदारी की प्रथा से जो बुराइयाँ हुईं, उनका मूल कुछ भिन्न ही बात में है। स्वराज्य के भीतर की जागीरदारी की प्रथा को बालाजी विश्वनाथ और बाजीराव ने मुग़लाई में जीते हुए

मुल्क में भी प्रचलित किया। यह अवश्य आक्षेपार्ह है; और उसे जिस ढंग से प्रचलित किया, वह तो बहुत ही अधिक आक्षेपार्ह है। ऊपर हम यह मान चुके हैं कि स्वराज्य के भीतर जागीरदारी की प्रथा जो प्रचलित हुई, शाहू अथवा बालाजी विश्वनाथ का उसे टालना सम्भव न था। पर मुग़लाई के जीते हुए राज्य में उसी प्रथा को प्रचलित रखना उतना आवश्यक न था; और जिस ढंग से प्रचलित किया, वह तो अवश्य बुराई का बीज था। मुग़लाई के जीते हुए राज्य में पेशवा यदि शिवाजी के ढंग की शासन-व्यवस्था स्थापित करते तो जागीरदारी की प्रथा से होने वाली बुराइयाँ मराठा-राज्य में बहुत कम दिखाई पड़तीं. परन्तु पेशवों के समय में भी जागीरदारी की प्रथा बहुत अधिक बढ़ी और वह बहुत ही हानिकारक ढंग से प्रचलित हुई। जो सरदार जो मुल्क जीतता, वह उसका जागीरदार बन बैठता था; और पेशवों ने उसपर कुछ भी आक्षेप न किया, इस कारण शिन्दे, भोंसले, होलकर, गायकवाड़ वग़ैरा पेशवा की कुछ भी परवाह न करके अपनी-अपनी जागीरों को बढ़ाने में लगे रहे। आगे जब उनकी बढ़ती प्रवृत्ति बाजीराव ने देखी तो उन्हें रोकने का प्रयत्न किया। पर यह प्रयत्न इतनी देर से हुआ कि उसे ये सरदार मानने को बिलकुल तैयार न थे। इस कारण इन सरदारों और पेशवों के बीच युद्ध होते रहे। इस प्रकार जिस शक्ति का उपयोग मराठी सत्ता के प्रसार में और उसे दृढ़ बनाने में हुआ होता, वह आपसी लड़ाई-झगड़े में ही पूरे एकसौ वर्ष तक नष्ट होती रही। मराठा-राज्य को अंग्रेज़ी में 'मराठा कानफ़िडरेसी' और हिन्दी या मराठी में महाराष्ट्र-राज्य-मण्डल कहते हैं। यह नामाभिधान कुछ ही अंश

तक ठीक है, क्योंकि इन राज्यों के बीच अथवा इनका पेशवा से कोई विशेष घनिष्ठ सम्बन्ध न था। यदि इनमें कुछ सम्बन्ध था तो केवल इतना ही कि सबके संस्थापक मूल में महाराष्ट्र के रहने वाले थे और प्रारम्भ में विजय की अनुमति सातारा के राजा अथवा पेशवा से पाई थी। सबल होने पर इन लोगों ने सातारा के राजा और पेशवा की परवाह करना बहुतांश में छोड़ दिया और अपने-अपने राज्य अपनी-अपनी जागीरों में स्थापित करने तथा उन्हें बढ़ाने लगे। सातारा के राजा अथवा पेशवा का उनपर ऐसा कोई बंधन न रह गया कि जिससे वे इन सरदारों को दबा सकें और उन्हें अपनी आज्ञा मानने को बाध्य कर सकें। बालाजी विश्वनाथ से प्रथम माधवराव तक सब पेशवा अच्छे योग्य होने के कारण कुछ स्वतंत्र तो थे, पर प्रथम माधवराव के बाद पेशवों को ही अपने सरदारों की आज्ञा माननी पड़ी थी और सदैव उनसे दबे रहना पड़ता था। वे लोग आपस में तो लड़ते ही, पर वे पेशवों से भी लड़ते थे और उन्हें अपनी मुट्ठियों में बनाये रखने का प्रयत्न सेना तथा राजनीति दोनों के बल पर किया करते थे। यह देख ही चुके हैं कि द्वितीय बाजीराव को होलकर की चढ़ाई के कारण ही अंग्रेजों की शरण में जाना पड़ा और इस पेशवा ने स्वदेश-स्वातन्त्र्य से स्वार्थ की क़ीमत अधिक समझ कर अपने हाथ-पैर दूसरों के क़ब्जों में दे दिये। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जागीरदारी की प्रथा जिस ढंग से मुग़लाई में प्रचार में आई, वह अत्यन्त अनुचित थी; उससे महाराष्ट्रीय सरदारों के राज्य तो उत्पन्न हुए ही, पर वास्तविक मराठी सत्ता न बची। कुछ लोग यह कहते हैं कि महाराष्ट्र में मुख्य मध्यवर्ती सत्ता न होने के कारण

मराठी सत्ता का विनाश हुआ, पर वे इस बात का ख़याल नहीं करते कि यह निदान ठीक होने पर भी वह दूसरे एक कारण से उत्पन्न हुआ है। यदि पेशवों ने मुग़लाई में जागीरदारी की प्रथा अमल में न लाई होती, अथवा यदि वे लाते ही, तो स्वराज्य के मुल्क के समान मुग़लाई के जीते हुए मुल्क पर भी अपना क़ब्ज़ा अच्छी तरह बनाये रखते और मध्यवर्ती सत्ता का अभाव भी न रहता; और तब फिर वे बुराइयाँ न होतीं, जो इतिहास में देख पड़ती हैं। हम कह ही चुके हैं कि जागीरदारी की प्रथा सभी देशों में देख पड़ी है; पर जिन देशों में मुख्य शासक ने जागीरदारों को अपने क़ब्ज़े में रख कर उनकी सत्ता को धीरे-धीरे नष्ट किया है, उन्हीं देशों के राज्य दीर्घस्थायी हुए हैं। महाराष्ट्र में पेशवों ने अपने सरदारों को अपनी आज्ञा मानने के लिए दबाना चाहा, पर जबतक उनकी सत्ता अक्षुण्ण बनी थी तबतक पेशवा से इन सरदारों का दबना सम्भव न था। सत्ता और साधन के रहते कोई भी सरदार अपने राजा से नहीं दबते। इसीलिए पेशवों का अपने सरदारों को दबाने का प्रयत्न वृथा हुआ। इतिहास में यह कहीं नहीं देख पड़ता कि पेशवों ने सरदारों की सत्ता निश्चित करने का प्रयत्न किया हो और यह बतलाया हो कि तुम अपनी जागीर में अमुक-अमुक काम कर सकते हो और अमुक नहीं। ये सरदार वास्तव में सरदार न होकर बहुत कुछ स्वतंत्र राजा थे और राजा के जितने अधिकार होते हैं उन सबका उपयोग ये लोग बिना रोक-टोक करते थे। फिर क्या आश्चर्य है कि ये अपनी राज्य-रूपी जागीर को चाहे जिन उपायों से बढ़ाते थे और पेशवे यदि इनके इस कार्य में बाधा डालते तो उनसे भी

युद्ध छेड़ देते थे ? सारांश यह है कि मुग़ल-राज्य के जीते हुए मुल्क में जागीरदारी की प्रथा अमल में लाने का, उसे मनमाने ढंग से अमल में आने देने का और जागीरदारों को राजाओं के समान सारा शासन करने देने का दोष पेशवों के सिर पर अवश्य मढ़ा जा सकता है ।

इसीके साथ एक और दोष उत्पन्न हुआ, जिसका उल्लेख हम कर चुके हैं और जो जागीरदारी की प्रथा को बढ़ाने में बहुत अधिक सहायक हुआ है । वह यह है कि नौकरियाँ और सरदारियाँ आनुवंशिक हो गई थीं । यह तो सभी मानते हैं कि योग्य बाप का लड़का सदैव योग्य ही होगा, यह सम्भव नहीं है । परन्तु इस बात का कुछ विचार न करके मराठा-राज्य में पेशवाई को पेशवे के वंश में, जागीरोंको जागीरदारों के वंश में और राज्य की अन्य नौकरियों को उन पदों पर रहने वाले नौकरों के वंश में सदैव के लिए जारी किया । अयोग्य लोगों के हाथ में शासन का रहना राज्य की भलाई के लिए कभी भी अच्छा नहीं होता; और आनुवंशिक रीति से नौकरियों को चलने देने से राज्य का शासन अयोग्य हाथों में पड़े बिना नहीं रहता । बालाजी विश्वनाथ से प्रथम माधवराव तक पेशवे अच्छे योग्य हुए । प्रथम माधवराव के बाद यह बात न रही । पेशवों के अयोग्य होने के कारण उनका कारबार दूसरों को चलाना पड़ा । भाग्य से उस समय नाना फड़नवीस जैसा योग्य पुरुष मिल गया । वह यदि योग्य न होता तो मराठा-राज्य का शकट कभी का उलट जाता । जो बात हमने पेशवा के पद के सम्बन्ध में कही है, वही

आनुवंशिक नौकरी की प्रथा के दोष

बात अन्य सरकारी पदों के सम्बन्ध में लागू होती है। हिन्दी में 'नौकर के चाकर' वाली जो भद्दी कहावत प्रसिद्ध है, वह पेशवों के काल के शासन को पूरी तौर से लागू होती है। प्रतिनिधि का लड़का प्रतिनिधि अवश्य रहे, पर वह यदि अपना काम न कर सके तो वह एक मुतालिक नियत करले। यह मुतालिकी भी वंश-परम्परा से चले। स्मरण रखने की बात है कि दाभाड़े मराठा-राज्य के सरदार थे और गायकवाड़ उनके मुतालिक थे; और उनके वंश में यह मुतालिकी इतनी पक्की हो गई कि आज दाभाड़े का तो कहीं नाम भी नहीं है, पर उनके मुतालिक गायकवाड़ का राज्य आज भी बना हुआ है। मुतालिकी की यह प्रथा मराठा शासन में सब जगह प्रचलित थी। इससे शासन निकम्मा और कमजोर हुए बिना न रहा। सभी लोगों का ध्यान किसी भी प्रकार धन-दौलत और जागीर कमाने की ओर था। राष्ट्र और राज्य की भलाई की ओर ध्यान देने वाले कोई भी न थे। यहाँ तक कि नाना फड़नवीस भी इस दोष से बरी नहीं है। उसने भी राज्य की भलाई का भरपूर ध्यान न रख अपनी निजी जायदाद कमाने का प्रयत्न किया। उससे मराठा-राज्य को हानि पहुँचे बिना न रही और फिर सवाई माधवराव की मृत्यु के बाद शासन के सूत्र अपने हाथों में रखने के लिए जो-जो प्रयत्न किये, वे अत्यन्त गर्हणीय हैं। उसके इन प्रयत्नों से महाराष्ट्र के राज्य को जो हानि पहुँची, वह इतिहास में प्रकट है। आनुवंशिक पद्धति से जागीरदारी की प्रथा बहुत पक्की बन गई। यदि आनुवंशिक पद्धति अमल में न आई होती तो जागीरदारी की प्रथा को रोक रखना अथवा जागीरदारों के अधिकारों को कम

करना पेशवों के लिए सम्भव था, पर एक बार आनुवंशिक पद्धति को अमल में लाने पर जागीरदारों को क़ाबू में रखना पेशवों के लिए सरल न था। परन्तु पेशवों ने तो इस प्रकार का कोई प्रयत्न किया ही नहीं। उन्होंने तो सब पदाधिकार और जागीरें वंश-परम्परा से चलने दीं। यदि महाराष्ट्र का राज्य विशेष न बढ़ा होता तो जिस दैव-दुर्विलास में इसे पड़ना पड़ा, उसमें वह सम्भवतः बच जाता। पर पेशवों ने शिवाजी के तत्त्वों को अमल में लाने का कुछ भी प्रयत्न न किया।

शायद कोई यह कहे कि शिवाजी के शासन-तत्त्वों को समय के कारण पेशवे अमल में न ला सके। पर एक बात तो बालाजी विश्वनाथ, बजीराव आदि ने ऐसी की, जिसके लिए ये लोग पूरी तौर से जिम्मेदार हैं। बालाजी विश्वनाथ से

मनमाने ढंग से राज्य-प्रसार करने के दोष

लगाकर आगे सब पेशवे महाराष्ट्र का राज्य और सत्ता उत्तर की ओर ही बढ़ाते रहे और बाजीराव के समय से तो उनका लक्ष्य दिल्ली पर ही बना रहा। बाजीराव ने जिस नीति का प्रतिपादन किया, वह पढ़ने और सुनने में भले ही बहुत आकर्षक जान पड़े, पर व्यवहार में वह असम्भव होने के कारण मराठा-राज्य के लिए घातक रही। शिवाजी का उद्देश्य केवल मराठा-राज्य में स्वराज्य-स्थापना करने का था, अथवा वह सारे भारतवर्ष में भी हिन्दू स्वराज्य-स्थापना करना चाहता था, इसके विषय में भले ही थोड़ा-बहुत मतभेद हो, यह भी भले ही कहा जाय कि समय के अनुसार शिवाजी ने कदाचित अपना उद्देश्य बदला होता, तथापि एक बात तो स्पष्ट रीति से कही जा सकती है कि जिस

क्रम से बालाजी विश्वनाथ और बाजीराव इत्यादि लोगों ने महाराष्ट्र के राज्य का प्रसार किया वह क्रम शिवाजी का न था और मराठी सत्ता के लिए अन्त में बड़ा घातक हुआ। घर के दरवाजे के पास प्रबल शत्रु बने रहने देना परन्तु दूर के मुल्कों पर चढ़ाई करके वहाँ अपनी सत्ता स्थापित करना, अथवा दिल्ली को अपने कब्जे में करके मराठा-राज्य का सुख-स्वप्न देखना, राजनीति के ही नहीं किन्तु सामान्य नीति के भी विरुद्ध जान पड़ता है। निजामुलमुल्क ने प्रारम्भ से ही मराठों की घरू बातों में दूर से ही जितना हस्तक्षेप किया, मराठों को आपस में लड़ाया और इस प्रकार अपना लाभ सिद्ध किया, यह किस प्रकार बाजीराव की दृष्टि में न आया, यह आश्चर्य की बात है। यह तो कह ही नहीं सकते कि निजामुलमुल्क इतना भारी शत्रु था कि बाजीराव उसे हरा नहीं सकता था। स्वयं बाजीराव ने निजाम को एक-दो बार अच्छी तरह परास्त किया। यदि वह मालवा और गुजरात जैसे दूर के प्रान्त जीत सकता था और इनकी विजय में बाधा करने पर निजामुलमुल्क को हरा सकता था, तो वह निजामुलमुल्क के राज्य को भी नष्ट करने की ताक़त अवश्य रखता था। ऐसी स्थिति में निजामुलमुल्क को क्यों बचा दिया, यह बड़ा भारी प्रश्न है। नर्मदा-पार राज्य बढ़ाने की अपेक्षा यदि मराठों ने उसके दक्षिण की ओर का सारा मुल्क अपने कब्जे में करने का प्रयत्न किया होता तो बहुत लाभदायक होता। इस मुल्क में इनका जो शासन स्थापित होता वह अधिक सुदृढ़ होता और उनकी सत्ता बहुत बलवती होती। जागीरदारी की प्रथा और आनुवंशिक पद्धति भी अमल में आने पर उसकी शक्ति सन १७६० के समय की शक्ति की

अपेक्षा बहुत अधिक रहती। इस सम्बन्ध में महाराष्ट्र के इतिहास-संशोधक श्री वासुदेव वामन खरे ने जो कहा, वह बहुत कुछ ठीक है। वह कहते हैं कि "यदि सरंजाम (जागीर) मिलने की इच्छा से प्रदेशों के बाद प्रदेश जीतकर राज्य बढ़ाने की महत्वाकांक्षा सरदारों को न हुई होती, अथवा ऐसा करने के लिए छत्रपति महाराज ने उत्तेजना न दी होती, और उसके बदले यह कहा होता कि जितना राज्य है उसकी व्यवस्था पहले कर लो, उसके भीतरी झगड़े दूर करके क़ायदे-क़ानून का प्रचार करो और उसकी उन्नति करो, तो राज्य अवश्य न बढ़ता, परन्तु जितना था उतना बलवान और स्थायी हो गया होता। मनमानी चढ़ाई करने के और अपनी तलवार की बहादुरी प्रकट करने के फंदे में पड़कर मराठे सरदारों को लाहोर पर चढ़ाई करने का अवसर तो मिल गया, पर जो बालाघाट का प्रदेश साधु-सन्तों का जन्मभूमि और वास्तविक प्राचीन महाराष्ट्र कहा जा सकता है, वह तथा पैठण, औरंगाबाद, नांदेड़, जालना, बीड़ आदि प्रदेश अधिकृत करने का अवकाश मराठों को न मिला। शांति के समय में मराठों का राज्य सब ओर था, पर अशान्ति के समय में कहीं नहीं था। ऐसी दशा होने का कारण यही था कि मराठों के अधिकार में कोई भी प्रान्त पूर्णतया कभी नहीं आया। कोई-कोई कहते हैं कि मराठों का नाश होने का कारण यह है कि शाहू के समय से उनमें आपस में मेल या प्रेम नहीं देख पड़ता था और उनमें स्वदेशाभिमान नहीं रह गया था। महाराष्ट्रियों में ये दोष स्वाभाविक न थे; किन्तु जिस प्रकार मराठा-राज्य का प्रसार, शासन आदि हुआ, उससे ये दोष पैदा हुए थे। जहाँ कहीं आनुवंशिक जागी-

रदारी की प्रथा उत्पन्न होती है वहाँ आपसी लड़ाई-झगड़े सदैव बहुत अधिक होते हैं। इस कथन के प्रमाण के लिए बहुत दूर जाने की आवश्यकता नहीं। १५ वीं शताब्दी में इंग्लैण्ड में 'वार्स आफ़ दी रोज़ेज़' नामक जो युद्ध हुए, वे इसके अच्छे प्रमाण हैं। बालाजी विश्वनाथ ने तो सब जागीरदारों के स्वार्थ को एक सूत्र में गूँथने का प्रयत्न किया था; पर बाजीराव के समय मराठी सत्ता का प्रसार जिस मनमाने ढंग से हुआ, उसमें प्रत्येक जागीरदार का स्वार्थ मुख्य सत्ता से अथवा दूसरे सरदारों के स्वार्थ से सदैव स्वतंत्र रहा। जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, ये सरदार अपनी-अपनी जागीरों में एक अच्छे बलवान राजा से किसी प्रकार कम न थे। स्वतंत्रता-पूर्वक अपनी सत्ता और राज्य बढ़ाने में और पेशवा या अन्य किसी मराठा सरदार की परवाह न करने में ही उनका स्वार्थ था। जब स्वार्थ बलवान हो जाता है तो उसका विरोधी स्वदेशाभिमान अपना प्रभाव नहीं दिखा सकता। पेशवों के समय में महाराष्ट्रियों में स्वदेशाभिमान नाम को न था, ऐसा इतिहास से सिद्ध नहीं होता। पानीपत की लड़ाई में मराठा-सन्मान के लिए जो अनेक सरदार एकत्र हुए उनमें स्वदेशाभिमान की मात्रा न थी, ऐसा कहना उनके साथ अन्याय करना होगा। पर बहुधा उनका स्वार्थ इतना बलवान होता था कि उसके सामने स्वदेशाभिमान की प्रवृत्ति की कुछ भी नहीं चलती थी। यदि मराठों ने अपनी सत्ता का प्रसार मनमाने ढंग से न किया होता, यदि वे शिवाजी के उद्देश्य को एकदम न उलट देते, तो मराठी सत्ता इतनी शीघ्र नष्ट न हुई होती। पर पेशवों ने तो मराठी सत्ता का प्रसार ऐसे स्थानों में किया कि जहाँ महारा-

राष्ट्रियों की संख्या नाम को न थी; और ऐसे ढंग से किया कि शासित लोगों को उनके लिए किसी प्रकार का प्रेम न हो सका। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि उनसे केवल उत्तर-हिन्दुस्थान के मुसलमान ही नहीं किन्तु हिन्दू भी लड़ते थे; और आश्चर्य नहीं कि राजपूतों जैसे कट्टर शूरवीर और स्वदेशाभिमानी हिन्दुओं ने पानीपत की लड़ाई के समय मराठों को कुछ भी मदद न दी। इतिहास से यह नहीं देख पड़ता कि उत्तर-हिन्दुस्थान में जो मराठी सत्ता प्रस्थापित हुई, उसका स्वरूप मुसलमानी राज्य से बहुत भिन्न था। हम यह बतला ही चुके हैं कि मराठे सरदारों की सेनाओं में इस समय महाराष्ट्री तो बहुत कम थे, पर अरबी, पुरभय्ये आदि लोग अधिक थे। इन लोगों में न तो महाराष्ट्र का अभिमान था और न भारतवर्ष का ही। वे तो केवल रुपये के लोभ से सैनिक चाकरी करते थे। उन्हें लोकहित का खयाल रहना सम्भव न था। उनके कारण मराठों का शासन मुसलमानों के शासन के समान जान पड़ता था। वे प्रजा को नाना प्रकार के कष्ट देते और लूट-मार करते थे। होलकर ने अपनी सेना के साथ पिण्डारियों को रहने देने की आज्ञा देकर अपने को भी लुटेरों में शामिल कर लिया था। ऐसे शासकों का शासन लाख प्रयत्न करने पर भी और हजारों साल रहने पर भी बहुत काल तक नहीं टिक सकता। सारांश में यह कह सकते हैं कि मराठों का राज्य लूट-मार करने वाली फ़ौजी छावनी का ही राज्य था।

विचार करने की बात है कि जिस पद्धति का उपयोग शिवाजी ने अपने प्रारम्भिक काल में किया और राज्य के स्थापित होते ही उसके भीतर उसे उसने न चलने दिया, उसका उपयोग पेशवे लोग

अन्य सत्ता के प्रदेश में ही नहीं किन्तु स्वयं मराठी सत्ता के प्रदेश में और कभी-कभी स्वयं अपनी जागीर के अन्दर भी अन्त तक करते रहे।

लूटमार का दोष

उनकी इस पद्धति से पहला दोष जो उत्पन्न हुआ, वह यह था कि मराठों के विषय में महाराष्ट्र में और महाराष्ट्रेतर मुल्क में आत्मीयता का भाव न रह गया था। जिस पद्धति का उपयोग शिवाजी ने आवश्यकता के कारण किया उसका उपयोग पेशवे और उनके सरदार जब अन्त तक करते रहे तब स्वदेशाभिमान की भावना लोगों में क्योंकर हो सकती थी? इस पद्धति का एक बुरा परिणाम यह भी हुआ कि मराठों के किसी कार्य में अच्छी व्यवस्था न रह गई थी। लूट-मार ही जहाँ सैनिकों का उद्देश्य होता वहाँ कौनसा कार्य सिद्ध हो सकता था!

उपर्युक्त सब दोषों के परिणाम-स्वरूप एक और दोष उत्पन्न हो गया था, जिसके बहुत बुरे परिणाम हुए। अनेक सरदारों में किसी बात की एकता होना सम्भव न था, और जब कभी वे एकत्र होते भी तब यह प्रश्न उपस्थित होता कि अगुवा कौन रहे। और यदि किसी प्रकार एक पुरुष नेता नियत हो भी जाता, तो उसकी आज्ञा दूसरे सरदार ठीक तौर से नहीं मानते थे।

जागीरदारी की प्रथा का परिणाम—एकता का अभाव

मराठों में मेल-जोल नहीं था, वे एक पुरुष की आज्ञा मानने को तैयार न थे, उनमें व्यवस्था न थी, इत्यादि बातें कई लोग कहा करते हैं; परन्तु वे लोग यह भूल जाते हैं कि आनुवंशिक जागीरदारी की प्रथा यदि अमल में न आती। यदि लूटमार की प्रथा को वे अपने प्रदेश में न चलाते तो उपर्युक्त दोष उनमें न देख पड़ते।

यदुनाथ सरकार ने मराठी सत्ता के विनाश का एक कारण यह बतलाया है कि मराठे लोग पेशवाई के समय छल-कपट का उपयोग अधिक करने लगे थे, उनके वचनों का कोई ठौर-ठिकाना न रहा था और अपने स्वार्थ के लिए वे चाहे जिस समय चाहे जैसा आचरण करते थे। यह दोष तो सब को स्वीकार करना होगा, पर इसका यह मतलब नहीं कि मराठों का यह जाति-स्वभाव था। शिवाजी के नियमों का उल्लंघन करने पर जो ये दोष पैदा हुए और उनके जो-जो परिणाम हुए, उन्हींमें से यह भी एक था। स्वार्थ एक ऐसी वस्तु है कि वह मनुष्य से चाहे जो करा सकती है, इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि जिस समय स्वार्थ का कलह महाराष्ट्र में सर्वत्र हो रहा था उस समय अपने स्वार्थ के रक्षण अथवा वर्धन के लिए लोग छल-कपट का बहुत अधिक उपयोग करते थे।

छल-कपट का अत्यधिक उपयोग

मराठी सत्ता के विनाश का दोष कुछ लोग हिन्दुओं की जाति-व्यवस्था अथवा हिन्दू-धर्म की पुरानी प्रवृत्ति पर मढ़ा करते हैं। ये दोनों कारण बहुत विवादास्पद हैं। श्री यदुनाथ सरकार अपने शिवाजी के चरित्र में कहते हैं कि शिवाजी और प्रथम बाजीराव की विजयों से हिन्दू-समाज और धर्म की पुरानी प्रवृत्तियों ने सिर उठाया और छोटे-बड़े, ऊँच-नीच लोगों के एकीकरण को एक न होने दिया। इस प्रकार उनकी विजयों में ही मराठी सत्ता के विनाश का बीज भी था। देश में शान्ति स्थापित होने पर वे मुसलमानी अत्याचारों की बातों को भूल गये और

जाति-भेद ज़िम्मेदार था?

एक वर्ग दूसरे वर्ग के विरुद्ध होने लगा। सह्याद्रि के पूर्व के ब्राह्मण उसके पश्चिम के ब्राह्मणों से और पर्वत के रहने वाले मैदान के रहने वालों से घृणा करते थे, क्योंकि अब कोई बाहरी डर न रह गया था। पेशवा के पूर्वज कोंकणस्थ ब्राह्मण किसी समय समाज में बहुत हीन दशा के थे, इसलिए देशस्थ ब्राह्मण उनसे द्वेष करते थे। इस प्रकार चितपावन और देशस्थ ब्राह्मणों में सदैव झगड़ा चला जाता था। इसी प्रकार ब्राह्मण सरदार और कायस्थ चिटनीस या कारकून सदैव लड़ा-झगड़ा करते थे। इसी प्रकार मराठीजाति के लोगों में और ब्राह्मणों में लड़ाई-झगड़े जारी थे। ब्राह्मणों को कायस्थों की बुद्धि और मुन्शीगिरी से ईर्ष्या होती थी, इसलिए उन्होंने यह नियम कर दिया कि कायस्थ वेद-कर्म के अधिकारी नहीं हैं। जिस बालाजी आवजी ने अपने लड़के का जनेऊ कराया उसका उन्होंने सामाजिक बहिष्कार किया। इन बातों से यह स्पष्ट है कि महाराष्ट्र में शिवाजी के समय से जाति-भेद अपना असर दिखला रहा था और पेशवों के समय में तो इसने बहुत ही अधिक सिर उठाया। इससे लोगों में बहुत ज़्यादा भेद-भाव पैदा हुए और उसका परिणाम राजकीय बातों पर होकर मराठी सत्ता सुदृढ़ न हो सकी। * श्री सरकार महाशय के मत का जो सारांश हमने दिया है, उसमें बहुत-कुछ सचाई है। हम भी मानते हैं कि पेशवों के समय में जाति-भेद के दुष्परिणाम बहुत दिखाई देने लगे थे और उनसे सामाजिक एवं राजकीय बातों में भेद-भाव दीख पड़ते थे। पेशवों पर ब्राह्मणों

---

* श्री गोविन्द सखाराम सरदेसाई; 'दी मेन करेण्ट आफ़ दी मराठा हिस्ट्री', पृष्ठ १८।

के साथ भी पक्षपात करने का दोष मढ़ा जाता है। सम्भवतः इस अभियोग में भी कुछ सचाई हो। पर इतना सब मानते हुए भी, हम यह नहीं मान सकते कि इसका मराठी सत्ता पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि वह उसके विनाश का एक महत्वपूर्ण कारण हो गया। पृथ्वी पर ऐसा कोई देश नहीं कि जहां किसी न किसी समय किसी न किसी प्रकार के वर्ग-भेद न रहे हों। जहाँ जाति-भेद की प्रथा नहीं थी, वहाँ भी लोगों में कुछ न कुछ भेद अवश्य दीख पड़ते थे। प्रमाण के लिए अधिक दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। दिल्ली के सुलतान पठानों के दरबारों में, फिर बहमनी-राज्य के दरबारों में, फिर मुग़ल बादशाहों के दरबारों में मुसमानों में जाति-भेद का अभाव होने पर भी देशी और परदेशी, ईरानी और अफ़ग़ानी, मुग़ल और तुर्क, हबशी और दक्षिणी, शिया और सुन्नी जैसे भेद और उपभेद देख पड़ते थे; और इन भेदों और उपभेदों के अनुसार दरबारों में दलबन्दियाँ होती थीं। जिस दल के हाथ में राजसत्ता किसी प्रकार आ जाती वह उसका अपने विरोधियों को गिराने में अवश्य उपयोग करता था। जो बात हमें भारतवर्ष के मुसलमानी काल के इतिहास में दीख पड़ती है वही हमें इंग्लैण्ड जैसे किरस्तान देश के इतिहास में भी दीख पड़ती है। सार यह है कि समाज में वर्ग-भेद और पक्ष-भेद होना मानवी स्वभाव का ही दोष है। हमारा कहना यह नहीं है कि राज्य के आयुष्य पर इसके बुरे परिणाम नहीं होते। हमारा कहना केवल इतना ही है कि महाराष्ट्र के जाति-भेद की बात इतनी महत्वपूर्ण नहीं कि हम यदुनाथ सरकार से सहमत हो सकें और मराठी सत्ता के अल्पायुषी होने का सब दोष उसीके मत्थे मढ़

सकें। जिसे इस बात की सचाई की छानबीन करनी हो, वह इन बातों पर अवश्य ध्यान दे कि पेशवों ने जाति-भेद को अपने कार्यों से कहाँ तक उभाड़ा। इसके विरुद्ध एक ज्वलन्त प्रमाण बतलाया जा सकता है। नारायणराव पेशवा को मारने का दोष जिन ४९ पुरुषों पर लगाया गया है, उनमें से २४ दक्षिणी ब्राह्मण, २ सारस्वत, ३ परभु, ७ मराठे, ५ मुसलमान और ८ उत्तर-हिन्दुस्थानी थे। इससे यह तो अवश्य सिद्ध होता है कि पेशवे जाति-भेद के पक्षपाती न थे। यही बात बाजीराव के सातारा के छत्रपति को लिखे हुए पत्र से सिद्ध होती है। उसमें यह साफ़ लिखा है कि जाति-भेद के कारण किसी प्रकार का पक्षपात न होना चाहिए; राज्य की जो अच्छी चाकरी करे, उसीकी वृद्धि की जाय। देशस्थ और कोंकणस्थ, क-हाड़े और परभु, शेणवी और मराठे, सब आपके सामने एकसे हैं। उनकी योग्यता का नाप उनकी जाति नहीं किन्तु चाकरी होनी चाहिए। ❀ जाति-भेद पर मराठी सत्ता के विनाश का सारा दोष मढ़ने वालों के लिए उपर्युक्त दो प्रमाण अच्छा उत्तर है।

हेमाद्रि जैसे धर्मग्रन्थकारों पर पतन का दोष

श्री गोविन्द सखाराम सरदेसाई ने मराठी सत्ता के विनाश का कुछ दोष तेरहवीं और चौदहवीं सदी की धार्मिक जागृति पर मढ़ा है। वह कहते हैं कि इस जागृति के कारण शास्त्र और कला की उन्नति रुक गई। हेमाद्रि को वह, इसके लिए, सबसे अधिक जिम्मेदार समझते हैं। हेमाद्रि ने पूर्वकालीन शास्त्र

❀ श्री गोविन्द सखाराम सरदेसाई; 'दी मैन करेण्ट ऑफ़ दी मराठा हिस्ट्री'. पृष्ठ १८०।

और स्वकालीन आचार-विचार के आधार पर "चतुर्वर्ग-चिन्तामणि" नामक अपना बृहद्ग्रंथ बनाया और उसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगों के लिए दैनिक आचार की सैकड़ों बातें लिख डालीं। श्री सरदेसाई का कहना है कि इस ग्रन्थ के आचारों से महाराष्ट्रियों का जीवन इतना जकड़ गया कि उन्हें अन्य किसी बात का विचार करने का अवकाश ही न रहा। रात-दिन धर्माचार के सिवा लोगों को और कुछ काम करने के लिए इस ग्रंथ ने अवकाश ही न रक्खा। उनके कथन की सत्यता को पूरी तरह मानना किसी भी इतिहासज्ञ के लिए कठिन है। एक बार यदि उनके तर्कों को मान भी लें, तो उनसे यही सिद्ध होगा कि जिस रामदेवराव यादव का हेमाद्रि प्रधान सेनापति था उसके विनाश के लिए कदाचित् वह जिम्मेदार हो। हेमाद्रि ने धार्मिक आचार-विचार की ओर अधिक और सैनिक व्यवस्था की ओर कम ध्यान दिया। इससे रामराव के राज्य का पतन बहुत शीघ्र हुआ। इन सब बातों को हम पहले ही मान चुके हैं। यह भी मानने में हमें विशेष कठिनाई नहीं कि हेमाद्रि के ग्रन्थ का महाराष्ट्र के समाज पर खूब परिणाम हुआ है। परन्तु यह मानना वास्तव में कठिन है कि हेमाद्रि अथवा उसके जैसे अन्य धर्म-ग्रंथकार शिवाजी के बाद की महाराष्ट्र की सत्ता के विनाश के लिए किस प्रकार जिम्मेदार हो सकते हैं। यदि हेमाद्रि जैसे लोगों के विचारों का समाज के मन पर खूब पक्का बन्धन होता और उस बन्धन का परिणाम मराठी सत्ता पर बहुत बुरा हो सकता, तो शिवाजी के समय में मराठों का उदय ही न होता। हम यह दिखला चुके हैं कि समाज की तैयारी होने पर ही शिवाजी जैसे

पुरुष का जन्म हुआ और वह अपने कार्य में सफल हो सका। यदि समाज की तैयारी न होती, तो शिवाजी के हज़ार सिर पटकने पर भी उससे कुछ न बन पड़ता। फिर पेशवाई के समय में तो लोगों का बहुतेरा समय राजकीय बातों और सैनिक कार्यों में जाता था। उस समय का इतिहास इस बात का प्रमाण है। यदि महाराष्ट्रीय लोग धार्मिक आचार-विचार में ही लगे रहते, तो टिड्डी-दल की नाईं सारे भारतवर्षमें आक्रमण करने को उन्हें समय कहाँ मिलता ? इसलिए यह कहना कि लोग अपना सारा समय धार्मिक आचार-विचार में बिताते थे और इस कारण उन्होंने भौतिक उन्नति न की, इतिहास से सिद्ध नहीं होता। १७ वीं और १८वीं सदी में तो मराठे लोग राज्य-प्रसार में लगे हुए थे। भौतिक उन्नति की गति इससे बहुत पहले, सम्भवतः १०वीं शताब्दी के पहले ही, बन्द हो चुकी थी।

यह तो हम मानते हैं कि हिन्दुस्थान में भौतिक प्रगति रुकी रही और यूरोप के देशों में १५ वीं शताब्दी के बाद उसने बहुत अधिक विकास किया। जबतक मराठों को केवल मुसलमानों का सामना करना पड़ा, तबतक वे सदैव सफल होते रहे; पर अंग्रेजों का सामना करने पर, भौतिक शास्त्रों की उनकी कमी से, इन यूरोपियनों के सामने उनकी कुछ न चल सकी। यूरोपियनों के जहाज़, बन्दूकें, तोप, बारूद, गोला आदि सब वस्तुयें मराठों की वस्तुओं से अच्छी होती थीं; और मराठों को इन वस्तुओं के लिए यूरोपियनों पर ही अवलम्बित रहना पड़ता था। मराठों ने कभी यह जानने का प्रयत्न भी न

नई परिस्थिति के लिए आवश्यक ज्ञान, सामग्री और सेना का अभाव

किया कि नवीन युद्ध-सामग्री बनाने के लिए किस-किस ज्ञान की आवश्यकता है; फिर उस ज्ञान को प्राप्त करने की तो बात ही कहाँ ? मराठों ने बन्दूक, बारूद, गोला आदि बनाने के कारखाने खोले, उनके संचालन का काम उन्होंने यूरोपियनों के जिम्मे ही रक्खा और उस काम का ज्ञान अपने आदमियों को सिखलाने का प्रयत्न न किया। इस बात के जो बुरे परिणाम हुए, उनका दिग्दर्शन हम पहले कर चुके हैं। इस दृष्टि से भौतिक-शास्त्रों की ओर, विशेष कर युद्ध-सामग्री की उत्पत्ति के ज्ञान की ओर, दुर्लक्ष्य करने का दोष मराठों के सिर अवश्य मढ़ा जा सकता है। इस दोष के कारण मराठों के सैनिक बल में अंग्रेजों के सैनिक बल के मुक़ाबले सदैव भारी कमी बनी रही। इस कमी के साथ-साथ मराठों की सैनिक व्यवस्था में भी बड़े भारी दोष बने रहे। अंग्रेजों से लड़ने के लिए जिस प्रकार की दक्ष सेना की आवश्यकता थी, उस प्रकार की फ़ौज मराठों के पास न थी; और जो कुछ थोड़ी-बहुत दक्ष सेना शिन्दे जैसे एक-दो सरदारों ने तैयार की थी, वह अंग्रेजी फ़ौज जैसी न थी। इसपर भी मराठों ने एक बुराई और की कि अपनी दक्ष सेनाओं के सेनापति उन्होंने सदैव यूरोपियन रक्खे और मराठे सेनापतियों को दक्ष सेना के सेनापति का काम न सिखाया। मराठों की सैनिक व्यवस्था का सविस्तर वर्णन हम अन्यत्र कर ही चुके हैं; और उसके दोषों के जो बुरे परिणाम हुए, उन्हें भी हम अच्छी तरह दिखा चुके हैं। मराठी सत्ता के विनाश के कारणों में से किसी एक को यदि प्रधानता देनी हो तो वह मराठी सैनिक व्यवस्था के दोषों को ही दी जा सकती है। हम यह दिखला ही चुके हैं कि शिवाजी के

शासन-नियमों को उलट देने से मराठा-राज्य में कई बड़े-बड़े आन्तरिक दोष पैदा हुए। उनके कारण राज्य की नींव काफ़ी ढीली हो चुकी थी। तब मराठों का अंग्रेज़ों की सुव्यस्थित सेना से सामना हुआ, इसलिए मराठा-राज्य की इमारत बहुत शीघ्र गिर पड़ी। इस विनाश के लिए अन्य कुछ कारण परिपोषिक रूप से बतलाये जा सकते हैं, पर मुख्य कारण यही हैं। मराठों की निकम्मी फ़ौज पहले से ही निकम्मी बनी हुई मराठी सत्ता को किसी प्रकार नहीं बचा सकती थी।

अब हम मराठी सत्ता के विनाश के कुछ परिपोषक कारणों का विवेचन करेंगे। इस प्रकार का एक ऐसा कारण हुआ कि दो पेशवों की अकाल मृत्यु हुई और प्रथम माधवराव के समय से द्वितीय बाजीराव तक पेशवाई के लिए गृह-कलह होते रहे। इन बातों का मराठी सत्ता पर काफ़ी बुरा परिणाम हुआ। प्रसिद्ध इतिहासकार ग्रेएट डफ़ ने जो यह लिखा है कि माधवराव पेशवा की अकाल-मृत्यु मराठों के लिए पानीपत के युद्ध के समान घातक हुई, सो बहुत ही ठीक है; क्योंकि माधवराव पेशवा की मृत्यु के बाद राज्य में जो अव्यवस्था, सैनिक प्रबन्ध में ढिलाई और दुर्व्यवस्था शुरू हुई वह मराठा-साम्राज्य के अन्त तक नष्ट न हुई। सवाई माधवराव यदि प्रौढ़ावस्था का होता और माधवराव के समान ही तीक्ष्ण-बुद्धि एवं साहसी होता, तो इस प्रकार की अव्यवस्था कभी न उत्पन्न होती। परन्तु सवाई माधवराव को बालक समझ, उसके घर में गृह-कलह का सूत्रपात होता हुआ और अंग्रेज़ों की राज्य हड़पने की कार्रवाई को देख कर, चारों ओर विद्रोही उठ

परिपोषक कारण

खड़े हुए। ये विद्रोही कोई भुखमर चोर न थे। इनमें से कुछ तो राजा थे और उनके पास हज़ार-हज़ार पाँच-पाँच सौ सवार तथा क़िले थे। बारह भाइयों के द्वारा रघुनाथराव का उच्चाटन होने के समय से सालबाई की सन्धि होने तक, सात-आठ वर्षों के समय में, इन विद्रोहियों ने प्रजा में त्राहि-त्राहि मचा दी। कृष्णा नदी के उस ओर कोल्हापुर-राज्य के दंगे, कित्तूर, शिरहट्टी और डम्बल में देसाइयों के दंगे, नासिक और खानदेश में भीलों के दंगे, पूर्व की ओर सुरापुर के बेरणों का दंगा, सातारा प्रान्त में रामोशियों का दंगा, पूना और जुन्नर प्रान्त में कोलियों के दंगे, एक नहीं किन्तु अनेक स्थान में होते थे। इन झगड़ों के वायु-मण्डल में पटवर्धन, रास्ते, विंचूरकर आदि सब सरदारों का सरंजाम फँसा पड़ा था, जिससे इन सरदारों की बहुत दुर्दशा हो गई थी। राज्य के कर की वसूली नहीं होती थी, पर सेना के लिए खर्च की आवश्यकता होती थी। ऐसी दशा में सरंजामी सरदार "किं कर्तव्य विमूढ़" बन गये। अंग्रेज़ों से युद्ध करने के समय प्रत्येक सरंजामदार यही विचार करता था कि 'यदि मैं अंग्रेजी सेना पर आक्रमण करूँगा, तो या तो वे मेरी सेना को काट डालेंगे, या वह पीछे भाग आवेगी; यदि इस घड़ी भर के खेल में मेरे ५०० घोड़े मारे गये, तो मैं क्या करूँगा? ५०० घोड़ों का मूल्य ३ लाख होता है। इस घड़ी भर के जुए के खेल में ३ लाख रुपये इस तरह लगा दूँ, तो फिर मैं क्या करूँगा? सरकार तो मुझे देने से रही, क्योंकि ख़ुद उसकी दशा शोचनीय हो रही है; और दंगे के कारण सरंजाम से कर वसूल नहीं होता। फिर यह मूल्य मैं कहाँ से चुका सकूँगा? कल यदि शिलेदार आकर मेरा दरवाज़ा खटखटायगा कि

या तो घोड़ा लाओ या उसके दाम दो, तो मैं कहाँ से दूँगा ? ऐसे समय प्राण ही देने पड़ेंगे। अतः यही अच्छा है कि साहस बतलाने के झगड़े में मैं न पड़ूं और पीछे ही पीछे बना रहूँ।' ❀

बालाजी बाजीराव की मृत्यु के बाद कभी शासन-सूत्र अपने हाथ में रखने के लिए, कभी आधी पेशवाई के लिए, और कभी स्वयं पेशवा होने के लिए राघोवा ने अनेक बार जो झगड़े किये, उनसे मराठी सत्ता की इमारत बहुत-कुछ हिल गई। राघोवा स्वार्थ-सिद्धि के लिए मराठी सत्ता के शत्रु निजाम से कई बार मिला और उससे सन्धियाँ करके मराठा-राज्य और सत्ता को उसने बहुत भारी हानि पहुँचाई। आपसी कलह मिटाने के लिए माधवराव पेशवा ने राज्य का कारबार उसके हाथ में कई बार दिया। राघोवा ने इन अवसरों से लाभ उठाकर अच्छे-अच्छे कर्मचारियों को अनेक प्रकार के दण्ड दिये और उनके स्थान में अपने निकम्मे लोग नियत किये। यह कोई भी जानता है कि अयोग्य कर्मचारियों से राज्य-शासन में अनेक बुराइयाँ पैदा होती हैं। राघोवा के कार-बार के समय वे सब देख पड़ीं। फिर सन् १७७५ में राघोवा ने सूरत की जो सन्धि की और अंग्रेजों-मराठों का जो बड़ा भारी अनावश्यक युद्ध छिड़वा दिया, उससे मराठों की शक्ति बहुत कुछ नष्ट हो गई। उसके बाद फिर उसके लड़के बाजीराव ने सन् १८०० में बसई की सन्धि करके महाराष्ट्र की स्वतंत्रता सदा के

राघोबा उर्फ़ रघुनाथराव

❀ श्री न० चिं० केलकर कृत 'मराठे आणि अंग्रेज़'; श्री वासुदेव वामन खरे की प्रस्तावना, पृष्ठ २३–२५।

लिए नष्ट कर दी। प्रारम्भ में हमने विनाश के जो छः-सात कारण बतलाये हैं, उनसे यह तो स्पष्ट है कि मराठी सत्ता का पतन कभी न कभी अवश्य होता; मगर यह भी उतना ही सत्य है कि मराठी सत्ता के जर्जर शरीर का रघुनाथराव और उसके पुत्र बाजीराव ने बहुत शीघ्र विनाश कर डाला। इन्हीं पिता-पुत्रों के कारण मराठों को अंग्रेज़ों से लड़ना पड़ा था। यदि ये अंग्रेज़ों की शरण में न गये होते तो मराठों-अंग्रेज़ों के इतिहास-प्रसिद्ध तीन युद्ध १९ वीं सदी के मध्य तक अवश्य टल जाते और मराठों का राज्य किसी न किसी रूप में आज अवश्य बना रहता। कोई-कोई इसपर यह कहेंगे कि अंग्रेज़ों की सहायता लेने का दोष बेचारे रघुनाथराव और बाजीराव के मत्थे ही क्यों मढ़ा जाय ? इस दोष के दोषी इनसे पहले भी हुए हैं और नाना फड़-नवीस जैसे चतुर पुरुषों ने भी अंग्रेजों से सहायता ली है तथा देशी राजाओं का उनकी सहायता से विनाश किया है। क्या बालाजी बाजीराव ने सन् १७५५ में यानी सूरत की सन्धि के २० वर्ष पहले अंग्रेज़ों की सहायता से अपने मराठे सरदार तुलाजी आँग्रे का विनाश नहीं किया ? क्या नाना फड़नवीस ने अंग्रेज़ों की सहायता करके टीपू को नष्ट नहीं किया ? क्या इन लोगों ने ये कार्य स्वदेशाभिमान की प्रेरणा से किये ? इन आक्षेपों का सीधा और सरल उत्तर यह है कि देशी सत्ता को नष्ट करने का कार्य विदेशी सत्ता की सहायता से चाहे बालाजी बाजीराव करे या रघुनाथ राव करे, चाहे नाना फड़नवीस करे या बाजीराव करे, वह गर्हणीय ही है। हम मानते हैं कि मनुष्य में स्वार्थ-बुद्धि स्वाभाविक ही होती है। वह स्वार्थ-बुद्धि रघुनाथराव और बाजी-

राव के समान केवल बालाजी बाजीराव में ही नहीं किन्तु नाना फड़-नवीस में भी थोड़ी-बहुत थी और उसकी प्रेरणा से पहले दो पुरुषों के समान अन्तिम दो पुरुषों ने भी कार्य किये हैं। पर जिस प्रकार एक के बुरे कार्य करने से दूसरे को बुरे कार्य करने का आधार नहीं मिलता, उसी प्रकार बालाजी बाजीराव या नाना फड़नवीस के अनुचित कार्यों से रघुनाथराव या बाजीराव के अनुचित कार्य उचित नहीं हो जाते। यह स्मरण रखना चाहिए कि दोष दोष ही होता है, फिर उसका करने वाला कोई भी क्यों न हो।

दैव-दुर्विपाक

मराठों के विनाश के उपर्युक्त कारणों के अलावा दैव भी उनके प्रतिकूल था। जिस समय अंग्रेजों और मराठों की मुठभेड़ हुई, उस समय अंग्रेजों के पैर भारतवर्ष में अच्छे जम गये थे। प्रसिद्ध इतिहास-लेखक सर आलफ्रेड लायल ने भी स्वीकार किया है कि यदि सन् १७७५ के कुछ पहले इन दोनों के बीच लड़ाई छिड़ी होती तो उसका परिणाम अंग्रेजों के लिए बहुत घातक होता। मराठों के पतन और अंग्रेजों के उदय का संक्रमण हुआ, इससे अंग्रेजी सत्ता को बढ़ने का अवसर मिला। इस समय अंग्रेजों से लड़ने की क्षमता मराठों में बहुत कम रह गई थी और १८ वीं सदी के अन्तिम कुछ वर्षों के भीतर ही मराठों के योग्यतम लोग मर गये और उनके अधिकार अयोग्य लोगों को मिल गये। सन् १७९४ की १२ फ़रवरी को महादजी की मृत्यु हुई। चार महीने बाद हरिपन्त फड़के भी चल बसा। सन् १७९७ में तुको-जी होलकर न रहा। दो वर्ष बाद परशुराम भाऊ पटवर्धन भी

उसी मार्ग का प्रवासी हुआ। और सन् १८०० के १३ मार्च को नाना फड़नवीस की मृत्यु होने से शिवाजी के मराठा-राज्य का सूर्य सदैव के लिए अस्त हो गया। इस चतुर पुरुष की मृत्यु के बाद शासन के सूत्र पूरी तौर से द्वितीय बाजीराव और उसके मुँहलगे लोगों के हाथ में चले गये। उस समय का शासन राज्य-शासन न था। बाजीराव ने बसई की सन्धि के पहले से ही अपने हाथ-पैर अंग्रेजों के हाथों में दे दिये थे और अपनी स्वतंत्रता पूरी तौर से खो चुका था। नाना फड़नवीस का बड़े परिश्रम से संचित किया हुआ ख़ज़ाना उसने थोड़े ही वर्षों में फूँक दिया। फिर द्रव्य के लिए उसने पहले की जमाबन्दी की प्रथा को पलट दिया। पहले जमाबन्दी की वसूली प्रत्यक्ष सरकारी कर्मचारी करते थे। बाजीराव ने अब उसके स्थान में ठेकेदारी की प्रथा शुरू की। ठेकेदार लोग रैय्यतों पर मनमाना अत्याचार करते थे, इसलिए लोगों के मन में पेशवाई के लिए कुछ भी प्रेम न रह गया। इधर बाजीराव इस प्रकार पाया हुआ धन ब्राह्मण-भोजनों में उड़ाने लगा। दफ्तर की ओर उसका कुछ भी ध्यान न रहा, इसलिए वहाँ भी मनमानी होने लगी। सारांश यह है कि बाजीराव के समय में शासन का कुछ भी ठौर-ठिकाना न रहा। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि बाजीराव को प्रजा से बहुत कम मदद मिली और जब पेशवाई का अन्त हुआ तब सामान्य प्रजा को कुछ भी दुःख न हुआ। अपनी स्वतंत्रता खो देने पर ऐसी स्थिति में उसे फिर से प्राप्त करने का उपाय करना बाजीराव-जैसे मूर्ख-शिरोमणि का ही काम था और उसका उसे जो फल मिलना चाहिए था वही मिला। दो पेशवों की अकाल-

मृत्यु होना, अनुचित गृह-कलह के कारण एक का मारा जाना और बाजीराव जैसे अत्यन्त अयोग्य पुरुष के हाथ शासन-सूत्र का पड़ना केवल दैव-दुर्विपाक है !

इन्हीं सब कारणों से एक समय वृद्धिंगत होता हुआ मराठों का साम्राज्य कालान्तर में विनाश को प्राप्त हो गया; और आज हमें उसके केवल अवशेष दृष्टिगोचर होते हैं।

परिशिष्ट

वंशावलियां

भोंसले-वंशावलि

- मालोजी भोंसले
  - शाहजी
    - सम्भाजी
    - शिवाजी [महान्]
      - सम्भाजी
        - शाहु पहला
      - राजाराम पहला [कोल्हापुर वाले]
        - शिवाजी दूसरा १७००-१७१२
          - रामराजा
        - सम्भाजी दूसरा १७१२-१७६०
          - गोद लिया
          - शिवाजी तीसरा १७६०-१८१२
            - शम्भूजी १८१२-१८२१
            - शाहजी १८१२-१८३७
              - शिवाजी १८३७-१८६६
                - गोद लिया
                - राजाराम दूसरा १८६६-१८७०
                - गोद लिया
                - शिवाजी [पंचम] १८७९-१८८३
    - व्यंकोजी [तंजोर वाले]

- रामराजा
  - शाहु दूसरा
    - प्रतापसिंह
      - शाहजी

चिटणीस-वंशावलि

- बालाजी आवजी
  - खंडोबल्लाल
    - जीवाजी
      - रामराव
        - मल्हार
          - खंडेराव
            - मल्हार
      - देवराव
    - बापूजी
    - गोविन्दराव
    - बहिराव
  - नीलोबल्लाल
    - आवजी
      - महीपति
        - त्रिम्बकराव

बहमनी राज्य-वंशावली

अहमदनगर—निज़ामशाही

(१) अहमद निज़ामशाह (मृत्यु १५०८)

(२) बुरहान निज़ामशाह (मृत्यु १५५३)

(३) हुसेन निज़ामशाह (मृत्यु १५६५)

- (४) मुर्तिजा निज़ामशाह (मृत्यु ६ जुलाई १५८८)
  - (५) मिरानहुसेन निज़ामशाह (गद्दी से उतारा गया ३० अप्रैल १५८९)
- चाँदबीबी
- (७) बुरहान निज़ामशाह (मृत्यु ३० अप्रैल १५९५)
  - (८) इब्राहीम निज़ामशाह (मृत्यु सितम्बर १५९५)
    - (९) बहादुर निज़ामशाह (गद्दी से उतारा गया सन् १६००)
      - (१०) मुर्तिजा निज़ामशाह दूसरा (मृत्यु सन् १६३१)
        - (११) हुसैन निज़ामशाह (क़ैद किया गया १६३३)
  - (६) इस्माइल निज़ामशाह (गद्दी से उतारा गया २६ मई १५९१)

बीजापुर—आदिलशाही

(१) यूसुफ़ आदिलशाह (मृत्यु १५१०)

(२) इस्माइल आदिलशाह (मृत्यु १५३४)

(३) मल्लू आदिलशाह (गद्दी से उतारा गया १५३५)

(४) इब्राहीम आदिलशाह पहला (मृत्यु १५५८)

(५) अली आदिलशाह (मृत्यु १५८०)

(६) इब्राहीम आदिलशाह दूसरा (मृत्यु १६२६)

(७) मुहम्मद आदिलशाह (मृत्यु १६५६)

(८) अली आदिलशाह (मृत्यु १६७२)

(९) सिकन्दर आदिलशाह (गद्दी से उतारा गया १६८६)

गोलकुण्डा—कुतुबशाही

(१) सुलतान कुली कुतुबशाह (मृत्यु २१ नवम्बर १५४३)

(४) इब्राहीम कुतुबशाह (मृत्यु १५८०) (२) जमशेद कुतुबशाह (मृत्यु १५५०)

(५) मुहम्मद कुतुबशाह (मृत्यु १६१२) (३) सुभान कुतुबशाह (मृत्यु १५५०)

(६) मुहम्मद कुतुबशाह (मृत्यु १६३५)

(७) अब्दुल कुतुबशाह (मृत्यु १६७२)

(८) अबूहसन कुतुबशाह (क़ैद हुआ १६८७)

बेदर—बरीदशाही

(१)	क़ासिम बरीद	(मृत्यु १५०४)
(२)	अमीर बरीद	(,, १५३९)
(३)	अली बरीदशाह	(,, १५८२)
(४)	इब्राहीम बरीदशाह	(,, १५८९)
(५)	क़ासिम बरीदशाह पहला	(,, १५९२)
(६)	मिर्ज़ा अली बरीदशाह	(निकाला गया १५९९)
(७)	अमीर बरीदशाह दूसरा	(मृत्यु १६०९)

बरार—इमादशाही

(१)	फ़तेउल्ला इमादशाह (इमादुलमुल्क)	(मृत्यु १५०४)
(२)	अलाउद्दीन इमादशाह	(,, १५२७)
(३)	दरिया इमादशाह	(,, १५६२)
(४)	बुरहान इमादशाह	(गद्दी से उतारा गया १५६८)
(५)	तुफ़ैलख़ाँ	(क़ैद किया गया १५७५)

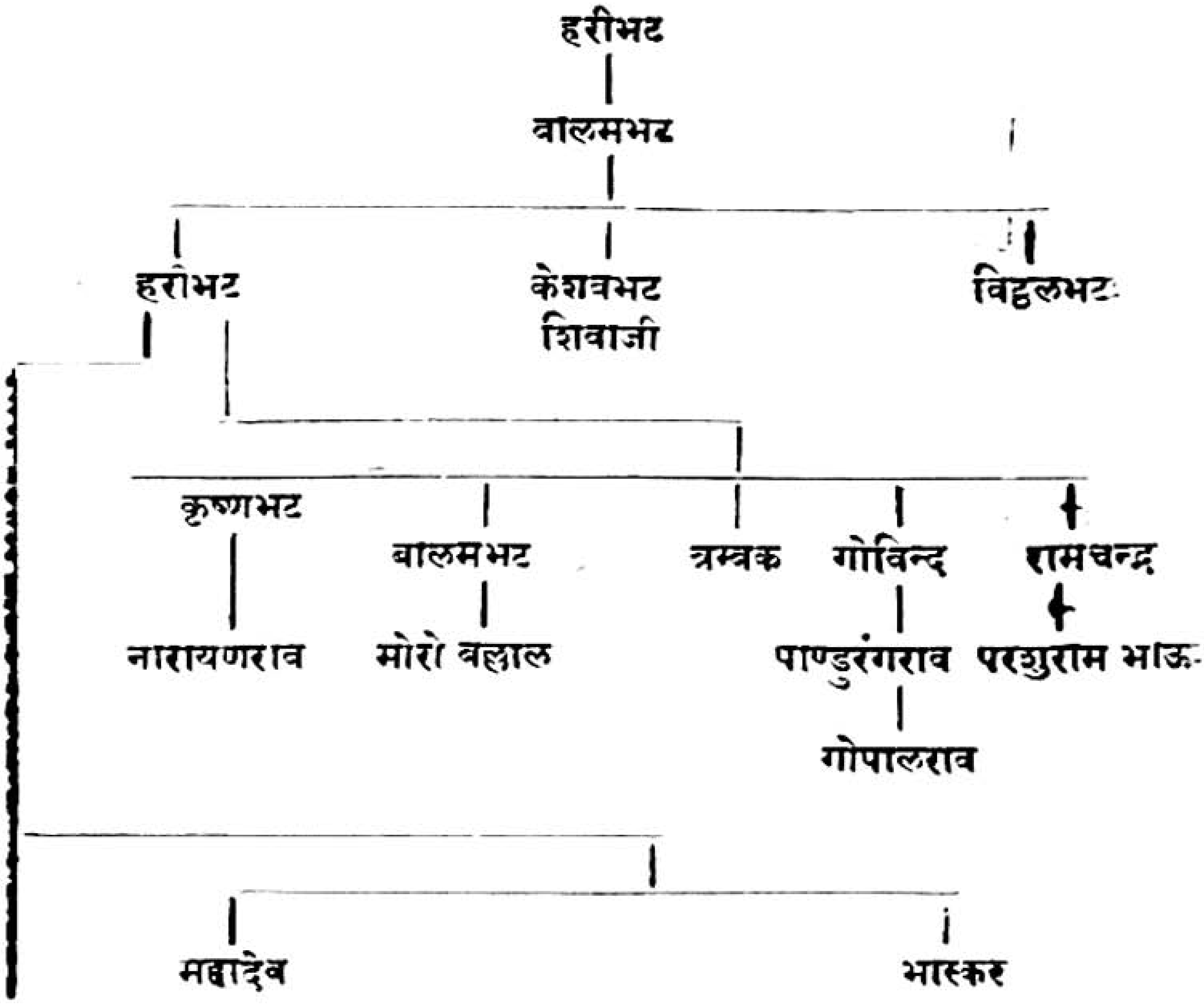
शिर्के-वंशावलि

- बाघोजी राजे
  - जानाजी
    - कान्होजी
      - रामोजी
  - पिलाजी
    - सुर्वे का दामाद
      - गणोजी
        - पिलाजी
      - जिऊबाई
ऊ० येसूबाई
वि० सम्भाजी
      - साकरबाई
ऊ० अम्बिकाबाई
वि० राजाराम
  - सोयराबाई (?)
वि० शिव छत्रपति

पिंगले-वंशावलि

- मोरो त्रिमल
  - नीलकंठ
(१६८९-१७०८)
  - लड़की
वि० रामचन्द्र पन्त
अमात्य
  - बहिरव
(१७०८-१३)

पटवर्धन-वंशावलि


हरीभट
बालमभट
हरीभट
केशवभट
शिवाजी
विठ्ठलभट
कृष्णभट
बालमभट
त्र्यम्बक
गोविन्द
रामचन्द्र
नारायणराव
मोरो बल्लाल
पाण्डुरंगराव
परशुराम भाऊ
गोपालराव
महादेव
भास्कर

मैसूर-राज्य-वंशावलि

विजयराज (१३९९)

|

राजवोदियर (१५७७-१६१६)

|

चिक्का—देवराज (१६७१-१७०४)

|

कंठीराज (१७०४-१७१६)

|

दोदा कृष्णराज (१७१६-१७३२)

|

(गोद लिया) चामराज (१७३२-३६) क़ैद में मरा

|

(गोद लिया) चिक्का कृष्णराज (१७३६-१७६६)

|

- नंजराज (१७६६-१७७१) मारा गया
- चामराज (१७७१-७६)
- चामराज (१७७६-१७९६) हैदरअली ने गद्दी पर बिठाया
  - कृष्णराज तीसरा (१७९९-१८६८)

अर्काट के नवाब की वंशावलि

चन्दासाहब

सआदतउल्लाखाँ (१७१०-१७३२)

दोस्तअलीखां (भतीजा) (१७३२-१७४०)

- सफदरअलीखाँ (मारा गया)
  - मुहम्मदसैयदखाँ (१७४२-१७४३)
- लड़की-हुसेनदोस्तखाँ (चन्दा साहब)

मुहम्मदअली

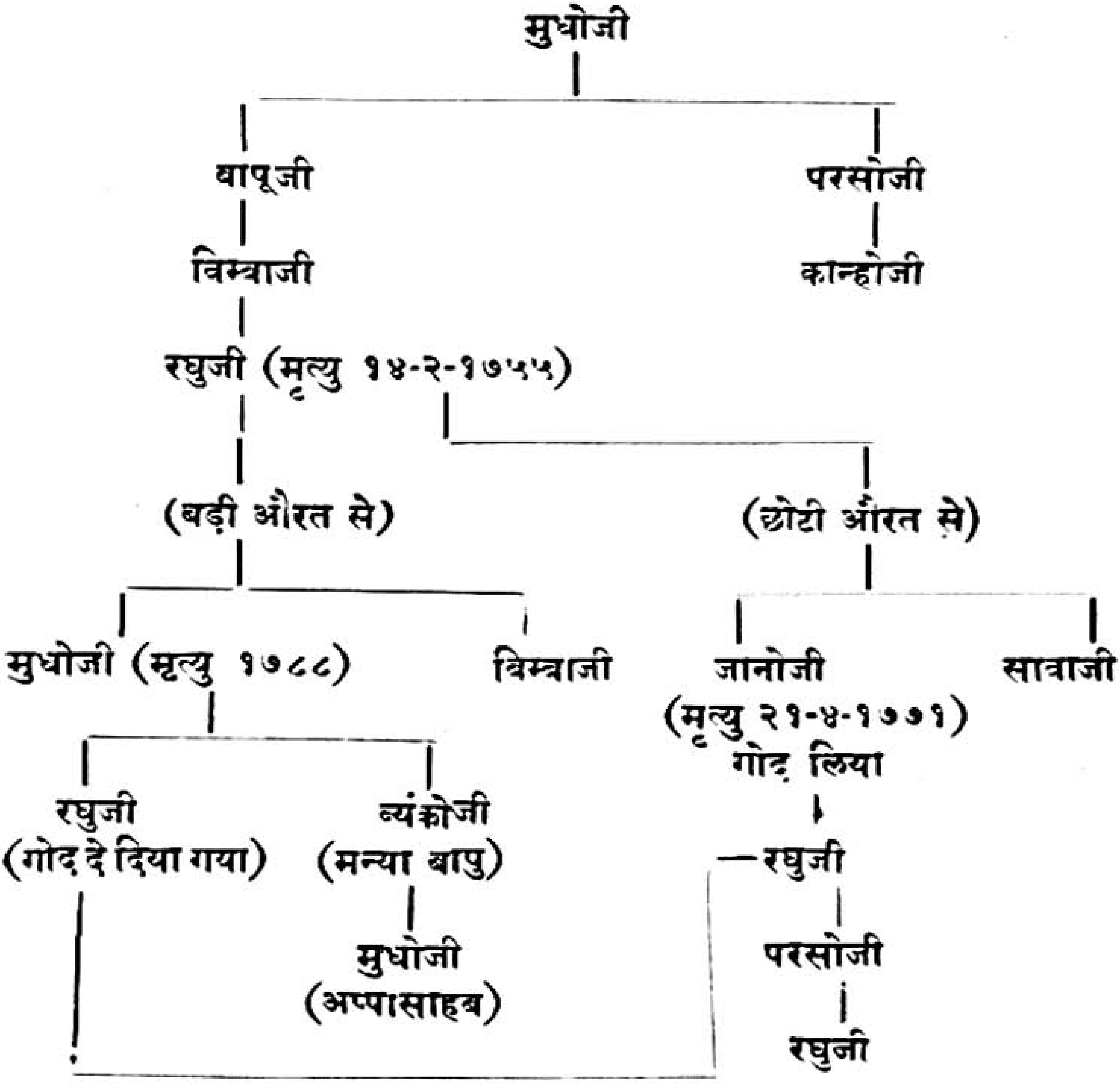
अनवरुद्दीन [१७४३-१७४९]

- महफूज़ख
- मुहम्मदअली (१७४९-९५)
  - उम्दतुलउमर (१७९५-१८०१)

निजाम-हैदराबाद की वंशावली

- निजामुलमुल्क (१७१३-१७४८)
  - गाजीउद्दीन
  - नसीरजंग
  - सलावतजंग
  - बसालतजंग
  - निजामअली (१७६१-१८०३)
    - मीर अहमदखाँ (अलीजाह)
      - मुगलअलीखाँ निजामुलमुल्क का लड़का
      - निजामुलमुल्क की लड़की
        - मुज़फ्फरजंग (१७५०-१७५१)
    - सिकन्दरजाह (१८०३-१८२८)
    - फरीदुनजाह और पाँच लड़के

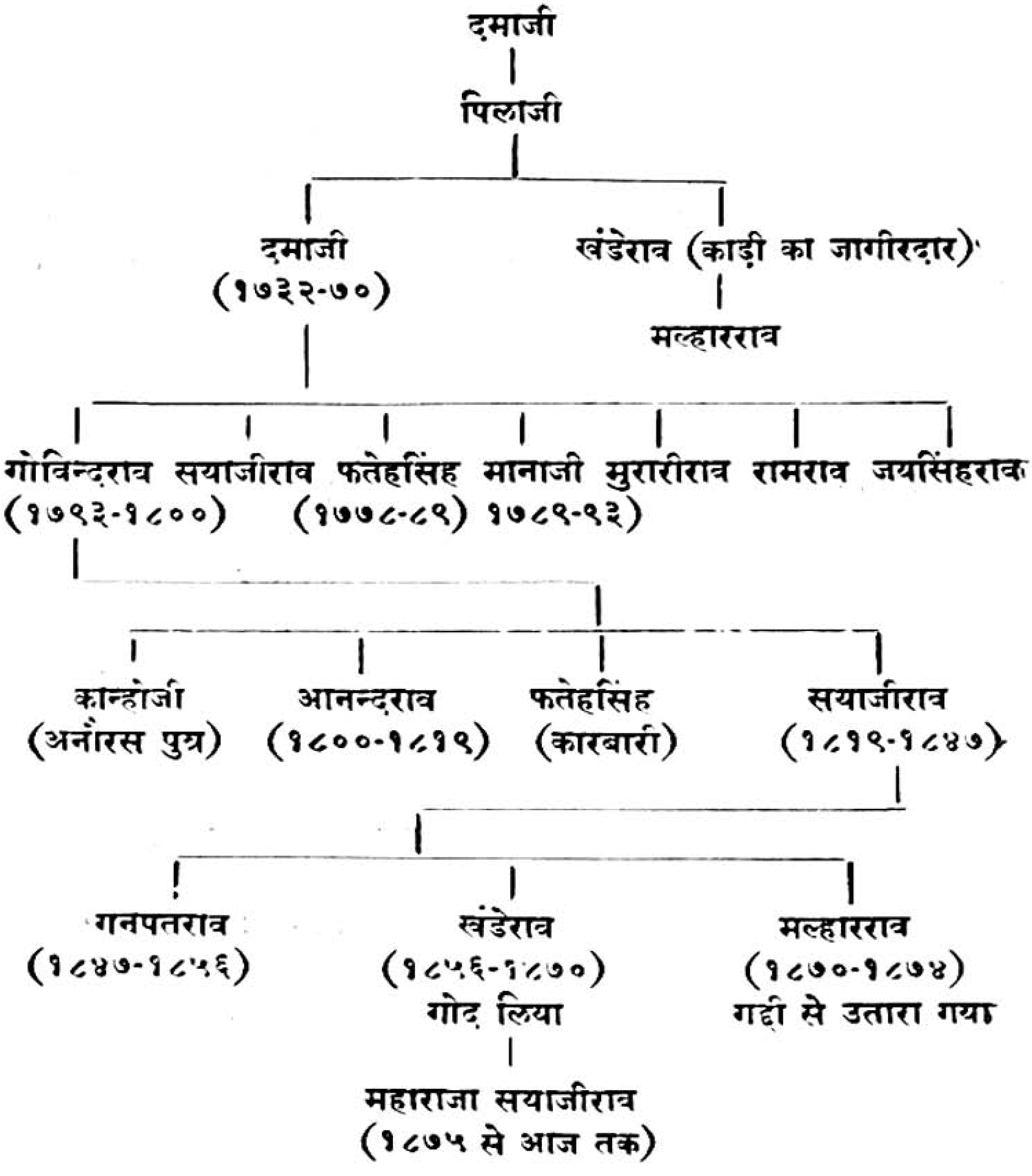
नागपूरकर-भोंसले-वंशावलि



शिन्दे-वंशावलि

- रामोजी सिंधिया (मृत्यु १७५०)
  - जयप्पा (नागपुर में मारा गया १७५९)
    - जनकोजी (पानीपत में मारा गया)
  - दत्तोजी (बड़गाँवघाट में मारा गया)
  - तुकोजी (पानीपत में मारा गया) अनौरस पुत्र
    - केदारजी
    - आनन्दराव
      - दौलतराव
        - बायजाबाई घाटगे (१७९४-१८२७)
          - जनकोजीराव (गोद लिया १८२७-४३)
            - जयाजीराव (गोद लिया १८४३-८६)
              - माधवराव (१८८६–१९२५)
                - जयाजीराव (१९२५ से आजतक
  - माधवराव (मृत्यु १७९४)
  - ज्योताबा (बड़गाँवघाट में मारा गया)

गायकवाड़-वंशावलि


दमाजी
पिलाजी
दमाजी
(१७३२-७०)
खंडेराव (काड़ी का जागीरदार)
मल्हारराव
गोविन्दराव
(१७९३-१८००)
सयाजीराव
फतेहसिंह
(१७७८-८९)
मानाजी
१७८९-९३)
मुरारीराव
रामराव
जयसिंहराव
कान्होजी
(अनौरस पुत्र)
आनन्दराव
(१८००-१८१९)
फतेहसिंह
(कारबारी)
सयाजीराव
(१८१९-१८४७)
गनपतराव
(१८४७-१८५६)
खंडेराव
(१८५६-१८७०)
गोद लिया
मल्हारराव
(१८७०-१८७४)
गद्दी से उतारा गया
महाराजा सयाजीराव
(१८७५ से आज तक)

निम्बालकर-भोंसले का सम्बन्ध

(भोंसले) मालोजी नाइक
|
जगपालराव
|
मुधोजी
|
बजाजी
|
महादजी

निंबालकर
|
दीपाबाई वि० मालोजी भोंसले
|
शहाजी भोंसले
|
शिवाजी
|
वि० सखूबाई

पेशवा की वंशावलि

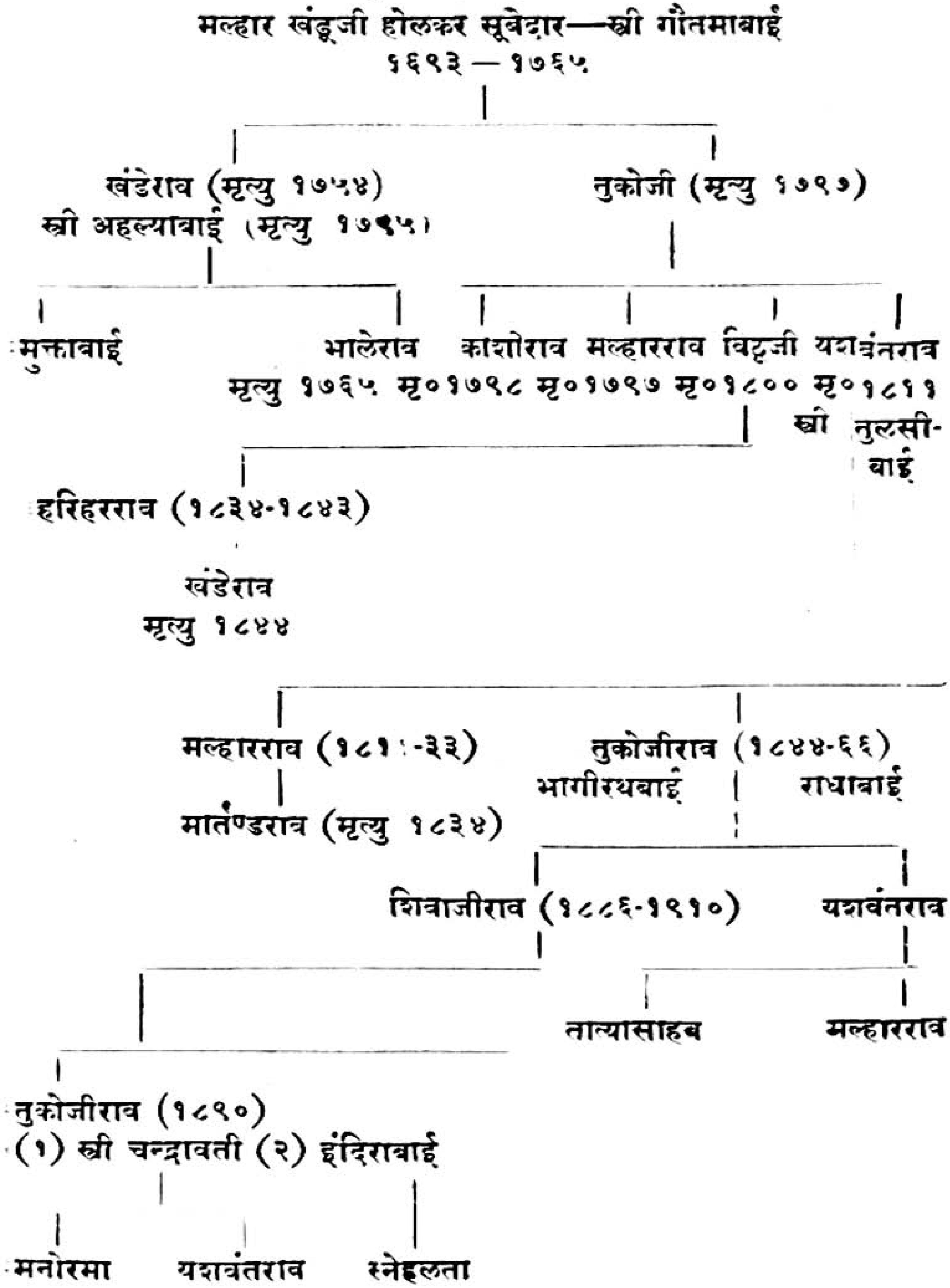
बालाजी विश्वनाथ = राधाबाई
|
- विसाजी उर्फ बाजीराव विवाह काशीबाई
- भिऊबाई
- अंताजी उर्फ चिमाजी अप्पा
- अनूबाई

विसाजी उर्फ बाजीराव विवाह काशीबाई
|
- बालोजी उर्फ नाना साहेब विवाह गोपिकाबाई
- रामचन्द्र
- रघुनाथ जानकी व आनन्दी
- जनार्दन सगुणा

अंताजी उर्फ चिमाजी अप्पा
|
- सदाशिवराव उमाबाई पार्वती
- यशाबाई
- ओंकार

बालोजी उर्फ नाना साहेब विवाह गोपिकाबाई
|
- विश्वास
- माधव
- यशवंत
- एक लड़का
- नारायण

होलकर-वंशावलि


मल्हार खंडूजी होलकर सूबेदार—स्त्री गौतमाबाई
१६९३ — १७६५
खंडेराव (मृत्यु १७५४)
स्त्री अहल्याबाई (मृत्यु १७९५)
तुकोजी (मृत्यु १७९७)
मुक्ताबाई
मालेराव
मृत्यु १७६५
काशीराव
मृ० १७९८
मल्हारराव
मृ० १७९७
विठूजी
मृ० १८००
यशवंतराव
मृ० १८११
स्त्री तुलसी-बाई
हरिहरराव (१८३४-१८४३)
खंडेराव
मृत्यु १८४४
मल्हारराव (१८११-३३)
मार्तण्डराव (मृत्यु १८३४)
तुकोजीराव (१८४४-६६)
भागीरथबाई
राधाबाई
शिवाजीराव (१८८६-१९१०)
यशवंतराव
तात्यासाहब
मल्हारराव
तुकोजीराव (१८९०)
(१) स्त्री चन्द्रावती (२) इंदिराबाई
मनोरमा
यशवंतराव
स्नेहलता

शिवाजी की वास्तविक जन्म-तिथि

शिवाजी का जन्म-काल आधुनिक शास्त्रीय पद्धति से निश्चित करने का पहला प्रयत्न श्री राजवाड़े ने उनतीस वर्ष पूर्व, सन् १९०० में, किया। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने 'केसरी' में एक लेख लिख कर उसी समय उनकी पद्धति की शास्त्र-शुद्धता की प्रशंसा की। उस समय के पूर्व से ही शिवाजी महाराज की जन्म-तिथि वैशाख शुद्ध २ शक १५४९ (सन् १६२७) सामान्यतः मानी जाती थी। उस समय भी उनकी जन्म-तिथि के सम्बन्ध में एकमत न था। श्री राजवाड़े उनकी उन्म-तिथि वैशाख शुद्ध पञ्चमी मानते थे, लोकमान्य तिलक वैशाख शुद्ध प्रतिपदा, और आम लोग वैशाख शुद्ध द्वितिया। ऐसा मतभेद होने का कारण यह था कि उस समय इस प्रश्न का निर्णय करने के लिए जो प्रमाण उपलब्ध था, वह अपूर्ण और अविश्वसनीय था।

इसके सोलह वर्ष बाद भारत-इतिहास-संशोधक-मण्डल के चतुर्थ सम्मेलन के समय लोकमान्य तिलक ने 'जेधे शकावलि' उपस्थित की। इस कारण उनकी वास्तविक जन्म-तिथि-सम्बन्धी झगड़े के निर्णय का योगायोग प्राप्त हुआ। इसी प्रकार श्री राजवाड़े को भी होनप देशपाण्डे के पुस्तक-संग्रह में एक शकावलि मिली। वह सन् १९१४ में छापी गई। उसमें भी 'जेधे शकावलि' के समान शिव-चरित्र की सूक्ष्म मितियाँ भी दी हैं। उसकी दूसरी उपलब्ध प्रति पर से आज हम यह निश्चय-पूर्वक कह सकते हैं कि उसमें भी शिव-जन्म-तिथि जेधे-शकावलि के समान ही होनी चाहिए। पर जेधे-मिति की यथार्थता विद्वानों को मान्य होने के लिए उसके प्रकाशित होने के समय से कुछ काल लगा। इसका कारण यह था कि उस समय अभ्यन्तर प्रमाण और गणित के साधन कुछ भी

उपलब्ध न थे। यह कमी पूरी करने का श्रेय स्वर्गवासी गनपतराव खरे और श्री सदाशिवराव दिवेकर को है। खरे की 'शिवकालीन जंत्री' तैयार होने के समय से जेधे-शकावलि की मितियाँ तत्कालीन यूरोपियन पत्रों और मुसलमानी लेखों में मिलने वाली तारीखों से मिलान करने का काम शक्य हुआ। इसके अलावा श्री दिवेकर ने 'शिव भारत' की प्रति की खोज की, इस से शिव-जन्म-तिथि के लिए उत्तम प्रकार का अभ्यन्तर प्रमाण भी मिल गया। इन सब साधनों का उपयोग कर जेधे-मिति ग्राह्य समझनी चाहिए, इस बात का प्रतिपादन करने का पहला श्रेय श्री वासुदेव शास्त्री खरे को है। इसके बाद उनके मत का समर्थन करने का काम सन् १९२१ में श्री चान्दोर करने किया। श्री ज० स० करन्दीकर ने २० मई १९२४ के "केसरी" में यह बात प्रकाशित कर यह सूचना की कि अबसे इसी तिथि को सच्ची मान कर उत्सव करना चाहिए।

इसके सिवा श्री डिस्कलकर ने बम्बई की रायल एशियाटिक सोसाइटी के फोर्ब्स कलेक्शन को देखकर उसमें की मिति इतिहास-संशोधक-मण्डल के सामने रक्खी। प्रसिद्ध ज्योतिर्विद वें० बा० केतकर ने अनेक उल्लेखों के आधार पर साधारणतः शक १५५१ (सन् १६३०) के पक्ष से मिलने-जुलने वाला गणित मण्डल के सामने रक्खा। और श्री दत्तात्रय विष्णु आपटे ने जेधे-शकावलि के वाक्यों के अर्थ करते समय कौनसी पद्धति स्वीकार करना चाहिए और अनेक शंकाओं का किस प्रकार समाधान कर सकते हैं, उसका विचार उपस्थित किया। इस प्रकार भा० इ० स० मण्डल के सामने समय-समय पर आये हुए प्रमाण जिन-जिनको देखने को मिले, उन्हें जेधे-मिति की ग्राह्यता मान्य होगई। उसके अनुसार, श्री करन्दीकर की सूचना पर से, शिव-जन्म-तिथि का उत्सव फाल्गुन वदी तृतिया को करने की कल्पना श्री दिवेकर ने उपस्थित की। यह बात बहुतों को मान्य होगई और उसके अनुसार शिवनेरी में पहला उत्सव मनाया गया।

इस सम्बन्ध में कई आक्षेप उठ चुके हैं, परन्तु विश्वसनीयता और गणित की दृष्टि से अन्त में यही तिथि सत्य सिद्ध हुई है। इसलिए यही अब सर्व-सामान्य हो गई है।

घटनावलि

सन्	घटना
ईसा पूर्व ७०० तक	महाराष्ट्र में आर्यों का प्रवेश नहीं था।
ईसा पूर्व ७०० से ईसा पूर्व ३५० तक	आर्यों का प्रवेश।
ईसा पूर्व ३५० से ईसा पूर्व ७३ तक	महाराष्ट्र में आर्यों की बस्तियाँ और आंध्र-वंश।
७३ से ईस्वी सन २१८ तक	आंध्रभृत्य अथवा शालिवाहन-वंश।
२१८ से ५५० तक	अभीर राष्ट्रकूट वंश वग़ैरा।
५५० से ७५३ तक	बादामी का चालुक्य वंश।
७५३ से ९७३ तक	मान्यखेट का राष्ट्रकूट वंश।
९७३ से ११९० तक	कल्याण का चालुक्य वंश।
७९५ से ११९१ तक	चन्द्रादित्यपुर का यादव वंश।
११११ से १३२६ तक	होयसल यादव वंश।
१३१८	देवगिरी के यादव राज्य की समाप्ति।
१३१८ से १३४७ तक	दिल्ली के सुल्तानों का शासन।
१३४७ से १५५६ तक	बहमनी राज्य।
१५२६ से १६५० तक	बहमनी राज्य की शाखायें।
१६२०	शाहजी, लखुजी और मलिक अम्बर ने मिलकर मुग़लों को हराया।
१६२१	लखुजी जाधवराव मुग़लों से जा मिला।
१६२२	शाहजी की रायगढ़ पर चढ़ाई।

१६२३	शाहजी के प्रथम पुत्र सम्भाजी का जन्म।
१६२४	भातवड़ी का युद्ध और शाहजी का पराक्रम।
१६२५	शाहजी मलिक अम्बर से झगड़कर आदिलशाह से मिल गया और सरलश्कर का खिताब पाया। खुर्रम को मलिक अम्बर ने अपने आश्रय में रक्खा।
१६२५–१६२७	शाहजी बीजापुर—दरबार में। पूना को जबरदस्ती लिया।
१६२६	मलिक अम्बर की मृत्यु।
१६२७	शाहजहाँ बादशाह बना।
१६२८	शाहजी निजामशाह की नौकरी में वापस गया और उसने पूना के परगने का मोकासा पाया। निजामशाही की ओर से दर्याखाँ पर शाहजी ने चढ़ाई की। शाहजहाँ के विरुद्ध दौलतखाँ लोदी का बलवा।
१६२९	शाहजी ने पूना की ओर आकर आदिलशाही में गड़बड़ मचाई। शिवनेरी में सम्भाजी का विवाह करके दर्याखाँ पर फिरसे हमला किया।
१६३०	दर्याखाँ का पराभव। शिवाजी का जन्म। लखुजी का खून। शाहजी मुग़लों से मिला और मनसब पाई। तुकाबाई के साथ शाहजी का दूसरा विवाह।
१६३१	भयंकर अकाल। व्यंकोजी का जन्म।
१६३२	फ़तेहखाँ ने बुरहान निज़ामशाह को मार डाला।

	शाहजी ने मुग़लों को छोड़कर नासिक, जुन्नर, संगमेश्वर, पेमगढ़ में निज़ामशाही की स्थापना की।
१६३३	महाबतख़ाँ ने दौलताबाद लिया ।
१६३३–३६	निजामशाही बचाने के लिए मुगलों से शाहजी का युद्ध ।
१६३३–३४	शिवाजी माँ के साथ ननिहाल में (दौलताबाद)।
१६३४	शिवाजी सहित जीजाबाई को मुग़लों ने बीजापुर में पकड़ा, फिर छोड़ दिया ।
१६३६	माहुली का घेरा । शिवाजी और जीजाबाई । यहीं शाहजी आदिलशाह का नौकर बना । उसे पूना परगने का मोकासा आदिलशाही से मिला । कुतुबशाह और आदिलशाह ने मुग़लों को कर देना स्वीकार किया । औरंगज़ेब दक्षिण का सूबेदार बना और सन् १६४४ तक रहा।
१६३९	देशमुखों का बन्दोबस्त ।
१६४२ १६४३	शिवाजी कुछ दिन बीजापुर में, एक बार बंगलोर में ।
१६४४	बेलसर की लड़ाई ।
१६४५	दाजी नरस प्रभु को बीजापुर से डाट की चिट्ठी आई ।
१६४६	शिवाजी ने राजगढ़ किला बनाया (?)। छत्रपति की पदवी धारण की (?) ।

१६४७	दादोजी कोण्डदेव की मृत्यु। शिवाजी ने सिंहगढ़ लिया।
१६४८	शाहजी क़ैद में पड़ा।
१६४९	शाहजी की क़ैद से मुक्ति। शाइस्ताखाँ पहले-पहल दक्षिण का सूबेदार हुआ।
१६५२	औरंगज़ेब दूसरी बार दक्षिण का सूबेदार हुआ।
१६५३	शिवाजी पूना की जागीर में रहा और शाहजी कर्नाटक में बलवे दबाने के लिए गया।
१६५६	शिवाजी ने जावली ली, फिर रायरी ली। मोरे का वध। सम्भाजी मोहते को पकड़ना। कुतुबशाह से औरंगज़ेब की संधि।
१६५७	बेदर लिया। संभाजी का जन्म। नौसिरखाँ से शिवाजी का युद्ध। शिवाजी ने कल्याण भिवंडी ली। आदिलशाह से औरंगज़ेब की संधि।
१६५८	औरंगज़ेब दक्षिण से गया। शिवाजी ने माहुली ली। औरंगज़ेब बादशाह हुआ।
१६५९	फ़तेहखाँ बीजापुर में विष देकर मारा गया। बहलोलखाँ मारा गया।
१६५९	अफ़ज़लखाँ का वध। पन्हाला मराठों ने लिया। रुस्तमजमा और फ़ाज़लखाँ का मराठों ने पराभव किया। शिवाजी का दाभोल से राजापुर तक हमला। अंग्रेज़ों और मराठों में खटपट।
१६६०	शिवाजी पन्हाला पर गया। सिद्दी जोहार ने इस क़िले को घेर लिया। शाइस्ताखाँ पूना

	की ओर आया। मराठों ने वासोटा गढ़ क़िला लिया। शिवाजी पन्हाले से खेलना उर्फ़ विशालगढ़ गया। यहाँ बाजी प्रभु का पराक्रम। शिवाजी खेलना से राजगढ़ गया। मुग़लों ने चाकण लिया और शाइस्ता-ख़ाँ पूना आया। पन्हाला देकर शिवाजी ने बीजापुर वालों से संधि की। शाइस्ता-ख़ाँ के पास शिवाजी का दूत सोनोपंत गया और वापस आया। उमरखेड़ के युद्ध में मराठों ने कारतलबख़ाँ का पराभव किया। दाभोल और प्रभावली लेकर राजापुर की लूट की।
१६६१	शृंगारपुर लिया। सावन्त का शिवाजी द्वारा पराजय।
१६६३	शिवाजी का शाइस्ताख़ाँ पर हमला। मुग़लों ने कात्रज की घाटी में धोखा खाया। शाइ-स्ताख़ाँ की बंगाल में बदली।
१६६४	शिवाजी ने सूरत को लूटा। शाहजी की मृत्यु। मिर्ज़ा राजा जयसिंह की दक्षिण में रवानगी। शिवाजी का खवासख़ाँ और बाजी घोरपड़े से युद्ध। घोरपड़े मारा गया।
१६६५	जयसिंह की भेंट। मुग़लों से सन्धि।
१६६६	शिवाजी औरंगज़ेब की भेंट को गया।
१६६७	स्वराज्य में आगमन। औरंगज़ेब से सन्धि। आदिलशाह से सन्धि।
१६६९	राजाराम का जन्म।

१६७०	औरंगज़ेब से युद्ध। सिंहगढ़ और पुरन्दर लिये। लोहगढ़, रोहिला, हिंद्रोला, माहुली, कर्नाला लिये। सूरत की दूसरी लूट।
१६७१	सालेर का घेरा।
१६७२	सालेर लिया।
१६७३	सातारा लिया। बहलोलखाँ और प्रतापराव का युद्ध। उम्बराणी का युद्ध।
१६७४	प्रतापराव की मृत्यु। जेसरी का युद्ध। शिवाजी की मुंज। राज्याभिषेक। जीजाबाई की मृत्यु।
१६७६	नेताजी पालकर की शुद्धि।
१६७७	शिवाजी की कर्नाटक पर चढ़ाई।
१६७९	भूपालगढ़ लिया। सम्भाजी मुग़लों के पास गया, फिर वहाँ से वापस आया।
१६८०	शिवाजी की मृत्यु। सम्भाजी गद्दी पर बैठा।
१६८१	सम्भाजी और औरंगज़ेब के पुत्र अकबर की भेंट।
१६८२	रामदास स्वामी की मृत्यु।
१६८५	बीजापुर को मुग़लों ने घेरा। गोलकुण्डा वालों ने मुग़लों से सन्धि की।
१६८६	मुग़लों ने बीजापुर लिया। मुग़लों ने गोलकुण्डा का घेरा डाला।
१६८७	मुग़लों ने गोलकुण्डा लिया।
१६८९	सम्भाजी को मुग़लों ने क़ैद किया। सम्भाजी का वध। राजाराम राजा हुआ। राजाराम पन्हाले से जिंजी को आया।
१६९०	मुग़लों ने जिंजी का घेरा डाला।

१६९३	जुलफ़िक़ारख़ ने जिंजी का घेरा उठा लिया।
१६९४	जिंजी को फिर से जुलफ़िकारखाँ ने घेरा।
१६९७	सन्ताजी घोरपड़े का वध।
१६९८	जुलफ़िक़ारखाँ ने जिंजी को ले लिया।
१६९९	राजाराम जिंजी से खेलना को गया। गदग के पास शाहज़ादे से लड़ाई हुई।
१७००	औरंगज़ेब ने सतारा को घेरा डाला। राजाराम राजगढ़ गया और उसकी मृत्यु हुई। उसका ५ वर्ष का लड़का शिवाजी राजा हुआ। मान नदी में औरंगज़ेब की सेना बह गई।
१७०१	औरंगज़ेब ने पन्हाला, समानगढ़, वर्धनगढ़, कलानिधी लिये। खेलना का उसने घेरा डाला। कोंडाणा घूस देकर लिया।
१७०२	औरंगज़ेब ने खेलना घूस देकर लिया।
१७०३	औरंगज़ेब ने कोंडाणा घूस देकर लिया। मराठे नर्मदा पार कर सिरोंज लूट आये।
१७०४	तोरणा लिया। सर्जाखाँ से मराठों की लड़ाई। मराठों ने नर्मदा पार कर देश लूटा।
१७०५	मराठों ने लोहगढ़ ले लिया। औरंगज़ेब ने वाघनगर का घेरा डाला और ले लिया। मराठों ने कोंडाणा ले लिया।
१७०६	धनाजी जाधव ने शाही फ़ौज से लड़ाई की। जुलफ़िकारखाँ ने घूस देकर कोंडाणा फिर से ले लिया।
१७०७	अहमदनगर में औरंगज़ेब की मृत्यु। आज़म बाद-

	शाह बन बैठा। फिर वह दिल्ली को चला गया। शाहू की मुक्ति।
१७११	बालाजी सेनापति हुआ।
१७१३	बालाजी को पेशवा-पद प्राप्त हुआ।
१७१९	छः सूबों की चौथाई की सनद और देशमुखी की सनद।
१७२०	बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु। बाजीराव पेशवा हुआ।
१७२१	बालाजी बाजीराव का जन्म।
१७२४	साखरखेड़ की लड़ाई।
१७२८	पालखेड़ की लड़ाई।
१७२९	जैतपुर की लड़ाई।
१७३०	सदाशिवराव भाऊ का जन्म।
१७३१	शाहू व सम्भाजी की जखिणवाड़ी में मुलाक़ात। डभई की लड़ाई।
१७३४	राघोबा का जन्म।
१७३७-१७३८	भोपाल का घेरा।
१७३९	बसई का घेरा।
१७४०	मुंगी पैंटण की सन्धि। बाजीराव की मृत्यु। बालाजी बाजीराव को पेशवाई पद प्राप्त। चिमणाजी अप्पा की मृत्यु।
१७४३	मालवा की सनद।
१७४५	प्रथम माधवराव का जन्म। राणोजी शिन्दे की मृत्यु। ब्रह्मेन्द्र स्वामी समाधिस्थ हुए।
१७४८	निज़ामुलमुल्क की मृत्यु।
१७४९	शाहू की मृत्यु।

१७५०	ताराबाई ने रामराजा को क़ैद किया।
१७५१	फर्रुख़ाबाद की चढ़ाई। कुकड़ी नदी की लड़ाई।
१७५२	रामदास पन्त भाल्की में मारा गया।
१७५३	राघोबा ने अहमदाबाद जीत लिया।
१७५४	कुम्हेरी का घेरा।
१७५५	रघुजी भोंसले की मृत्यु। जयाजी शिंदे का ख़ून।
१७५९	नगर का क़िला मराठों ने जीता। दूसरे आलमगीर का ख़ून।
१७६०	दत्ताजी शिन्दे की मृत्यु। उदगीर की लड़ाई।
१७६१	पानीपत की तीसरी लड़ाई। बालाजी बाजीराव की मृत्यु। माधवराव को पेशवाई पद प्राप्त। ताराबाई की मृत्यु।
१७६२	घोड़ नदी की चढ़ाई।
१७६३	निज़ाम ने पूना प्रान्त लूटा। राक्षसभुवन की लड़ाई।
१७६४	रटेहली की लड़ाई। धारवाड़ का घेरा। अनवड़ी की लड़ाई।
१७६६	मल्हारराव होलकर की मृत्यु।
१७६८	धोड़प की चढ़ाई।
१७६९	कनकापुर की सन्धि।
१७७१	मोतीतालाव की चढ़ाई। शाह आलम को दिल्ली ले जाकर मराठों ने गद्दी पर बैठाया।
१७७२	जानोजी भोंसले की मृत्यु। माधवराव की मृत्यु।
१७७३	नारायणराव का ख़ून।
१७७४	सवाई माधवराव का जन्म।
१७७५	सूरत की सन्धि। साबाजी भोंसले का ख़ून।

१७७६	पुरन्दर की सन्धि। झूठे भाऊसाहब का खून।
१७७७	गंगाबाई का मृत्यु।
१७७९	बड़गाँव की सन्धि।
१७८१	सखाराम बापू की रायगढ़ में मृत्यु।
१७८२	हैदरअली की मृत्यु।
१७८३	सालबाई की सन्धि। राघोबा की मृत्यु।
१७८४-१७८५	दिल्ली में महादजी का ज़ोर फिरसे स्थापित हुआ। बादशाह ने पेशवा के नाम वकील-इ-मुतालिक की और शिन्दे के नाम पेशवा के 'नायब' की सनदें शिन्दे के हाथ अर्पण कीं (१-५-१७८५)।
१७८७	लालसोट की चढ़ाई। दिल्ली में महादजी का ज़ोर एकदम कम हो गया।
१७८८	गोपिकाबाई की मृत्यु (पंचवटी में)। दिल्ली में महादजी ने फिरसे अपना ज़ोर स्थापित किया।
१७८९	रामशास्त्री प्रभुणे की मृत्यु। गुलामक़ादर का वध।
१७९०	पाटन की लड़ाई। परशुराम भाऊ ने धारवाड़ को घेरा। मेड़ते की लड़ाई।
१७९१	घासीराम कोतवाल को प्राण-दण्ड।
१७९२	महादजी शिन्दे पूना आया। पेशवा को वकील-इ-मुतालिक की पदवी दी गई। लखेरी की लड़ाई।
१७९४	महादजी शिन्दे की मृत्यु। हरिपन्त फड़के का स्वर्गवास।

१७९५	खर्डा की लड़ाई । अहिल्याबाई की मृत्यु । सवाई माधवराव का स्वर्गवास ।
१७९६	चिमाजी पेशवा हुआ । दूसरा बाजीराव पेशवा हुआ ।
१७९७	तुकोजी होल्कर की मृत्यु । नाना फड़नवीस क़ैद हुआ ।
१७९८	घाटगे ने पूना के लोगों को तकलीफ़ दी ।
१७९९	टीपू सुलतान की मृत्यु । परशुराम भाऊ की मृत्यु ।
१८००	नाना फड़नवीस की मृत्यु ।
१८०२	बसई की सन्धि ।
१८०३	असई की लड़ाई । लासवाड़ी की लड़ाई । देवगाँव की सन्धि ।
१८०४	सुरजी अंजनगाँव की सन्धि । होलकर से अंग्रेज़ों की लड़ाई ।
१८११	यशवन्तराव होलकर की मृत्यु ।
१८१५	गंगाधर शास्त्री का खून ।
१८१७	शनिवारवाड़े पर अंग्रेज़ों का झंडा ।
१८१८	कोरेगाँव की लड़ाई । अष्टी की लड़ाई । बापू गोखले मारा गया । बाजीराव अंग्रेज़ों के अधीन हुआ ।
१८५१	दूसरे बाजीराव की ब्रह्मावर्त उर्फ़ बिठूर में मृत्यु ।
१८५८	झाँसी की रानी की मृत्यु । दूसरे नानासाहब की नेपाल में मृत्यु ।

अशुद्धि-संशोधन

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४	१	दिल्ली	आगरा
१७	२१	शुजाउद्दौला	सिराजुद्दौला
२५	६	शूपरिक	शूर्पारक
२७	२०	शप्तशर्ता	सप्तशती
२८	२३	अर्भार	अभीर
२९	२१	मानन्य	मानव्य
३४	१	तैलब	तैलप
७१	२२	पिंपद्रनेर	पिंपलनेर
७६	१२	उन्हें	मुझे
७७	२३	कयति	कर्यात
८७	११	भार्गों	मार्गों
९३	६	अवधे	अवघे
९७	अध्याय नं०	७	९
१०७	११	यीजापुर चढ़ाई	बीजापुर पर चढ़ाई
११५	२३	१६६९	१६५९
११९	७	भयी	भी
१२०	४	चौर	और
१२०	१०	जुन्नार	जुन्नर
१२१	२३	भाऊसुरे	माल्सुरे
१२७	१६	खम्भाजी	सम्भाजी
१२८	३	मदद न की	मदद की
१३६	१५	कञ्चमघाट	कञ्चनघाट

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४०	९	बाई	वाई
१४१	९	गुस्से	ग़ुस्सा
१४४	१२	पड़ा	पड़े
१४५	१७	ज्येष्ठ	वह ज्येष्ठ
१६०	११	अंजबबेल	अंजनवेल
१६७	४	उवीर	डवीर
१७०	२०	पशकारों	पक्षकारों
१९८	१८	सामान	समान
१९९	११	सिद्धी	सिद्दी
२०४	२४	आपजी	आवजी
२०६	५	मयंकर	भयंकर
२०६	२४	खेदण्डा	रेवदण्डा*
२११	१०	छन्दोगा माल्य	छन्दोगामाल्य
२११	१२	इतिकन्वाँ	ईतिकदखाँ
२३०	३	तीरण।	तोरण
२३०	९	चिम्बक	त्रिम्बक*
२३४	७	कदमवाडे	कदम बाण्डे
२३४	७	परशोजी	परसोजी
२३९	२	शाहू	शाहू को
२३९	१२	खटाकर	खटावकर
२४३	२३	सासवढ़	सासवड़
२५६	२२	गुकारत	गुजरात
२६०	२०	उभई	डभई*
२६७	२	स्वामी रहता था। सिद्दी ने	सिद्दीने
२७६	१४	रेवपण्डा	रेवदण्डा*

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८१	२४	गुर्त्ता	गुत्तो*
३००	२२	ब्रूसी	बूसी*
३१०	१५	वज़ीरखाँ	नजीबखाँ
३१२	१३	वध	बन
३४४	२१	लड़ने लगा था	लड़ने में लगा था
३४७	२०-२१	शाह आलम ने	शाह आलम से
३४७	२२	मीरकासिम से	मीरकासिम ने
३७१	९	अमाद	अमोद
३७२	१४	अन्याय	अन्याय्य
३८८	९	देन	देने
३९४	२१	फौज	फ़ौजें
४००	३	समय का	समय का जो
४०४	अध्याय नं०	२६	२८
४१४	१९	मुल्क का	मुल्क को
४१६	१३	निज़ाम ने	निज़ाम से
४२४	१७	उनकी	उसकी
४३८	१०	राज्य	राजा
४३९	२२-२३	बालाजी बाजीराव ने	बालाजी विश्वनाथ ने
४४४	१०	चरोतर	चरोखर
४०८	२०	होगये थे	होगया था
४४२	८	कुलकर्णीपरन	कुलकर्णीपन
४५०	६	समय	समान
४५१	२	वेतन	वतन
४५५	२१	न होती थी	होती थी
४५८	१६	जमाबन्दी की वसूली	जमाबन्दी का ठेका

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४६२	१७	है	रहे
४६४	७	त्रुरे हैं	त्रुरे हुए हैं
४६६	९	देश की मजलिस	देशक की मजलिस
४६७	५	साक्षीदार	साक्षी
४६९	३	हुए	गये
४७३	१६	सेनावार हजारी	सेना-बारह हज़ारी
४८७	११	करोड़ों	कल्हाड़ों
५०९	१६	सार्दा	सादी
५०९	१६	भी	की
५१४	१६	मापा	भाषा
५१६	१९	बारहवीं	तेरहवीं
५१८	१	यह	हेमाद्रि
५१९	३	रखभावाई	रखमाबाई
५२१	२४	बहुत ही परिश्रम करना पड़ता था	बहुत परिश्रम नहीं करना पड़ता था
५२३	२	भागवन	भागवत
५२६	९	शक्ति-काल में	इसी काल में
५२७	१०	मराठी का लेना मुसलमानी काल में ही शुरू हो गया था	मराठी भाषा मुसलमानी काल में ही लेने लग गई थी
५३१	९	अखीर	आख़िर
५३३	२४	दृप्य	दृश्य
५३४	५-६	विपरियास	विपर्यास
५३५	१०	बैश्वणगीत	वैष्णवगति
५३६	१०	ज्ञानेश्वर से	ज्ञानेश्वर के

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५३६	११	आश्वलापन	आश्वलायन
५४१	११	पसने	उसने
५४८	८	मादा	सादी
५५१	१७	महाराष्ट्र	महाभारत
५५५	१-२	सेतमालिका	संतमालिका
५५५	४	भक्तमाल	भक्तमाला
५५५	९	हेगराज	हेमराज
५५५	१०	गौरा	गोरा
५५५	१५	'शतमालन'	संतमाला
५५६	२२	मणिमाल	मणिमाला
५६०	१	काशीजोन	काशी जाने
५६०	४	ब्यंटेश	ब्यंकटेश
५६०	६	पाण्ढरी	पण्ढरी

---

* ये शब्द और जगह भी आये हैं, वहां भी ऐसे ही शुद्ध किये जायँ।



सस्ता-साहित्य-मण्डल अजमेर के

प्रकाशन

सस्ता-साहित्य-मण्डल द्वारा प्रकाशित

कुछ

अनमोल और क्रांतिकारी प्रकाशन

१—जब अंग्रेज़ आये—

[अजमेर-मेरवाड़ा की सरकार द्वारा ज़ब्त] १।=)

२—नरमेध ! [स्वाधीनता का मार्ग-प्रदर्शक] १॥)

३—स्वाधीनता के सिद्धान्त ॥)

४—विजयी बारडोली २)

५—आत्मकथा [दोनों खंड] सजिल्द २॥) अजिल्द २)

६—तामिल वेद ॥।)

७—जीवन-साहित्य [दोनों भाग] १=)

८—शैतान की लकड़ी ॥।=)

९—जीवन-विकास सजिल्द १॥) अजिल्द १।)

१०—फाँसी ! ॥)

पता—

सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर ।

सस्ता-साहित्य-मण्डल से प्रकाशित

होने वाले ग्रन्थ

१—स्व-गत (श्री हरिभाऊ उपाध्याय)

२—शिक्षा का आधार

३—लोकनायक श्रीकृष्ण

४—विवाह-मीमांसा

५—सत्याग्रह का इतिहास

६—ग्राम-संगठन